मुण्डकोपनिषद्



पं० जगन्नाथशास्त्रीतैलङ्गः

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शोधप्रकाशन ग्रन्थमाला– ३७

मुण्डकोपनिषद्

उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित-

शाङ्करीव्याख्यानामक-वीरशैवभाष्योपेता

अनुवादकः सम्पादकश्च

पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्गः

प्रकाशकः

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी – २२१ ००१

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रकाशक
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी - २२१ ००१

© शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

प्रथम संस्करण २००४

मूल्य : सजिल्द ५००
अजिल्द ४५०

ISBN 81-86768-65-3 (Hb)
ISBN 81-86768-66-1 (Pb)

अक्षर संयोजन
शिव शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाडीमठ, वाराणसी

मुद्रक
मित्तल ऑफसेट्स
सुन्दरपुर, वाराणसी

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

Research Publications Series— 37

MUṆḌAKOPANIṢAD

Śānkarīvyākhyā-Vīraśaivabhāṣya

by

Umacigi Śankarśāstri

Translated and Edited by

Pt. Jagannath Shastri Tailang

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221 001

© Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

First Published 2004

ISBN 81-86768-65-3 (Hb)
ISBN 81-86768-66-1 (Pb)

Price : Rs. 500.00 (Hb)
Rs. 450.00 (Pb)

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Printed at :
Mittal Offeset
Sundarpur, Varanasi

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-संस्थापकानां



श्रीकाशीविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वराणां

श्री १००८ जगद्गुरु-डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां

शुभाशीर्वचनम्

भगवान् शिव ने लोकोद्धार के लिए अपने सद्योजात मुख से ऋग्वेद का, वामदेव मुख से यजुर्वेद का, अघोर मुख से सामवेद का, तत्पुरुष मुख से अथर्ववेद का और ईशान मुख से शैवागमों का आविर्भाव किया। कामिक से वातुल पर्यन्त इन शैवागमों की संख्या अठाईस है। प्रत्येक आगम ज्ञानपाद, क्रियापाद, योगपाद और चर्यापाद नामक चार पादों से युक्त है। भारतीय सनातन धर्म-दर्शन के निगमागम ही मूल आधार हैं। सभी सनातन धर्मावलम्बी निगमागमोक्त धर्माचरण से ही परम पुरुषार्थ को पा रहे हैं।

निगम और आगम भगवान् शिव से ही प्रादुर्भूत हैं, अत एव परस्पविरुद्धार्थक नहीं है। श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य जी ने अपने क्रियासार ग्रन्थ के प्रथमोपदेश में इस विषय का इस प्रकार समर्थन किया है—

परस्पराविरुद्धार्थाः शिवोक्ता निगमागमाः ।
अल्पबुद्धिभिरन्योऽन्यं विरोधः परिकल्प्यते ।।

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान के अधीन कार्यरत शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा अपनी स्थापना के साथ ही प्रति वर्ष महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर हिन्दी भाषा के अनुवाद के साथ निगमागम ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। उसी शृंखला में निगम विभाग में समाविष्ट उपनिषदों में से प्रधान ईशावास्य, केन, सिद्धान्तशिखा जैसे उपनिषदों का तथा ब्रह्मसूत्रवृत्ति का वीरशैव मत के प्रतिष्ठापक भाष्यों तथा उनके भाषानुवादों

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

के साथ अब तक प्रकाशन हो चुका है। इसी सातत्य में अब दशोपनिषदों में विशिष्ट स्थान प्राप्त माण्डूक्योपनिषद् का वीरशैवमतीय भाष्य के साथ और उसके भाषाभाष्य के साथ प्रकाशन किया जा रहा है। इस संस्करण के संपादक, भाषाभाष्य के एवं प्रस्तावना, परिशिष्ट आदि के संयोजक काशी के सुविख्यात विद्वत्कुल के भूषण श्री जगन्नाथ शास्त्री तैलंग हैं। ईश, केन और सिद्धान्तशिखा नामक उपनिषदों के संस्करणों के माध्यम से आपने अपनी शेमुषी का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में इन्होंने सभी आवश्यक विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला है। वीरशैव मत के प्रतिपादक सभी उपनिषद् भाष्यों के सम्पादन का इनका सत्संकल्प गतिशील है। श्वेताश्वतर उपनिषत् का इनका संस्करण मुद्रणाधीन है।

हम भगवान् विश्वेश्वर तथा श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी से यही प्रार्थना करते हैं कि आपकी आयुरारोग्य की वृद्धि हो तथा आपके द्वारा निरन्तर साहित्य-सेवा होती रहे। इस ग्रन्थ के मुद्रण-कार्य में शिवशक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस में कार्यरत श्री राजशेखर जी. हिरेमठ का तथा इसके व्यवस्थापक श्री जी. सी. केण्डदमठ का अपेक्षित सहयोग रहा है। इन सबके प्रति अपनी मंगल-कामनाओं के साथ हम अपना आशीर्वचन पूर्ण कर रहे हैं।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

इति शिवं भूयात्



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

Foreword

This is a commentary in Sanskrit on *Muṇḍakopaniṣad*. The *Muṇḍakopaniṣad* is one of the most important of the classical Upaniṣads. The present edition of the Upaniṣad is a commentary according to the Śakti Viśiṣṭādvaita, originally written by the late Umachigi Sankara Sastry.

The *Muṇḍakopaniṣad* refers to two Vidyās *para* and *apara*, higher knowledge and lower knowledge. While the lower knowledge is the practice of the *karma kāṇḍa* of the Veda, the higher knowledge is the realization of Brahman. The commentary in this book interprets the *para vidyā* or higher knowledge as the *Pancākṣari vidyā*, through which the realization of the Paramaśiva Brahman is possible. It is also interpreted that the *para vidyā* or higher knowledge is the *kāraṇa vidyā* or knowledge of the First Principle or the First Cause.

The commentary says that the Iṣṭa linga leads the individual to salvation or mokṣa. It is not through the mere recitation of the veda that salvation is possible, but through the inward possession of the Iṣṭa linga.

The commentary on the *Muṇḍakopaniṣad* in accordance with the system of Śakti Viśiṣṭādvaita accepts the principle of non-dualism but it interprets the ultimate reality as the auspicious and gracious Lord Śiva and world as the manifestation of His grace and power. The commentary is an attempt to reconcile the principles of saguṇa and nirguṇa in their interpretation of the highest reality expounded in the Upaniṣads.

The Upaniṣads have stated the eternal principles of knowledge and reality. These principles are to be interpreted by successive generations and become the inspiring ideals of life through man's inner experience. As long as man grows richer and richer in his inward experience of the Divine, the Upaniṣads will continue to have a guiding influence on his thought and action.

N. A. Nikam
Vice-Chancellor
University of Mysore

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उपोद्घातः

(प्रथमसंस्करणस्य)

विश्वस्य तत्त्वशास्त्राणां साहित्यक्षेत्रे उपनिषद्भिः प्रधानं स्थानमाक्रान्तम्। पाश्चात्यतत्त्वशास्त्रपारीणाः साहित्यसंशोधकाश्च उपनिषदां प्राधान्यं मुक्तकण्ठं शंसन्ति। तेषु अत्याधुनिको विश्वैकदेवतावादी आर्थर-षोपन्होर (Arthur Schopenhuer) एवमवादीत्— "उपनिषदध्ययनं ममाऽत्यन्तफलप्रदमुत्कर्षाधायकं च। ताश्च मम जीवने मरणकालेऽपि च शान्तिप्रदा इति मन्ये" इति। तद्रचिततत्त्वशास्त्रे उपनिषत्सिद्धान्ता ओतप्रोततया विमिश्रिताः[1]।

शर्मण्यदेशीयः कील् (Keil)विश्वविद्यानिलयस्य प्रो. डाय्सन् (Deussen)-महाशयः— "उपनिषत्सु पार्मिनैडिस् (Parmenides)-प्लेटो (Plato)-क्यांट् (Kant)-प्रभृतीनां सिद्धान्ताः सन्दृश्यन्ते" इत्युक्त्वा स्वदेशनिर्गमनावसरे एवमवदत्— "वेदान्तस्य निसर्गोपदेशा निष्कलङ्कनीतिशास्त्रस्याऽऽधारभूता जीवनस्य मरणस्य च क्लेशोपशमने महासाधनीभूताः। अत एव भारतीयास्तान् दृढमनुतिष्ठन्ति"[2] इति।

प्रो. जे. एस्. मेकिंजी (Prof. J. S. Mackenzie) महाशयः —"सुव्यवस्थितविश्व-रचनामधिकृत्य प्रवृत्ते वादे प्रथमं प्रवर्तितः स्वरसोऽसाधारणश्च वाद उपनिषत्सु उल्लेखितः" इत्युद्घोषयामास[3]।

न्यूयार्कनगरस्य मतेतिहासप्रधानाध्यापको डा० ह्यूम् (Dr. Hume)महाशयः— "उपनिषत्सु प्रतिपादित एकतत्त्ववादः पाश्चात्यैकतत्त्ववादस्योपरि न केवलं प्रभावमुन्मेषयामास, किन्तु उत्तरत्राऽपि प्रकाशं प्रसारयिष्यति; यत आध्यात्मिकानुभवजिज्ञासुभिः सर्वैरपि गृह्यमाणानि सत्यांशानां मूलतत्त्वान्युपनिषत्सु प्रगाढं निरूढानि" इति जगाद[4]।

भारते तावदुपनिषदां स्थानमसदृशम्। ता वेदान्तशब्देनाऽभिधीयन्ते। वेदानामन्ता- स्ता वेदसारमेवोपदिशन्तीति विज्ञायते। उपवेशनार्थकः 'सद्' धातुर् उप+नि-उपसर्गद्वय- संयोगात् समीपोपवेशनं सूचयति। अर्थात् श्रद्धाऽऽसक्तिभक्तिभिः सद्गुरुमभिगम्य ब्रह्मजिज्ञा-सुनाऽधिकारिणा

---

1. Thirteen Principal Upanishads by Hume, pp. 3-4, 1934.
2. Thirteen Principal Upanishads, P. 4.
3. Ind. Philosophy by Dr. S. Radhakrishnan, vol. I, p. 139, 1941.
4. Thirteen Principal Upanishads, pp. 4-5, 1934.

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्वीक्रियमाणोपदेशसंग्रह उपनिषदित्यवधार्यते। सा चेयमुपनिषद् मानवीयान्तरङ्गिकानुभावसहकारेण सिद्धं सत्यमुन्मेषयति। उपनिषद्युगीयानाम् अनुभाविनां धर्मस्फूर्तेः श्रुतिर्मूलम्। वैदिकार्या अत्युच्चतत्त्ववेदिन आसन्। न केवलं ते निसर्गतत्त्वोपदेशकाः, किन्त्वेकमेवाऽद्वितीयस्य परवस्तुनः परिपूर्णानुभवोऽपि तेषामासीदित्यवगम्यते। अन्यच्च, स्लेगल्-रे- ब्राइस-रे-वार्ड-चार्लस्-कोल्मन्-कोल्ब्रूक्-कौंट्-जास्-जर्नाप्रभृतयः पूर्वोक्ता विद्वद्वरेण्याश्च वेदाभ्यासिन एकदेवताकल्पनामूलं वेदमेवेति स्वकीयग्रन्थेषु लिलिखुः। किञ्च, तत्त्वज्ञानविषये ऋग्वेदीय-नासदीयसूक्तोदाहरणमेवाऽलम्। यतस्तत्र मन्त्रद्रष्टॄणां महर्षीणां तत्त्वजिज्ञासा विचारशक्त्याः सीमानमुल्लङ्घ्य कथं प्रास्फुरदित्यवगम्यते[1]।

वेदधर्मेण स्फूर्तिमतामुपनिषत्कालिकानां योगस्थानुभाविनामुपदेशरूपा मन्त्रा उपनिषत्सु विलसन्ति। अत एवोपनिषद्धर्मो वैदिकसंस्कृतेः स्वर्णकलशो भूत्वा तत्त्वज्ञाननभोमण्डलस्य ध्रुवतारेव विराजते।

योगस्थितौ शुद्धचैतन्यप्रतिभाप्रकाशेनोन्मिषितं सत्यं ललितसुभगया शैल्या महर्षय उपादिशन्। अनन्तशक्तेः परमात्मनो दिव्यसन्दर्शनाऽऽनन्दतुन्दिला मुनय आत्मानन्दतन्मयाः सन्तः शब्दसृष्टेः सार्वभौमा ज्ञानशिल्पिन इव दरीदृश्यन्ते। तेषामन्तर्वाण्यैवोपनिषत्।

उपनिषद्वाणी तावदियं दिव्यध्वनिरिव तत्तत्संस्कारसंस्कृतिवतामधिकारिणां विभिन्नरूपेणाऽनुभूयते। कश्चन विज्ञानी एकैकं पत्रशकलम् (peace of paper) एकैकस्य दत्वा आस्वादयितुमाशास्ते। तदेकस्मै मधुरम्, अन्यस्मै तिक्तम्, अपरस्मै लवणमित्यादि-रूपेणाऽनुभवास्पदं परिणमते।

तद्रुचिवैविध्यं न पत्रशकलनिष्ठम्, किन्तु व्यक्त्याश्रितमिति सर्वानुभूतमेव। अत एवोक्तं महाकविना "भिन्नरुचिर्हि लोकः" इति। यथा चैक एव शिवगङ्गाद्रिः (Sivaganga in Bangalore District) पूर्वादिक्रमेण वृषभः, गणपतिः, नागेन्द्रः, शिवलिङ्गमि-इत्याकारेण प्रतिदिशि विभिन्नेनैव रूपेण प्रतिभाति, एवं तत्त्वान्वेषकाणां सर्वेषां जिज्ञासूनां लक्ष्यमेकमेव। तथा चोक्तं पुष्पदन्तेन महात्मना महिम्नस्तवे— "रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव" इति, "मृग्याभेदेऽपि मार्गभेदस्य संभवः" इत्युक्तत्वाच्च।

दिव्यध्वनिस्वरूपाया भगवद्वाण्या विभिन्नभाषात्मकत्वमित्थं प्रतिपादितं पण्डितप्रकाण्डेन भट्टाकलङ्केन—

'नन्वेकस्या एव भगवद्वाण्या नानाभाषात्मकत्वं कथमुपपद्यत इति चेत्, दिव्यध्वनेरयमचिन्त्यमहिमा स्वभावः। यथा प्रावृट्काले नभःस्थलात् पतितमान्तरिक्षं जलमेकमव्यक्तरसमपि लवणकृष्णोषरादिक्षेत्रगतं सत् तदेव लवणमधुरकषायरसभेदभिन्नं

---

1. R. R. दिवाकर, उपनिषद् की प्रस्तावना।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नानात्मकमनुभूयते; यथा च शरत्काले स्वातिस्थे दिवाकरे शुभ्रादभ्रमेघात् प्रभ्रष्टमाभ्रं जलमेकमेव ताम्रपर्णी-शुक्ति-सप्तच्छदाद्यधिकरणगतं सद् मौक्तिककर्पूराद्यनेकाकार-परिणतमखिलधरणीप्रसिद्धमनुभूयते; यथा वा वृक्षवाटिकायां कुल्याजलमेकरसमेकमेव नानातरुवीरुद्गुल्मादिमूलदेशकृतालवालं प्राप्य तत्तदङ्घ्रिपीतं सत् तत्तत्फलमासाद्य मधुराम्लकटुकादिनानारसात्मना परिणतं सदनेकविधमखिलजनानुभवसाक्षिकमास्वाद्यते; तथा भगवद्भाषाऽपि स्वोत्पत्तिसमये समुद्रघोषवद् अव्यक्तैकभाषारूपाऽपि तत्तच्छ्रोत्रदेशं प्राप्ता सती तत्तद्भाषात्मना परिणमते, विचित्रशक्तिकत्वात्[1]।

अत्र दिव्यध्वन्यात्मकः शब्दो यथा नानाभाषात्मना परिणमते, तथा तादृशशब्देऽ-विनाभावसम्बन्धेन विद्यमानार्थोऽप्यधिकारिभेदेन नानातत्त्वात्मकतया प्रतिभातीत्यत्र न कापि विप्रतिपत्तिः प्रतिभाति। उद्रिक्तसत्त्वावस्थायां योगस्थानां मुनिपुङ्गवानामन्तर्वाणी-स्वरूपोपनिषदनुष्ठानवतां शङ्कराद्याचार्याणामेकमेव सत्यं द्वैत-अद्वैत-विशिष्टाद्वैत-शक्तिविशिष्टाद्वैताद्यात्मना भाने किमप्याश्चर्यमसङ्गतं वा सन्दृश्यते। अस्मिन् विषये अत्याधुनिकतत्त्वशास्त्रवेत्ता आर. डी. रानडे (R. D. Ranade) महोदयस्याऽऽशयोऽयम्— 'प्रतिदिशं प्रवहन्तीनां नदीनां पर्वत इव उपनिषद एव तत्त्वशास्त्राणां मूलम्। ताभि- र्नानाविधा आलोचनात्मका उपनद्य उद्भूय जीवनसागरं प्रति प्रवहन्ति। स्वस्वबुद्धिवैचित्र्यात् संजातानामुपशाखास्वरूपाणामुपनदीनां सङ्गमेन परिपुष्टाभिस्ताभिर्जीवनसागरसङ्गमक्षेत्रे तत्त्वशास्त्रस्य सुविशालं जलपात्रं विनिर्मितम्। एवं जैन-बौद्ध-सांख्य-योग-शैव-मीमांसादीनां द्वैत-अद्वैत-विशिष्टाद्वैतपथानां च मूलानि उपनिषत्सु सन्दृश्यन्ते। अत एव उपनिषद एकमेव सिद्धान्तं प्रतिपादयन्तीति न केनापि वक्तुं शक्यते[2]।

एतेन मन्त्रद्रष्टारो महर्षयोऽन्तरात्मप्रेरणयोन्मिषितानां भावनानां स्वरूपं हृदयङ्गमया सरलसुभगया भाषया प्रकाशयामासुः। तेषां च आलोचनान्तरङ्गेषु स्वयंप्रेरितभावजनित-निरूपणान्युपनिषत्सु सन्दृश्यन्ते।

श्रुतित्वेन प्रसिद्धा उपनिषदोऽपौरुषेया इति ताः प्रमाणभूताः पवित्राश्चेत्यङ्गीकृताः। सम्प्रदायसम्मताः सर्वे पन्थानोऽपि स्वाभिमतार्थसमर्थनाय उपनिषद उदाहरन्ति। उपनिषत्स्व-भिप्रायस्वातन्त्र्यस्य, अर्थवैशाल्यस्य चाऽवकाशतया तत्त्वजिज्ञासाया विविधच्छायाभिमतं प्रामाण्यान्वेषणं सुकरमेव। अत एवोत्तरोत्तरकालेषु स्वस्वमताभिव्यञ्जका विविधाः पन्थानः समभवन्। स्वमताशयसमर्थनाय प्राचीनोपनिषद्भिः प्रामाण्यप्रदर्शनेऽवकाशाभावे प्राचीनोपनिषदनुकरणरूपेणान्योपनिषदोऽप्याविर्भूताः। अत एवेदानीमुपनिषदां संख्या २३९

---

1. भट्टाकलङ्ककृत-कर्णाटकशब्दानुशासनम्, P. 9-10
2. E. H. I P., Vol. 2 A Constructive Survey of Upanishadic Philosophy, 1926, P. 179.

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

(एकोनचत्वारिंशदुत्तरशतद्वयपरिमिताः) दृश्यते।[1]

एताः सर्वाः प्राचीनोपनिषद इति नाऽङ्गीकर्तुं शक्यते। तासु प्राचीनत्वार्वाचीनत्वनिर्णयाय विमर्शकैः कानिचित् कारणानि निर्दिष्टानि। उपनिषदां भाषा, शैली, शब्दकोशः, व्याकरणवैशिष्ट्यम्, विषयनिर्देशः, यज्ञस्योपरि ब्राह्मणस्य प्रभावः, मन्त्रः (ऐन्द्रजालिकः), व्रतम्, फलश्रुतिः, तत्त्वाभिप्रायाणामैतिहासिकी प्रगतिश्चेत्यादीनां पर्यालोचनया उपनिषदां पौर्वापर्यं निर्णीयते।

प्राचीनोपनिषदस्तु क्रिस्तात् पूर्वं माकीं ६०० वर्षाणां प्राग् बुद्धजन्मकालिका इति ज्ञायते। केषाञ्चिदाशयानुसारं तासां संख्या दश इति, अन्येषामाशयानुरोधेन त्रयोदश इति परिगण्यते।

तत्र प्राचीनोपनिषदां क्रम इत्थं सूच्यते — बृहदारण्यकम्, छान्दोग्यम्, तैत्तिरीयम्, ऐतरेयम्, कौषीतकी, केनः कठः ईशः, मुण्डकम्, प्रश्नः, माण्डूक्यम्, श्वेताश्वतरम्, मैत्रेयी इति। उपर्युक्तपट्टिकायां प्राथमिक्यः षड् अत्यन्तप्राचीना इति परिगणिताः, एतत्त्रयोदशातिगाः सर्वा अर्वाचीना इति निर्णीताः।

उपनिषदां ध्येयम्

उपनिषद्द्रष्टारोऽमोघतपःप्रभावेण दुःखमूलं समीचीनमजानन्। तेषां ध्येयं तु जीवात्मानं कर्मबन्धाद् मोचयित्वा आत्मज्ञानद्वारा अमृतत्वाभिमुखीकरणमेव। उपनिषदां प्रयोजनं तु प्रेयसि (प्रापञ्चिकविषये) मग्नस्य जीवात्मनो नश्वरत्वेन तत्र जिहासामुत्पाद्य श्रेयोजीवनाभिमुखीकरणम्। किञ्च, न केवलमतीन्द्रियं ''पारलौकिकज्ञानमुपनिषद् बोधयति, किन्तु समाजभद्रताया आधारां नैतिकभित्तिं दृढीकृत्य अभ्युदयात्मकं लौकिकजीवनम- नासक्तिनौकाद्वारा संसारसागरं सन्तार्य, अपुनर्भवरूपनिरतिशयानन्दप्राप्तिरेव तासां तात्पर्यमित्यवगन्तव्यम्। 'नहि तर्केणाऽनुसन्धत्ते' इति बौद्धिकवादमाटीकितं तत्र; युक्ते-रप्रतिष्ठानात्।

साकल्येन आदर्शजीवन-सात्त्विकाहार-मनोनैर्मल्य-इन्द्रियनिग्रह-अनासक्ति-सदाचारा-ऽऽत्मार्पण-सर्वत्रेश्वरतादात्म्यादिप्रकटनमेवोपनिषदां हृदयम्।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।
असतो मा सद् गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय॥

इति मन्त्रार्थरूपोऽमरसन्देशो मानवसामान्यस्य प्रतिहृदयमुन्मिषन् प्रतिदिक्षु व्याप्नुवन् भारतसंस्कृतेरोजोऽभिवर्धयति।

---

1. Upanishadvakya Mahakosa by Sattivelkar Sastri 1940-41.

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मुण्डकभाष्यवैशिष्ट्यम्

प्राचीनत्वेन परिगणितासूपनिषत्सु द्वितीयं स्थानमलङ्कुर्वतो मुण्डकस्य कालनिर्णयोऽप्रस्तुत एव। प्रस्थानत्रये समाविष्टा उपनिषदः प्रायो दश एव। तत्र मुण्डकस्य स्थानं सुस्पष्टम्। सर्वे मताचार्या अस्य व्याख्यां स्वस्वमतानुरोधेन रचयामासुः।

इयं चोपनिषद् अथर्वशाखीयेति निर्दिष्टा। अत एव अस्या अथर्वशाखीयाया अथर्वशिर आद्युपनिषत्सम्बन्धो दृश्यते, अथर्वशिरसि प्रतिपादितस्य पाशुपताभिधस्य शिरोव्रतस्यात्र निर्दिष्टत्वात्। तथा चोक्तं सूतसंहितायाम् —

व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु।
तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ॥ इति।

पाशुपतमतस्वरूपं तु क्रियासासारोद्धृतसूतसंहितायाम्—

अथवाऽऽथर्वणैर्मन्त्रैर्गृहीत्वा भस्मपाण्डुरम्।
सर्वाङ्गोद्धूलनं यत् तद् व्रतं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥

एतद् वेदशिरोनिष्ठाः प्राहुः 'पाशुपतं' मुने !।
केचित् 'शिरोव्रतं' प्राहुः केचिदत्याश्रमं बुधाः ॥

(क्रियासारे ३.२७, पृ. १८३)

लिङ्गाङ्गसङ्गिनां वत्स ! पुनर्जन्म न विद्यते।
एष **पाशुपताचारः** पशुपाशनिवृत्तये ॥

सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रम इति श्रुतिः।
परब्रह्माभिधं लिङ्गं पशुपाशविमोचकम् ॥

यो धारयति सद्भक्त्या स पाशुपत उच्यते।
शरीरत्रितये भक्त्या लिङ्गं परशिवात्मकम् ॥

यो धृत्वा विचरेद् भूमौ स पाशुपत उच्यते।
लिङ्गं शिवो भवेत् क्षेत्रमङ्गं संयोग आश्रयः ॥

तस्माल्लिङ्गाङ्गसंयुक्तो योऽपि सोऽत्याश्रमी भवेत्।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा ॥
यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्तः स एवाऽत्याश्रमी भवेत् ॥

इत्यादित्यलिङ्ग-स्कान्दपुराणादिवाक्येषु पाशुपताऽत्याश्रमव्रतयोर्लिङ्गधारणपर्यायत्वेन निर्देशात् पूर्वोक्तसूतसंहितावाक्येन शिरोव्रतस्य पाशुपतव्रतपर्यायत्वेन निर्दिष्टत्वाच्च यावज्जीवं नियमेनाऽनुष्ठेयलिङ्गधारणमहाव्रतमेव शिरोव्रतमिति बाढं जानीम इति भाष्यकारैः सम्यक्

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रतिपाद्य पराभिमतं शिरस्यग्निधारणाऽग्निपात्रधारणाऽङ्गारपात्रधारणरूपं शिरोव्रतं पूर्वोक्तानेकोपबृंहणवाक्यविरोधाद् उपबृंहणानुसारेणैव श्रुत्यर्थस्य वक्तव्यत्वात्, इत्यादिना निराकृतं सहृदयैराकलनीयम्।

किञ्च, ''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाऽप्यलिङ्गात्'' इत्यत्राऽपि 'बलहीनेन' इत्यस्य बलशब्दस्य शिवशक्तिपर्यायत्वेन व्याख्याय, तद्रहितेन चिच्छक्तिसङ्कोचचित्तशक्तिविशिष्टेन पुरुषेणेत्युक्त्वा, 'अलिङ्गाद् वा' इत्यस्य 'अविद्यमानं लिङ्ग' यस्य सोऽलिङ्गः, तस्मादलिङ्गिनोऽवीरशैवान्न लभ्यः, किन्तु लिङ्गिनो वीरशैवाल्लभ्य इत्यादिना भाष्यस्य हृदयमर्थस्वारस्यं च सप्रमाणं स्थापितं भाष्यकारैः, समर्थितं चैवमेव नीलकण्ठशिवाचार्यैरपि—

जगतः कारणं ब्रह्म चोपास्यं हि मुमुक्षुभिः ।
'नायमात्मे'ति वाक्येन शिवस्य वरणं तनोः ।।
वरणं नाम तद्रूपधारणं विधिमार्गतः ।।

(क्रियासारे, १.१.१७९)

भाष्यप्रारम्भे च 'शौनको ह वै महाशांलो' आङ्गिरसं विधिवदुपपन्नः पप्रच्छ' इत्यत्र 'अङ्गिराः शिरोव्रती वीरशैव एवाऽऽसीदि'ति सप्रमाणं निरूपितम्, उदाहृतं च —

अगस्त्यो जैमिनिश्चैव विश्वामित्रोऽथ काश्यपः ।
भरद्वाजोऽङ्गिरा अत्रिर्वसिष्ठो रोमहर्षणः ।।
एते सर्वे महाभागा अतिवर्णाश्रमे रताः ।
वीरशैवाः समाख्याता जीवन्मुक्ता न संशयः ।।

इति नीलकण्ठशिवाचार्योक्तं तत्रैव (क्रियासारे)। अन्यच्च — अस्यां चोपनिषदि 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इति मन्त्रव्याख्यानावसरेऽपि 'इतरेषां भाष्यकाराणामाशयानुसारेण 'विरक्तानां (संन्यासिनां) तत्रापि ब्राह्मणानामेव विशेषतो ब्रह्मविद्याधिकार इत्यादिकं सयुक्तिकं निराकृत्य' गृहस्थानामप्यनासक्तयोगिनां न केवलं जात्या ब्राह्मणानाम्, किन्त्वत्याश्रमव्रतस्थानां सर्वेषामधिकारिणाम्, अपि च स्त्रीणामपि ब्रह्मविद्याधिकारो वर्तत इति सप्रमाणां प्रतिपादितमस्मिन् भाष्ये।

परापरविद्याविभागः

भाष्येऽस्मिन् परापरविद्यास्वरूपमितरभाष्यकारविलक्षणत्वेन स्वरसतया च प्रतिपादितम्। तदुक्तमागमे —

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

"पञ्चाक्षरी परा विद्या शिवज्योतिरवाप्तये" इति।

अनुभवसूत्रेऽपि —

पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां प्रणवेन षडक्षरीम्।
जपेत् समाहितो भूत्वा शिवपूजापरायणः॥
पञ्चाक्षरीं परां विद्याम्" इति।

उक्तं च रेणुकभगवत्पादाचार्यैरपि—

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः॥

इत्यादिभिर्मूलप्रणवसहितमहामनोः परविद्यात्वं साधयित्वा सिद्धान्तशिखोपनिषत्प्रमाण-सम्मत्या—

पञ्चाक्षरमयं शम्भुं परब्रह्मस्वरूपिणम्।
नकारादि यकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरीं जपेत्॥

इत्यादिप्रमाणप्रदर्शनेन वाच्यवाचकस्वरूपस्य मन्त्रमयस्य शिवस्य चाऽभेदं निरूप्य सिद्धान्तितम्। सिद्धान्तशिखोपनिषद्यपि— "योऽयं नकारः सोऽयमकारः सद्योजातोऽभूद् ऋग्वेदः सम्पुटमुच्यते" इत्यादिना मूलप्रणवघटकानां नकारादीनां तद्वाच्यानां सद्योजातादीनां तज्जन्यानामृग्वेदादीनां कामिकाद्यागमान्तानां च भेदः श्रूयते। तथा च सूक्ष्म-स्थूलात्मकप्रणवसहितपञ्चाक्षरीविद्यायाः कारणत्वावगमात् षडङ्गसहित-ऋग्वेदादिचतुष्टयस्य कार्यत्वावगमात् सद्योजाताद्य-परपर्यायाऽऽचारादिलिङ्गानां तदभिन्न-तद्वाचक-नकारादियकारान्ता पञ्चाक्षरी विद्या कारणरूपा परा, तज्जन्यसषडङ्ग-ऋग्वेदाद्यात्मिका विद्या कार्यरूपा अपरा च' इति शङ्कासमाधानपूर्वकं प्रतिपाद्येतरभाष्यकाराभिमतं च सोपपत्तिकं निराकृतम्, प्रतिपादितं चैवं शिवतत्त्वरत्नाकरे पञ्चमतरङ्गेऽपि—

ओङ्कार एव लिङ्गं स्यात् सर्वकारणकारणम्।
ओमिति ब्रह्म परमं लिङ्गाकारं महेश्वरम्॥
सृष्ट्यर्थं सर्वतत्त्वानां लोकस्योत्पत्तिकारणम्।
शक्तिसंयोगसद्भावं स्वेच्छयाऽचिन्तयच्छिवः॥

परापरविभागेन प्रणवस्तु द्विधा मतः।
परः परतरं ब्रह्म प्रज्ञाऽऽनन्दादिलक्षणम्॥
प्रकर्षेण नवं यस्मात् परं ब्रह्म स्वभावतः।
अपरः प्रणवः साक्षात् शब्दरूपस्तु निर्मलः॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यारभ्य

> ओङ्कारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
> प्रणवो हि परं ब्रह्म प्रणवः परमं पदम्॥

इति परमेश्वरस्य प्रणवाङ्कत्वं प्रतिपाद्य,

> पञ्च ब्रह्माणि पञ्चैव कृत्यानि सह कारणैः।
> बोध्यानि पञ्चभिर्वर्णैः पञ्चाक्षरमहामनोः॥
> पञ्चधा पञ्च धामानि प्रसिद्धानि विशेषतः।
> तानि सर्वाणि वस्तूनि पञ्चाक्षरमयानि हि॥
> इति पञ्चाक्षरीमन्त्रहेतुता प्रणवस्य तु॥

इत्यादिना प्रणवसहितपञ्चाक्षरीमहामनोः परविद्यास्वरूपत्वं तज्जन्य-ऋग्वेदादीनामपरविद्यात्वं च सविस्तरं निरूपितम्। इत्यादिविशेषैश्च भाष्यमिदं सरलसुन्दरभाषावैभवेन शास्त्रप्रक्रियापरिमिलितं राराजते। सहृदयाः सावधानमवलोक्य मोदेरन्नित्याशास्महे।



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

भाष्यकर्तॄणां परिचयः

सुगृहीतनामधेयाः के. शङ्करशास्त्रिमहोदयाः कर्णाटावन्यन्तर्भूत-धारवाड-जिल्ला-उमचिगीग्रामे क्रि. श. एकोनविंशतिशतकान्त्यभागे समभवन्। एते च महाभागाः साहित्य-व्याकरण-न्याय-पूर्वोत्तरमीमांसादिशास्त्रेषु पारङ्गता भूत्वा प्रथमतः प्रातःस्मरणीयानां शिवयोगमहामन्दिरसंस्थापकानां लिं० श्रीमन्निरञ्जनप्रणवस्वरूपिणां श्रीश्रीकुमारमहास्वामिना-माश्रयमुपलभ्य तत्र ग्रन्थसंशोधका आसन्नित्यनुश्रूयते। हैदराबादप्रान्ते परलीपवित्रतीर्थक्षेत्रे लोकप्रसिद्धस्य ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपस्य वैद्यनाथेश्वरस्य पूजाधिकारविषये (१९१८-२०) समुपजात-ब्राह्मण-वीरशैव-विवादप्रसङ्गे आहूतेषु पण्डितप्रवरेषु प्रधानस्थानभाजोऽभूवन्निति विज्ञायते।

तत इमे पण्डितप्रकाण्डाः श्रीमदुज्जयिनी-धर्मसिंहासनाध्यक्षाणां श्रीमज्जगद्गुरुश्री-१००८ सिद्धलिङ्ग-शिवाचार्यभगवत्पादानामास्थानमलङ्कृत्य धर्मरत्नपदवीमलङ्कृत्य अनेकान् ग्रन्थान् व्यरचयन्। एतेषाम् 'ईशावास्योपनिषत् शांकरीव्याख्या' तावत् १९२० तमे वर्षे प्रकाशिता। 'केनोपनिषत्-शाङ्करीव्याख्या' तु १९२३ तमे च संवत्सरे प्रकटिता। ततश्च 'सिद्धान्तसुधाकरो' नाम वादग्रन्थः प्रकाशितः। 'सिद्धान्तशिखोपनिषद् वीरशैवभाष्यं' पुनः १९२७ तमे खिस्ताब्दे संमुद्रितम्। बहुग्रन्थरचना-निश्चितविदग्धमतीनां कृतहस्तानामेतेषामिदं 'मुण्डकोपनिषत्-शक्तिविशिष्टाद्वैतभाष्यम्' इदानीं प्रकटितं सद् विद्वद्वर्याणां सहृदयानां संस्कृतिप्रियाणां हस्तमलङ्कुर्यादित्यस्माकमतीव मोदावहमित्यावेद्यते। एतेषां महोदयानामन्तिममदिनेष्वारब्धा 'श्रीकरभाष्यवृत्तिः' समाजदौर्भाग्यादसमाप्ताप्यनुपलब्धा चेत्यावेदयितुमस्माकं खिद्यते मनः। इदं च मुण्डकभाष्यं मैसूरराज्यमध्यवर्तिन्या देवनगर्याः (Davanagere) वास्तव्यानां वणिग्वर्याणां श्रीमतां एम्. चन्द्रशेखरप्प-महोदयानामन्तिके वरीवर्तीत्युदन्तमुपलभ्य वारंवारं तत्र गत्वा प्रकटनाय त्वरमाणे मय्येव तद्द्वारं न्यस्तवतामेतेषां संस्मरणमस्माकमनिवार्यम्। किञ्चास्य ग्रन्थस्य संशोधने प्रकटने सम्मुद्रणे च उपकृतवतां सर्वेषां पण्डितानामुदारचरितानां ग्रन्थरत्नमिदं कर्णाटावनिजनावनरत्नप्रायाणां संस्कृतिसंरक्षकाणां वेदशास्त्रपुराणादिमहाग्रन्थप्रकटनकामदुहां महीशूर-महासंस्थानराज्यपालानां श्रीमज्जयचामराज ओडेयर् महाप्रभुवर्याणां सन्निधौ समर्पणाय कृपया अनुमतिं वितीर्णानां च कृतज्ञतापूर्वकानन्तान् सप्रश्रयधन्यवादान् विनिवेद्य विरम्यत इति शम्।

सहृदयविधेयः

म. गं. नञ्जुण्डाराध्यः,
श्रीमन्महाराज-संस्कृतमहापाठशाला-
वीरशैवागम-प्राध्यापकः

शार्वरी शारदी
उत्थानद्वादशी
सोमवासरे, मैसूर
३१-१०-१९६०

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रस्तावना

ॐ

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने ।
चिदानन्द-घनस्वात्म-परमात्म-विभासिने ।।

मानव जीवन का चिर-यात्री है । उस की जीवन-यात्रा का चरम लक्ष्य है प्रकृष्ट सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त करना, जहां किसी प्रकार का दुःख न हो, शाश्वत सुख हो और वारंवार यात्रा न करनी पड़े । वह चरम प्रकृष्ट स्थान है परम-शिव-पद प्राप्ति अथवा आत्मसाक्षात्कार ।

प्रस्थानत्रयी— श्रीमद्भगवत्शंकरपाद ने उसके तीन उपदेश-सामग्री का चिन्तन-मनन-अनुसन्धान किया और उसका नामकरण किया 'प्रस्थान' । वे कहते हैं— "आत्मसमाधानाय आत्मसाक्षात्काराय वा प्रस्थीयतेऽनेनेति प्रस्थानम् = उपदेशोपायो गीतोपनिषद्ब्रह्मसूत्ररूपः"। अन्तःकरण के आत्यन्तिक समाधान अथवा आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए जिस उपाय अथवा साधन का अवलम्बन किया जाता है, उसे 'प्रस्थान' कहते हैं। वे तीन हैं— १. श्रीमद्भगवद्गीता, २. उपनिषत्-साहित्य और ३. ब्रह्मसूत्र । इनमें उपनिषत्-साहित्य वेद-वाङ्मय के अन्तर्गत है, जिसका उपबृंहण करने के लिए भगवान् वेदव्यास ने महाभारत, अष्टादश पुराण, उपपुराण और ब्रह्मसूत्र की रचना की । श्रीमद्भगवद्गीता उसी महाभारत का सारतत्त्व है, जिसे उपनिषदों की कोटि में रखा गया । आत्मसाक्षात्कार की 'प्रस्थानत्रयी' इतनी लोकप्रिय हुई कि प्रायः सभी आचार्यों ने अपने अपने संप्रदायानुसार इसके भाष्य किये ।

षड्दर्शन— न्यायदर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, पातञ्जलयोग दर्शन, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा इन छः आस्तिक दर्शनों में वर्णित आध्यात्मिक विषयों का सूक्ष्मतम विवेचन उत्तरमीमांसा में हुआ है, क्योंकि उत्तरमीमांसा का स्रोत उपनिषत्-साहित्य है । यतः उपनिषत् वेदों के ब्राह्मण भाग में समाविष्ट है, अतः उसे वेदान्तदर्शन अथवा अद्वैत दर्शन भी कहते हैं । यतः वेदान्तदर्शन स्थित विषयों का प्रतिपादन अपने अपने संप्रदाय की दृष्टि से भिन्न-भिन्न किया गया है, अतः वेदान्त दर्शन के आठ भेद हैं— १. शाङ्कर, २. वीरशैवं दर्शन, ३. रामानुज, ४. रामानन्द, ५. माध्व, ६. वल्लभ, ७. निम्बार्क और ८. गौड ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वीरशैव-दर्शन— इनमें वीरशैवदर्शन निगमागमसम्मत दर्शन है । वह वेद- सम्मत भी है और आगमसम्मत भी । 'पारमेश्वरागम' के अनुसार छः तन्त्रागम अथवा तन्त्रशास्त्रसम्मत दर्शन हैं, अपने अपने सम्प्रदायसम्मत तन्त्र के अनुसार जिनका अनुष्ठान- सम्पादन करना चाहिए । इसका प्रमाणवचन इस प्रकार है—

तन्त्रं तु षड्विधं प्रोक्तं षड्दर्शनविभेदतः ।
वीरशैवं वैष्णवं च शाक्तं सौरं विनायकम् ।।

कापालमिति विज्ञेयं दर्शनानि षडेव हि ।
तत्तत्तन्त्रोक्तमार्गेण तत् तत् कर्म समाचरेत् ।।

(पारमे. १.२२-२३)

शक्तिप्रधान वामतन्त्र, भैरवप्रधान दक्षिणतन्त्र, ब्राह्मी-माहेश्वरी-कौमारी-वैष्णवी-वाराही-इन्द्राणी-चामुण्डी इस सप्तमातृकाप्रधान मिश्रतन्त्र और शिवप्रधान सिद्धान्ततन्त्र इन चतुर्विध तन्त्रों में शिवप्रधान सिद्धान्ततन्त्र वेदसम्मत हैं । इसके विषय में श्रीरेणुकभगवत्पाद कहते हैं —

शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं सिद्धान्ताख्यं शिवोदितम् ।
सर्ववेदार्थरूपत्वात् प्रामाण्यं वेदवत् सदा ।।

(सि. शि. ५.८)

सर्वज्ञ शिव द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त-तन्त्र सम्पूर्ण उपनिषदों का सारतत्त्व है, अतः वेद के समान ही वह प्रामाणिक है —

वेदधर्माभिधायित्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमः ।
वेदबाह्यविरोधित्वाद् वेदसम्मत उच्यते ।।

(सि. शि. ५.१२)

शैवागम— सिद्धान्तागम अथवा शैवागम वेदसम्मत इसलिए हैं कि उनमें वेदोपदिष्ट धर्मों का प्रतिपादन है और वेदबाह्य (अवैदिक) नास्तिक धर्मों का खण्डन है ।

वे अट्ठाईस (२८) सिद्धान्तागम अथवा शैवागम इस प्रकार हैं— १. कामिक, २. योगज, ३. चिन्त्य, ४. कारण, ५. अजित, ६. दीप्त, ७. सूक्ष्म, ८. साहस्र, ९. अंशुमान्, १०. सुप्रभेद, ११. विजय, १२. निःश्वास, १३. स्वायम्भुव, १४. अनल, १५. वीर, १६. रौरव, १७. मकुट, १८. विमल, १९. चन्द्रज्ञान, २०. बिम्ब, २१. प्रोद्गीत, २२. ललित, २३. सिद्ध, २४. सन्तान, २५. शर्वोक्त, २६. पारमेश्वर, २७. किरण और २८. वातुल ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इनमें प्रत्येक आगम के चार पाद हैं— क्रिया, चर्या, योग और ज्ञान पाद। इन अट्ठाईस आगमों के प्रत्येक पाद के उत्तर भाग में वीरशैवदर्शनसम्मत अष्टावरण, पञ्चाचार, और षट्स्थलों का निरूपण है। श्रीरेणुकभगवत्पाद का प्रमाण-वचन इस संदर्भ में इस प्रकार है—

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्॥

(सि. शि. ५.१४)

इस प्रकार वीरशैवदर्शन निगम (वेद) सम्मत भी है और आगम (तन्त्रशास्त्र) सम्मत भी।

'उपनिषत्' शब्द-निर्वचन— 'उपनिषद्' शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्ग के साथ 'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय जोड़कर निष्पन्न होता है। पाणिनीय धातुपाठ में इसका विवरण इस प्रकार है— 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु।' इस धातु के अनेक अर्थ हैं— १. विशरण, २. गति, और ३. अवसादन।

श्रीमद्भगवत्शंकरपाद अपने 'मुण्डकोपनिषत्' के सम्बन्धभाष्य में इस शब्द का निर्वचन इस प्रकार करते हैं— "य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरस्सराः सन्तः, तेषां गर्भ-जन्म-जरा-रोगाद्यनर्थपूगं निशातयति, परं वा ब्रह्म गमयति, अविद्यादिसंसार-कारणं चाऽत्यन्तमवसादयति विनाशयतीत्युपनिषत्, उप-नि-पूर्वस्य सदेरेवमर्थस्मरणात्"।

जो लोग श्रद्धा तथा भक्ति के साथ प्रेमपूर्वक इस ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं, उनके गर्भ, जन्म, वृद्धावस्था, रोग आदि अनर्थों को जो काटती है, जो उन्हें परब्रह्मस्वरूप परमात्मा के पास पहुंचाती है अथवा जो उनके अविद्या आदि संसरण (जन्म-मृत्यु-चक्र) के कारणों को अत्यन्त क्षीण करती है, वह ब्रह्मविद्या 'उपनिषत्' कहलाती है, क्योंकि सद् धातु के तीन अर्थ हैं— विशरण (काटना), गति (पहुंचना) प्राप्त करना और अवसादन (क्षीण करना)। 'उप' और 'नि'पूर्वक 'क्विप्' प्रत्ययान्त 'सद्' धातु से निष्पन्न 'उपनिषद्' शब्द का यही व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है।

'केनोपनिषद्' का एक मन्त्र है—

उपनिषदं नो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्।
ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति॥

(के. उ. ४.७)

इस मन्त्र में दो शब्द मुख्य हैं— 'ब्राह्मीम् उपनिषदम्'। उसका निर्वचन करते हुए 'वीरशैवभाष्य'कार ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री लिखते हैं— "ब्राह्मीं = ब्रह्मणः परशिवस्य इयं चिच्छक्तिरूपा, तां वीर्यरूपाम् उपनिषदं विद्यां मया (उप) सामीप्येन सामरस्यलक्षणेन (नि)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नितरां परशिवब्रह्म प्राप्य कृत्रिमाऽहङ्कारादीन् शिथिलीकृत्य स्वशक्तिसङ्कोचाख्यातिं सादयति = अपसारयति, सैव इति उपनिषत्, ताम्'' ।

यह मन्त्र 'आत्मना विन्दते वीर्यम्' (२.४) से सम्बद्ध शिष्य के प्रश्न और गुरु के उत्तर को इंगित कर रहा है । वीर्यप्राप्तिविषयक उपदेश को जानकर जब शिष्य गुरूजी से यह निवेदन करता है— 'गुरूजी, अब आप मोक्षप्राप्ति के ज्ञापक रहस्य को कृपया प्रकाशित करें ।' तब गुरूजी कहते हैं— ''बेटा, मैंने तुम्हे वह रहस्य भी समझा दिया है' । इसी सन्दर्भ में उक्त निर्वचन है । परब्रह्मस्वरूप परमशिव की चित्शक्ति ही वह परा ब्रह्मविद्या है, जो प्रणवपूर्वक पञ्चाक्षरमहामन्त्रस्वरूपा है । वही 'उपनिषद्' है । 'उप = सामीप्येन सामरस्यलक्षणेन नि = नितरां, सादयति = अपसारयति' इस निर्वचन के अनुसार 'शिवोपासक मेरे (गुरु के) द्वारा उपदिष्ट जिस ब्रह्मविद्या से परब्रह्मस्वरूप परमशिव के साथ सामीप्य, अर्थात् लिङ्गाङ्गसामरस्य प्राप्त करता है और उसके द्वारा कृत्रिम अहंकार आदि को शिथिल कर अपनी चित्शक्तिसंकोच को दूर कर अज्ञान-मल का आवरण हटने के कारण चित्शक्ति का विकास प्राप्त करता है, उसे 'उपनिषत्' कहते हैं ।

संख्या— 'मुक्तिकोपनिषद्' के अनुसार १०८ उपनिषद् हैं । इनकी गणना करते समय 'मुण्डकोपनिषद्' को पाँचवां स्थान प्राप्त है । इनमें प्रधान दस उपनिषद् इस प्रकार हैं—

ईश-केन-कण्ठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ।।

(मुक्ति. उ. १.३०)

ये एक सौ आठ उपनिषद् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के दुःख और लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा इन तीनों प्रकार की वासनाओं का नाश करते हैं । वे जीवों को ज्ञान और वैराग्य प्रदान करते हैं—

एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम् ।
ज्ञानवैराग्यदं पुंसां वासनात्रयनाशनम् ।।

(मुक्ति. उ. १.४०)

मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद के मन्त्रभाग के अन्तर्गत है । अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहते हैं । अथर्वपरिशिष्ट के अनुसार अथर्ववेद की २८ उपनिषद् हैं । वह विवरण इस प्रकार है— ''अष्टाविंशत्युपनिषदो ब्रह्मवेदस्य । १. मुण्डाः, २. प्रश्नाः, ३. ब्रह्मविद्या, ४. क्षुरिका, ५. चूलिका, ६. अथर्वशिरः, ७. अथर्वशिखा, ८. गर्भोपनिषत्, ९. महोपनिषत्, १०. ब्रह्मोपनिषत्, ११. प्राणाग्निहोत्रम्, १२. नादबिन्दुः, १३. ब्रह्मबिन्दुः, १४. अमृतबिन्दुः, १५. ध्यानबिन्दुः, १६. तेजोबिन्दुः, १७. योगशिखा, १८. योगतत्त्वम्, १९. नीलरुद्रः, २०. कालाग्निरुद्रः, २१. तापिनी, २२. एकदण्डी, २३. संन्यासविधिः, २४. आरुणिः,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

२५. हंसः, २६. परमहंसः, २७. नारायणोपनिषदम्, २८. वैतथ्यं च'' ।

'मुक्तिकोपनिषद्' में परिगणित १०८ उपनिषदों के अन्तर्गत ऋग्वेद की दस(१०), शुक्ल यजुर्वेद की उन्तीस(२९), कृष्णयजुर्वेद की बत्तीस(३२), सामवेद की सोलह(१६) और अथर्ववेद की इकतीस(३१) उपनिषदों के पृथक्-पृथक् नाम परिगणित हैं और उनके शान्तिमन्त्र संकेतित हैं। 'मुक्तिकोपनिषद्' में अथर्ववेद के इकतीस(३१) उपनिषदों के नाम और उनके शान्तिमन्त्र का संकेत इस प्रकार है—

१. प्रश्न- २. मुण्डक- ३. माण्डूक्य- ४. अथर्वशिरो- ५. अथर्वशिखा- ६. बृहज्जाबाल- ७. नृसिंहतापनी- ८. नारदपरिव्राजक- ९. सीता- १०. शरभ- ११. त्रिपाद्विभूति-महानारायण- १२. रामरहस्य- १३. रामतापनी- १४. शाण्डिल्य- १५. परमहंस-परिव्राजक- १६. अन्नपूर्णा- १७. सूर्य- १८. आत्म- १९. पाशुपत- २०. परब्रह्म- २१. त्रिपुरातपन- २२. देवी- २३. भावना- २४. भस्मजाबाल- २५. गणपति- २६. महावाक्य- २७. गोपालतपन- २८. कृष्ण- २९. हयग्रीव- ३०. दत्तात्रेय- ३१. गारुडानाम् अथर्ववेदगतानाम् एकत्रिंशत्(३१)संख्याकानाम् उपनिषदां 'भद्रं कर्णेभिरि'ति शान्तिः ॥५५॥ (प्रथमेऽध्याये)

मुण्डकोपनिषद् : नाम-निर्वचन

'मुण्डा एव मुण्डकाः' मुण्डकानां = शिरोव्रतवताम् उपनिषद् मुण्डकोपनिषत्।' सिर का केशसंस्कार (क्षौरसंस्कार) करने वाले संन्यासी 'मुण्ड' अथवा 'मुण्डक' कहलाते हैं, यह इस शब्द का सामान्य अर्थ है। किन्तु यहां पर उसका अर्थ है 'शिरोव्रतधारी।' जो शिरोव्रत धारण करते हैं उनकी उपनिषत् 'मुण्डकोपनिषत् कहलाती है। 'मुण्डकोपनिषद्' कहती है—

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत
शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्
(मु. उ. ३.२.१०)

उन्हीं को इस ब्रह्मविद्या का उपदेश करना चाहिए, जिन्होंने इस 'शिरोव्रत' को शास्त्रानुसार धारण किया है। आगे वे कहते हैं— 'नैतदचीर्णव्रतोऽधीते' (मु. उ. ३.२.११), जो शिरोव्रत धारण नहीं करता, वह 'मुण्डकोपनिषद्' में उपदिष्ट ब्रह्मविद्या का अधिकारी नहीं है।

शिरोव्रत

यह 'शिरोव्रत' क्या है? इसके विषय में मतभेद है। आचार्य शंकर कहते हैं— "शिरोव्रतं शिरसि अग्निधारणलक्षणम्। यथाऽऽथर्वणानां वेदव्रतं प्रसिद्धम्।" "अथर्ववेदियों में वेदव्रत प्रसिद्ध है, जिसे 'शिरोव्रत' कहते हैं। इसमें सिर पर 'एकर्षि' नामक अग्निकुण्ड को धारण करना पड़ता है। ब्रह्मनिष्ठ प्रथम उसमें श्रद्धापूर्वक आहुति दें, तदनन्तर

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उस अग्निपात्र को सिर पर धारण करें। इस 'शिरोव्रत' को धारण करने वाले ही 'मुण्डकोपनिषद्' के अधिकारी होते हैं, अन्य नहीं, यह आचार्य शंकर का अभिप्राय है।''

ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री इसकी भिन्न व्याख्या करते हैं—

''शिरसि व्रतं लिङ्गधारणात्मकं शिरोव्रतम्।'' सिर पर लिङ्गधारणस्वरूप व्रत को 'शिरोव्रत' कहते हैं। जैसा कि गौतमस्मृति का वचन है—

''मुखे मन्त्रं हृदि ध्यानं मस्तके लिङ्गधारणम्।''

निगम एवं आगम में प्रतिपादित विधान के अनुसार मुख में पञ्चाक्षर मन्त्र, हृदय में परम शिव का ध्यान और सिर में लिङ्गधारण 'शिरोव्रत' है। यद्वा ''शिरसि अथर्वशिरसि व्रतम् उपदिष्टं लिङ्गधारणात्मकं महापाशुपतव्रतम्।'' अथवा अथर्वशिरस् उपनिषद् में उपदिष्ट लिङ्गधारणस्वरूप महापाशुपतव्रत शिरोव्रत कहलाता है। इसी को 'शाम्भवव्रत' और 'अत्याश्रमव्रत' भी कहते हैं। अथर्वशिरस्, मुण्डक, कैवल्य, श्वेताश्वतर, कालाग्निरुद्र आदि उपनिषदों में इसका उपदेश है। 'मुण्डकोपनिषद्' में उपदिष्ट ब्रह्मविद्या का अधिकार शिरोव्रतधारियों के लिए ही है, अन्य के लिए नहीं। अत: इसका 'मुण्डकोपनिषत्' नाम सार्थक है।

पाशुपतव्रत और अत्याश्रमव्रत

पाशुपतव्रत मात्र भस्मधारण नहीं है। सिर पर लिङ्गधारण पाशुपतव्रत का प्रधान व्रत है, भस्मधारण उसका एक अंग है। इस प्रकार पाशुपत व्रत 'शिरोव्रत' का पर्याय है। ब्रह्मा, विष्णु, देवराज इन्द्र आदि देवताओं ने शिरोव्रत को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया था। जैसा कि 'कामिकागम' का वचन है—

ब्रह्मविष्णुसुरेशादिदेवता: परया मुदा।
शिरोभिर्धारयन्त्येते शिवलिङ्गमहर्निशम्॥

भृगु, उपमन्यु, देवल, दधीचि, दुर्वासा, वसिष्ठ, कपिल, गौतम, वामदेव आदि ऋषिगण लिङ्गधारणस्वरूप इस उपाय के द्वारा मोक्ष की कामना करते हैं। कामिकागम के अनुसार हरकण्ठ आदि मुनि और चतुर्दश मनु सर्वदा कण्ठ में शिवलिङ्ग का धारण और पूजन करते हैं—

कण्ठेषु हरकण्ठादिमुनयो मनवस्तथा।
सर्वदा शिवलिङ्गं तु धारयन्ति यजन्ति च॥

ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत शैवसंहिता के अनुसार पाणिनि, कणाद, कपिल, गौतम आदि महर्षियों ने शिव के प्रसादसेवन, ध्यान और इष्टलिंग का अर्चन-पूजन करके परम शिव का साक्षात्कार किया और त्रिभुवन को उसका उपदेश दिया—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पाणिनिश्च कणादश्च कपिलो गौतमादय: ।
प्रसादसेवनध्यानादर्चनाद् धारणादपि ।
जाता दर्शनकर्तार: श्रावयन्ति जगत्त्रयम् ।।

'पाशुपत' की परिभाषा इस प्रकार है —

बद्ध 'पशु' (जीव) के अज्ञानमल 'पाश' का विमोचक परब्रह्मस्वरूप शिवलिङ्ग होता है, उसे धारण करनेवाला 'पाशुपत' कहलाता है । स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में आन्तर और बाह्य लिङ्ग धारण करते हुए जो भूमण्डल में विचरण करता है, वह जंगम- योगी 'पाशुपत' कहलाता है —

परब्रह्माभिधं लिङ्गं पशुपाशविमोचकम् ।
यो धारयति सद्भक्त्या स पाशुपत उच्यते ।।

शरीरत्रितये भक्त्या लिङ्गं परशिवात्मकम् ।
यो धृत्वा विचरेद् भूमौ स पाशुपत उच्यते ।।

'अत्याश्रमी' की परिभाषा इस प्रकार है—

लिङ्गं शिवो भवेत् क्षेत्रमङ्गं संयोग आश्रय: ।
तस्माल्लिङ्गाङ्गसंयुक्तो योऽपि सोऽत्याश्रमी भवेत् ।।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा ।
यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्त: स एवाऽत्याश्रमी भवेत् ।।

'लिङ्गाङ्गसंयोग' में 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ शिव, 'अङ्ग' शब्द का अर्थ क्षेत्र और 'संयोग' शब्द का अर्थ आश्रय होता है । 'लिङ्गाङ्गसंयोग' (सामरस्य) प्राप्त करने वाला 'अत्याश्रमी' होता है । वह कोई भी हो सकता है— ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी । उसके 'अङ्ग' (शरीर-क्षेत्र) से 'लिङ्गसंयोग' होना चाहिए ।

लिङ्गाङ्गसङ्गिनां वत्स ! पुनर्जन्म न विद्यते ।
एष पाशुपताचार: पशुपाशनिवृत्तये ।
सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रम इति श्रुति: ।।

''यत: लिङ्ग को अपने अंग से धारण करनेवालों का पुनर्जन्म नहीं होता । बद्ध 'पशु' (जीव) को अज्ञानमल के 'पाश' से छुड़ाने के लिए यही 'पाशुपत आचार' है । सभी दर्शन का सार 'अत्याश्रम व्रत' है, इस प्रकार श्रुति कहती है ।' इन सूतसंहिता के वचनों से यह निश्चित है कि वीरशैवों का 'लिङ्गधारणव्रत' ही 'शिरोव्रत', 'पाशुपतव्रत' अथवा 'अत्याश्रमव्रत' है । आचार्य शंकरसम्मत 'सिर पर अग्निधारण स्वरूप व्रत 'शिरोव्रत' नहीं

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

है। मुण्डकोपनिषद् के अधिकारी सभी वर्णों के वीरशैव होते हैं, अग्निधारणस्वरूप शिरोव्रत-अनुष्ठान का सम्पादक केवल संन्यासी नहीं।

"नैतदचीर्णव्रतोऽधीते" (३.२.११) इसकी व्याख्या करते हुए ब्रह्मश्री शंकर-शास्त्री कहते हैं— "न चीर्णम् आचरितं शिरस्यथर्वशिरस्युपदिष्टमन्तर्बहिर्लिङ्गधारणात्मकं व्रतं पाशुपतव्रतं येन सः पुरुषः, नाऽधीते = न पठति। यावज्जीवं नियमेनाऽनुष्ठेयं यदन्तर्बहिर्लिङ्गधारणं तद्रहितेन नाऽध्येतव्या ब्रह्मविद्येत्यर्थः। 'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत' (३.२.११) इत्यचीर्णव्रतायैतदध्यापनं निषिद्धम्। अस्मिन् वाक्येऽचीर्णशिरोव्रतस्य अध्ययनं निषेधितमिति विशेषोऽवगन्तव्यः।" इसका निष्कर्ष यह है कि "जो लिङ्गधारण नहीं करता वह इसके अध्ययन का अधिकारी नहीं है। पूर्व मन्त्र में लिङ्गधारी वीरशैवों को छोड़कर अध्यापन का निषेध किया गया है, इस वाक्य में अध्ययन का, यही दोनों में अन्तर है।"

'शिरोव्रत' (मुण्डन) मात्र उपलक्षण है, 'शिरोव्रत' ('लिङ्गधारण') प्रधान है। इसका स्पष्टीकरण 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (३.२.४) इस मन्त्र की व्याख्या से भी मिलता है। आचार्य शङ्कर 'तपसो वाऽप्यलिङ्गात्' मन्त्र भाग की व्याख्या करते हुए लिखते हैं— "तपोऽत्र ज्ञानम्, लिङ्गं संन्यासः, संन्यासरहिताज्ज्ञानान्न लभ्यत इत्यर्थः।" संन्यासरहित ज्ञान से आत्मसाक्षात्कार नहीं होता, यह आचार्य शंकर का अभिप्राय है। जब कि ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री कहते हैं— "तपसो वा कृच्छ्रचान्द्रायणरूपान्न लभ्यः, किन्तु शिवपूजार्थ-सामग्रीसम्पादने शरीरशोषणरूपात् तपसो लभ्य इत्यर्थः। अलिङ्गाद् वा। अविद्यमानं लिङ्गं यस्य सोऽलिङ्गस्तस्मादलिङ्गिनोऽवीरशैवान्न लभ्यः, किन्तु लिङ्गिनो वीरशैवाल्लभ्य इत्यर्थः। धृतेष्टलिङ्गत्वस्य वीरशैवासाधारणलक्षणत्वात्, "अन्यत्र नास्ति मल्लिङ्गधारणं मतवर्तिषु" (पारमे.१.७१) इत्याद्यागमोक्तेः"।

इसका निष्कर्ष यह है कि "जो लिङ्गधारण नहीं करता, उस वीरशैव से भिन्न कोई भी परमशिव का साक्षात्कार नहीं कर सकता। केवल वीरशैव ही कर सकता है। वह उसका असाधारण धर्म है। 'पारमेश्वरागम' का पूर्वोक्त वचन भी इसका निषेध करता है। इस व्याख्या में 'अलिङ्गात्' और 'तपसः' दोनों भिन्न भिन्न पद हैं। दोनों में विशेषण-विशेष्यभाव नहीं है। जो शिवपूजासामग्री के लिए शरीरशोषणरूप तप नहीं करता अथवा लिङ्गधारण नहीं करता, वह आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकता। यही इस का आशय है। इस प्रकार आचार्य शंकर केवल संन्यासी को ही ब्रह्मविद्या का अधिकारी मानते हैं, जब कि शंकरशास्त्री चतुर्विध वर्णाश्रमी वीरशैव को। यही अन्तर दोनों व्याख्यानों में है।

'मुण्डकोपनिषद्दीपिका'कार श्रीनारायण संक्षेप में इसका नामनिर्वचन और परिचय इस प्रकार देते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

चीर्णे शिरोव्रतेऽध्येयं तेन मुण्डकमुच्यते।
खण्डषट्कं त्रिमुण्डं च शौनकीयं श्रुतेः शिरः॥

'शिरोव्रत' का स्वीकार करने पर ही इस उपनिषद् में उपदिष्ट ब्रह्मविद्या का अध्ययन करना चाहिए। इसीलिए इसे 'मुण्डकोपनिषद्' कहते हैं। इसके छः खण्ड हैं और तीन मुण्डक हैं। यह अथर्ववेदीय शौनक शाखा की मुकुटमणि उपनिषद् है। अथर्ववेद का मन्त्रभागस्वरूप होने से इसका विशेष महत्त्व है।

शान्ति मन्त्र

उपनिषदों की पाठविधि में प्रत्येक उपनिषद् के आदि-अन्त में शान्ति मन्त्र के पाठ का विधान है। शाङ्कर सम्प्रदाय में ऐसे विभिन्न शान्ति मन्त्रों का संकलन है। इसमें **'भद्रं कर्णेभिः'** इत्यादि दसवां शान्ति मन्त्र है। इसके साथ द्वितीय मन्त्र है— **'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः'** इत्यादि। आनन्दाश्रम संस्करण में केवल एक शान्ति मन्त्र है, जब कि अन्य संस्करणों में दोनों।

॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

प्रत्येक शान्तिमन्त्र के अन्त में प्रणवपूर्वक त्रिवार शान्तिपाठ का विधान होने से ही इसे शान्तिमन्त्र कहते हैं। इनमें—

ॐकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

इस प्रमाणवचन के अनुसार परमब्रह्मस्वरूप परमशिव के कण्ठ से निकलने के कारण ॐकार माङ्गलिक है और परब्रह्मस्वरूप परमशिव का वाचक होने से एकाक्षरब्रह्मस्वरूप भी है। इसमें गीतावचन प्रमाण है—

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥ (८.१३)

सिद्धान्तशिखोपनिषद् ओंकार और पञ्चाक्षर मन्त्र को एक दूसरे से अभिन्न मानती है, जो पञ्चब्रह्मतनु परमशिव का वाचक है— "योऽयं नकारः सोऽयमकारः, स सद्योजातो भूर् ऋग्वेदः सम्पुट उच्यते। योऽयं मकारः सोऽयमुकारः, स वामदेव आपो यजुर्वेदो वस्त्रमुच्यते। योऽयं शिकारः सोऽयं मकारः, सोऽघोरस्तेजः सामवेदो गुण उच्यते। योऽयं वाकारः सोऽयं नादः, स तत्पुरुषः स वायुराथर्वणवेदो द्वारमुच्यते। योऽयं यकारस्तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषः प्रणवः सर्वोत्तर ईशान आकाश आगमो लिङ्गमुच्यते॥२४॥"

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उस प्रणवस्वरूप परब्रह्म-परमशिव से त्रिविध दु:खों के शमन की प्रार्थना की जाती है। श्रीरेणुकभगवत्पाद दु:खत्रय के विषय में कहते हैं —

आध्यात्मिकं तु प्रथमं द्वितीयं चाऽऽधिभौतिकम्।
आधिदैविकमन्यच्च दु:खत्रयमिदं स्मृतम्॥
आध्यात्मिकं द्विधा प्रोक्तं बाह्याभ्यन्तरभेदत:।
वातपित्तादिजं दु:खं बाह्यमाध्यात्मिकं मतम्॥
रागद्वेषादिसम्पन्नमान्तरं परिकीर्त्यते।
आधिभौतिकमेतद्धि दु:खं राजादिभूतजम्।
आधिदैविकमाख्यातं ग्रहयक्षादिसम्भवम्॥
(सि. शि. ५.६७-७०)

वे त्रिविध दु:ख हैं — आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। उनमें आत्मा अर्थात् शरीर और अन्त:करण सम्बन्धी दु:ख आध्यात्मिक दु:ख होते हैं, जो दो प्रकार के हैं शारीरिक और मानसिक। वात-पित्त-कफ जन्य ज्वरादि रोगों की पीड़ा शारीरिक दु:ख है और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद, मद, मत्सर, तृष्णा, विषयाभिलाष आदि मनोविकारों से उत्पन्न दु:ख मानसिक होते हैं। राजा-शत्रु-चोर-डाकू-हिंस्रपशु-सर्प-वृश्चिक आदि से उत्पन्न पीडा तथा विशाल वृक्ष के गिरने से प्राणत्याग आदि स्थावर-जंगम पीडा आधिभौतिक दु:ख कहलाते हैं। आग लगना, आंधी-तूफान, बाढ, बिजली गिरना, भूकम्प हिमपात, यक्ष-राक्षस-विनायक-ग्रहादि से उत्पन्न पीडा आधिदैविक दु:ख हैं। इनसे शान्ति के लिए प्रणवस्वरूप परब्रह्म परमशिव से प्रणवोच्चारणपूर्वक त्रिवार शान्तिपाठ का विधान प्रत्येक शान्ति मन्त्र के साथ किया गया है।

अथवा— 'भोगायतनं शरीरम्' इस योगसूत्र के अनुसार प्रत्येक जीव को सुकृत-दुष्कृत जन्य पाप-पुण्यों के भोग के लिए शरीर धारण करना पड़ता है। वे शरीर त्रिविध हैं— १. **स्थूल** पांचभौतिक शरीर, २. **सूक्ष्म**— पंचकंचुकावृत शरीर, वे पंचतत्त्व स्वरूप कञ्चुक हैं— काल, कला, विद्या, नियति और राग। ३. **कारणशरीर**— मायावृत शरीर (अर्थात् पंचतत्त्वों, अन्त:करण, इन्द्रिय, शरीर आदि को ही आत्मा समझना यह जीव का कारणशरीर है। इस त्रिविध शरीर से घिरे जीव के बन्धनकारक त्रिविध मल आगमशास्त्र में प्रसिद्ध हैं, जिनसे आबद्ध जीव 'पशु' कहलाता है। वे तीन मल हैं— १. आणव मल, २. मायीय मल और ३. कार्म-मल। परा शक्ति में त्रिविध शक्तियां विकसित अवस्था में रहती हैं— इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। वे ही जीव में संकोच को प्राप्त करती हैं, तब 'मल' हो जाती हैं। यही जीव का 'पाश' अथवा बन्धनस्वरूप अज्ञान है, जो त्रिविध है। वही पूर्वोक्त त्रिविध 'मल' है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परशिव की इच्छाशक्ति के संकोच से जीव अपने विभुत्व को भूलता है और अपने में अपूर्णता का अनुभव करता है, यही उसका 'आणव मल' है। परशिव का असीम ज्ञान जीव में संकुचित होता है, फलतः जीव अपने को अल्पज्ञ समझता है। यही अल्पज्ञता उसका 'मायीय मल' है। परशिव की असीम क्रियाशक्ति जीव में संकोच प्राप्त करती है, जिससे जीव में शुभ-अशुभ वासनाएं जन्म लेती हैं। यही उसका 'कार्म मल' है। इन त्रिविध मलों के उपशमन के लिए वह प्रणवस्वरूप परमशिव से प्रार्थना करता है— 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः'। इसकी फलश्रुति है— आत्मसाक्षात्कार, त्रिविध दुःख अथवा त्रिविध मल की निवृत्ति, परम शिवपद की प्राप्ति, जिससे जीव शिवस्वरूप होकर पुनः जन्म-मरण-चक्र में नहीं पड़ता। 'न स पुनरावर्तते'। यही इस शान्तिपाठ का रहस्य है।

इसीको 'ईशावास्योपनिषद्' के शान्तिमन्त्र की व्याख्या के अन्त में ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री इस प्रकार स्पष्ट करते हैं— 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिरि'ति त्रिरुच्चारस्त्रिमलनाशार्थः, आध्यात्मिकादिदुःखत्रयनाशार्थो वेति।' 'सिद्धान्तशिखोपनिषद्' में वे इसको इस प्रकार लिखते हैं— 'शान्तिः शान्तिः शंान्तिरि'ति त्रिरुच्चारणं तापत्रयशमनार्थं त्रिमलविलयनार्थमिति बोध्यम्।'

अधिक स्पष्टीकरण के लिए काशीज्ञानसिंहासनाधीश्वर अष्टसहस्रोत्तरश्रीशील जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी के द्वारा विरचित 'शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्शः' में मलत्रयनिरूपण (द्वितीय परिच्छेद, पृ. ७०-७२) विवेचित है, जो वहीं द्रष्टव्य है। शान्तिमन्त्रों का अर्थ वीरशैवभाष्य और हिन्दी व्याख्या द्वारा समझना चाहिए।

अनुबन्ध-चतुष्टय

'अनुबध्नन्ति जिज्ञासून् इति अनुबन्धाः' इस निर्वचन के अनुसार जो जिज्ञासुओं को, अध्ययन-अध्यापनकर्ताओं को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, उन्हें 'अनुबन्ध' कहते हैं। ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री इसकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं— "**बलवदनिष्टाऽननुबन्धीष्टसाधनताज्ञानजन्यप्रवृत्तिप्रयोजकमनुबन्धचतुष्टयम्**" जो प्रबल अनिष्ट के बन्धन से रहित होकर इष्टसाधनताज्ञान से उत्पन्न प्रवृत्ति का प्रयोजक होता है, उसे 'अनुबन्ध' कहते हैं। वे चार हैं— १. प्रयोजन, २. विषय, ३. सम्बन्ध और ४. अधिकारी। सामान्य रूप से जो अद्वैत दर्शन के प्रयोजन हैं, वे ही शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन के भी हैं। वीरशैवदर्शन का (१) विषय है— शक्तिविशिष्टाद्वैत परशिवब्रह्मस्वरूप महालिङ्ग, जिसका निरूपण 'यत्तदद्रेश्यम्' (१.१.६) इत्यादि मन्त्रों में किया गया है। उसका (२) प्रयोजन है 'लिङ्गाङ्गसामरस्य', जिसका प्रतिपादन 'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे' (३.२.८), 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (३.२.९) 'गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो भवति' (३.२.९) इत्यादि मन्त्रभागों में प्रतिपादित है। इस ब्रह्मविद्या का (३) अधिकारी शिवदीक्षासम्पन्न लिङ्गधारण करनेवाला होता

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

है । इसका विवेचन 'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत' (३.२.१०) इत्यादि मन्त्रों द्वारा निरूपित है । (४) शास्त्र और विषय का प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है । परब्रह्मस्वरूप परमशिव प्रतिपाद्य है, तो वीरशैवदर्शन उसका प्रतिपादन करते हैं । (द्र. वीरशैवभाष्य)।

ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय के प्रवर्तक

'मुण्डकोपनिषद्' अथर्ववेद के शौनकशाखान्तर्गत मन्त्रभाग में समाविष्ट है, जिसके आरम्भ के दो मन्त्रों में ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों की परम्परा प्रवर्तित है । इसका मुख्य हेतु है— लिङ्गधारणस्वरूप शिरोव्रत की उत्कृष्टता प्रदर्शित करना । इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मदेव आदि देवताओं को भी बिना लिङ्गधारण महाव्रत का स्वीकार किए ब्रह्मविद्या के श्रवण-अध्ययन-मनन आदि का अधिकार नहीं है, फिर सामान्य जनों की गणना ही क्या है? पशुकर्मों की निन्दा और पतिकर्मों की उत्कृष्टता द्योतित करना इसका मुख्य प्रयोजन है । केवल ब्रह्मविद्या के अध्ययन की ओर अध्येता की प्रवृत्ति अथवा केवल ब्रह्मविद्या की प्रशंसा इसका प्रयोजन नहीं है । अनुबन्धचतुष्टय के द्वारा ही सभी को उसका ज्ञान प्राप्त होता है । ब्रह्मा से लेकर शौनक पर्यन्त सभी आचार्य शिरोव्रती थे, यह सूचित करना इसका मुख्य प्रयोजन है ।

ब्रह्मा— आप विष्णु आदि देवों में ज्येष्ठ परमशिव के प्रथम पुत्र हैं । आचार्य शंकर इन्द्रादि देवताओं में सर्वप्रथम स्वतन्त्र रूप से इनका प्रादुर्भाव मानते हैं, जिससे शास्त्रीजी सहमत नहीं हैं । श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती हैं— 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' (श्वे. ६.१८) 'क्रियासार' में परमशिव द्वारा ब्रह्मदेव, श्रीविष्णु और कालरुद्र शिव को वीरशैवदीक्षा प्रदान के प्रमाणवचन उपलब्ध हैं, जो इस प्रकार हैं—

यदा तमस्तदा देवोऽध्यास्ते (स) परमेश्वरः ।
चकार दीक्षां तेषां च वीरशैवागमाच्छिवः ।।

तदाप्रभृति विष्ण्वाद्याः शिवस्य परमात्मनः ।
आज्ञया शक्तिमन्तश्च लोकेषु ख्यातिमाप्नुयुः ।
यस्याऽऽज्ञया जगत् स्रष्टा विरिञ्चिः पालको हरिः ।। इत्यादि ।

अथर्वा— आप ब्रह्मदेव के ज्येष्ठ पुत्र हैं । आपने अपने पिता से सभी विद्याओं की अधिष्ठानस्वरूपा ब्रह्मविद्या को प्राप्त किया ।

अङ्गि— अथर्वा ने अङ्गि ऋषि को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया ।

भारद्वाज सत्यवाह— आचार्य शंकर के अनुसार सत्यवह अथवा सत्यवाह भरद्वाजगोत्री थे, जब कि ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री के अनुसार वे भरद्वाज के पुत्र थे । ये भरद्वाज महर्षि वीरशैव थे । जैसा कि क्रियासार का वचन है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अगस्त्यो जैमिनिश्चैव विश्वामित्रोऽथ काश्यपः ।
भरद्वाजोऽङ्गिरा अत्रिर्वसिष्ठो रोमहर्षणः ॥
एते सर्वे महाभागा अतिवर्णाश्रमे रताः ।
वीरशैवाः समाख्याता जीवन्मुक्ता न संशयः ॥

इन्हीं भरद्वाज के पुत्र सत्यवाह थे, जिन्हे महर्षि अङ्गि ने ब्रह्मविद्योपदेश दिया ।

अङ्गिरा अथवा अङ्गिरस— भारद्वाज सत्यवाह ने अङ्गिरा को ब्रह्मविद्योपदेश दिया, जो वीरशैव थे । जैसा कि पूर्व उद्धृत क्रियासार के प्रमाणवचन से अवगत होता है ।

महाशाल शौनक— महर्षि शौनक अपने पिता शुनक के नाम से प्रसिद्ध थे । वे शिवगृहस्थाश्रमी थे । ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं— 'महान् अतिशयितः शालो गृहस्थाश्रमो यस्य सः'। 'शुनकस्य ऋषेरपत्यं पुमान् शौनक इति प्रसिद्धः ।' उन्होंने वीरशैव आचार्य अङ्गिरा के पास आकर ही ब्रह्मजिज्ञासा की, जैसा कि पूर्वोक्त वचन से प्रमाणित है । महर्षि शौनक सामान्य गृहस्थाश्रमी नहीं थे, जैसा कि आचार्य शंकर ने व्याख्या की है— "महाशालो महागृहस्थः" ।

इस सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यपरम्परा से यह भी सिद्ध होता है कि 'मुण्डकोपनिषद्' में प्रोक्त ब्रह्मविद्या के अधिकारी केवल संन्यासी नहीं हैं, अपितु लिङ्गधारणस्वरूप शिरोव्रत स्वीकार करनेवाले चतुर्वर्णाश्रमी सभी वीरशैव हैं । 'पतिधर्म' को देवता तक स्वीकार करते हैं । 'पशुधर्म' त्याज्य है । यही इस सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यपरम्पराप्रकाशन का मुख्य हेतु है ।

महर्षि शौनक की ब्रह्मजिज्ञासा का समाधान करते हुए महर्षि अङ्गिरा कहते हैं— "यद् ब्रह्मविदो वदन्ति", जिसे वेदार्थवेत्ता शिवाचार्यों ने निरूपित किया था, वे दो ही विद्याएं हैं— परा और अपरा ।

मुण्डकोपनिषद् में भगवती श्रुति वीरशैवों को पतिकर्मों की ओर इस प्रकार प्रवृत्त करती है—

मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि ।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥
(मु. उ. १.२.१)

ऋग्वेद आदि के मन्त्रों में त्रेतायुग के एकवक्त्र आदि आचार्य और कलियुग के रेवणसिद्ध, मरुलसिद्ध आदि पुण्यात्मा महर्षियों ने जिस मोक्षोपयोगी पतिकर्मों का निरूपण किया था, उनका त्रेतायुग में ही कश्यप आदि ऋषिगण तथा मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व आदि गणों में भी नित्य अनुष्ठान होता था । परम सत्य-स्वरूप परमशिव की कामना करनेवाले

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उसका अनुष्ठान अवश्य करें । वही लिङ्गाङ्गसामरस्य के अनुकूल पञ्चाचार और अष्टावरणों के अनुष्ठान का मार्ग है, जिससे मुक्ति मिलती है । केवल गृहस्थाश्रमी वीरशैव ही नहीं, अपितु स्त्रियों को भी उसका अधिकार है, जैसा कि क्रियासार में वर्णित है— गृहस्थ वामदेव शिवगृहस्थाश्रमी थे । ब्रह्मचारिणी गार्गी ने अत्याश्रमधर्म स्वीकार किया था—

अत्याश्रमत्वं किं नाम मोक्षमार्गोपयोगिता ।
सा च दृष्टा गृहस्थे च वामदेवे महात्मनि ।
गार्ग्यामपि स्त्रियां चैव सा यतो ब्रह्मचारिणी ।।

एतदर्थ गुरुशरणागति आवश्यक है— "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्" (१.२.१२) शरणागत शिष्य को गुरु ब्रह्मविद्योपदेश दे, 'प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्' (१.२.१३), 'तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच' (३.२.११)" 'नमः परम- ऋषिभ्यः, नमः परमऋषिभ्यः' (३.२.११) महर्षि अङ्गिरा ने परमशिव के ज्येष्ठ पुत्र और शिष्य ब्रह्मदेव से परंपराप्राप्त ब्रह्मविद्या का उपदेश महर्षि शौनक को दिया था । परमशिव का साक्षात्कार करनेवाले उन महर्षियों को वारंवार प्रणाम ।

षट्स्थलपरक व्याख्यान

मुण्डकोपनिषद् का शक्तिविशिष्टाद्वैतभाष्य षट्स्थलब्रह्मस्वरूप परमशिव के षट्स्थलों का व्याख्यान ही है, जैसा कि ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री भाष्य के अन्तिम समर्पण- पद्य में निवेदन करते हैं—

भव्यं भाष्यविभूषणं भवहरं श्रीवीरशैवाभिधं
भाष्यं बालिशहृत्तमोपहरणादित्यं सुधीसन्नुतम् ।
श्रीमन्मुण्डकमण्डनं परमतव्याख्यान-सत्खण्डनं
भूतेशार्पितमस्तु षट्स्थलपरं सुज्ञानसम्पत्प्रदम् ।।

इसके प्रथम मुण्डक की भक्तस्थलपरक, द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की माहेश्वर-स्थलपरक, उसी मुण्डक के द्वितीय खण्ड की प्रसादिस्थलपरक, तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड की प्राणलिङ्गिस्थलपरक और शरणस्थलपरक तथा उसी खण्ड के द्वितीय खण्ड की ऐक्यस्थलपरक व्याख्या प्रधान रूप से प्रायः सर्वत्र शाङ्कर भाष्य के विपरीत है ।

भक्त स्थल— श्री रेणुकभगवत्पाद इसका लक्षण इस प्रकार निरूपित करते हैं—

शैवी भक्तिः समुत्पन्ना यस्याऽसौ भक्त उच्यते ।
तस्याऽनुष्ठेयधर्माणामुक्तिर्भक्तस्थलं मतम् ।।
(सि. शि. ५.२६)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जिस जीव के अन्त:करण में शिव के विषय में भक्ति उत्पन्न होती है, उसे भक्त कहते हैं। वह भक्ति षड्विधा है— श्रद्धा, निष्ठा, अवधान, अनुभव, आनन्द और समरस। उस भक्त के लिए अनुष्ठान-योग्य कुछ सदाचार होते हैं, जो वीरशैव धर्म में इस प्रकार निरूपित हैं —

सदाचार: शिवे भक्तिर्लिङ्गे जङ्गम एकधी:।
लाञ्छने शरणे भक्तिर्भक्तस्थलमनुत्तमम्॥

भक्त को सदाचारी होना चाहिए। परमशिव, इष्टलिङ्ग, गुरु, जंगम, शिवयोगी शरणस्थलापन्न वीरशैव और उनके वेष के प्रति उसकी श्रद्धा होनी चाहिए। इस प्रकार का उपदेश 'भक्तस्थल' कहलाता है।

शुनक पुत्र महर्षि शौनक इसी प्रकार के महाशाल, अर्थात् शिवगृहस्थाश्रमी थे और उनके गुरु महर्षि अङ्गिरा भी उसी प्रकार के वीरशैव शिवाचार्य थे। वे महर्षि अंगिरा के पास विधिवत् आए और ब्रह्मजिज्ञासा की थी —

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं
विधिवदुपवन्न: पप्रच्छ॥
(१.१.३)

और उन्होंने ब्रह्मजिज्ञासा की —

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति?
(मु. उ. १.१.३)

गुरु की शरण में किस प्रकार जाना चाहिए, उसका उपदेश स्वयं 'मुण्डकोपनिषद्' इस प्रकार देती है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाऽभिगच्छेत्।
समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥
(मु. उ. १.२.१२)

यह भक्तस्थलान्तर्गत चतुर्थ दीक्षालक्षण गुरुकारुण्यस्थल है, जिसका उपदेश श्रीरेणुकभगवत्पाद ने अपनी रेणुकगीता में दिया है, जो वहीं (सि. शि. ६.१-७) द्रष्टव्य है।

ब्रह्मजिज्ञासा— शौनक महर्षि अङ्गिरा से ब्रह्मजिज्ञासा करते हैं— 'भगवन्! ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसका ज्ञान होने पर संपूर्ण जगत् का ज्ञान होता है?' इस प्रश्न का आशय ही यही है कि "कारण में कार्य अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है, ऐसा कौन सा

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विषय है, जिससे जगत् का भान होता है?'' उसका समाधान संकेतित करते हुए भाष्यकार कहते हैं— ''वह है षट्स्थलपरक ब्रह्म, जिसमें कार्यरूप अव्यक्त जगत् सृष्टि के पूर्व और विलय के पश्चात् अन्तर्निहित है; जैसे मिट्टी में घड़ा अव्यक्त रूप से रहता है अथवा सुवर्ण में कुण्डल अव्यक्त रूप से रहता है। अक्षरब्रह्म उसका कारण है और जगत् उसका कार्य। इस प्रकार ब्रह्म कारणस्वरूप भी है और कार्यस्वरूप भी। दृष्टिगोचर जगत् ब्रह्म का कार्यस्वरूप है, जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार जगत् के रूप में भासमान ब्रह्म का हम अपलाप नहीं कर सकते—'ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यम्'। इस प्रकार आचार्य शंकर के 'ब्रह्म सत्यं जगद् मिथ्या' इस सिद्धान्त का खण्डन होता है। ''जिस प्रकार स्वर्ण कुण्डल से भिन्न है, तथापि उसकी पृथक् सत्ता दृष्टिगोचर होती है; जिस प्रकार मृत्तिका घट से अभिन्न है, तथापि घट पृथक् दृष्टिगोचर होता है; उसी प्रकार जगत् कार्यरूप में ब्रह्म से अभिन्न रहने पर भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। अत: ब्रह्म भेदाभेदस्वरूप है।'' (मु. उ. १.१.३)

विद्या-विभाग— महर्षि शौनक द्वारा ब्रह्मजिज्ञासा के अनन्तर महर्षि अङ्गिरा द्वारा प्रथम विद्याविभाग का निरूपण इस प्रकार किया गया है— केवल दो ही विद्याएं जानने योग्य हैं, जैसा कि वेदार्थ के अभिज्ञ शिवाचार्यों ने कहा है। वे हैं— परा और अपरा। इनमें अपरा वेदवेदांगविद्या है और परा ब्रह्मविद्या। आचार्य शङ्कर के अनुसार ''अपरा वेद-वेदाङ्ग-विद्या धर्माधर्मसाधन और प्रवृत्तिपरक है, जो मोक्षोपयोगी नहीं है, परा विद्या ही परमात्मविद्या है, जो निवृत्तिप्रधान और मोक्षोपयोगी है। अत: अपरा विद्या अन्त में अनुपादेय और परा विद्या उपादेय है। अपरा विद्या में शब्दराशि प्रधान है। यद्यपि परा विद्या वेद वाङ्मय का ही उत्तरार्ध है, तथापि उपनिषद् विद्या में शब्दराशि गौण और उसका अर्थ प्रधान है।''

ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री इस से सहमत नहीं है। उनकी दृष्टि में ''परा विद्या उपनिषद् विद्या न होकर पञ्चाक्षरी महाविद्या है। उसके अन्य पर्याय हैं— मूल, विद्या, शिव और शैवसूत्र। (द्र. सि. शि. ८.२३) षट्स्थल ब्रह्म उसका वाच्यार्थ है। अपरा वेद-वेदाङ्ग-विद्या की वह जननी है। परा विद्या कारणरूपा है और अपरा विद्या कार्यरूपा। दोनों में कार्यकारणभाव और वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध है। साथ ही ऋग्वेदादि वेद वाङ्मय केवल शब्दराशिस्वरूप न होकर उससे उत्पन्न तत्त्वज्ञानपरक भी है। दोनों विद्याएं उपादेय हैं। वेदविद्या अनुपादेय नहीं है। साथ ही परा विद्या वेदबाह्य भी नहीं है, क्योंकि यजुर्वेद के श्रीरुद्राध्याय, पञ्चब्रह्मोपनिषत्, पञ्चाक्षरजाबालोपनिषत्, सिद्धान्तशिखोपनिषत्, त्रिपुरतापिनी-उपनिषत् आदि में वह निरूपित है और मुक्ति का साधन है। इस प्रकार वह वेदान्त के अन्तर्गत ही है। किन्तु इससे विद्याविभाग की निरर्थकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि कार्यकारणभाव की दृष्टि से यह विभाग है। परा पंचाक्षरी महाविद्या कारणरूपा और अपरा वेदवेदांगविद्या की जननी है और अपरा विद्या कार्यरूपा है। परमशिव की निश्वासरूपा वेदविद्या नित्य है। इसमें **''निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः''**, **''तस्माद् यज्ञात्**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे'' इत्यादि अनेक श्रुतिवचन प्रमाण हैं। बीजाङ्कुरन्याय से परमशिव की शक्ति में सृष्टि के पूर्व भी सूक्ष्म रूप से स्थित है। सृष्टि के समय वैखरी वाणी के रूप में उसका प्रादुर्भाव होता है। ॐ कार परब्रह्म परमशिव से अभिन्न और उसका वाचक है। पञ्चाक्षर मन्त्र सूक्ष्म रूप से उसमें अवस्थित है। वेद और आगम उसीसे नि:सृत है। अत: वेदविद्या नित्य और अपौरुषेय है (द्र. १.१.५)।

निष्कल अक्षर ब्रह्म— पञ्चाक्षरी परा विद्या से उस निष्कल परशिव-स्वरूप अक्षर-ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। षट्स्थलब्रह्मस्वरूप परमशिव एक ही है। भक्तस्थल, माहेश्वरस्थल, प्रसादिस्थल, प्राणलिङ्गिस्थल, शरणस्थल और ऐक्यस्थल उससे अभिन्न हैं और अन्त में उनका विलय उसीमें होता है।

इसका मूल 'प्रश्नोपनिषद्' में है। भरद्वाज पुत्र सुकेशा से कोसल देश के राजकुमार हिरण्यनाभ ने प्रश्न किया था— **'षोडशकलं भारद्वाज! पुरुषं वेत्थ?''** (६.१)। वे इस प्रश्न से निरुत्तर हो गये थे और पुन: उसी प्रश्न को सुकेशा ने महर्षि पिप्पलाद से दुबारा किया था। जिसके उत्तर में उन्होंने कहा— **''इहैवाऽन्तःशरीरे सौम्य! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्ति।''** (६.२) सौम्य! वह षोडशकल पुरुष हमारे-आपके शरीर के भीतर ही विद्यमान है, जिससे ये सोलह कलाएं नि:सृत होती हैं। **''स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद् वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु नाम च।''** (६.४) प्राण से लेकर नाम-रूप तक सोलह कलाएं इसी निष्कल (निरवयव) अक्षरब्रह्म में अन्तर्निहित हैं।

इसी निष्कल अक्षरब्रह्म का निरूपण 'मुण्डकोपनिषद्' इस प्रकार करती है—

यत् तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण-
मचक्षु:श्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं
तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

(मु. उ. १.१.६)

वह निष्कल भावलिङ्ग, जो इसी शरीर में विद्यमान है, अशुद्ध अन्त:करण से उसका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। सूक्ष्मदर्शी उसका अन्तर्दृष्टि से साक्षात्कार करते हैं। केनोपनिषद् कहती है— **न तत्र चक्षुर्गच्छति** (१.३) 'अग्राह्य' का भी यही अर्थ है। बाह्येन्द्रिय उसका साक्षात्कार नहीं कर सकती, वह केवल भावग्राह्य है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (५.१४), अनुभवसूत्र और सिद्धान्तशिखामणि (सि. शि. १६.१६) के वचन इसमें प्रमाण हैं। वह अजन्मा होने के कारण गोत्रहीन है। निराकार होने के कारण रूपरंगहीन है। उसे आंख-कान भी नहीं है, क्योंकि वह निरवयव है। वह नित्य = अविनाशी है। वह

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विभु = सर्वव्यापी, सार्वदेशिक है, सर्वगत = व्यष्टि-व्यष्टि में विद्यमान, अत्यन्त सूक्ष्म है। उसका ह्रास नहीं होता और वह भूतयोनि, अर्थात् चराचर जगत् का उपादानकारण है। उस परशिव ब्रह्म का ज्ञान होने पर समस्त चराचर जगत् का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि समस्त विश्व उसमें निहित है और प्रत्येक दृश्य वस्तु उसीका विग्रह है। हम प्रतिपल जगत् के रूप में परमात्मा का ही साक्षात्कार करते हैं। शिव के प्रसाद से जिनकी चित्शक्ति विकसित होती है, वे वीरशैव अपने से अभिन्न रूप में परमशिव का साक्षात्कार करते हैं।

अक्षरब्रह्म से सृष्टि

उसी अक्षरब्रह्म से समस्त सृष्टि होती है, जैसा कि 'प्रश्नोपनिषद्' से ज्ञात होता है। किसी कार्य के दो कारण होते हैं— १. उपादानकारण और २. निमित्तकारण। घट का उपादानकारण मृण्मय कपाल तथा निमित्तकारण कुम्हार होता है। मृण्मय कपाल आदि को देखकर कुम्हार का ज्ञान नहीं होता और कुम्हार को देखकर घट का ज्ञान नहीं होता। फिर 'एकविज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति' इस प्रश्न की संगति कैसी होगी? इसका समाधान तीन दृष्टान्तों द्वारा दिया गया है— १. ऊर्णनाभि-दृष्टान्त, २. वनस्पति-दृष्टान्त और ३. केशलोम-दृष्टान्त।

(१) प्रथम दृष्टान्त हमें यह संकेत देता है कि किस प्रकार अक्षरब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति और उसका विलय होता है। 'ऊर्णा' उस तन्तु को कहते हैं जो मकड़ी के 'नाभि' में होता है, उसी से 'मकड़ी को ऊर्णनाभि' कहते हैं। वह जिस प्रकार तन्तुओं से जाल बुनती है और उसे अपने में समेटती है, उसी प्रकार अक्षरब्रह्म से ही जगत् का आविर्भाव और तिरोधान होता है। (२) अचेतन पृथिवी से जिस अन्न की उत्पत्ति होती है, वह अव्यक्त रूप से पृथिवी में ही रहता है। वर्षाकाल में अंकुरादि क्रम से पृथ्वी से अन्न की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति होती है। (३) जिस प्रकार चेतन पुरुष में केशलोम अव्यक्त रूप में रहते हैं और उसी से प्रकट होते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से जगत् का आविर्भाव होता है।

अक्षर ब्रह्म कारणान्तर की अपेक्षा नहीं करता। वह स्वयं ही कर्ता और स्वयं ही कारण होता है। अभीष्ट अर्थ को देनेवाली चिन्तामणि, योगी, मयूराण्डरसगत मोर के रंग-विरंगे पंख उसके अन्य दृष्टान्त हैं। इस प्रकार जड़ (स्थावर) और अजड़ (जंगम) शिव से पृथ्वी तक समस्त जगत् की सृष्टि, उसकी स्थिति, संहार, बन्ध और मोक्ष इन पञ्चकृत्यों में परशिवस्वरूप अक्षर ब्रह्म ही प्रवीण है, यही सिद्धान्त है (मु. उ. १.१.७)।

उस सृष्टि का प्रकार यह है कि अक्षरब्रह्म संकल्पात्मक तप से बढ़ने लगता है और अपने नाम को सार्थक करता है, 'पञ्चकृत्यनियन्तारं पञ्चब्रह्मात्मकं बृहत्' इस श्रुतिवचन के अनुसार चतुर्मुख ब्रह्मदेव, नारायण, कालरुद्र और सदाशिव अङ्गस्थल हैं और भक्तस्थल

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आदि उपासक कोटि में प्रविष्ट हैं। वे यथाक्रम सृष्टि, स्थिति, संहार, नियमन (बंध) और मोक्ष के लिए यथाक्रम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान इन पञ्च ब्रह्मावतारों द्वारा अधिकृत हैं। आचारलिङ्ग, गुरुलिङ्ग, शिवलिङ्ग, चरलिङ्ग और प्रसादलिङ्ग इन्हीं पंचब्रह्मतनु परमशिव के पर्याय हैं और उपास्य कोटि में प्रविष्ट हैं। इसी पञ्चब्रह्मतनु परमशिव से त्रिगुणात्मिका प्रकृति (अन्न) जन्म लेती है। उस प्रकृति से क्रमश: पञ्च प्राण, मन, भोक्तृवर्ग और (भू:, भुव:, सुव:, मह:, जन: तप: और सत्यं ये सात) लोक उत्पन्न होते हैं। विशुद्ध 'अन्न' पतिकर्मानुष्ठान करने पर विशुद्ध चित्शक्ति से अमृत पद मुक्ति मिलती है। यही अक्षरब्रह्म के सृष्टि-संहार का क्रम ऊर्णनाभि दृष्टान्त से विवक्षित है। "अग्निहोत्रादि कर्म करने पर उसका फल प्राप्त होता है" यह आचार्य शंकर का अभिप्राय शंकरशास्त्री जी को अभीष्ट नहीं है। (द्रष्टव्य मं. १.१.८)। वह परमशिव सर्वज्ञता आदि षड्विधैश्वर्यसम्पन्न है, जैसा कि पारमेश्वरागम का वचन है—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध: स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति:।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा: षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

(पारमे. ६.३३)

उसकी सर्वज्ञता ही उसका तप है, जिससे चिच्छक्तिविशिष्ट लिङ्ग का विस्तार होता है। उससे नामरूपात्मक शब्दार्थमय प्रपञ्च और मलात्मक भेदज्ञान (अन्न) प्रकट होता है। यही सृष्टि का रहस्य है। परब्रह्म ही सृष्टि का उपादानकारण भी है और निमित्तकारण भी, अत: शौनक के प्रश्न की संगति बैठती है।

पतिकर्म

पूर्वनिर्दिष्ट मलत्रय अथवा त्रिविध अज्ञान-पाश से आवृत जीव 'पशु' होता है। अग्निहोत्रादि कर्म 'पशु कर्म' हैं, जो जीव को बन्धन में डालते हैं। उनसे भिन्न पंचाचार और अष्टावरणों का अनुष्ठान 'पतिकर्म' हैं, जो लिङ्गाङ्गसामरस्य के अनुकूल होने के कारण मोक्षोपयोगी हैं। अतीन्द्रिय अर्थ का साक्षात्कार करने में समर्थ एकवक्त्र आदि शिवाचार्यों ने त्रेतायुग में और रेवणसिद्ध, मरुलसिद्ध आदि शिवाचार्यों ने कलियुग में इसका उपदेश किया था। त्रेतायुग में अनेकविध रीति से कश्यप आदि ऋषि की सन्तान मानव, यक्ष, गन्धर्व आदि गणों में इसका प्रचार-प्रसार हुआ। मोक्षमार्ग के पथिकों को इनका अनुष्ठान करना चाहिए।

पशुकर्म

विधिपूर्वक किये गए अग्निहोत्रादि पशुकर्म फलप्रद होते हैं, जो यजमान को ब्रह्मलोक में पहुंचाते हैं और सुख प्रदान करते हैं। किन्तु पुण्यक्षय होने पर उसका पतन होता है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पंचाग्निविद्या— द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और स्त्री ये पांच अग्निस्वरूप हैं। इनकी उत्पत्ति के पश्चात् स्त्री-पुरुष मिथुन से योनिज प्रजा उत्पन्न हुई (२.१.५)। यत: वेदत्रयी, यज्ञ-क्रतु, दक्षिणा, काल, यजमान, देव, साध्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्राण-अपान, अन्न, तप, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, सप्त प्राणादि, समुद्र-पर्वत आदि सभी की सृष्टि इसीसे है, अत: ये उससे अभिन्न हैं।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य! ॥

(मु. उ. २.१.१०)

पुरुषसूक्त की भी यही घोषणा है— 'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्'।

इस प्रकार त्रिविध लिङ्गस्वरूप परम-पुरुष से यत: विश्व आविर्भूत है, अत: परब्रह्म विश्वात्मक ही है। इसको जाननेवाला भक्त अविद्या-ग्रन्थि से मुक्त हो जाता है। यही माहेश्वरस्थलान्तर्गत 'शिवजगन्मय स्थल' का रहस्य है।

प्रसादिस्थल

द्वितीय मुण्डक का द्वितीय खण्ड प्रसादिस्थलव्याख्यान-परक है। श्रीरेणुक-भगवत्पाद इसका निरूपण करते हुए कहते हैं—

लिङ्गनिष्ठादिभावेन ध्वस्तपापनिबन्धन:।
मन:प्रसादयोगेन प्रसादीत्येष कथ्यते ॥

(सि. शि. ११.२)

जब लिङ्गनिष्ठा आदि स्थलों में प्रतिपादित ज्ञान से और उसके आचरण से माहेश्वर भक्त शिव के प्रसाद (प्रसन्नता) को प्राप्त करता है और उसके पापों का विनाश हो जाता है, तब उसे 'प्रसादी' कहते हैं। इसके अवान्तर सात भेद हैं— १. प्रसादिस्थल, २. गुरुमाहात्म्य स्थल, ३. लिङ्गप्रशंसा स्थल, ४. जंगमगौरव स्थल, ५. भक्तमाहात्म्य स्थल, ६. शरणकीर्तन स्थल और ७. शिवप्रसादमाहात्म्य स्थल।

'मुण्डकोपनिषद्' कहती है कि महालिङ्ग स्थल सभी के हृदयरूपी गुफाओं में विचरणशील है। वह गुरु,चर और इष्टलिंग के रूप में आविर्भूत होकर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। वह भक्त के द्वारा समर्पित छत्तीस प्रकार की विभूति, अभ्युक्षण, आवाहन आदि पूजासामग्री को स्वीकार करने के लिए निकट ही रहता है। अनुभवसूत्र के अनुसार जाग्रत् (पृथ्वी से पुरुष तत्त्व तक स्थूल, स्वाप्निक सूक्ष्म पंचकंचुक (काल, नियति, कला, अविद्या और राग) प्रविविक्त और सौषुप्त मायामय आनन्दरूप तीन द्रव्य इष्टलिङ्ग, गुरुलिङ्ग और चरलिङ्ग को समर्पित कर उसका अवशिष्ट प्रसाद ग्रहण करता है तथा चरमाह्लाद का अनुभव करता है। वह मन्त्र इस प्रकार है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत् पदमत्रैव समर्पितम्।
एजत् प्राणत् निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यम्।
परं विज्ञानाद् वरिष्ठं प्रजानाम्॥

(मु. उ. २.२.१)

रेणुकगीता में प्रसाद की परिभाषा इस प्रकार है—

नैर्मल्यं मनसो लिङ्गं प्रसाद इति कथ्यते।
शिवस्य लिङ्गरूपस्य प्रसादादेव सिद्ध्यति॥

(सि. शि. ११.६)

मन के आणव, कार्म और मायीय त्रिविध मल का प्रक्षालन ही प्रसाद कहलाता है— **'प्रसादस्तु प्रसन्नता'** (अमरकोष)। वह प्रसन्नता शिव के त्रिविध प्रसाद (नैवेद्य) के ग्रहण से प्राप्त होती है। शिव को निवेदित द्रव्य, जो अन्य के लिए निर्माल्य है, वीरशैव के मन की निर्मलता का हेतु है। उस शिवप्रसाद को स्वीकार करनेवाला माहेश्वर प्रसादी कहलाता है। मुण्डकोपनिषद् उसी शिव-प्रसाद को स्वीकार करने का उपदेश देती है।

प्रणव की महिमा— प्रणव का ध्यान कर अक्षरब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए। मुख में प्रणव मन्त्र होना चाहिए। उस प्रणवरूप धनुष्य को गुरुमुख से ग्रहण करना चाहिए। शिवदीक्षासंस्कार से आत्मारूपी शरीर को सुसंस्कृत तथा तीक्ष्ण करना चाहिए और परमात्मसाक्षात्कार करना चाहिए। अर्थात् केवल निवेदित द्रव्य ही नहीं, स्वयं को भी परमशिव को समर्पित करना चाहिए, लिंगांगसामरस्य प्रक्रिया से स्वयं का परमशिव में विलय करना चाहिए। (एतदर्थ विलयक्रम जानने के लिए २.२.५ मन्त्रव्याख्या द्रष्टव्य है।) सप्तम मन्त्र में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष के वर्णन के साथ त्रिविध दीक्षा (वेधादीक्षा, क्रियादीक्षा, मन्त्रदीक्षा) द्वारा त्रिविध लिङ्ग का उपदेश है, फलतः हम अन्तर्निहित प्रकाशमय परब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, जगत् को ब्रह्म के रूप में प्रत्यक्ष करते हैं, हमारी हृदयग्रन्थि खुल जाती है और सभी संशय मिट जाते हैं। इस प्रकार चारों ओर हम ब्रह्मसाक्षात्कार ही करते हैं। यह है शिव- प्रसाद की महिमा। **'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः'**(३.१.८) शिव का विशुद्ध प्रसाद ग्रहण करने से उसका चित्त शुद्ध रहता है।

प्राणलिङ्गिस्थल

सर्वतत्त्वमयः प्राणः सर्वज्ञानमयः शिवः।
अनयोर्योगमेवैतत् प्राणलिङ्गमिहोच्यते॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यह वीरागम का वचन है। प्राण सर्वतत्त्वात्मक होता है और शिव सर्वज्ञानमय होता है। उनके संयोग को 'प्राणलिङ्ग' कहते हैं। इस प्रकार के प्राणलिङ्गधारी को 'प्राणलिङ्गी' कहते हैं। 'सिद्धान्तशिखामणि'कार कहते हैं—

लिङ्गं चिदात्मकं ब्रह्म तच्छक्तिः प्राणरूपिणी।
तद्रूपलिङ्गविज्ञानी 'प्राणलिङ्गी'ति कथ्यते॥ (१.२.३)

प्राणस्वरूपा शक्ति से सम्पन्न चिद्रूप शिवलिङ्ग का ज्ञान जिसे होता है, उसे 'प्राणलिङ्गी' कहते हैं। उसके पांच भेद हैं— १. प्राणलिङ्गिस्थल, २. प्राणलिङ्गार्चन स्थल, ३. शिवयोग-समाधि स्थल, ४. लिङ्गनिजस्थल और ५. अंग निजस्थल।

भक्तों को ध्यान करने के लिए परमशिव हृदय के मध्य प्राणलिङ्ग के रूप में विराजमान हैं। प्रणवजप करते हुए वहां उसका साक्षात्कार करना चाहिए।

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।। (२.२.६)

परब्रह्म में जीवत्व और ईश्वरत्व दोनों विद्यमान हैं। वे दोनों एक ही शरीर का आश्रय लेते हैं। इनमें जीव रागासक्त होता है और ईश्वर विरक्त। अतः जीव शोकाकुल रहता है। जब वह सम्पूर्णकान्तियुक्त ईश्वर का साक्षात्कार करता है, तब शोकमुक्त होता है। उस चिद्रूप प्राणलिङ्ग के स्वरूप के साक्षात्कार से शिवज्ञानी के पुण्य और पाप दोनों कटते हैं और वह मुक्त हो जाता है। प्राणलिङ्गी आत्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ होता है—

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावान् एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥
(३.१.४)

प्राणलिङ्गी ही शरणस्थलापन्न होता है, इसे इस मन्त्र का उत्तरार्ध द्योतित करता है।

शरणस्थल

जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पाद कहते हैं —

सतीव रमते यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन्।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान्॥
(सि. शि. १३.५)

जिस प्रकार पतिव्रता अपने पति के साथ एकनिष्ठ रहती है, उसी प्रकार शरण-स्थलापन्न भक्त परमशिव को छोड़कर अन्य किसी में आसक्त नहीं होता। जैसा कि श्रुति कहती है— **आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावान्** (३.१.४)।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शंकरसंहिता का वचन इस प्रकार है—

सती चाहं पतिर्लिङ्गं हृदि युक्तः स्वयं प्रभुः ।
प्रापञ्चिकसुखं नास्ति शरणस्थलमुत्तमम् ॥

सत्य, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य आत्मसाक्षात्कार के साधन हैं, इनमें सत्य सर्वश्रेष्ठ है । इन साधनों से वे शरणस्थलस्वरूप भक्त अपने शरीर के भीतर ही हृदयरूपी गुफा में चित्स्वरूप प्रकाशमय परशिवलिङ्ग का साक्षात्कार करते हैं । उसके साक्षात्कार का मुख्य उपाय है शिव का प्रसाद, जिससे शरणस्थलापन्न भक्त निष्कल भावलिंग परशिव का ध्यान करता है । प्राणलिंगी प्राणलिंग का साक्षात्कार करते हैं, जब सूर्य-चन्द्र-नाडी के संघर्ष से प्राण का विलय होता है । ऐसे आत्मसाक्षात्कारकर्ता शिवयोगी का अर्चन करना चाहिए । आत्मसाक्षात्कार का मुख्य साधन लिंगधारण है । बलादि उसमें सहकारी हैं ।

ऐक्यस्थल

जो दृष्ट, प्राण, भावलिंग का अर्चन-पूजनादि करते हुए अत्यन्त सुख प्राप्त करता है, वह शरणस्थलापन्न भक्त शिव के साथ कीटभ्रमरन्याय से ऐक्यभावना करते हुए ऐक्यस्थल को प्राप्त करता है, जैसा कि रेणुकगीता का वचन है—

प्राणलिङ्गादियोगेन सुखातिशयमेयिवान् ।
शरणाख्यः शिवेनैक्यभावनादैक्यवान् भवेत् ॥

(सि. शि. १४.२)

इन साधनों में उसकी जीवात्मा परशिव ज्योतिर्लिङ्ग में प्रवेश करती है—
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वान् तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम (३.२.४) ।

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा
मुक्तात्मानः सर्वमेवाऽऽविशन्ति ॥ (३.२.५)

उसका विलयक्रम इस प्रकार है—

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥

(३.२.७)

नदीसमुद्रन्याय से जीव शिव के साथ सामरस्य प्राप्त करता है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(३.२.८)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ऐसा ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है—

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (३.२.९)।

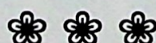
इस प्रकार ब्रह्मश्री शंकरशास्त्रीजी ने मुण्डकोपनिषत् की षट्स्थलपरक व्याख्या की है। ईशावास्योपनिषत्, केनोपनिषत्, सिद्धान्तशिखोपनिषत् के वीरशैवभाष्य भी आपकी वैदुषी के परिचायक हैं। आपका परिचय ईशावास्योपनिषद् की प्रस्तावना में द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत संस्करण

मुण्डकोपनिषद् का यह हिन्दी संस्करण मैसूरस्थित प्रबोध पुस्तकमाला द्वारा १९६० ई. में प्रकाशित मुण्डकोपनिषत् के संस्करण पर आधारित है। उस संस्करण का सम्पादन और कन्नड अनुवाद महाराजा संस्कृत कालेज के वीरशैवागम-प्राध्यापक म. गं. नञ्जुण्डाराध्य द्वारा किया गया था। विश्वाराध्य-ज्ञानसिंहासनाधीश्वर जगद्गुरु (डॉ.) चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी और शैवभारती शोध प्रतिष्ठान (जंगमवाड़ी मठ) वाराणसी के निदेशक राष्ट्रियपण्डित आचार्य व्रजवल्लभ द्विवेदी के आदेशानुसार इस संस्करण का यथामति सम्पादन और भाषान्तरण किया गया है। इसके विषम स्थलों के रहस्योद्घाटन में मुझे मित्रबन्धु न्यायाचार्य पं. गणपति ऐताल जी से पूर्ण सहयोग मिला है। गुरुजन और मित्रबन्धु मेरे हृदय में विद्यमान हैं। गुरुजनों को वन्दनापूर्वक उनसे सदा शुभाशीर्वाद की कामना करता हूँ और मित्रों से मैं वारंवार सहयोग की अपेक्षा रखता हूँ। साथ ही शिवशक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस के अक्षर संयोजक श्री राजशेखर हिरेमठ, दोनों में संवाद स्थापित करने के लिए श्री गोपालजी तथा अन्य सहयोगियों को साधुवाद देना मैं अपना धर्म समझता हूँ।

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति॥

महाशिवरात्री २०६१ — विनयावनत
१८ फरवरी २००४ — जगन्नाथशास्त्री तैलङ्ग



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विषय-सूची

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः (भक्तस्थलम्)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः (भक्तस्थलम्)

द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः (माहेश्वरस्थलम्)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः (प्रसादिस्थलम्)

तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः (प्राणलिङ्गिस्थलम्)

(शरणस्थलम्)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

॥ ॐ नमः शिवाभ्याम् ॥

अथर्वणवेदे शौनकशाखायां

मुण्डकोपनिषद्

वीरशैवभाष्योपेता

अभ्भोजासनकेशवादिविनुतं कुम्भोद्भवादिस्तुतं
साम्बं भक्तजनौघभीषणमलस्तम्बेरमोद्यद्धरिम् ।
अम्भोरूपमघाग्निदाहशमने सम्बोधसम्पत्प्रदं
शम्भुं षट्स्थलरूपिणं भवगिरेर्दम्भोलिकल्पं भजे ॥ १ ॥

श्रीपालाद्यमरर्षिसन्नुतपदं पापाटवीपावकं
भूपालोत्तमपूजिताङ्घ्रिकमलं तापाद्रिवज्रायुधम् ।
शापानुग्रहशक्तियुक्तविभवं श्रीपार्वतीशप्रियं
मां पायाद् गुरुपञ्चकं शिवकरं साम्बास्यपद्मोद्भवम् ॥ २ ॥

भावार्थदीपिका

जिसे कमल के आसन पर आसीन ब्रह्मदेव, केशव आदि देवता नमस्कार करते हैं, अगस्त्य आदि महामुनि जिसकी स्तुति करते हैं, भक्त-जन-समुदाय के आणव, कार्मिक और मायीय त्रिविध मलस्वरूप जो भयावह विशाल गज हैं, मैं उनके निवारक सिंहस्वरूप, पापरूपी दावाग्नि के दाह का शमन करने में शीतल जलस्वरूप, संसाररूपी पर्वत का भेदन करने में वज्रस्वरूप उस षट्स्थलरूपों[१] में अवतीर्ण शक्तिसम्पन्न शिव की उपासना करता हूँ ॥१॥

(सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान इन पांच शिवमुखों से अवतीर्ण रेणुक, दारुक, घण्टाकर्ण, धेनुकर्ण और विश्वकर्ण इन पांच प्रमथों के अवतारस्वरूप रेवणाराध्य, मरुलाराध्य एकोरामाराध्य, पण्डिताराध्य और विश्वाराध्य ये पांच आचार्य 'पञ्चाचार्य' कहलाते हैं। इन से आत्मरक्षा की प्रार्थना करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि) शिव के पांच मुखकमलों से निर्गत वीरशैव सम्प्रदाय के दिव्यौघ में विराजमान

---

१. आचारलिंग, गुरुलिंग, शिवलिंग, चरलिंग, प्रसादलिंग और भावलिंग ये छः लिंगस्थल हैं, जो षट्स्थल नाम से प्रसिद्ध हैं और शिव के लिंगमय स्वरूप से अभिन्न हैं।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

श्रीसद्धर्मपरं कृतं जगदिदं येनोज्जयिन्यां परं
श्रीसद्धर्ममृगेन्द्रपीठमतुलं संस्थापितं पावनम् ।
श्रीसिद्धेश्वरलिङ्गगर्भजनुषं सद्भक्तसंपत्प्रदं
श्रीसिद्धेन्द्रविनुत्यपादकमलं तं दारुकार्यं भजे ।।३।।

श्रीमद्दारुकपीठेशं सिद्धलिङ्गं जगद्गुरुम् ।
श्रीदारुकमिति ज्ञात्वा वन्देऽहं करुणार्णवम् ।।४।।

सिद्धलिङ्गशिवाचार्यकरकञ्जसमुद्भवम् ।
सिद्धेश्वर-शिवाचार्यं वन्देऽहं तं जगद्गुरुम् ।।५।।

सद्गुरुपञ्चकस्वरूप पञ्चाचार्य मेरी रक्षा करें, जिन्हें श्रीपाल आदि देवर्षि प्रणाम करते हैं, विविध महापापों के अरण्य को जलाने के कारण अग्निस्वरूप हैं, श्रेष्ठ राजा भी जिनके चरणकमलों की पूजा करते हैं, जो (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक त्रिविध) तापरूपी पर्वत को काटने के कारण वज्रायुधस्वरूप हैं, जो दुष्टों को शाप और शिष्टों पर अनुग्रह करने की शक्ति रखते हैं, जो शिव के अत्यन्त निकटवर्ती प्रिय हैं और सदा कल्याण करते हैं ।।२।।

(शिव के पांच प्रमथों में दारुकाचार्य का द्वितीय स्थान है, उनकी स्तुति करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि) जिन्होंने सम्पूर्ण स्थावर-जंगमात्मक इस जगत् को अपने उपदेशों में सद्धर्मनिष्ठ किया, जिन्होने उज्जयिनी में परम पावन अनुपम सद्धर्म-सिंहासन की स्थापना की, उज्जयिनीस्थित वटक्षेत्र में श्रीसिद्धेश्वर लिङ्ग से मरुलाराध्य नाम से जिनका प्रादुर्भाव हुआ, जो सद्भक्तों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, जिनके चरणकमल श्रीसिद्ध, देवराज आदि के भी प्रणामयोग्य हैं, मैं पञ्चाचार्यों में द्वितीय उस दारुकाचार्य की उपासना करता हूँ ।।३।।

(सद्धर्मसिंहासनाधीश जगद्गुरु श्रीसिद्धलिंग शिवाचार्य की वन्दना करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि) मैं मरुलाराध्य के रूप में अवतीर्ण दारुकाचार्य के द्वारा स्थापित सद्धर्म सिंहासन पर अभिषिक्त पीठाधिपति जगद्गुरु श्रीसिद्धलिंङ्ग शिवाचार्य की इसलिए वन्दना करता हूँ, क्योंकि मैं उनका साक्षात्कार साक्षात् दारुकाचार्य के रूप में करता हूँ और उन्हें करुणासागर समझता हूँ ।।४।।

(सिद्धेश्वर शिवाचार्य को प्रणामांजलि समर्पित करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि) मैं जगद्गुरु श्रीसिद्धलिङ्ग शिवाचार्य के करकमलों के प्रसादस्वरूप नवीन जन्म लेनेवाले उत्तराधिकारी शिष्य जगद्गुरु श्रीसिद्धलिङ्ग शिवाचार्य की वन्दना करता हूँ ।।५।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

श्रद्धामौर्व्यानतहृदयकोदण्डयुक्तेशयज्ञ-
बाणाघाताहतकलुषहिंस्रोच्चयं तातपादम् ।
मां यस्याशीर्वचनमकरोच्छङ्करं प्राप्तविद्य-
मय्यप्पार्ये शिवनुतिपरं सादरं तं नमामि ।।६।।

विद्युद्दीप्तविशालसौधविलसन्मैसूरुसंवासिनः
श्रीमद्रामकथाभिरामचरितश्रीकृष्णपृथ्वीपतेः ।
आस्थानस्य विभूषणेन विदुषा वेदान्तविद्याब्धिना
श्रीमच्छङ्करशास्त्रिणा शिवमुदे व्याख्यायते मुण्डकम् ।।७।।

(१) ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।

(भाष्यकार अपने पितृचरण को नमन करते हुए कहते हैं कि) जिनके आशीर्वचनों द्वारा मैंने साहित्य, व्याकरण, न्याय, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा आदि शास्त्रों का अर्जन किया, जो अपनी श्रद्धारूपी प्रत्यञ्चा से झुके हुए हृदयरूपी धनुष्य पर संलग्न शिवयज्ञ-रूपी बाणों के प्रहार से पापरूपी हिंस्र पशुवृन्द का संहार करते थे और जिनके आशीर्वाद द्वारा मैं (शंकरशास्त्री) साहित्य, व्याकरण, न्याय, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा (वेदान्त) आदि शास्त्रों का अर्जन कर सका, मैं शिवपूजा में सदा तत्पर अपने पितृचरण पूज्य अय्यप्पार्य को आदरपूर्वक नमन करता हूँ ।।६।।

(ग्रन्थकार भाष्यप्रणयन की प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं कि) बिजली के प्रकाश से आलोकित प्रासादों से सुशोभित मैसूर में निवास करनेवाले, रामायण से अपने चरित्र को सुन्दर बनानेवाले मैसूरनरेश महाराज श्रीकृष्ण चामराज के आस्थानपण्डित वेदान्त-विद्यासागर श्रीशङ्करशास्त्री द्वारा भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए मुण्डकोपनिषद् के श्रीवीरशैवभाष्य का प्रणयन किया जा रहा है ।।७।।

_मंत्रार्थ_–(१) देवताओं! हम अपने कानों से मङ्गलमय शिव-पञ्चाक्षर-मंत्र का श्रवण करते हैं, आखों से इष्टलिंग-स्वरूप शिव का दर्शन करते हैं, सर्वज्ञत्वादि स्थिर छः अङ्गों से इष्टलिङ्ग को धारण करते हुए स्थूलादि भिन्न नामों से ज्ञात त्यागाङ्ग आदि अङ्गों द्वारा ब्रह्मदेव, विष्णु आदि को भी इष्ट लिङ्गस्वरूप शिव के साथ प्रसन्नचित्त हमलोग आजीवन सामरस्य स्थापित करेंगे ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

(२) स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्वेदेवाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

वीरशैवभाष्यम्

भद्रमिति। देवाः=चक्षुश्श्रोत्रादिकरणाभिमानिनो हे देवाः, कर्णेभिः = अस्मदीयैः श्रोत्रैः, भद्रम्=सर्वमङ्गलास्पदं शिवम्, पञ्चाक्षरमहामनुमिति यावत्। तथा चोक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्येण —

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा ।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः ।।

(सि. शि. ८.२३) इति।

शृणुयाम=श्रोतुं समर्थाः स्याम । सर्वविद्यामूलभूतपञ्चाक्षरमहामनुश्रवण- प्रतिबन्धकबधिरत्वं कदाप्यस्माकं मा भूदित्यनुगृह्णन्तु भवन्त इति भावः । अक्षभिः=नेत्रैः, भद्रम्-इष्टलिङ्गरूपं सदाशिवम्, पश्येम=द्रष्टुं समर्थाः स्याम, युष्मदनुग्रहात् कथमप्यस्माकम् आन्ध्यं न

---

(२) कीर्तिशाली देवराज इन्द्र हमारे जैसे वेदपुरुषों के समान शिवलिङ्ग को धारण करते हैं । उसी प्रकार भगवान् श्रीसूर्यनारायण और विश्वेदेव, पक्षिराज गरुड, शुभप्रापक भगवान् विष्णु और देवगुरु आचार्य बृहस्पति भी हमलोगों के समान ही इष्टलिङ्ग को धारण करते हैं ।

प्रणवस्वरूप परब्रह्म मेरे त्रिविध दुःख अथवा त्रिविध मलों का शमन करें ।

व्याख्या–भद्रमिति। नेत्र, श्रवण आदि इन्द्रियाभिमानी हे देवताओं! हम अपने श्रवणेन्द्रियों से 'भद्र' अर्थात् परम मङ्गलास्पद 'शिव' का, 'नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षर महामंत्र का श्रवण करने में समर्थ हों। जैसा कि **रेणुकभगवत्पादाचार्य** का **'सिद्धान्त-शिखामणि'** में वचन है— **मूलं विद्या** इत्यादि महामन्त्र के अपर पर्याय इस प्रकार हैं: मूल, विद्या, शिव, शैवसूत्र और पञ्चाक्षर । (इस प्रकार महामन्त्र का अन्यतम पर्याय 'शिव' है, जिसे इस मंत्र में 'भद्र' शब्द से व्यंजित किया गया है ।) हे देवताओं ! आप ऐसा अनुग्रह करें, जिससे हमारी श्रवणशक्ति समाप्त न हो, हम बहिरे न हों, जो सभी विद्याओं के मूल स्रोत पंचाक्षर महामंत्र के श्रवण में प्रतिबन्धक हो, वह बधिरता हमें व्याप्त न करे यही इसका आशय है । इसी प्रकार नेत्रों द्वारा, इष्टलिङ्गस्वरूप सदाशिव का साक्षात्कार कर सकें,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्यादित्यर्थः । स्थिरैः=नित्यैः, अङ्गैः=सर्वज्ञत्वादिषडङ्गैः सह वर्तमानम्—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।।

(पार. आ. ६.३३)

इत्यागमोक्तेः । उक्तं च तेषां नित्यत्वम् ऋग्वेदे—**स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः'** (ऋ. २.२.१७) इति । तस्मान्नात्र स्थिरत्वविशिष्टाङ्गशब्दस्योपासककरचरणाद्यवयवपरत्वं पराभिमतं वक्तव्यम् । भद्रम्=इष्टलिङ्गरूपं शिवम्, यजत्राः=धारयन्तः, **'यज् देवपूजा-सङ्गतिकरणदानेषु'** इति यजधातोः सङ्गतिकरणरूपधारणार्थकत्वात् । अत एव **तुष्टुवांसः** = तद्धारणाऽर्चनाऽर्पणाऽनुभवसमुदितसान्द्राऽऽनन्दतुन्दिला वयम्, **देवहितम्** = देवानां ब्रह्मविष्ण्वादीनां हितम् इष्टं लिङ्गम्, **यदायुः** =येषां देवादीनां मध्येऽस्माकमायुर्यावत्तावत् । **'शरीरवृत्तिर्व्रतम्'** इति शिवसूत्रात्, **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'** इति श्रुतेश्च आयुःपर्यन्तमित्यर्थः । **तनूभिः** = स्थूलाद्यपरपर्यायैस्त्यागाङ्गादिभिः सह, **व्यशेम** = विशेम, साधनसहितसामरस्येन प्राप्नुयाम । इष्टप्राणभावलिङ्गेषु साधनसहितसामरस्याभ्यासेन

आपके अनुग्रह से कभी भी अन्धता हमें आक्रान्त न करें, हम अन्धे न हों । **स्थिरैरङ्गैर्भद्रं यजत्राः**— हमलोग स्थिर = नित्य, सर्वज्ञता आदि अङ्गों के साथ वर्तमान 'भद्र' इष्टलिङ्गस्वरूप शिव को हृदय में धारण करनेवाले हैं । सर्वज्ञता आदि छः अङ्गों को **पारमेश्वरागम** (६.३६) में इस प्रकार वर्णित किया गया है।

सर्वज्ञता इत्यादि। वीरशैवागम के विधिवेत्ता आचार्य सर्वव्यापक महेश्वर के छः अङ्गों का प्रतिपादन करते हैं । वे हैं— सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादित्व का बोध, स्वातंत्र्य शक्ति, नित्य अलुप्तशक्ति और आनन्त्य शक्ति । **ऋग्वेद** इन छः अङ्गों की नित्यता का इस प्रकार प्रतिपादन करता है— **'स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्र'** (ऋ. २.२.१७) उक्त मन्त्र में 'स्थिरैः अङ्गैः' का अर्थ 'नित्य' सर्वज्ञत्वादि छः अङ्गों के साथ यही' करना चाहिए । कुछ लोग इसका अर्थ 'हस्त-पाद आदि उपासक के मजबूत अङ्ग' यह करते हैं, जो उचित नहीं है । **'यजत्राः'** का अर्थ प्रस्तुत मंत्र में 'याजक' अथवा 'पूजक' न होकर 'धारण करनेवाले' यह है । धातुपाठ में **'यज् देवपूजासङ्गनिकरणदानेषु'** इस प्रकार 'यज्' धातु का परिगणन है, इसके अनुसार 'यज' धातु के अनेक अर्थ हैं – देवपूजा, संगतिकरण और दान । प्रस्तुत संदर्भ में उसका अर्थ 'संगतिकरण' अर्थात् 'धारण' ही है । अतएव **तुष्टुवांसः** अर्थात् उस इष्टलिङ्ग के धारण, पूजन, और उसमें आत्मसमर्पण की गाढ अनुभूति से हम अत्यन्त आनंदित हैं । हम जीव **देवहितम्** अर्थात् ब्रह्मदेव, विष्णु आदि देवताओं को भी इष्ट परमशिव में **यदायुः** = आजीवन, **तनूभिः (सह)** = स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर नामों से भी विदित त्यागांग, भोगांग और योगांग के साथ, **व्यशेम** = प्रवेश करते हैं । साधनसहित सामरस्यद्वारा

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

त्यागाङ्गादीनां सामरस्यं प्रापय्य तदभ्यासदार्ढ्येन वयमप्यङ्गिनो नद्योऽब्धाविव सामरस्यं प्राप्नुयामेत्यर्थः। तनूशब्दस्य **स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः** इति कोशप्रसिद्धस्थूलतन्वादि-वाचकत्वमेव, न त्वप्रसिद्धपराभिमतं श्रुत्यर्थकत्वमिति बोध्यम्।

पुनः प्रकारान्तरेण मन्दबुद्धीनपि लिङ्गधारणे प्रवर्तयति भगवती श्रुतिः—**स्वस्तीति। वृद्धश्रवाः** = वृद्धं प्रवृद्धम्, श्रवः=कीर्तिर्यस्य स वृद्धश्रवाः, **इन्द्रः** =देवेन्द्रः, **नः**— अस्माकं वेदपुरुषाणामिव, **स्वस्ति** = शाम्भवं लिङ्गम्, **दधातु** = धारयतीत्यर्थः। तथा **पूषा** = सूर्यः, स्वस्ति दधातु, **विश्वेदेवाः** स्वस्ति दधातु धारयन्तीत्यर्थः।

परम शिव को प्राप्त करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिलकर उसके साथ सामरस्य स्थापित करती हैं, उसी प्रकार हम जीव भी साधनसहित सामरस्य के अभ्यास के द्वारा त्यागांग, भोगांग और योगांग के साथ समरसता स्थापित करते हुए दृढ अभ्यासपूर्वक परम शिव के साथ अङ्गीभाव से समरसता स्थापित करते हैं। **यदायुः** = जिन देवताओं के बीच हमारी आयु है तब तक, आजीवन। इसमें 'शिवसूत्र' और श्रुतिवचन प्रमाण हैं। 'शिवसूत्र' कहता है— **शरीरवृत्तिर्व्रतम्** अर्थात् 'आजीवन लिंगधारण ही शिवव्रत है।' इसमें यह श्रुतिवचन भी प्रमाण है—**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**। 'इहलोक में लिंगधारण-अर्चनादि अनुष्ठान करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छा रखनी चाहिए। 'तनुभिः' का अर्थ कुछ लोग 'श्रुतिवचनों द्वारा' यह करते हैं, जो ठीक नहीं है। क्योंकि **स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः** इस अमरकोष के प्रमाणवचन से 'तनु' शब्द का अर्थ स्थूल 'तनु' (स्थूल शरीर) आदि ही है, अन्य नहीं।

अवतरण— पुनश्च भिन्न प्रकार से भगवती वेदमाता मन्दबुद्धि जीवों को भी लिंगधारण में **स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः** इत्यादि मंत्र से प्रवृत्त कर रही है— **स्वस्तीति। वृद्धश्रवाः** (वृद्धं प्रवृद्धं श्रवः कीर्तिः यस्य सः) जिनकी कीर्ति चारों ओर वृद्धिशील है, वे देवराज इन्द्र, **'नः'** = हमारे जैसे वेदपुरुषों के समान ही, **स्वस्ति दधातु** = 'शिवलिङ्ग धारण करते हैं'। यहां 'दधातु' का अर्थ 'लोट्' लकार का न लेकर 'लट्' लकार का किया गया है। अतः उसका अर्थ 'धारण करें' न होकर, 'धारण करते हैं' यह है। उसी प्रकार, **पूषाः** = श्रीसूर्यनारायण, **स्वस्ति दधातु** = शांभव लिंग धारण करते हैं। **विश्वेदेवाः**[१] **स्वस्ति दधातु** = विश्वेदेव शांभव लिंग धारण करते हैं। यहां पर **'विश्वेदेवा'** के साथ 'दधतु'

---

१. 'स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः' इस प्रकार इस मंत्र का पाठ दृष्टिगोचर होता है। ऐसी स्थिति में विश्वं वेत्तीति 'विश्ववेदाः' (सब कुछ जानने वाला) अथवा 'विश्वानि सर्वाणि वेदांसि ज्ञानानि धनानि वा यस्य तादृशः' यह सायणाचार्यसम्मत अर्थ लेना चाहिए। इसका अर्थ होगा— 'समस्त ज्ञानसम्पन्न अथवा समस्त धनसम्पन्न'। यह 'पूषा' का विशेषण होगा और ऐसी स्थिति में वचनपरिवर्तन (बहुवचन) करने की आवश्यकता ही नहीं होगी—अनुवादक।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वचनादिव्यत्ययश्छान्दसः । **तार्क्ष्यः** =गरुडः, अरिष्टनेमिः=शुभप्रापको विष्णुः, **रिष्टं क्षेमाशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाशुभे** इत्यमरः । तथा **बृहस्पतिः** =देवगुरुः, स्वस्ति दधातु । तेषां सर्वेषामिन्द्रादिदेवा-नामप्यस्माकमिव मुक्त्यर्थं परशिवेष्टलिङ्गधारणसद्भावे किमु वक्तव्यमन्येषामिति भावः ।

''अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः'' ।
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ।।''

इत्यादिश्रुतिषु वेदपुरुषाणां लिङ्गधारणं श्रूयते । मन्त्रस्यास्योपबृंहणवाक्यानि **लैङ्गे** भगवता **बादरायणेन** निर्दिष्टानि—

भद्रं परशिवं भक्त्या शृणुयाम सुरर्षभाः ।
भद्रं नेत्रैः प्रपश्यामो लिङ्गरूपं सदाशिवम् ।।

इस प्रकार बहुवचन का प्रयोग विवक्षित है। एकवचन का प्रयोग वैदिक है। **तार्क्ष्यः** = पक्षिराज गरुड, और **'अरिष्टनेमिः'** = शुभ प्रदान करने वाले विष्णु (नः = हमारे समान) **स्वस्ति दधातु** = शांभव लिंग धारण करते हैं।

रिष्टं क्षेमाऽशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाशुभे इस अमरकोष के वचनानुसार 'अरिष्ट' शब्द के 'शुभ-अशुभ' दोनों अर्थ हैं। यहां उसका अर्थ शुभ लिया गया है। **'तथा बृहस्पतिः'** = उसी प्रकार देवताओं के गुरु आचार्य बृहस्पति, **'स्वस्ति दधातु'** = शांभव लिंग धारण करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मोक्षप्राप्ति के लिए हम जैसे वेदपुरुष परशिवस्वरूप इष्टलिंग धारण करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रादि देवता भी उसे धारण करते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य जन के विषय में पृथक् कहने की आवश्यकता ही नहीं है, उन्हें अवश्य लिंगधारण करना चाहिए। इस प्रकार भगवती वेदमाता अल्पज्ञों को भी लिंगधारण की प्रेरणा दे रही है। **अयं मे हस्तो भगवान्, या ते रुद्र शिवा तनूः** इत्यादि श्रुतिवाक्यों में वेदपुरुषों द्वारा लिंगधारण का प्रतिपादन है। इसमें प्रथम मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—'इष्टलिंग से सुशोभित यह मेरा हाथ सौभाग्यशाली और अत्यंत सौभाग्यशाली है।' द्वितीय मंत्र का अर्थ इस प्रकार है — हे रुद्र ! जो यह भय से रहित पुण्य को फैलानेवाली इष्टलिंग के रूप में विराजमान मंगलमयी मूर्ति है, कल्याणकारिणी उस मूर्ति के द्वारा आप हमें प्रकाशित करें।

'लिंगपुराण' के उपबृंहण वाक्य : इस शान्तिमंत्र के उपबृंहण (विस्तार) करने-वाले पद्यात्मक वाक्यों का निर्देश भगवान् वादरायण **वेदव्यास** ने **लिङ्गपुराण** में **भद्रं परशिवं भक्त्या** से लेकर **लिङ्गं दधातु परमैश्वरम्** तक किया है। इनका अर्थ इस प्रकार

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

भद्रं यजामः सततं तुष्टुवामो यथाविधि ।
यावदायुः प्रवर्तेत तावद्देवहितं शिवम् ।।
तनूभिः सततं भक्त्या स्थापयामो यथाविधि ।
स्वस्त्याख्यं शाम्भवं लिङ्गमिन्द्रो वृद्धश्रवास्तथा ।।

पूषा च विश्वेदेवाश्च ताक्ष्र्यो विष्णुस्तथैव च ।
बृहस्पतिस्तथा लिङ्गं दधातु परमैश्वरम् ।। इति ।

है— "हे श्रेष्ठ देवताओं ! हम प्राणी भक्तिपूर्वक अपने श्रवणेन्द्रियों से कल्याणकारक पञ्चाक्षर शिव महामंत्र का श्रवण करते हैं और कामना करते हैं कि हमें बधिरता व्याप्त न करे, जो उसे सुनने में प्रतिबन्धक हो। उसीप्रकार दर्शनेन्द्रिय से कल्याणकारक इष्टलिंगस्वरूप शिव का साक्षात्कार करते हैं और कामना करते हैं कि अन्धता उसमें प्रतिबन्धक न हो। निरन्तर हमलोग विधिपूर्वक लिंगधारण करते हैं, उसकी स्तुति करते हैं और अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। जब तक हमारी आयु रहेगी तब तक हम जीव ब्रह्मदेव, विष्णु आदि देवताओं को भी कल्याणप्रद परम शिव को स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर द्वारा भक्तिपूर्वक धारण करेंगे। पुण्यश्लोक देवराज इन्द्र, पोषणकर्ता श्रीसूर्यनारायण, विश्वेदेव, पक्षिराज गरुड, भगवान् विष्णु और देवगुरु बृहस्पति भी 'स्वस्ति' नाम का परमैश्वर्यसम्पन्न शांभव लिंग धारण करते हैं।"

।।ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

प्रत्येक उपनिषद् के आदि-अन्त में शांतिपाठ का विधान है। **ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः** और **स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः** ये दो शान्तिमंत्र अथर्वण वेद के हैं। प्रत्येक शान्तिपाठ के अन्त में प्रणवपूर्वक तीन बार 'शान्तिः शान्तिः शान्तिः' इस प्रकार उच्चारण किया जाता है। **ईशावास्योपनिषद् के वीरशैवभाष्य में उमचिगि शंकरशास्त्री** इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—**'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिरिति त्रिरुच्चारस्त्रिमल-नाशार्थः, आध्यात्मिकादिदुःखत्रयनाशार्थो वेति'**। **सिद्धान्तशिखोपनिषद्** के 'शान्तिपाठ' की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं— **'शान्तिः शान्तिः शान्तिः' इति त्रिरुच्चारणं तत्त्वत्रयशमनार्थं त्रिमलविलयनार्थमिति बोध्यम्**। इसमें ओङ्कार ब्रह्म का वाचक है। जैसा कि श्रुतिवचन है—**ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म**। प्रणव के साथ तीन बार **'शान्तिः शान्तिः शान्तिः'** इस प्रकार उच्चारण आणव, कार्मिक और मायीम मल को दूर करने के लिए तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख का निवारण करने के लिए किया जाता है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अनुबन्ध-चतुष्टयम्

बलबदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनताज्ञानजन्यप्रवृत्तिप्रयोजकम् अनुबन्धचतुष्टयमस्या वक्तव्यमन्यथा प्रेक्षावत्प्रतिपित्साऽत्र न स्यात् । अत्र —

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे बिहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।

(मु. उ. ३.२.८)

ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो भवति इत्यादिना **प्रयोजनम्** । **विषयश्च--यत्तदद्रेश्यम्** इत्यादिना शक्तिविशिष्टाद्वैतपरशिवब्रह्मरूपं लिङ्गम् । **अधिकारी**—

अनुबन्ध-चतुष्टय

सन्दर्भ – प्रत्येक विद्या का अध्ययन करने के पूर्व उसका **अनुबन्धचतुष्टय** ज़ानना चाहिए । **अनुबध्नन्ति जिज्ञासून् इति अनुबन्धाः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो जिज्ञासुओं को बांध रखे, उन्हें अनुबन्ध कहते हैं । इस विषय में ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री लिखते हैं— **बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनताज्ञानजन्यप्रवृत्तिप्रयोजकम् अनुबन्धचतुष्टयम् अस्या वक्तव्यम्, अन्यथा प्रेक्षावत्प्रतिपित्साऽत्र न स्यात्** । इसमें प्रथम 'अनुबन्धचतुष्टय' को परिभाषित करते हुए शास्त्रीजी कहते हैं कि जो प्रबल अनिष्ट के बन्धन से रहित होकर इष्टसाधनता ज्ञान से उत्पन्न प्रवृत्ति का प्रयोजक होता है, उसे 'अनुबन्ध' कहते हैं । वे चार हैं— १. विषय, २. प्रयोजन, ३. सम्बन्ध, और ४. अधिकारी । उनका निर्वचन सर्वप्रथम करना चाहिए । अन्यथा जिज्ञासुओं को उनको जानने की इच्छा ही नहीं होगी । प्रस्तुत सन्दर्भ में ब्रह्मविद्या के अध्ययन का मुख्य **प्रयोजन है**— परम पुरुष का साक्षात्कार, उसके साथ सामरस्य और मोक्षप्राप्ति । अनेक श्रुतिवचन इसके प्रमाण हैं—**यथा नद्यः स्यन्दमानाः** इत्यादि, **ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति, गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो भवति** इत्यादि । इनमें प्रथम श्रुतिवाक्य का अर्थ इस प्रकार है— 'जिस प्रकार नदियां प्रवाहित होकर अपने नाम और रूप का अस्तित्व मिटाकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता नामरूप से मुक्त होकर परात्पर परम पुरुष परम शिव का साक्षात्कार करता है । **ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति** का अर्थ है—'जो परम शिव का साक्षात्कार करता है, वह परमशिवस्वरूप हो जाता है । **गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो भवति** — इसका अर्थ है : 'रहस्य- ग्रन्थियों के भेदन से परमशिव के साथ सामरस्य स्थापित करते हुए जीव मोक्ष प्राप्त करता है । इसका **प्रयोजन** है शक्तिविशिष्टाद्वैत (वीरशैव दर्शन) सम्मत परब्रह्मस्वरूप लिङ्गमय परमशिव । उस परमशिव के साक्षात्कार का वही **अधिकारी** होता है, जो शिरोव्रतस्वरूप लिङ्गधारण के महाव्रत की शिवदीक्षा से दीक्षित हो । इसमें यह श्रुतिवचन प्रमाण है—**तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्** (जो विधिपूर्वक शिरोव्रत स्वीकार करें, उन्हें ही इस

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् इत्यनेन शिरोव्रतरूपलिङ्गधारण-महाव्रतात्मक-शिवदीक्षासम्पन्नः । **सम्बन्धस्तु**— शास्त्रविषययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः। इत्यनुबन्धचतुष्टयं ज्ञेयम्।

ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय-प्रवर्तक-प्रवर्तन-हेतुः

ब्रह्मादीनां ब्रह्मविद्यासंप्रदायप्रवर्तकानामादौ पारम्पर्यप्रदर्शनं च शिरोव्रतस्य लिङ्गधारणात्मकस्योत्कर्षार्थम् । पूर्वेषां ब्रह्मादीनामपि शिरोव्रतरूपलिङ्गधारणमहाव्रताभावे ब्रह्मविद्याध्यापनाध्ययनश्रवणादौ नाधिकारः, किमु वक्तव्यमन्येषामनधिकार इति ज्ञात्वा सर्वेऽपि तत्र प्रवर्तेरन्नित्याशयेन भगवती श्रुतिस्तत्सम्प्रदायं दर्शयति । ज्ञानसमुच्चित-पतिकर्मान्यतमलिङ्गधारणस्यापि मोक्षफलकत्वग्राहकाऽन्वयव्यतिरेकयोरत्रैव **नायमात्मा प्रवचनेन**

ब्रह्मविद्या का उपदेश देना चाहिए ।) यतः ब्रह्मविद्या परमशिव का प्रतिपादन करती है, और परमशिव उसका प्रतिपाद्य विषय है, अतः ब्रह्मविद्या (शास्त्र) और परमशिव (विषय) दोनों में परस्पर प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव सम्बन्ध है । संक्षेप में सामरस्य विद्या के द्वारा परमशिव स्वरूप परब्रह्म के साथ अभेद सम्बन्ध स्थापित कर मोक्षप्राप्ति इसका **प्रयोजन** है; परब्रह्मस्वरूप लिङ्गमय परमशिव उसका **विषय** है; लिंगधारणदीक्षा से सम्पन्न वीरशैव उसका **अधिकारी** है और शास्त्र तथा विषय में प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव **सम्बन्ध** है । इस प्रकार संक्षेप में इसका अनुबन्धचतुष्टय समझना चाहिए ।

ब्रह्मविद्यासंप्रदाय का प्रवर्तन क्यों?

सर्वप्रथम ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय प्रवर्तक ब्रह्मदेव आदि आचार्यों की परम्परा का वर्णन लिंगधारण से अभिन्न 'शिरोव्रत' का उत्कर्ष सूचित करने के लिए है । क्योंकि 'शिरोव्रत-स्वरूप लिंगधारण महाव्रत के बिना ब्रह्मदेव आदि पूर्ववर्ती देवताओं को भी न तो ब्रह्मविद्या के श्रवण का अधिकार है और न उसके अध्ययन-अध्यापन का । ऐसी स्थिति में यदि दूसरों को इसका अधिकार ही नहीं है तो इसके विषय में क्या कहा जाय । इस आशय से भगवती वेदमाता सभी सर्वसाधारण वीरशैव उस ओर प्रवृत्त हों इस लिए ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय का प्रतिपादन कर रही है । यद्यपि सामान्य रूप से ज्ञान और कर्म में परस्पर विरोध होता है, तथापि ज्ञान एवं पतिकर्म में अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध है । पतिकर्मों में अन्यतम है लिंगधारण । जहां परमशिवस्वरूप ब्रह्मज्ञान होता है ऐसा लिंगधारण ही मोक्ष का फल प्रदान करता है, ज्ञान का अभाव नहीं । इस प्रकार ज्ञानसहकृत लिङ्गधारण का, जो पतिकर्मों में अन्यतम है, परस्पर अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध है । इसको आगे चलकर **नायमात्मा प्रवचनेन, नैतदचीर्णव्रतोऽधीते, ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति** आदि मन्त्रों से स्पष्ट किया जायगा । **एतच्छ्रेयोऽभिनन्दन्ति मूढा** इत्यादि मन्त्रों से पशुकर्मों का तिरस्कार आगे चलकर

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

(३.२.३), **नैतदचीर्णव्रतोऽधीते** (३.२.११), **ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति** (३.२.९) इत्यादिना वक्ष्यमाणत्वात्, **एतच्छ्रेयोऽभिनन्दन्ति मूढाः** (१.२.७) इत्यादिना पशुकर्मणां तिरस्कृतत्वान्न समुच्चयघटकत्वं पशुकर्मणामित्यवधेयम्। अतः पतिकर्मोत्कर्षार्थं ब्रह्मविद्यासम्प्रदायप्रदर्शनमिति निर्णीयते, न तु ब्रह्मविद्यायामध्येतृप्रवृत्त्यर्थं ब्रह्मविद्यास्तुत्यर्थं वा, अनुबन्धचतुष्टयेनैव तत्प्रवृत्तिसम्भवात्, तस्य तत्प्रवर्तकत्वस्य सर्वैरभ्युपगमात्। ब्रह्मविद्यास्तुत्या च सादरमध्येतृप्रवृत्तिरेव खलु प्रयोजनम्, तस्य अनुबन्धचतुष्टयेनैव निर्वाहे ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तॄणां पारम्पर्यप्रदर्शनस्य वैयर्थ्यात्, विद्यास्तुतिं विनापि ब्रह्मविद्यायामनुबन्धचतुष्टयेन प्रवृत्तिसम्भवात्। ब्रह्मादिशौनकान्तानां शिरोव्रतित्वं च

किया गया है, क्योंकि **ज्ञान एवं पशुकर्म**[1] एक साथ नहीं रह सकते यह समझना चाहिए। इसलिए पतिकर्मों की विशेषता प्रतिपादित करने के लिए ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय को यहाँ प्रदर्शित किया गया है यह निश्चित है। अध्येता ब्रह्मविद्या की ओर प्रवृत्त हों इस दृष्टि से अथवा ब्रह्मविद्या की स्तुति के लिए सम्प्रदाय को प्रदर्शित किया गया है ऐसा कुछ आचार्य समझते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। क्योंकि अनुबन्धचतुष्टय का ज्ञान होने पर ब्रह्मविद्या की ओर प्रवृत्ति होती है, अनुबन्ध- चतुष्टय ही ब्रह्मविद्या का प्रवर्तक है यह सभी जानते हैं। ब्रह्मविद्या की स्तुति के द्वारा आदरपूर्वक अध्येताओं की प्रवृत्ति स्वयं में प्रयोजन है, जो अन्यतम अनुबन्ध है, अनुबन्धचतुष्टय के प्रतिपादन से ही काम चलने पर उसका प्रतिपादन व्यर्थ माना जायगा। क्योंकि बिना उसकी स्तुति के ही केवल अनुबन्धचतुष्टय द्वारा भी उसकी प्रवृत्ति सम्भव है। अतः **शिरोव्रत** की विशेषता बनाने के लिए सर्वप्रथम संप्रदाय का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्मदेव से लेकर महर्षि शौनक तक सभी आचार्य शिरोव्रती थे अतएव ब्रह्मविद्या के अधिकारी थे। इस बात में यह श्रुतिवचन प्रमाण है—**तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्**। इसका सविस्तार प्रतिपादन आगे चलकर शिरोव्रत की व्याख्या के अवसर पर किया जायगा।

---

१. **पशुकर्म**— जीव शुद्ध शिव का अंश है। वह कर्मानुसार शरीर का आश्रय लेकर ही भोग भोगता है—**भोगायतनं शरीरम्** – योगसूत्र। उसके तीन शरीर हैं— स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर। उसमें आणव, मायीय और कार्म तीन प्रकार के 'मल' रहते हैं। यहां 'मल' का तात्पर्य अज्ञान से है, जो बन्धनकारक होने के कारण 'पाश' कहलाते हैं। उस त्रिविध मल से घिरा हुआ जीव **पशु** अथवा **संसारी** कहलाता है। जैसा कि शिवसूत्र का वचन है—**मलावृतः संसारी**। कर्मबन्धन में पड़ने वाले ऐसे **पशु** अथवा **संसारी** जीव के कर्मों का ज्ञान से पूर्णतया विरोध रहता है अतएव **एतच्छ्रेयोऽभिनन्दन्ति मूढाः** इन मन्त्रों से 'पशुकर्म' का तिरस्कार किया गया है। 'पतिकर्म' पशुकर्मों से भिन्न हैं, जो ज्ञानसमुच्चित हो सकते हैं, ज्ञान के साथ उनका विरोध नहीं है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मविद्याधिकारित्वप्रकाशकेन तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् (३. २. १०) इत्यनेनैवार्थात् सिद्धं भवति । एतच्च विस्तरतः शिरोव्रतव्याख्याने वक्ष्यामः ।

अथ प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः

लिङ्गधारणात्मकशाम्भवदीक्षासम्पन्नब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृकथनरूपामाख्यायिकामाह—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।१।।

ब्रह्मेति । देवानां=विष्णवादीनाम्, **प्रथमः**=ज्येष्ठः, **ब्रह्मा** चतुर्मुखः, **सम्बभूव**=स्वपितुः परमेश्वरादुत्पन्नोऽभूत्, न तु स्वयमाविर्भूतः । लोके चैत्रमैत्रादीनामयं चैत्रः प्रथमः संबभूवेत्युक्ते चैत्रस्याजातत्वं केनापि ज्ञातुमशक्यत्वात् । चतुर्मुखस्य स्वयमाविर्भूतत्व- प्रयुक्तस्वातन्त्र्यप्रतिपादक-स्मृतेरप्रामाण्यं स्यादिति चेन्न; श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे श्रुतेरेव बलीयस्त्वात्, **यो ब्रह्माणं**

ब्रह्मविद्यासंप्रदाय की प्रवर्तकपरंपरा

अवतरण – ब्रह्मदेव आदि से लेकर महर्षि शौनक तक ब्रह्मविद्या-संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों की विशाल परंपरा थी, जो लिंगधारण से अभिन्न शांभवी दीक्षा से दीक्षित थे। उनकी आख्यायिका अग्रिम मन्त्रों में है ।

***मंत्रार्थ* – विष्णु आदि देवों में सबसे ज्येष्ठ बडे ब्रह्मदेव का जन्म अपने पिता परम शिव से हुआ । वे विश्व के सृष्टिकर्ता और त्रिभुवन के रक्षक थे । उन्होंने अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्व अथवा अथर्वन् को सभी विद्याओं की अधिष्ठानभूत ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया ।।१।।**

व्याख्या – पूज्यपाद आदि **शंकराचार्य** के अनुसार 'ब्रह्मदेव इंद्रादि देवों में गुणों में श्रेष्ठ और अग्रणी थे और स्वातंत्र्यशक्ति से वे स्वयं प्रगट हुए थे ।' इस अर्थ से भिन्न अर्थ का प्रतिपादन करते हुए **ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री** लिखते हैं—

ब्रह्मेति । चतुर्मुख ब्रह्मदेव विष्णु आदि देवों में ज्येष्ठ थे, जिनका जन्म परमपिता परम शिव से हुआ । वे स्वयं प्रगट नहीं हुए । संसार में 'चैत्र, मैत्र आदि में यह चैत्र पहिले हुआ' ऐसा कहने पर कोई यह नहीं कह सकता कि 'चैत्र का जन्म ही नहीं हुआ ।' आचार्य शंकर इसमें स्मृतिवचन को प्रमाण मानते हैं—**योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यः** इत्यादि । ब्रह्मदेव के स्वयं प्राकट्य में स्वातंत्र्यशक्ति को कारण बताने वाली स्मृति को अप्रामाणिक मानना

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वे. ६.१८), **यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद् विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं** (म. ना. अनु. १०) इत्यादिश्रुतेः । **हरदत्ताचार्योऽप्याह— एषा महोपनिषदाह 'हिरण्यगर्भं जातं तदेव भगवन् प्रथमं सुराणाम्** इति। किञ्च, **विश्वस्य** चराचरात्मकस्य जगतः **कर्ता** = स्रष्टा। **भुवनस्य** = जगतः **गोप्ता** = पालयिता । चतुर्मुखस्य पालयितृत्वं स्तुत्यर्थमुक्तमिति मन्तव्यम् । उक्तं च **क्रियासारे** —

> **यदा तमस्तदा देवोऽध्यास्ते च परमेश्वरः ।**
> **चकार दीक्षां तेषां च वीरशैवागमाच्छिवः ।।**
>
> **तदाप्रभृति विष्ण्वाद्याः शिवस्य परमात्मनः ।**
> **आज्ञया शक्तिमन्तश्च लोकेषु ख्यातिमाप्नुयुः ।।**
>
> **यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरिञ्चिः पालको हरिः ।**
> **संहर्ता कालरुद्राख्यः शिवः साम्बः सनातनः ।**
> **घृतरीतिघनीभूतः सच्चिदानन्दलक्षणः ।।** इति।

क्या उचित होगा? इस शंका के विषय में ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री का मत है कि 'ऐसा नहीं है। क्योंकि श्रुति और स्मृतिवाक्यों में परस्पर विरोध दृष्टिगोचर होने पर श्रुतिवचन ही प्रबल होते हैं। इसमें अग्रिम श्रुतिवचन प्रमाण हैं—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वे. ६.१८)[1] । **यो देवानां प्रथमं परस्ताद् विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्**[2] (म. ना. अनु. १०)।

हरदत्ताचार्य का भी कथन है—**महोपनिषद्** ने भी कहा है: 'हिरण्यगर्भ (ब्रह्मदेव) उत्पन्न हुए, हे भगवन्! वे ही देवों में प्रथम थे।'

वे ब्रह्मदेव 'विश्व' अर्थात् चराचर जगत् के सृष्टिकर्ता और भुवन (संसार) के पालनकर्ता हैं। चतुर्मुख ब्रह्मदेव का पालनकर्तृत्व उनकी स्तुति के लिए प्रतिपादित है। **क्रियासार** में इसका समर्थन इस प्रकार है— **यदा तमः** इत्यादि। 'जिस समय चारों ओर अंधेरा या अज्ञान था, उस समय एकमात्र परम शिव ही द्युतिमान् होकर विराजमान थे। शिव ने वीरशैवागम से उनकी दीक्षा सम्पन्न की। परमात्मा शिव की आज्ञा से ही वे समस्त भुवनों

---

१. जिस परमशिव ने सर्वप्रथम ब्रह्मदेव को जन्म दिया और उसे वेदों का प्रथमोपदेश दिया।

२. रुद्र परमशिव विश्व में श्रेष्ठतम मंत्रद्रष्टा महर्षि हैं, जिन्होंने विष्णु आदि देवों में सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ (ब्रह्मदेव) को अपने सम्मुख आविर्भूत होते हुए देखा।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उक्तं च सिद्धान्तशिखामणौ (२.१४-१५) —

जगत् सिसृक्षुः प्रथमं ब्रह्माणं सर्वदेहिनाम् ।
कर्तारं सर्वलोकानां विदधे विश्वनायकः ।।
तस्मै प्रथमपुत्राय शङ्करः शक्तिमान् विभुः ।
सर्वज्ञः सकला विद्याः सानुग्रहमुपादिशत् ।। इति।

ननु—**नारायणाद् ब्रह्मा जायते नारायणाद् रुद्रो जायते** (ना. उ. १.१) इत्यादि-श्रुतेर्नारायणादेव चतुर्मुखोऽभवदिति चेन्न; **ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्, सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते** (अथर्वशिखा—१) इत्यथर्वशिखावाक्याच्छिवस्यैव सर्वकारणत्वं स्पष्टं ज्ञायते । विष्णोरुत्पत्तिर् ऋग्वेदादिषु श्रूयते **विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातः** (ऋ. ७.५.२९) । इति,

---

में बलशाली होकर प्रसिद्ध हुए, जिनकी आज्ञा से ब्रह्मदेव सृष्टिकर्ता, श्रीहरि पालक और माता के साथ विराजमान कालरुद्र नामक शिव जगत् के संहारक हैं । सनातन परम शिव घृतकाठिन्यन्याय से सच्चिदानन्दस्वरूप में सदा विराजते हैं ।

'सिद्धान्तशिखामणि' में उनका वर्णन इस प्रकार है— 'विश्व के नायक परम शिव ने सृष्टि की इच्छा से सभी लोकों की रचना के पूर्व सभी प्राणियों में प्रथम ब्रह्मदेव को जन्म दिया । सर्वव्यापक शक्तिसम्पन्न सर्वज्ञ कल्याणकारी परम शिव ने अपने प्रथम पुत्र ब्रह्मदेव को कृपापूर्वक सभी विद्याओं का उपदेश दिया ।'

नारायणाद् ब्रह्मा जायते नारायणाद् रुद्रो जायते (ना. उ. १.१) (नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होता है और नारायण से ही रुद्र उत्पन्न होता है) इन **नारायणोपनिषद्** के वचनानुसार 'चतुर्मुख ब्रह्मा का प्रादुर्भाव तो विष्णु से हुआ है' इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि **ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्, सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते** (अथर्वशिखा-१) इस श्रुतिवचन के अनुसार परमशिव को ही स्पष्टरूप से सृष्टि का कारण कहा गया है । इस श्रुतिवाक्य का अर्थ है— 'भगवान् परम शिव का सम्यक् रूप से ध्यान करना चाहिए, उन्हीं से इस समस्त जगत् की और ब्रह्मदेव, विष्णु, रुद्र और इन्द्र की उत्पत्ति हुई । ऋग्वेद आदि में विष्णु की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार का श्रुतिवचन हैं—**विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातः** (ऋ. ७.५.२९) (परम शिव से इस सर्वज्ञ विष्णु की उत्पत्ति इस प्रकार हुई ।) **सोमः पवते जनिता मतीनाम्** (ऋ. ७.४.६) इत्यादि । इस श्रुतिवचन का अर्थ **काशीखण्ड** में **मतीनां द्यावापृथिव्योः** इत्यादि श्लोक द्वारा उपबृंहित है । इन दोनों का अर्थ एक ही है, जो इस प्रकार है— 'भगवान् परम शिव सद्बुद्धि, द्यावा-पृथिवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु के साक्षात् जनक हैं । भगवान् शिव का आविर्भाव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोऽत विष्णोः ।।

(ऋ.७.४.६)

उक्तश्चैतत्श्रुत्यर्थः **काशीखण्डे—**

मतीनां द्यावापृथिव्योर्वह्नेः सूर्यस्य वज्रिणः ।
साक्षादपि च विष्णोर्वै सोमो जनयितेश्वरः ।। इति।

अत्र अजातपरमेश्वरात् चतुर्मुखस्य जननं परित्यज्य जातविष्णोर्जनिमत्वस्य वक्तव्यत्वे मानाभावात्, नारायणाद् ब्रह्मा इति वाक्यस्य अवान्तरसृष्टिपरत्वमिति बोध्यम्। तदुक्तं **शैवे वायवीयसंहितायाम्—**

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षान्महेश्वरात् ।
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ।।
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु ।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे पुनः ।।
तथाप्यन्योन्यमात्सर्यादन्योन्यातिशयार्थिनः ।
तपसा तोषयित्वा स्वं पितरं चन्द्रशेखरम् ।।
लब्ध्वा सर्वात्मता तस्य प्रसादात् परमेष्ठिनः ।
ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत् ।।
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः ।
विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्माणमसृजत् पुनः ।
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः ।।

(शि. वा. सं., पू. भा. ११ अ.) इति ।

स्वातन्त्र्य-शक्ति से हुआ है, उनमें चतुर्मुख ब्रह्मदेव का जन्म हुआ है । विष्णु से ब्रह्मदेव की उत्पत्ति के विषय में कोई प्रमाण नहीं है । महानारायणोपनिषद् में उक्त **नारायणाद् ब्रह्मा जायते** इत्यादि पूर्वोक्त वचनों का तात्पर्य अवान्तरसृष्टि से है, जिसका प्रमाण शिवप्रोक्त **वायवीयसंहिता** के **त्रयस्ते कारणात्मानः** से लेकर **ब्रह्माणं च पुनर्भवः** तक (शि. वा. सं. पू. भा. ११अ.) के श्लोक हैं । इनका अर्थ इस प्रकार है—

"ये तीनों देव कारणस्वरूप हैं और साक्षात् महेश्वर शिव से उत्पन्न हुए हैं । ये चराचर स्थावर-जंगम-स्वरूप जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और नाश के हेतु हैं । परम पिता ने पहिले ही तीनों को भी तीन कामों में नियन्त्रित किया है— ब्रह्मदेव को सृष्टिकार्य में श्रीहरि को

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

किञ्च, नारायणाद्युपनिषत्सु मूर्तित्रयातीतत्वेन नारायणस्य व्यपदेशाभावात्, **प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः शिवोऽद्वैतः** (१.७) इति माण्डूक्योपनिषद्वाक्यात् शिवस्य मूर्तित्रयातीतत्वस्यावगमात् तस्यैव परब्रह्मत्वम् । **नारायणाद् रुद्रो जायते** इत्यादिषु रुद्रोत्पत्तिः कालरुद्रपरेति वक्तव्यम् । अन्यथा **अज्ञात इत्येव कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते** (४. २१) इत्यादिश्वेताश्वतरश्रुतिविरोधः स्यात् । न तु विष्णोरुत्पत्तिरवतारपरा, **विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जात** इत्यादिपूर्वोक्तश्रुतिविरोधात् । **एको ह वै नारायण आसीत्** (महो. १.१) इति श्रुतेः **रोहितो लोहितादासीत् शक्तेरासीत् पराशर** इत्यादिवदुत्पत्तिसत्तापरत्वमेव । परमेश्वरादेव चतुर्मुखः विष्णुश्च सम्बभूवेति युक्तम् । **सः** = चतुर्मुखः ।

रक्षणकार्य में और रुद्र को संहारकार्य में लगाया गया । तथापि ये तीनों परस्पर ईर्ष्या रखते थे एवं परस्पर एक दूसरे से आगे बढना चाहते थे । अतः उन्होंने अपने परम पिता परम शिव चन्द्रशेखर को तपश्चर्या द्वारा प्रसन्न करते हुए परम हृदय स्थान में विराजमान परमशिव की कृपा से सभी में आत्मभाव प्राप्त किया । पुराकल्प में रुद्र ने नारायण की सृष्टि की । पुनश्च अन्य कल्प में ब्रह्मदेव ने रुद्र एवं विष्णु की रचना की । संसारस्वरूप भगवान् विष्णु ने रुद्र एवं ब्रह्मदेव की सृष्टि की । पुनश्च ब्रह्मदेव ने नारायण की और शिव ने ब्रह्मदेव की सृष्टि की ।''

यतः **नारायण** आदि उपनिषदों में नारायण को मूर्तित्रय से परे नहीं कहा गया है । **प्रपञ्चोपशमं शान्तम्** (१.७) इत्यादि माण्डूक्योपनिषद् के वाक्य से मूर्तित्रय से परे शिव का ही बोध होता है । अतः वही परब्रह्म है । संसार का विलय जिसमें होता है, ऐसे शमप्रधान शिव को द्वैत से अभिन्न चतुर्थ ब्रह्म माना जाता है । उसी को परमात्मा और द्वय से अभिन्न शिव समझना चाहिए । **नारायणाद् रुद्रो जायते** (ना. उ. १.१) इत्यादि उपनिषद्-मंत्रवाक्यों में 'रुद्र के जन्म का तात्पर्य कालरुद्र के जन्म से है' ऐसा कहना चाहिए । अन्यथा **अजात इत्येव कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते** इत्यादि **श्वेताश्वतर उपनिषद्** (४.२१) मंत्र केसाथ उसका विरोध होगा । विष्णु की उत्पत्ति का अर्थ उसका अवतरण न होकर उसका जन्म है । ऐसा अर्थ न करने पर **विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातः** इस पूर्वोक्त श्रुतिवचन का विरोध होगा । **एको ह वै नारायण आसीत्** (महो. १.१) (एक, अद्वितीय नारायण थे) इस श्रुतिवाक्य में 'आसीत्' का अर्थ जन्म के बाद की सत्ता कहना चाहिए।

जिस प्रकार **रोहितो लोहितादासीत् शक्तेरासीत् पराशरः** (लोहित से रोहित हुआ और शक्ति से पराशर) इस वाक्य में 'आसीत्' का अर्थ 'जन्मजात सत्ता' है । 'परम शिव से ही चतुर्मुख ब्रह्मदेव और नारायण का जन्म हुआ' यह अर्थ युक्तसंगत है । **सः** = परमेश्वर परम शिव से उत्पन्न उस चतुर्मुख ब्रह्मा ने, सभी विद्याओं की अधिष्ठानस्वरूपा 'ब्रह्मविद्या' (वेदविद्या) का प्रथमोपदेश अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया । **वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मविद्याम् =वेदविद्याम् । **वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः इत्यमरः** । कीदृशीम्? **सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्** =सर्वविद्याधिष्ठानभूताम्, **ज्येष्ठपुत्राय अथर्वाय प्राह** = उपदिदेश ॥१॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽ-
थर्वा तां पुरोवाचाऽङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह
भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ।। २।।

अथर्वण इति । **ब्रह्मा** = चतुर्मुखः, **याम्** = ब्रह्मविद्याम्, पूर्वगुरोः शिवादधिगतां वेदविद्याम् । उक्तं **चादित्यपुराणे**—

आदिसर्गे महादेवो ब्रह्माणमसृजद् विभुः ।
दक्षिणाङ्गाद् विरूपाक्षः सृष्ट्यर्थं लीलया परः ।
तस्मै वेदान् पुराणानि दत्तवानग्रजन्मने ।। इति ।

अथर्वणे = अथर्वनामकाय पुत्राय शिष्याय वा, **प्रवदेत** = प्रोवाच । **अथर्वा** = अथर्वनामा ऋषिः, **ताम्** = स्वगुरोश्चतुर्मुखादागतां ब्रह्मविद्याम्, **पुरा** = पूर्वम्, **अङ्गिरे** =

विप्रः प्रजापतिः इस **अमरकोष** के वचन के अनुसार 'ब्रह्म' का अन्यतम अर्थ वेद भी है ॥१॥

***मंत्रार्थ*– ब्रह्मा ने अथर्वा को जिस विद्या का प्रथमोपदेश दिया, प्रथम उस ब्रह्मविद्या का उपदेश अथर्वा ने महर्षि अंगी को दिया । महर्षि अंगी ने उसका उपदेश ऋषि भरद्वाज के पुत्र सत्यवाह को दिया ।· भरद्वाजपुत्र सत्यवाह ने कार्यकारणस्वरूपा उस ब्रह्मविद्या का उपदेश अपने पुत्र अङ्गिरस् को दिया ।। २।।**

***व्याख्या*– अथर्वण** इति । चतुर्मुख ब्रह्मदेव ने अपने पूर्वगुरु शिव से ब्रह्मविद्या (वेदविद्या) का अर्जन किया था । जैसा कि **आदित्यपुराण** का वचन है— **आदिसर्गे** इत्यादि । 'प्रथम बार सृष्टि करते समय सर्वव्यापक महादेव परम शिव ने आगे की सृष्टिपरंपरा चलाने के लिए अपने दक्षिण अंग से ब्रह्मदेव को लीलापूर्वक जन्म दिया । वे त्रिनेत्र थे । उन्होंने अपने तृतीयनेत्र (ज्ञान-दृष्टि से) सर्वप्रथम जन्म लेने वाले ब्रह्देव को समस्त वेदों और पुराण-उपपुराणों का उपदेश दिया ।'

ब्रह्मदेव ने अपने अथर्वा नामक पुत्र अथवा शिष्य को जिस ब्रह्मविद्या (वेदविद्या) का उपदेश दिया था, अथर्वा ने अपने गुरु चतुर्मुख ब्रह्मदेव द्वारा अर्जित उस ब्रह्मविद्या का उपदेश पहिले अङ्गिनामक ऋषि को दिया । अङ्गिऋषि ने उसका उपदेश भरद्वाज ऋषि के पुत्र

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अङ्गिर्नाम(म्ने) ऋषये, **उवाच** = उपदिदेश । **सः** = अङ्गिर्नामक ऋषिः, **भारद्वाजाय** = भरद्वाजपुत्राय, **सत्यवाहाय** = सत्यवाहनाम्ने, **प्राह** = प्रोक्तवान् । स च भारद्वाजः, **अङ्गिरसे** = अङ्गिरोनाम्ने स्वपुत्राय, **परावराम्** परा च सा अवरा च परावरा, ताम् = कार्यकारणरूपां ब्रह्मविद्याम्, प्राहेत्यनुषङ्गः ।

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्,

शिव एव हि सर्वेषां गुरुराद्यः परात्परः ।
कालेन चाऽनवच्छेदात स पूर्वेषां गुरुः शिवः ।।

इति **योगसूत्र-क्रियासार**प्रामाण्यात् । ब्रह्मादिपूर्वेषामपि परशिव-गुरूपदिष्ट-वेदविद्यावत्त्वात् । अङ्गिरसा स्वगुरोः सकाशात् परापरब्रह्मविद्यायाः श्रुतित्वाभावे स्वशिष्यं शौनकं प्रत्यग्रे **द्वे विद्ये वेदितव्ये, इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चाऽपरा च** (१.१.४) इत्युपदेष्टुमशक्यत्वात् । तस्मात् 'परावराम्' इत्यस्य विशेषणोभयपदकर्मधारयसमासवत्सा-धुत्वम् । 'परस्मादवरेण प्राप्तां परावराम्' इति पराभिमतार्थस्त्वाख्यायिकयैव ज्ञायते, किं पुनरत्र क्लिष्टकल्पनप्रयासेन ?।।२।।

मुनि सत्यवाह को दिया । (आचार्य शङ्कर के अनुसार अङ्गिऋषि ने उसका उपदेश भरद्वाजगोत्रोत्पन्न ऋषिकुमार सत्यवाह को दिया ।) सत्यवाह ने उसका उपदेश अपने पुत्र अंगिरस को दिया ।

परावराम् — 'परा च सा अवराच परावरा ताम्' इस प्रकार समास मानकर इसका अर्थ कार्यकारणरूपा ब्रह्मविद्या करना चाहिए । क्योंकि ब्रह्मदेव आदि पूर्वाचार्य उस ब्रह्मविद्या से सम्पन्न थे, जिसका उपदेश परम शिव ने उन्हें दिया था । **स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात्** (शिव ही ब्रह्मदेव आदि पूर्वदेव एवं ऋषियों के भी परमगुरु हैं, क्योंकि वे काल से परिच्छिन्न (व्याप्त) नहीं है, कालातीत हैं ।) **योगसूत्र** का वचन इसमें प्रमाण है । इसी प्रकार **शिव एव हि सर्वेषाम्** इत्यादि **क्रियासार** का वचन भी इसमें प्रमाण है, जिसका अर्थ है— 'शिव ही सभी के परात्पर आद्य गुरु हैं, क्योंकि वे काल की सीमा से परे हैं ।' अङ्गिरस ऋषि ने इसी परावर विद्या को अपने गुरु से अर्जित किया था, यह पूर्वोक्त श्रुतिप्रमाण से सिद्ध है । ऐसा न मानने पर अग्रिम मंत्र में **द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चापरा च** (जैसा कि ब्रह्मवेत्ता कहते हैं: विद्या दो प्रकार की है— परा और अपरा) अपने गुरु महर्षि अङ्गिरस् द्वारा अर्जित ब्रह्मविद्या का इस प्रकार का उपदेश अपने शिष्य महर्षि शौनक को देना असम्भव है । अतः 'परावराम्' इसका अर्थ पूर्वोक्त विशेषणोभय समास के अनुसार 'कार्यकारण- रूपा' यही करना चाहिए । 'परस्मात् अवरेण प्राप्तां परावराम्' इस प्रकार समास करते हुए 'पूर्व पूर्व आचार्य से उत्तरोत्तर शिष्य द्वारा प्राप्त' इस प्रकार का अर्थ आचार्य शंकर ने किया है, जो आख्यायिका द्वारा ही ज्ञात होता है । फिर यहाँ इस प्रकार क्लिष्ट कल्पना क्यों की जाय ? ।।२।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शौनकेन कस्य ब्रह्मविद्या प्राप्तेत्याह—

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपपन्नः पप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ।।३।।

शौनक इति । **ह वै** निपातौ । **शौनकः** = शुनकस्य ऋषेरपत्यं पुमान् शौनक इति प्रसिद्धः । **महाशालः** = महान् अतिशयितः शालो गृहस्थाश्रमो यस्य सः, शिवगृहस्थाश्रमी शौनकः, घोरापारनिस्सारसंसारतापत्रयाऽनलदन्दह्यमानः सन् स्वदाहशमन-जलह्रदकल्पं गुरूपसदनं विना न मे शान्तिर्भविष्यतीति मत्वा, **विधिवत्** = शास्त्रीयनियममनतिक्रम्य, शास्त्रीयनियमस्तूक्तः—**रिक्तहस्तेन नोपेयाद् राजानं देवतां गुरुम्** इति । समिदाद्युपायनपाणिः सन्नित्यर्थः । **उपसन्नः** = अङ्गिरसः समीपं गतः सन् । **अङ्गिरसम्** = अङ्गिरोनामकं गुरुम्, **पप्रच्छ** = पृष्टवान् । परैस्तु 'महाशालः' इत्यस्य महागृहस्थ इति व्याख्यातम्। अत्र

महर्षि शौनक की जिज्ञासा

महर्षि शौनक ने किस के द्वारा ब्रह्मविद्या अर्जित की? महर्षि शौनक ने महर्षि अङ्गिरस से क्यों प्रश्न किया ? इन दो प्रश्नों का समाधान अग्रिम मंत्र में है—

मंत्रार्थ – शुनकपुत्र महर्षि शौनक शिवगृहस्थाश्रमी थे । वे शास्त्रीय रीति से महर्षि अंगिरस की सन्निधि में पहुँचे और प्रश्न किया– 'भगवन् ! ऐसा कौन सा एक विषय है, जिसका ज्ञान होने पर सभी विषयों का एक साथ ज्ञान होता है? ।।३।।

व्याख्या– शौनक इति । **'ह'** और **'वै'** ये दोनों निपात हैं । **शौनकः** = 'शुनकस्य ऋषेः अपत्यं पुमान् शौनकः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार शुनकपुत्र शौनक अपने पिता के नाम से विख्यात थे। **महाशालः** महान् (अतिशयितः) शालः (गृहस्थाश्रमः) यस्य सः) = शिवगृहस्थाश्रमी महर्षि शौनक भयंकर अपार निःसार संसार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इस त्रिविध दुःखों की अग्नि से बारबार संतप्त होकर यह सोचने लगे— 'जलाशय के समान गुरुकुल ही मेरे अपने दाह का शमन कर सकता है । उसके बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ।' यह सोचकर वे शास्त्रीय रीति का पालन करते हुए महर्षि अंगिरस् के आश्रम में पहुंचे । **विधिवत्** = शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन न करके । शास्त्रीय नियम इस प्रकार प्रतिपादित है— **रिक्तहस्तेन नोपेयाद् राजानं देवतां गुरुम्** । (राजप्रसाद, देवालय और गुरुकुल में उनके निकट खाली हाथ नहीं पहुंचना चाहिए ।) अत एव समिधा आदि उपायनों हाथ में लेकर महर्षि शौनक अपने गुरु अंगिरस् की सन्निधि में पहुंचे और उनसे प्रश्न किया ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

महत्त्वविशेषणस्य वैयर्थ्यं स्यात्। अस्मन्मते तु महच्छब्देन प्राकृताश्रमातिशयिततत्वबोधात् सार्थक्यं भवति। ननु बह्वन्नदानशालित्वेन प्राकृतगृहस्थाश्रमस्यापि महत्त्वविशेषणस्य सार्थक्यं भवतीति चेन्न; यथाशक्ति अन्नादिदानादेरेव गृहस्थाश्रमधर्मत्वात् प्राकृतगृहस्थाश्रमवैलक्षण्यबोधार्थमेव महच्छब्दो निर्दिष्ट इति बोध्यम्। नन्वयमङ्गिराः कः? वीरशैवश्चेद् अप्राकृतगृहस्थाश्रमिणः शिरोव्रतिनः, अत एव वीरशैवस्य शौनकस्योपसदनं सङ्गच्छतेऽन्यश्चेत् कथं सङ्गच्छते सम्प्रदायविरोधात्, इति चेन्न; तस्यापि शिरोव्रतित्वात्। तद्व्रतस्य लिङ्गधारणात्मकस्य ब्रह्मविद्याधिकारसम्पादकत्वात्। उक्तं च **क्रियासारे**—

अगस्त्यो जैमिनिश्चैव विश्वामित्रोऽथ काश्यपः।
भरद्वाजोऽङ्गिरा अत्रिर्वसिष्ठो रोमहर्षणः॥
एते सर्वे महाभागा अतिवर्णाश्रमे रताः।
वीरशैवाः समाख्याता जीवन्मुक्ता न संशयः॥ इति।

जगद्गुरु आदिशंकराचार्य **महाशालः** इसका अर्थ 'महागृहस्थ' करते हैं। ऐसी स्थिति में 'शाल' का 'महान्' यह विशेषण व्यर्थ होगा। हमारे मत में इसका अर्थ 'साधारण गृहास्थाश्रम से विशिष्ट' और 'शाल' शब्द का अर्थ 'शिवगृहस्थाश्रम' करने पर 'महाशालः' पद में 'महत् ' शब्द सार्थक होगा। 'प्रचुर अन्नदानशीलता' साधारण गृहस्थाश्रम को महत्व प्रदान करती है, अतः साधारण गृहस्थाश्रम का भी महान् विशेषण सार्थक होगा ऐसा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यथाशक्ति अन्नदान आदि करना गृहस्थाश्रम धर्म ही है, यह कोई उसकी विशेषता सूचित नहीं करता। अतः साधारण गृहस्थाश्रम से विलक्षणता का बोध कराने के लिए ही 'महत्' विशेषण प्रयुक्त है, जो शिवगृहस्थाश्रम का हो सकता है, प्राकृत गृहस्थाश्रम का नहीं। साथ ही इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए कि महर्षि अंगिरा किस प्रकार के वीरशैव थे? प्राकृत गृहस्थाश्रम से विलक्षण शिवगृहस्थाश्रम के अनुयायी तो **शिरोव्रत** (लिंगधारण महाव्रत) को अंगीकार करते हैं। 'शुनकपुत्र शौनक वीरशैव थे, उनका मत गुरु की सन्निधि में जाना कैसे युक्तियुक्त है, जो वीरशैव नहीं, क्योंकि यह सम्प्रदायविरुद्ध होगा। 'इस प्रकार का प्रश्न करना भी ठीक नहीं, क्योंकि महर्षि अंगिरस् भी शिरोव्रती थे। शिरोव्रत लिंगधारण से अभिन्न होता है, और जो शिरोव्रती होता है, वही ब्रह्मविद्या का अधिकारी होता है। इसमें **अगस्त्यो जैमिनिश्चैव** इत्यादि **क्रियासार** के श्लोक प्रमाण हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है— 'अगस्त्य, जैमिनि, विश्वामित्र, काश्यप, भरद्वाज, अत्रि, वसिष्ठ और रोमहर्षण महर्षि ये सभी महाभाग सामान्य वर्णाश्रम धर्म से विलक्षण शिवगृहस्थाश्रम के अनुयायी थे और वीरशैव के रूप में प्रसिद्ध थे। वे जीवन्मुक्त थे, इसमें कोई संशय नहीं है।'

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अत्र ब्रह्मविद्यासम्प्रदायप्रवर्तकानां गार्हस्थ्यदर्शनात् शिवगृहस्थाश्रमधर्मसमुच्चितमपि ब्रह्मज्ञानं मोक्षसाधनमिति निश्चीयते। न च **भैक्षचर्यां चरन्तः संन्यासयोगाद्यतयः** (२. २. ६) इत्यादिवक्ष्यमाणवाक्येन ब्रह्मविद्याधिकारस्य संन्यासमात्रनिष्ठत्वेन प्रतीयमानत्वात् सम्प्रदायप्रर्वतकानां च गार्हस्थ्यस्याऽऽभासमात्रत्वान्न गृहस्थाश्रमधर्मसहकृतत्वं ब्रह्मज्ञानस्य भाव इति वाच्यम्; किन्नामाऽऽभासमात्रत्वम्— वस्तुतो गार्हस्थ्यभावो वा, गृहस्थवत् प्रतीयमानत्वं वा ? न प्रथमः, चतुर्मुखस्य पत्नीपरिग्रहाभावे **अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय** इत्यस्याऽप्रामाण्यापत्तेः । न द्वितीयः, गृहस्थवत् प्रतीयमानत्वस्य गृहस्थेऽपि वर्तमानत्वात् । तस्मात् **अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय** (१. १. १), **शौनको ह वै महाशालः** (१. १. ३) इति वाक्यस्वारस्यादप्राकृतगृहस्थाश्रमधर्मसमुच्चितमपि ब्रह्मज्ञानं मोक्षसाधनम्। किञ्च, केवलसंन्यासनिष्ठत्वे **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** (१. २. १२) इति वक्ष्यमाणमन्त्रविरोधात्, अस्य संन्यासविरुद्ध-समित्पाणित्व-प्रतिपादकत्वात्, गुरोरपि गृहस्थाश्रमित्वस्योपदेष्टृत्वात्, श्रोत्रियत्वोपदेशेन गुरोर्निषिद्धकर्म-त्यागस्य ब्रह्मनिष्ठत्वोपदेशेन वागद्वैतनिराकरणपूर्वक-शिवलिङ्गैकनिष्ठागरिष्ठत्वस्य चोक्तत्वात्,

---

इस प्रकार शिवगृहस्थाश्रमी महर्षि ब्रह्मविद्यासंप्रदाय के प्रवर्तक देखे गए हैं । इस प्रकार यह निश्चित है कि शिव-गृहस्थाश्रम धर्म के साथ होने वाला ब्रह्मज्ञान भी मोक्ष का साधन है । आचार्य शंकर ब्रह्मज्ञान (ब्रह्मविद्या) का अधिकार केवल संन्यासाश्रम धर्म के साथ जोड़ते हैं । इसके लिए वे **भैक्षचर्यां चरन्तः, संन्यासयोगाद् यतयः** इत्यादि अग्रिम मंत्रों को प्रमाण-वचन मानते हैं । संप्रदायप्रवर्तक आचार्यों का गृहस्थाश्रम उनकी दृष्टि में आभास-मात्र था, वे वास्तव में गृहस्थ नहीं थे । अतः गृहस्थाश्रम धर्म के साथ ब्रह्मज्ञान नहीं रह सकता ऐसा उनका मत था । इसका निराकरण करते हुए ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री कहते हैं— 'ऐसा चिन्तनीय है । केवल आभास का क्या तात्पर्य है ? १. गृहस्थाश्रम धर्म का अभाव अथवा २. गृहस्थ के समान आभासित होना । इन दोनों में इसका प्रथम अर्थ स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर चतुर्मुख ब्रह्मदेव के अविवाहित होने की स्थिति में **अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह** यह मंत्रभाग अप्रामाणिक होगा । साथ ही इसका द्वितीय अर्थ भी मान्य नहीं है । क्योंकि गृहस्थ के समान आभास गृहस्थ में भी दृष्टिगोचर होता है । **अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह** और **शौनको ह वै महाशालः** इन दोनों मंत्रभागों का विशिष्ट अर्थ है । यद्यपि साधारण गृहस्थाश्रम के साथ ब्रह्मज्ञान संभव नहीं है, तथापि उससे विलक्षण शिवगृहस्थाश्रम के साथ ब्रह्मज्ञान होता है और वह मोक्ष का साधन भी है । यदि ब्रह्मज्ञान को केवल संन्यासाश्रम के उपयुक्त मानें, तो **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाऽभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** इस अग्रिम मंत्रके साथ विरोध होगा, क्योंकि इस मंत्र में शिष्य के लिए 'समित्पाणिः' इस पद से गुरुकुल जाने के लिए समिधा आदि उपायन ले जाने का विधान है, जो संन्यासाश्रम के विरुद्ध है । उसी प्रकार श्रुति गुरु को भी

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अन्यत्र गृहस्थस्याऽपि जनकस्य ब्रह्मविद्याधिकारदर्शनात्, वारुणि-श्वेतकेतु-नाचिकेत-प्रभृतीनां ब्रह्मचारिणामपि विद्याधिकारस्य **तैत्तिरीयादिश्रुतिप्रसिद्धत्वान्न** संन्यासिनामेव ब्रह्मविद्याधिकारः, किन्तु अष्टावरण-पञ्चाचार-परायणानां सर्वेषां शिवाश्रमिणामप्यधिकारः । तथा च **श्वेताश्वतरोपनिषदि** उपसंहारे **ब्रह्मवित् श्वेताश्वतरोऽथ विद्वानत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच** इति, **कैवल्योपनिषदि— संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वा** इत्यादिना संन्यासविधानानन्तरमपि **अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य** इत्यादिना चाऽत्याश्रमस्थ-चतुर्विधशिवाश्रमिणामपि ब्रह्मविद्याधिकारप्रदर्शनात् ।

स्कान्दे सनत्कुमारसंहितायाम् —

अत्याश्रमोऽयं सर्वेषु चतुर्ष्वप्याश्रमेषु च ।
यः पशुः स पशुत्वं च व्रतेनाऽनेन सन्त्यजेत् ।।

गृहस्थाश्रमी, 'श्रोत्रिय' और 'ब्रह्मनिष्ठ' रहने का उपदेश दे रही है । गुरु को अग्निहोत्र लेने का उपदेश उसको निषिद्ध कर्मों के परित्याग का विधान करती है । उसी प्रकार उसे ब्रह्मनिष्ठा का उपदेश देकर 'वागद्वैत' का खण्डन करते हुए एक मात्र शिवलिङ्ग में श्रद्धा रखने को महत्त्व दिया गया है । अन्यत्र उसके उदाहरण भी दृष्टिगोचर होते हैं— गृहस्थाश्रमवासी जनक भी ब्रह्मविद्या के अधिकारी थे । **तैत्तिरीय संहिता** के अनुसार ब्रह्मचारी होने पर भी वारुणि, श्वेतकेतु, नचिकेता आदि को ब्रह्मविद्या का अधिकार प्राप्त था । अतः हम यह नहीं कह सकते कि केवल संन्यासियों को ही ब्रह्मविद्या का अधिकार प्राप्त है । किन्तु ऐसे सभी शिवाश्रमियों को ब्रह्मविद्या का अधिकार प्राप्त है, जो वीरशैव-धर्म-सम्मत **अष्टावरण**[1] और **पञ्चाचार**[2] का पालन करते हैं । इसमें अनेक श्रुतिवचन प्रमाण हैं । **श्वेताश्वतर उपनिषद्** के उपसंहार में **ब्रह्मवित् श्वेताश्वतरः** इत्यादि मंत्र में यह प्रतिपादित है कि ऋषि श्वेताश्वतर ब्रह्मवेत्ता थे, अनंतर उन्होंने अत्याश्रमियों (लिंगधारण करनेवाले वीरशैवों) को परम पावन उपदेश दिया । **कैवल्योपनिषद्** में **संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः** इत्यादि के द्वारा संन्यास-विधान के पश्चात् भी **अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुद्ध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य** इत्यादि मंत्रभाग के द्वारा अत्याश्रम (लिंगधारणरूप महाव्रत) का पालन करनेवाले वीरशैव को ब्रह्मविद्या का अधिकारी प्रतिपादित किया गया है, चाहे वह चारों आश्रमों में किसी भी आश्रम का वासी हो ।

जैसा कि **स्कन्दपुराण** की **सनत्कुमार** संहिता में प्रतिपादित है— 'सभी चारों आश्रमों में अत्याश्रम (लिंगधारण-व्रत) आवश्यक है । इस व्रत से 'पशु' अपने 'पशुधर्म'

---

१. **अष्टावरण**— १. गुरु, २. लिंग, ३. जंगम, ४. पादोदक, ५. प्रसाद, ६. भस्म, ७. रुद्राक्ष और ८. मंत्र ।

२. **पञ्चाचार**— १. लिंगाचार, २. सदाचार, ३. शिवाचार, ४. भृत्याचार और ५. गणाचार ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्युक्तत्वाद् अत्याश्रमव्रतित्वं चतुर्विधशिवाश्रमिणां सिद्धम्, तथैवाऽत्राऽपि यतिप्रकरणे संन्यासविधानानन्तरमुपसंहारे **तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत । शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्** (३.२.१०) इति शिरोव्रतस्य नियताधिकारिविशेषणत्वप्रतीतेः । **नैतदचीर्णव्रतोऽधीते** (३.२.११) इति शिरोव्रताभाववतामधिकारनिषेधात् संन्यासिनामपि ब्रह्मविद्याधिकारार्थं लिङ्गधारणात्मक-शिरोव्रतमावश्यकम् । तथा चात्र **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः** (३.२.३) इत्यादिना लिङ्गधारणात्मकशिरोव्रतस्य मोक्षफलकत्व-ग्राहकान्वयव्यतिरेकयोर्वक्ष्यमाणत्वात् शिवाश्रमविहितधर्मसमुच्चितमेव ब्रह्मज्ञानं मोक्षसाधनमिति सिद्धान्तः । उक्तं च **क्रियासारे**—

अत्याश्रमत्वं किन्नाम मोक्षमार्गोपयोगिता ।
सा च दृष्टा गृहस्थे च वामदेवे महात्मनि ।
गार्ग्यामपि स्त्रियां चैव सा यतो ब्रह्मचारिणी ।। इति ।

किमिति पृष्टवान् शौनक इत्यत आह— **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते** इति । 'भगव' इति छान्दसः । हे भगवन् शिवज्ञानमहोदधे, यद्यप्ययं भगवच्छब्दो निरुपम-निरतिशयैश्वर्यादि-षड्गुणसम्पन्ने महेश्वर एव वर्तते, तथापि क्षितिपत्यादिष्वादरातिशयप्रयुक्तभगवच्छब्द-

---

का परित्याग करे । इस प्रकार यह सिद्ध है कि चतुर्विध शिवाश्रमियों को 'अत्याश्रम' (लिंगधारण) व्रत रखना अनिवार्य है । उसी प्रकार (इस मुण्डकोपनिषद्' में भी यति प्रकरण में संन्यास-विधान करने के उपरान्त उपसंहार के समय **तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्** (३.२.१०) इस मंत्रभाग के द्वारा 'शिरोव्रत' की नियताधिकारिता', ब्रह्मविद्या का अधिकार प्राप्त करने के लिए अनिवार्यता निर्धारित है । साथ ही ऐसे लोगों के ब्रह्मविद्या के अधिकार का निषेध किया गया है, जिन्होंने लिंगधारण व्रत न लिया हो, चाहे वे संन्यासी ही क्यों न हों । **नैतदचीर्णव्रतोऽधीते** उसी प्रकार **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः** (३.२.३) इत्यादि अग्रिम मंत्र में लिंगधारणस्वरूप शिरोव्रत का मोक्षफलप्रदायकता के साथ अन्वय-व्यतिरेक संबंध प्रतिपादित है । अतः यह सिद्धान्त है कि शिवाश्रम में विहित धर्म के साथ होनेवाला ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष का साधन है । जैसा कि **क्रियासार** में प्रतिपादित है— **अत्याश्रमत्वम्** इत्यादि । 'अत्याश्रमधर्म किसे कहते है? मोक्षमार्ग में जो उपयोगी हो उसे अत्याश्रम धर्म कहते हैं । उसकी उपयोगिता सभी आश्रमों में वर्णित है । महात्मा वामदेव गृहस्थ थे । गार्गी स्त्री थी और ब्रह्मचारिणी थी, उन्होंने अत्याश्रम (लिंगधारण) व्रत का पालन कर मोक्षफल प्राप्त किया था ।

शौनक प्रश्न— महर्षि शौनक ने क्या प्रश्न किया था, उसका आकार **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते** इत्यादि उत्तरार्ध में वर्णित है । 'भगवः' यह वैदिक प्रयोग है । इसका अर्थ है शिवज्ञान का सागर और संबोधन में इसका प्रयोग किया गया है । यद्यपि 'भगवन्' इस

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

व्यवहारवदत्राप्यङ्गिरसि वीतरागे प्रज्ञावति भगवन्निति प्रयोगो बोध्यः । तदुक्तं **हरदत्ताचार्येण चतुर्वेदतात्पर्यसङ्ग्रहे**—

नैवेश्वरान्न यशसा महतो न वीरान्
न श्रीमतः क्षितिपतीनपि सार्वभौमान् ।
अन्यादृशानपि महेश्वर वीतरागान्
प्रज्ञावतो भगवतः प्रवदन्ति वृद्धाः ।। इति।

जगन्मिथ्यात्ववादनिरासः

यथा एकं हि वस्तु कार्यकारणात्मकं लोके दृष्टम्, मृद्-घटः स्वर्ण-कुण्डलमिति । तत्र स्वर्णत्वादिना सुवर्णादौ विज्ञाते सर्वं सुवर्णादिमयं कटककुण्डलादिकं विज्ञातं भवति, तथा 'कस्मिन्नु = कस्मिंश्चिद् वस्तुनि विज्ञाते सर्वमिदं कार्यजातं विज्ञातं भवति' इति प्रश्नाशयः । सर्वस्य कार्यजातस्य निमित्तोपादान-कारणभूतम् एकं वस्तु किमित्यर्थः, ऊर्णनाभिदृष्टान्तस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।

प्रकार का प्रयोग निरतिशय ऐश्वर्य आदि षड्गुणसम्पन्न परम शिव केलिए ही किया जाता है, तथापि जिस प्रकार आदरातिशय के लिए राजा के लिए इसका प्रयोग होता है, उसी प्रकार यहां पर भी वीतराग (विरक्त) प्रज्ञासम्पन्न महर्षि अंगिरा को 'भगवन्' इस प्रकार सादर संबोधित किया गया है । जैसा कि **हरदत्ताचार्य** ने अपने **चतुर्वेदतात्पर्यसंग्रह** में कहा है—

नैवेश्वरात् इत्यादि । ''वृद्ध लोग केवल ऐश्वर्यसंपन्न, अथवा केवल उज्ज्वल कीर्तिसंपन्न अथवा केवल शूर-वीर अथवा केवल सार्वभौम राजो को ही 'भगवत्' शब्द से संबोधित नहीं करते, अपितु उनसे भिन्न महैश्वर्य-विरक्त प्रज्ञासंपन्नों का भी इस शब्द से सादर स्मरण करते हैं ।''

जगन्मिथ्यात्ववाद का निराकरण

एक ही वस्तु कार्यकारणस्वरूप होती है, उसमें कार्य भी विद्यमान रहता है और कारण भी । उदाहरणार्थ संसार में हम मिट्टी का घड़ा और सोने का कुण्डल देखते हैं । घड़ा मिट्टी का बना हो, तो मिट्टी उसका उत्पादक कारण होती है, घड़ा उसका कार्य होता है । हम मिट्टी के एक घड़े को देखने के बाद मिट्टी की ही दूसरी चीज देखने से यह जान लेते हैं कि यह दूसरी वस्तु मिट्टी की है । क्योंकि जिस प्रकार मिट्टी घड़े का कारण होती है, उसी प्रकार दूसरी वस्तु का भी । उसी प्रकार सोने के कुण्डल को देखकर हम यह जान पाते हैं कि यह सोने का बना है, सोना उसका उत्पादक कारण है, कुण्डल कार्य । इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक वस्तु में कारण की भी सत्ता होती है और कार्य की भी । अतः शुनकपुत्र महर्षि शौनक जानते थे कि जगत् में कोई एक ऐसी वस्तु है, जो सबके

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अत्र केचित्— उपादानात् कार्यस्य पृथक् सत्त्वाभावाद् उपादाने ज्ञाते तत्कार्यं पृथङ्नास्तीति ज्ञातं भवतीति ज्ञात्वा प्रश्नः कृत इत्याहुः। तदसत्। यदि कारणव्यतिरेकेण कार्यमेव न भवेत्, कथमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रश्नः सङ्गच्छते? अभेदे हि कार्यकारणयोः कारणे विज्ञाते कार्यं विज्ञातमिति सङ्गच्छते, विज्ञातकारणाभिन्नत्वात् कार्यस्य। कार्यस्य मिथ्यात्वे च कथं कारणविज्ञानेन सर्वकार्यविज्ञानम्, सर्वस्यैवाऽभावात्। न च **मृत्तिकेत्येव सत्यम्, तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः** (ब्र. सू. २.१.१४) इति श्रुतिसूत्राभ्यां कार्यस्य कारणव्यतिरेकेण मिथ्यात्वं प्रतिपाद्यत इति वाच्यम्, अस्याः श्रुतेर्लोकदृष्टस्यैव दृष्टान्तत्वेनाऽनुवादकत्वात्। न त्वियं मृत्तिकाया अपूर्वं सत्यत्वं विकारस्य मिथ्यात्वं

कारण के रूप में विद्यमान होती है और उससे उत्पन्न सभी वस्तुएं उसकी कार्यस्वरूपा। अतः उन्होंने महर्षि अंगिरा से प्रश्न किया — 'भगवन्! ऐसी कौन सी वस्तु विद्यमान है, जिससे उत्पन्न सभी कार्यजात का हमें ज्ञान होता है? सभी कार्यजात का निमित्तकारण और उपादानकारण स्वरूप कौन सी एक वस्तु है, जिसके जान लेने पर हमें उससे उत्पन्न समस्त सृष्टि का ज्ञान होता है। इसी के समर्थन में आगे चलकर 'ऊर्णनाभि' का दृष्टान्त दिया गया है। महर्षि शौनक के प्रश्न का यही आशय है।

'केचिन्मत' और निराकरण— इस विषय में कुछ लोगों का कथन है कि उपादान (कारण) से कार्य की पृथक् सत्ता नहीं रहती। उपादन का ज्ञान होने पर उसका कार्य उससे भिन्न नहीं है यह समझकर मंत्रोक्त प्रश्न है। परन्तु ऐसा नहीं है। कारण से भिन्न कार्य की सत्ता रहती है। यदि ऐसा न हो, तो इस प्रश्न की संगति कैसे लगेगी कि किस वस्तु के ज्ञानमात्र से सभी का ज्ञान होता है? वस्तुतः जगत् मिथ्या नहीं है, अपितु उसका अस्तित्व है, वह सत्य है। कार्य और कारण दोनों का पृथक् अस्तित्व मानते हुए उनका परस्वर अभेद मानने पर सृष्टि में कारणस्वरूप एक का ज्ञान होने पर सम्पूर्ण कार्यजात का ज्ञान होता है इस आशय से प्रश्नसंगति बैठती है, क्योंकि कार्यस्वरूप (जगत्) से कारणस्वरूप (परम शिव) अभिन्न है। उस (कारण- स्वरूप परम शिव) का ज्ञान होने पर हमें उसके कार्यस्वरूप समस्त चराचर स्थावर- जंगमात्मक जगत् का ज्ञान होता है। कार्यस्वरूप जगत् को मिथ्या मानने पर, उसकी सत्ता स्वीकार न करने पर केवल कारणस्वरूप परम शिव के ज्ञान से कार्यस्वरूप समस्त जगत् का कैसे ज्ञान होगा? क्योंकि जिसकी सत्ता ही न हो, उसका ज्ञान असंभव है। कुछ लोग इसका उत्तर यह देते हैं कि कारण से भिन्न कार्य का अस्तित्व नहीं रहता। उदाहरणार्थ श्रुति कहती है— **मृत्तिकेत्येव सत्यम्** — मिट्टी का घड़ा फूट सकता है, इस दृष्टि से उसका शाश्वत अस्तित्व नहीं है, वह मिथ्या है। किन्तु उसका कारण मिट्टी वहां पर रहती है, अतः वही सत्य है। **ब्रह्मसूत्र** का वचन है— **तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः** (ब्र. सू. २.१.१४) 'इसी प्रकार जगत्

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रतिपादयति, प्रसिद्धस्यैव दृष्टान्तत्वात् । **लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त** इत्यभियुक्तोक्तेः, तत्सूत्रघटकानन्यत्वशब्दस्य मिथ्यात्ववाचकत्वाभावात्, किन्त्वभेदवाचकत्वात् । तथा च यादृशं सत्यत्वं मृत्तिकाया लोकसिद्धम्, यादृशं चाऽनृतत्वं विकारस्य तादृशमेवाऽनुवदतीति वक्तव्यम् । न बाधितत्वरूपमनृतत्वं विकारस्य लोकसिद्धम् । नहि घटकाले **मृदि घटो नास्तीति** बाधः प्रतीयते । नापि मृत्तिकायाः सत्यत्वमबाधितत्वरूपं प्रतिपाद्यते, तैस्तस्या अपि सत्यत्वानङ्गीकारात् । मृद्घटयोरुभयोरपि व्यावहारिकसत्यत्वाभ्युपगमात्, तैः सत्यत्वविशेषानङ्गीकाराच्च । किञ्च, यदि मृद्व्यतिरेकेण घटस्याऽसत्यत्वम्, तदा **अयं घट** इति प्रत्यक्षस्य को विषयः? न तावन्मृदेव विषयः, तस्याः कुलालव्यापारात्प्रागपि सत्त्वेन तदापि **घट** इति प्रतीत्यापत्तेः, प्रत्यक्षे विद्यमानविषयस्य कारणत्वात् । विद्यते चेत्, कथं

को मिथ्या समझना चाहिए' । किन्तु यह उत्तर समीचीन नहीं है । यह दृष्टान्त व्यावहारिक सत्य का अनुमान मात्र कर रहा है । उक्त श्रुति न तो मिट्टी के अपूर्व सत्य का प्रतिपादन कर रही है और न उसके विकार को मिथ्या (अस्तित्वहीन) सिद्ध कर रही है । क्योंकि लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त को ही दिया जाता है । जैसा कि अभियुक्तों का कथन है—'लौकिक परीक्षक जिस विषय में अपनी तुलनात्मक दृष्टि से सादृश्य ढूँढते हैं, वही दृष्टान्त बन जाता है । उक्त **ब्रह्मसूत्र** में अवस्थित 'अनन्यत्व' शब्द 'मिथ्यात्व' अर्थ का वाचक नहीं है, अपितु 'अभेद' अर्थ का वाचक है । अतः यहां पर यह कहना चाहिए कि लौकिक दृष्टान्त में मृत्तिका की जिस प्रकार की सत्यता है, उसके विकार की जिस प्रकार की असत्यता है, उसका इस श्रुतिवचन में केवल शब्दानुवाद मात्र किया गया है । यह व्यावहारिक सत्य है, पारमार्थिक नहीं । परमार्थ दृष्टि से जो असत्य (अस्तित्वहीन) रहता है, मूल रूप में भी उसका बाध होता है । मृण्मय घट का जब अस्तित्व रहता है, तब सभी जानते हैं कि यह मिट्टी से बना है । उस स्थिति में भी सब मिट्टी को देखते हैं । वे यह नहीं कह सकते कि मिट्टी में घट का अस्तित्व नहीं है । इसी प्रकार पारमार्थिक दृष्टि से अबाध रूप में मिट्टी की सत्यता का भी वे प्रतिपादन नहीं करते, क्योंकि उन्हें वह स्वीकार्य नहीं है । मिट्टी और घट दोनों में व्यावहारिक सत्य की अनुभूति होती है और विशिष्ट सत्य उन्हों स्वीकार्य नहीं है । साथ ही मिट्टी से पृथक् घट असत्य (अस्तित्वहीन) है, तब 'यह घडा है' इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान का क्या विषय होगा? केवल मिट्टी को प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय नहीं माना जा सकता । क्योंकि कुंभार के कार्यकलाप के पूर्व भी मिट्टी की सत्ता रहती है और तब उसे भी घडा समझा जायगा, क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान में जिसका अस्तित्व रहता है, वहीं कारण होता है । घर में यदि मिट्टी की सत्ता है, तो वह 'सत्ताहीन' कैसे होगा । 'सत्य' शब्द का अर्थ ही 'विद्यमान' है । 'अस्ति', 'भवति', विद्यते' आदि क्रियापद पर्यायवाची हैं । 'सत्व' अथवा 'सत्य' यहां पारिभाषिक है ऐसा यदि आप कहें, तो वह किस प्रकार परिभाषित

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तस्यासत्त्वम् ? विद्यमानस्यैव सत्यशब्दार्थत्वात्, अस्ति, भवति, विद्यत इत्यादीनां पर्यायत्वात्। अथाऽन्यदेव सत्त्वं पारिभाषिकमिति चेत्, किं तत्? अबाध्यत्वमिति चेत्, घटेऽपि तदस्त्येव। नहि घटकाले घटो नास्तीति बाधो दृश्यते। अथ सर्वदा सर्वत्राऽबाध्यत्वं सत्त्वम्, न च घटस्य तदस्ति, कालान्तरे तस्य बाधात् इति चेत्, तर्हि नित्यत्वे सति विभुत्वं सत्त्वं तद्बाधश्चाऽसत्त्वं स्यात्। ईदृशं चासत्त्वं घटादीनामपीष्टमेव। नहि कार्यस्य नित्यत्वविभुत्वे केनचिदभ्युपगम्येते। न च **मृत्तिकेत्येव सत्यम्** इत्यत्रैवकारेण कारणस्यैव सत्त्वावधारणात् श्रुत्या कार्यस्य मिथ्यात्वं प्रतिपाद्यत इति वाच्यम्, एवकारेणोपादानाद् विकारस्याऽत्यन्तभेदं प्रतिषिध्याऽभेदस्यैव प्रतिपाद्यमानत्वात्। तस्माद् वाचारम्भणवाक्यात्, **तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य** इति सूत्राच्च न मिथ्यात्वसिद्धिः।

ननु **सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, एकमेवाऽद्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन** इत्यादिश्रुतिभिर्ब्रह्मणि प्रपञ्चाभावप्रतीतेः प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वं सिद्ध्यतीति चेन्न, न तावद् **एकमेवाऽद्वितीयम्** इत्यतो मिथ्यात्वसिद्धिः, तस्य प्रपञ्चोत्पत्तेः प्राक् तदभावबोधकत्वेऽपि

होगा? आपके अनुसार जो 'अबाध्य' हो अर्थात् अवाध रूप से जिसकी सत्ता हो, यही 'सत्त्व' अथवा 'सत्य' की परिभाषा हो, तो 'घट' भी 'सत्य' है, जब तक घट रहेगा, तब तक उसका 'अस्तित्व' है ही। ऐसी स्थिति में कोई यह नहीं कहता कि 'घट नहीं है'। यदि आप की दृष्टि में सभी समय और सभी स्थानों में अबाध रूप से जिसकी सत्ता हो, वही 'सत्व' अथवा 'सत्य' है। ऐसी स्थिति में उसकी परिभाषा यह होगी कि जो नित्य रहते हुए व्यापक हो, वहीं 'सत्व' (सत्य) और जहां बाधित हो, वह 'असत्व' (असत्य) होगा। इस प्रकार असत्त्व (असत्य) घट आदि में भी रहता है। मृत्तिका आदि कारण हैं, और घट आदि उसके कार्य हैं। कार्य में नित्यत्व और विभुत्व की एकसाथ अनुभूति कोई भी नहीं करता। यदि आप यह कहें कि इसमें श्रुतिवचन प्रमाण है। श्रुति कहती है— **मृत्तिकेत्येव सत्यम्**। मंत्र स्थित 'एव'कार कारणास्वरूप मृत्तिका को सत्यता प्रतिपादित कर रहा है, इसी से कार्यकी असत्यता प्रतिपादित हो रही है। परन्तु ऐसा प्रतिपादन भ्रममूलक है। इस श्रुति में प्रयुक्त 'एव' का तात्पर्य भिन्न है। मृत्तिका उपादान कारण है और घटादि उसके विकार। यहां प्रयुक्त 'एव' कार उपादान कारण मृत्तिका से घटादि विकार के अत्यन्त भेद का निषेध करते हुए अभेद का ही प्रतिपादन कर रहा है। अतः **वाचारम्भणं विकारः** इत्यादि श्रुति-वाक्य और **तदनन्यत्वमारम्भण- शब्दादिभ्यः** इस **ब्रह्मसूत्र** से जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता।

प्रपञ्च को मिथ्या सिद्ध करने के लिए यदि यह उपस्थापित किया जाय कि **सदेव सोम्येदमग्र आसीत्** (सोम्य, सर्वप्रथम इसी की सत्ता थी), **एकमेवाऽद्वितीयं ब्रह्म** (ब्रह्म एक ही है, वह अद्वितीय है), **नेह नानास्ति किञ्चन** (यहां कुछ भी अनेक नहीं है) आदि

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रपञ्चकाले तदभावाबोधकत्वात् । तदभावोऽपि तदा तदभिव्यक्त्यभाव एव, तदानीमपि तस्य सूक्ष्मरूपेण स्थितत्वात्, **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत** इत्युक्तत्वात् । **उक्तं च कामिकागमे—**

चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद् बहिः ।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत् ।। इति ।

नापि **नेह नानास्ति** इति वाक्यात् सिद्धिः, तस्य ब्रह्मणि प्रपञ्चाभावाबोधकत्वात्, प्रपञ्चभेदाभावस्यैव बोधनात्, ब्रह्मणो मूर्तामूर्ताभिन्नत्वस्य प्रतिपादनात् । तस्मान्न जगन्मिथ्यात्ववादिमतानुसारेणोपादानस्य सत्यत्वमुपादेयस्य मिथ्यात्वमिति मत्वा प्रश्नः कृतः । किञ्चोपादानोपादेययोर्भेदाभेदवादिमतानुसारेणोपादानोपादेयगतसुवर्णत्वादिसामान्य-धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभावं तयोरुपादानोपादेययोर्ज्ञात्वा प्रश्नः कृत इति स्पष्टं ज्ञायते ।

श्रुतिवचनों से ब्रह्म में प्रपञ्च के अभाव (अस्तित्वहीनता) का बोध होता है, इस प्रकार प्रपञ्च (जगत्) का मिथ्यात्व सिद्ध होता है । परन्तु **एकमेवाद्वितीयम्** इत्यादि वचन से प्रपञ्च को मिथ्या सिद्ध नहीं किया जा सकता । क्योंकि यद्यपि जगत् का प्रादुर्भाव होने के पूर्व उसके अभाव की प्रतीति वहां होती है, तथापि प्रपञ्च के समय उसकी अस्तित्व- हीनता का बोध नहीं होता, उसके अस्तित्व का ही बोध होता है । प्रपञ्च के आविर्भाव के पूर्व भी उसका अभाव वास्तविक नहीं है, क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति मात्र उस समय नहीं होती । उस समय भी सूक्ष्म रूप से उसकी सत्ता रहती है । **नासतो विद्यते भावः** इत्यादि पद्य इसको प्रमाणित करते हैं, जिसका भावार्थ यह है कि जिसकी सत्ता नहीं रहती, वह नहीं होता, उसकी अभिव्यक्ति नहीं होती और जिसकी सत्ता होती है उसका अभाव नहीं होता, उसका अस्तित्व-बोध होता है । **कामिकागम** में भी **चिदात्मैव हि देवः** इत्यादि कारिका से कहा है कि "जिस प्रकार योगी बिना उपादान के समस्त पदार्थों को बाहर प्रकाशित करता है, उसी प्रकार चैतन्य स्वरूप परम शिव आपकी इच्छाशक्ति से अन्तःस्थित समस्त जगत् को बाहर प्रकाशित करता है ।"

नेह नानास्ति इस वाक्य से भी **प्रपंच** के मिथ्यात्व की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि वह ब्रह्म में प्रपञ्च के अभाव का बोध नहीं कराता, अपितु प्रपञ्च के अभेद का ही बोध कराता है । उससे ब्रह्म के मूर्त (प्रत्यक्ष) और अमूर्त (अप्रत्यक्ष) स्वरूपों में अभिन्नता का ही प्रतिपादन किया गया है । अतः **जगत्** का मिथ्या प्रतिपादन करने वालों के मतानुसार उपादान ब्रह्म को सत्य तथा उपादेय जगत् को मिथ्या समझ कर यह प्रश्न उपस्थापित नहीं है । परन्तु उपादान और उपादेय दोनों में भेदाभेद का प्रतिपादन करनेवालों के मतानुसार यह समझकर प्रश्न किया गया है कि **'सुवर्णकुण्डल'** आदि में जिस प्रकार उपादान सुवर्ण और उपादेय कुण्डल दोनों में सुवर्णत्व रूप साधारण धर्म रहता है उससे परिच्छिन्न

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

भेदाभेदवादस्वरूपम्

'स्वर्णकुण्डलम्', 'मृद् घटः'; 'स्वर्णस्य कुण्डलम्', 'मृदो घटः'; 'अहिः कुण्डलम्', 'अहेः कुण्डलम्' इत्यादिप्रतीतेर्भेदविषयकत्वस्य लोकसिद्धत्वात् कार्यकारणयोरत्यन्तभेदे तन्तुघटयोरिव भिन्नस्वभावत्वेनाऽकारणत्वापत्तेरत्यन्ताभेदे चैकरूपत्वेन इदं कार्यमिदं कारणमिति विभागस्याऽनुपपत्तेः। न च भेदाभेदयोर्विरोधात् कथं तयोर्भेदश्चाभेदश्च स्वीक्रियत इति वाच्यम्, कार्यकारणभावान्यथानुपपत्त्या तयोरङ्गीकरणीयत्वात्। मृदेव घटाकारेण भाति, मृद् घटत्वावच्छिन्नघटो न भवतीति प्रतीतेः परिहर्तुमशक्यत्वात्। किञ्च, तत्र घटो नास्तीत्यपि वक्तुं न शक्यते, **मृदः कुम्भो जायत** इत्यत्र वर्तमानकालारूढजनिक्रियाया निराश्रयत्वप्रसङ्गात्, भेदाभेदविषयिण्यास्तस्याः प्रामाण्याच्च, लोकदृष्ट्यैव तत्त्वविदा शौनकेन पृष्टत्वात्, विदिते वेदान्तवेद्ये तत्त्वे प्रश्नस्यैवायुक्तत्वात्।

प्रतियोगिताक भेदाभाव (अभेद) उपादान और उपादेय दोनों में रहता है। इस दृष्टि से सुवर्ण और उससे निर्मित कुण्डल दोनों जिस प्रकार अभिन्न हैं, उसी प्रकार उपादान ब्रह्म और उपादेय जगत् दोनों अभिन्न हैं।

भेदाभेदवाद का स्वरूप

'स्वर्णकुण्डलम्', 'मृद्घटः', 'अहिकुण्डलम्' आदि उदाहरणों में 'सोना ही कुण्डल है', 'मिट्टी ही घड़ा है', 'सर्प ही कुण्डल है' इत्यादि अभेद प्रतीति होती है। इसी प्रकार यह 'सोने का कुण्डल है', 'मिट्टी का घड़ा है', 'सर्प का कुण्डल है' इत्यादि भेद-प्रतीति लोकसिद्ध है। कार्य और कारण दोनों में अत्यंत भेद मानने पर **'तन्तुपट'** इत्यादि उदाहरणों में तन्तु का स्वभाव भिन्न है और पट का स्वभाव भिन्न है, ऐसी स्थिति में तंतु पट का उपादान कारण नहीं हो सकता। उसी प्रकार दोनों में अभेद मानने पर दोनों की एकरूपता स्वीकार करनी पडेगी और यह कार्य है और यह कारण है इस प्रकार विभाग करना संगत नहीं होगा। यह प्रश्न भी समुचित नहीं है कि भेद और अभेद दोनों का परस्पर विरोध है, फिर दोनों में भेद और अभेद एक साथ कैसे स्वीकार किया जा सकता है? कार्यकारणभाव की अन्यथा अनुपपत्ति से कार्य और कारण दोनों में भेद और अभेद दोनों को स्वीकार किया जा सकता है। कार्य कारण के रूप में उससे अभिन्न रहता है और स्वस्वरूप में उससे भिन्न। मिट्टी के घडे में घडे के आकार से ही मिट्टी का बोध हमें होता है। मिट्टी घडा नहीं होती, उसमें घटत्व (घडे का आकार) नहीं रहता। इस अनुभूति को हम झुठला नहीं सकते। साथ ही हम यह भी नहीं कह सकते कि मिट्टी में घड़ा नहीं है क्योंकि **'मृदो घटो जायते'** (मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है) इस वाक्य में वर्तमान काल में प्रयुक्त **'जायते'** यह क्रियापद आश्रयहीन होगा। जनि-क्रिया की प्रामाणिकता भेदाभेद विषय से सम्बद्ध है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अतत्व(स्तत्त्व)विच्छौनक उपादानोपादेयभावो यत्र तत्र स्वर्णकुण्डलादौ सामान्यतोऽभेदं ज्ञात्वा **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** इति पृष्टवानिति वक्तुं युज्यते ।।३।।

अङ्गिरस उत्तरम्–ब्रह्मविद्या द्विविधेत्याह—

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म
यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवाऽपरा च ।।४।।

सोऽङ्गिरास्तस्मै शौनकाय उवाच ह उक्तवान् किल । किमिति उक्तवान्? इत्यत आह— **यदिति** । यत् = परशिवब्रह्मरूपं लिङ्गम्, प्राप्तुमित्यध्याहारः । द्वे=द्विविधे, **विद्ये** = कार्यकारणरूपे, **वेदितव्ये** = ज्ञातव्ये, इति=एवं **ब्रह्मविदः** = वेदार्थाभिज्ञाः शिवाचार्याः, **वदन्ति स्म ह** = उक्तवन्तः किल । तस्मिन् ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवतीति प्रतिवचनमुक्तमिति बोध्यम् । ते के द्वे विद्ये इत्यत आह— **परा चापरा चेति** । **परा च** महामनुरूपा कारणविद्या च =

तत्त्ववेत्ता महर्षि शौनक ने लोकव्यवहार को दृष्टि में रखकर ही यह प्रश्न उपस्थित किया है । वेदान्त दर्शन से जानने योग्य इस परम तत्त्व का यदि पूर्व ही ज्ञान हो, तो यह प्रश्न ही असंगत, तर्कहीन होगा । महर्षि शौनक परम तत्त्व को नहीं मानते । वे जहां उपादानोपादेय भाव होता है, वहां 'स्वर्णकुण्डल' आदि में सामान्य रूप से अभेद को समझते हैं । अतः **कस्मिन्नु भगवो ! विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** (भगवन् ! किस एक विषय को जान लेने पर सभी विषयों का ज्ञान होता है?) इस प्रकार का प्रश्न कर रहे हैं यह कथन अधिक युक्तिसंगत होगा ।।३।।

अङ्गिरा का उत्तर

महर्षि अङ्गिरा कहते हैं कि ब्रह्मविद्या दो प्रकार की है—

मन्त्रार्थ– **उसने (अङ्गिरा ने) उनसे (महर्षि शौनक से) कहा– 'उस (परम शिव) को जानने के लिए दो विद्याओं को जानना चाहिए, इस प्रकार ब्रह्म (वेद) के अर्थवेत्ता शिवाचार्यों ने कहा है, (उन दोनों में एक) परा पञ्चाक्षरी विद्या और (दूसरी) ऋग्वेदादि के रूप में विद्यमान अपरा वेद विद्या'।।४।।**

व्याख्याः– **तस्मै** इति । **सः** = महर्षि अङ्गिरा ने, **तस्मै** = शुनकपुत्र महर्षि शौनक से, **उवाच ह** = कहा । क्या कहा? इसका उत्तर आगे दे रहे हैं— **यदिति** । यत् = जिस पर शिव ब्रह्मस्वरूप लिङ्ग को, प्राप्तुम् = पाने के लिए इस प्रकार का अध्याहार आवश्यक है । **द्वे** = दो प्रकार की, **विद्ये** = कार्य एवं कारण स्वरूप विद्याओं को, **वेदितव्ये** = जानना चाहिए । **इति** = इस प्रकार, **ब्रह्मविदः** = वेदार्थ जानने वाले शिवाचार्यों ने, **वदन्ति स्म**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पञ्चाक्षरी परा विद्या सतारा लिङ्गरूपिणी ।
अधिकारयुजा तारे ध्येया सा यन्त्ररूपिणी ।।

(चन्द्रज्ञानागम. ११. ४४)

पञ्चाक्षरी परा विद्या वितारा लिङ्गरूपिणी ।
तारेऽधिकाररहितैर्ध्येया सेयं भवे द्विजः ।।

(चं. ११.४७) इत्यागमोक्तेः । **अपरा च**— ऋग्वेदादिरूपा वक्ष्यमाणा कार्यरूपा चेति ।।४।।

ह = कहा था, यह ऐतिहासिक सत्य है । **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** (भगवन्! किस वस्तु के जानने पर समस्त चराचर जगत् का ज्ञान होता?) इसका उत्तर यहां दिया गया है— **तस्मिन् ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवति** (उस परम शिवस्वरूप को जानने पर समस्त चराचर जगत् का ज्ञान होता है ।) वे दोनों विद्याएं कौन सी हैं? इसके विषय में यह कथन है— **परा चाऽपरा चेति । परा च** = महामन्त्र के रूप में विराजमान कारण विद्या । जैसा कि आगमवचन हैं— **पञ्चाक्षरी परा विद्या सतारा** इत्यादि । (चन्द्रज्ञाना. चर्या. ११.४०) इसका अर्थ इस प्रकार है— 'यह पञ्चाक्षरी परा विद्या, तार (प्रणव) पूर्वक साक्षात् परमशिव की लिङ्ग-स्वरूपिणी है । प्रणव के अधिकारियों को इसका ध्यान तार (भ्रूमध्य) में मन्त्र के रूप में करना चाहिए ।'

पञ्चाक्षरी परा विद्या वितारा इत्यादि (चन्द्रज्ञाना. क्रिया. ११.४२)। का अर्थ यह है— प्रणवरहित पञ्चाक्षरी परा विद्या भी परम शिव की लिङ्गस्वरूपिणी है, जिनका प्रणव में अधिकार नहीं है, उनको इसका ध्यान करना चाहिए ।।[1]

अपरा च = ऋग्वेद आदि के रूप में विद्यमान कार्यस्वरूपा अपरा विद्या है, जिसका प्रतिपादन अग्रिम मंत्र में है ।।४।।

---

१. **चन्द्रज्ञानागम** (क्रिया. ११.४३-४४) के अनुसार पंचाक्षर मंत्र के दो भेद हैं— सूक्ष्म प्रणव (ओङ्कार) स्वरूप और स्थूल । प्रणव (ओंकार) स्वरूप सूक्ष्म पंचाक्षर मंत्र में अ, उ, म्, नाद और कला ये पांच अंश होते हैं । 'नमः शिवाय' यह स्थूल पंचाक्षर मन्त्र है । इस परा विद्या के दो भेद हैं— प्रणवपूर्विका षडक्षरी और प्रणवरहिता पञ्चाक्षरी । प्रणव के अधिकारियों को अपना शरीर शिवमय बनाकर षडक्षरी मंत्र का जप करना चाहिए । उस परा विद्या का मुख ओंकार, दोनों भुजाएं 'वा' और 'य', शिकार मध्यदेह और 'नमः' दो चरण हैं । स्थूल पंचाक्षरी मंत्रविद्या का मुख शिकार, वा और य दो भुजाएं, विसर्ग (:) मध्यदेह तथा 'न मः' दो चरण हैं । दोनों में कोई भेद नहीं है । (द्रष्टव्यः चन्द्रज्ञाना. क्रिया. ११.३९-४४)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अपरा विद्या– तत्र कारणविद्याया अतिसूक्ष्मत्वात् दुर्ज्ञेयत्वात् स्थूलारुन्धतीन्यायेन प्रथमम् अपरां कार्यरूपां स्थूलविद्यामाह—

तत्राऽपरा–ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः,
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषमिति ।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।।५।।

तत्रेति। तत्र वेदविद्यायां निष्कामसमनुष्ठितमोक्षसाधनभूतधर्मज्ञानहेतुत्वात् षडङ्गसहितानामृगादिवेदानामपरविद्यात्वम्, परम्परया मुक्तिसाधनत्वमित्यर्थः। कानि च षडङ्गानि? शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। तत्र वर्णस्वराद्युच्चारण-

---

अपरा विद्या– ब्रह्मविद्या के द्विविध प्रकारों में कारणस्वरूपा परा विद्या अत्यन्त सूक्ष्म है। उसको समझने में कठिनाई होती है। कार्यरूपा अपरा विद्या स्थूलविद्या है। **स्थूलारुन्धती न्याय** से उसे सरलता से समझा जा सकता है।

स्थूलारुन्धती-न्याय

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च साध्वी चैकाप्यरुन्धती ।।

इस पद्य के आधार पर इस न्याय को हम समझ सकते हैं। उत्तर दिशा में ध्रुव नक्षत्र के चतुर्दिक् विराजमान कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ यह सप्तर्षिमण्डल अत्यन्त सूक्ष्म रहता है, जिसे हम कठिनाई से देखते हैं, उनके साथ रहने वाली अरुन्धती तारका स्थूल है, जिसका साक्षात्कार सरलता से किया जा सकता है। उसी प्रकार कार्यस्वरूपा अपरा स्थूल विद्या को सरलता से जाना जा सकता है। अत एव यद्यपि कार्य के पूर्व कारण का ज्ञान आवश्यक है, तथापि सुकरता के लिए इस क्रम को तोड़ कर व्यतिक्रम से प्रथम स्थूल विद्या का निरूपण किया जा रहा है—

***मंत्रार्थ*– विद्याविभाग के अन्तर्गत चार वेद और छः वेदाङ्ग अपरा विद्या है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद हैं और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदाङ्ग हैं। परा विद्या वह होती है, जिस के द्वारा अक्षर (क्षरण रहित, अविनाशी) परब्रह्मस्वरूप परम शिव की प्राप्ति की जाती है ।।५।।**

तत्रेति। ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च (ब्राह्मण को बिना प्रयोजन कामनारहित होकर छः वेदाङ्गों के साथ चारो वेदों को कण्ठस्थ करना चाहिए और उसका मर्म भी समझना चाहिए।) इस नियम के अनुसार वेदविद्या का निष्काम अनुष्ठान करने

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रकारोपदेशिनी **शिक्षा, वर्णः स्वरो मात्रा बलं सामसन्तान इत्युक्तः शीक्षाध्याय** इति श्रुतेः । **कल्पस्तु**-आपस्तम्बादिसूत्रग्रन्थः, **कल्प्यते समर्थ्यतेऽनुष्ठेयप्रयोगोऽत्रेति** व्युत्पत्तेः । **व्याकरणं** प्रकृतिप्रत्ययाद्युपदेशेन पदस्वरूपतदर्थनिश्चायकम् । **निरुक्तं** तु पदविभागमन्त्रार्थ-देवतानिरूपणार्थं शास्त्रम् । **छन्दो** गायत्र्यादिच्छन्दोऽभिधायकम् । **ज्योतिषं** कर्मकाण्डोक्त-कर्मकालविधायकं शास्त्रम् । इत्यङ्गानि षट्, ऋगादयश्चत्वारो वेदा अपरविद्यात्वेनाभिहिताः ।

अथ = अनन्तरम्, **यया** विद्यया = महामनुरूपया, **तद्** अक्षरम्, अत्र तच्छब्दो **यद् ब्रह्मविद** इत्यत्र पूर्वोक्तयच्छब्दार्थबोधकः । **अक्षरम्** = परशिवलिङ्गम्,

---

पर षडङ्गसहित चारों वेद मुक्तिसाधन होते हैं और उसे '**अपरा विद्या**' कहते हैं । उस **वेदविद्या** में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों **वेद** और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः **वेदाङ्ग** सम्मिलित हैं । छः वेदाङ्गों का परिचय इस प्रकार है—

शिक्षा— वर्णस्वर आदि के विभिन्न उच्चारण प्रकारों का उपदेश देने वाली प्रथम वेदांगभूत विद्या शिक्षा है । जैसा कि श्रुति वचन है— **वर्णः स्वरो मात्रा बलं सामसन्तानः इत्युक्तः शीक्षाध्यायः** । प्रत्येक वर्ण का चाहे वह व्यंजन हो अथवा स्वर, उसके उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये स्वर, उसकी ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ये मात्राएं, उच्चारण पर जोर, गान शैली के षड्ज, मध्यम आदि स्वर इसके उच्चारण की शिक्षा शिक्षाध्याय में दी गयी है । **कल्पः**— इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है— **कल्प्यते समर्थ्यतेऽनुष्ठेय-प्रयोगोऽत्र** यह **कल्प** शब्द की व्युत्पत्ति है । जिन ग्रन्थों में अनुष्ठानयोग्य प्रयोगों का समर्थन होता है, उन्हें **कल्प** कहते हैं । आपस्तम्ब सूत्र आदि सूत्र ग्रन्थ कल्प (वेदांग) के अन्तर्गत हैं । **व्याकरणम्**— प्रकृति, प्रत्यय आदि का ज्ञान कराते हुए पद के स्वरूप और उसके अर्थ का निर्धारण करने वाले शास्त्र को **व्याकरण** कहते हैं । **निरुक्तम्** = पद का विभाग, मन्त्र का अर्थ, उसकी देवता आदि का निर्वचन करनेवाला शास्त्र इस नाम से संबोधित है । **छन्दः**— गायत्री आदि छन्दों का निरूपण करने वाला शास्त्र **छन्दः - शास्त्र** है। **ज्योतिषम्**— कर्मकाण्ड में वर्णित काल का विधान करने वाला शास्त्र **ज्योतिष** है । इस प्रकार छः वेदाङ्गों और चार वेदों को अपरा विद्या इस नाम से सम्बोधित किया गया है ।

अथ = और, **तत्** '**यत्तदोर्नित्यः सम्बन्धः**'– **यत्** और **तत्** इन दो सर्वनाम शब्दों का परस्पर संबंध होता है) । इस नियम के अनुसार 'तत् ' सर्वनाम **यद् ब्रह्मविदो वदन्ति** इस पूर्वोक्त मंत्रभाग में प्रतिपादित 'यत्' सर्वनाम से सम्बद्ध है । अतः इन दोनों को मिलाकर इनका सम्मिलित अर्थ होगा— जिस का ध्यान करने के लिए ब्रह्मवेत्ता शिवाचार्यों ने उपदेश दिया था, वह परम शिव लिङ्ग **अक्षरम्** = क्षरणरहित, अविनाशी है उस परम शिवलिंग को **यया** = महामंत्र स्वरूप जिस के द्वारा, **अधिगम्यते** = प्राप्त किया जाता है, उसका साक्षात्कार किया जाता है, **(सा) परा** = वह परा विद्या है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ।।

इति श्रुतेः । अधिगम्यते=प्राप्यते, सा परा विद्येत्यर्थः । उक्तं च **रेणुकभगवत्पादाचार्येण**

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा ।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः ।।

(सि. शि. ८.२३) इति,

पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां प्रणवेन षडक्षरीम् ।
जपेत् समाहितो भूत्वा शिवपूजापरायणः ।।

इति च । **पञ्चाक्षरीं परां विद्याम्** इत्यनुभवसूत्रोक्तेर्मूलप्रणवसहित-महामनोः परविद्यात्वं सिद्धम् ।

तस्य स्वार्थानुध्यायिनो ब्रह्मप्रापकत्वं चोक्तम्—

''जपेत् पञ्चाक्षरीमेतां विद्यां पाशविमुक्तये'' इति ।

अक्षर परशिव लिंग को **यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिः** इत्यादि श्रुति प्रमाणित करती है । इसका अर्थ इस प्रकार है— ''उस समय न तो अंधेरा था, और न दिन था, और न रात थी, सगुण के रूप में न तो उसकी साकार सत्ता (सत्) थी और न निर्गुण निराकार के रूप में उसको असत् (अस्तित्वशून्य) कह सकते थे । वह केवल एकमात्र अद्वितीय परमशिवस्वरूप था । सविता (आविर्भावक्षम परब्रह्म) का 'अक्षर' क्षरणहीन अविनाशी नित्य श्रेष्ठ स्वरूप था । उसी से पुराणी प्रज्ञा का आविर्भाव हुआ ।''

पराविद्या के विषय में **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** ने **मूलं विद्या शिवः** इत्यादि श्लोक और **पञ्चाक्षरीमिमां विद्याम्** इत्यादि श्लोक में यह प्रतिपादन किया है कि ''उस महामंत्रस्वरूपा परा विद्या के अनेक पर्याय हैं: मूल, विद्या, शिव, शैवसूत्र और पंचाक्षर । उसके दो रूप हैं—पञ्चाक्षरी और षडक्षरी । प्रणव (ओंकार) के बिना वह पंचाक्षरी और उसके साथ षडक्षरी होती है । शिवपूजा में दत्तचित्त वीरशैव भक्त को अधिकारी के भेद से समाधि में लीन होकर इसका जप करना चाहिए ।'' मूल प्रणवपूर्वक षडक्षरी मंत्रस्वरूपा परा विद्या है, जिसे **पञ्चाक्षरीं परां विद्याम्** यह **अनुभूवसूत्र** प्रमाणित कर रहा है ।

सिद्धान्तशिखामणि के अष्टम अध्याय में अनेक स्थलों में यह प्रतिपादित है कि जो पंचाक्षरी महामंत्र के अर्थ का निरन्तर चिन्तन करता है, वह ब्रह्मसाक्षात्कार करता है । यथा— **जपेत् पञ्चाक्षरीमेतां विद्यां पाशविमुक्तये** (सि. शि. ८.३३) । अर्थात् संसारी जीव को आणव-कार्मिक-मायीय त्रिविध मल और माया आदि पंचविध पाशों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए इस पंचाक्षरी विद्या का जप करना चाहिए ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यथाऽनादिर्महादेवः सिद्धः संसारमोचकः ।
तथा पञ्चाक्षरो मन्त्रः संसारक्षयकारकः ।। इति।

किमिह बहुभिरुक्तैर्मन्त्रमेनं महात्मा प्रणवसहितमादौ यस्तु पञ्चाक्षराख्यम् ।
जपति परमभक्त्या पूजयन् देवदेवं स गतदुरितबन्धो मोक्षलक्ष्मीं प्रयाति ।। इति।

उक्तं च त्रिपुरतापिन्यामुपनिषदि—ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वमाप्नोति इति ।

पराविद्यायाः कारणरूपत्वम्

ननु भवतु नाम पञ्चाक्षरमहामनुः स्वार्थानुध्यायिनां स्वार्थसाक्षात्कारसम्पादनद्वारा परशिवब्रह्मत्वप्रापकः, तस्य कारणरूपत्वम्, ऋगादिलक्षणविद्यायाः कार्यरूपत्वं च कथमिति चेदुच्यते —

पञ्चाक्षरमयं शम्भुं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
नकारादियकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरीं जपेत् ।।

यथानादिर्महादेवः (सि. शि. ८.१३) इत्यादि का अर्थ यह है कि जिस प्रकार अनादि परम शिवस्वरूप महादेव संसरणशील जगत् को उसके कर्मबन्धन के पाश से मुक्त करते हैं, उसी प्रकार पंचाक्षर मंत्र भी जीव को संसारबन्धन से मुक्त कराता है । **सिद्धान्तशिखामणि** के अष्टम परिच्छेद में पंचाक्षरी जपस्थल का उपसंहार करते हुए **किमिह बहुभिरुक्तैः** (सि. शि. ८.४९) इत्यादि कारिका में **श्रीरेणुकाचार्य** यह प्रतिपादित करते हैं कि 'अधिक क्या कहा जाय? जो शिवभक्त वीरशैव महात्मा अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवाधिदेव महादेव का पूजन करते हुए सर्वप्रथम प्रणव (ओंकार) के साथ पञ्चाक्षर मंत्र का जप करता है, वह पापों के बन्धन से छुटकारा पाकर मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करता है । इसी अर्थ का समर्थन **त्रिपुरतापिनी उपनिषद्** इस प्रकार करती है— **ॐ नमः शिवाय** यह याजुष, यजुर्वेदप्रोक्त मंत्र है, उसकी उपासना करने वाला रुद्रभाव (शिवभाव) प्राप्त करता है ।

अपरा और परा विद्या का कार्यकारणभाव

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पञ्चाक्षर महामन्त्र का अर्थानुसन्धान करने वालों के लिए मंत्रार्थके साक्षात्कार का संपादन करते हुए परशिवस्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति में सहायक हो सकता है, परन्तु वेद-वेदांगस्वरूप अपरा विद्या का कारण कैसे हो सकता है? और अपरा विद्या कार्यस्वरूपा कैसे हो सकती है? इसका समाधान यह है कि **पञ्चब्रह्मोपनिषद्** में सद्योजात आदि पञ्च ब्रह्म का उसके वाचक नकार से लेकर यकार तक पांच स्थूल अक्षरों का अभेद प्रतिपादित है । वह इस प्रकार है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति **पञ्चब्रह्मोपनिषदि** सद्योजातादिपञ्चब्रह्मणां तद्वाचकनकारादि-यकारान्त-स्थूलपञ्चाक्षराणां चाऽभेदस्य श्रूयमाणत्वात् । **सिद्धान्तशिखोपनिषद्यपि — योऽयं नकारः सोऽयमकारः सद्योजातोऽभूद् ऋग्वेदः सम्पुटमुच्यते** इत्यादिना मूलप्रणवघटकानां नकारादीनां तद्वाच्यानां सद्योजातादीनां तज्जन्यानाम् ऋग्वेदादीनां कामिकाद्यागमान्तानां च भेदः श्रूयते । तथा च सूक्ष्मस्थूलात्मकप्रणवसहितपञ्चाक्षरीविद्यायाः कारणत्वावगमात् षडङ्गसहित-ऋग्वेदादि-चतुष्टयस्य कार्यत्वावगमात् सद्योजाताद्यपरपर्यायाचारादिलिङ्गानां तदभिन्न-तद्वाचक-

---

पञ्चाक्षरमयं शम्भुं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
नकारादियकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरीं जपेत् ॥

"परब्रह्मस्वरूप परम शिव पञ्चब्रह्मतनु है । उसके सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, और ईशान ये पांच मुख हैं । '**नमः शिवाय**' इस पञ्चाक्षर मंत्र का प्रत्येक अक्षर यथाक्रम उसका वाचक है । इसको समझकर पञ्चाक्षरी परा विद्या का जप करना चाहिए ।" यह इसका मंत्रार्थ है । **सिद्धान्तशिखोपनिषद्** में भी **योऽयं नकारः सोऽयमकारः** इत्यादि मन्त्र[१] द्वारा यह ज्ञात होता है कि **नमः शिवाय** यह पञ्चाक्षर मंत्र मूल प्रणव मंत्र ओङ्कार का घटक है । उसके नकारादि प्रत्येक वर्ण यथाक्रम सद्योजात आदि परमशिव के पञ्चब्रह्म-स्वरूपों के वाचक हैं । सद्योजात आदि उनके क्रमशः वाच्यार्थ हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा कामिकादि वातुलान्त अट्ठाईस (२८) आगमों के वे जनक हैं । वेद-चतुष्टय और अट्ठाईस आगम उनसे उत्पन्न हैं । इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म प्रणव-पूर्वक पञ्चाक्षरी विद्या कारण और वेद-चतुष्टय एवं अट्ठाईस आगम उसके कार्य हैं । पञ्चाक्षरी विद्या परा विद्या है और वेद-वेदांग-विद्या अपरा विद्या है । परा विद्या कारण-रूपा है और अपरा विद्या कार्यरूपा । अपरा विद्या ब्रह्मविद्या है । परम शिव ही परब्रह्म है और सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान ये पंच ब्रह्म है। 'आचारलिंग, गुरुलिंग, शिवलिंग, चरलिंग और प्रसादलिंग यह लिंगपञ्चक यथाक्रम पूर्वोक्त ब्रह्मपञ्चक के पर्याय हैं । इस प्रकार परम शिव पञ्चब्रह्मतनु है । '**नमः शिवाय**' इस पञ्चाक्षर मंत्र के नकार से लेकर यकार तक वर्ण

---

१. 'सिद्धान्तशिखोपनिषद्' का मंत्र यह है—

योऽयं नकारः सोऽयमुकारः स सद्योजातो भू ऋग्वेदः स सम्पुट उच्यते ।
योऽयं मकारः सोऽयमुकारः स वामदेव आपो यजुर्वेदो वस्त्रमुच्यते ।
योऽयं शिकारः सोऽयं मकारः सोऽघोरस्तेजः सामवेदो गुण उच्यते ।
योऽयं वाकारः सोऽयं नादः स तत्पुरुषः स वायुरथर्वणवेदो द्वारमुच्यते ।
योऽयं यकारस्तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषः प्रणवः सर्वोत्तर ईशान आकाश आगमो लिङ्गमुच्यते ॥२४॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नकारादियकारान्ता पञ्चाक्षरी विद्या कारणरूपा परा। तज्जन्यषडङ्गसहित-ऋग्वेदाद्यात्मिका विद्या कार्यरूपा अपरा। तथा च **स्मृतिः**—

अष्टादशानामेतासां विद्यानां ब्रह्मवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता शिवः साक्षात् शूलपाणिरिति श्रुतिः।।

सद्योजातेन ऋग्वेदं वामदेवेन याजुषम्।
अघोरेण तथा साम पुरुषेण त्वथर्वणम्।।

ईशानेन मुखेनैव कामिकाद्यागमांस्तथा।
जनयामास विश्वेशः सर्वसिद्धिप्रदायकः।।

विमर्शरूपिणी शक्तिः शिवस्य परमात्मनः।
निगमागमरूपा स्यात् सर्वतत्त्वप्रकाशिनी।।

यथाक्रम ब्रह्मपञ्चक से अभिन्न और उसके वाचक हैं। इस प्रकार पञ्चाक्षरी परा विद्या कारणस्वरूपा और उससे उत्पन्न छः वेदांगों के साथ विराजमान ऋग्वेदादि-वेदचतुष्टय-स्वरूपा अपरा विद्या पराविद्या की कार्य-स्वरूपा है। जैसा कि स्मृति का वचन है—

अष्टादशानामेतासां विद्यानां ब्रह्मवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता शिवः साक्षात् शूलपाणिरिति श्रुतिः।।

श्रुति कहती है—'परम शिवस्वरूप परब्रह्म की मार्गदर्शिका इन सभी अट्ठारह विद्याओं के आदिकर्ता साक्षात् शूलपाणि भगवान् शिव हैं।।'

सद्योजातेन ऋग्वेदं वामदेवेन याजुषम्।
अघोरेण तथा साम पुरुषेण त्वथर्वणम्।।
ईशानेन मुखेनैव कामिकाद्यागमांस्तथा।
जनयामास विश्वेशः सर्वसिद्धिप्रदायकः।।

पञ्चब्रह्मतनु सभी सिद्धियों के प्रदाता भगवान् विश्वेश्वर ने अपने सद्योजात मुख से ऋग्वेद की, वामदेव मुख से यजुर्वेद की, अघोर मुख से सामवेद की, तत्पुरुष मुख से अथर्ववेद की और ईशान मुख से कामिकादि वातुलान्त अट्ठाईस आगमों की सृष्टि की।

विमर्शरूपिणी शक्तिः शिवस्य परमात्मनः।
निगमागमरूपा स्यात् सर्वतत्त्वप्रकाशिनी।।

(भगवान् विश्वेश्वर प्रकाशस्वरूप हैं और) परमात्मा परम शिव की सभी तत्त्वों को प्रकाशित करने वाली विमर्शशक्ति निगमागमस्वरूपा अपरा विद्या है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तस्माद् वेदागमार्थेषु यः कुर्याद् भेदभावनाम् ।
स सहस्रकुलं घोरे नरके पतति ध्रुवम् ।।

इति निगमागमविद्याया नकारादि-यकारान्त-पञ्चाक्षरात्मक-सद्योजातादिपञ्चब्रह्मजन्य- त्वावगमाच्च षडङ्गसहित-ऋग्वेदादिविद्यायाः कार्यत्वं पञ्चाक्षरीविद्यायाः कारणत्वमिति बाढं जानीमः । किञ्च, प्रणवघटकाकाराद्यभिन्ननकारादीनामेव ऋग्वेदादिकारणत्वमुक्तं क्रियासारे—

वेदात्मना तथा व्यक्तः प्रणवो विकृतिं गतः ।
तत्राऽकारो ऋगभवदुकारो यजुरव्ययः ।
मकारः साम सञ्जातो नादस्त्वाथर्वणी श्रुतिः ।। इति।

तस्मात् प्रणवसहितपञ्चाक्षरीविद्यैव परा विद्या, सैव षट्स्थलब्रह्मविद्या । तदुक्तं क्रियासारे चतुर्विंशोपदेशे—

तस्माद् वेदागमार्थेषु यः कुर्याद् भेदभावनाम् ।
स सहस्रकुलं घोरे नरके पतति ध्रुवम् ।।

अतः जो जीव वेदों और आगमों के अर्थों में परमशिव के साथ भेद-भावना करता है, वह अपने सहस्रकुल के साथ घोर नरक में गिरता है, यह ध्रुव सत्य है । इन स्मृति-वचनों से यह ज्ञात होता है कि निगमागमस्वरूपा अपरा विद्या नकार से लेकर यकार तक पांच अक्षरों के रूप में विद्यमान सद्योजात आदि पञ्चब्रह्मों से उत्पन्न हैं । अतः हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि वेदाङ्गसहित निगम और आगम विद्या (अपरा विद्या) कार्यस्वरूपा और पंचाक्षरी परा विद्या कारणस्वरूपा है । पंचाक्षर मंत्र के 'न' कार आदि प्रणव (ओंकार) के घटक (अंश) स्वरूप अकार आदि से अभिन्न हैं और ऋग्वेद आदि के कारण हैं । यह बात क्रियसार में भी प्रतिपादित है—

वेदात्मना तथा व्यक्तः प्रणवो विकृतिं गतः ।
तत्राऽकारो ऋगभवदुकारो यजुरव्ययः ।
मकारः साम सञ्जातो नादस्त्वाथर्वणी श्रुतिः ।।

प्रणव (ओङ्कार) वेद के रूप में अभिव्यक्त हुआ है । वेद प्रणव का विकार है । प्रणव के अन्तर्गत विद्यमान उसका अंशस्वरूप अकार ऋग्वेद के रूप में, उकार अविनाशी यजुर्वेद के रूप में, मकार सामवेद के रूप में और नाद अथर्ववेद के रूप में अवतीर्ण हुआ ।

अतः प्रणवपूर्वक पञ्चाक्षरी विद्या ही परा विद्या है और वही षट्स्थल-ब्रह्मविद्या है । जैसा कि **क्रियासार** के चौबीसवे उपदेश में वर्णित है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्वतन्त्रा स्वप्रकाशा सा शक्तिरेव यथाक्रमम् ।
लिङ्गेष्वेतेषु सम्भूता नाम्ना षड्रूपतामगात् ।।

सूक्ष्मकार्यस्य करणं प्रपञ्चोत्पादनस्य तु ।
कारणीभूतचिच्छक्तेरन्य-पर्याय-रूपिणः ।।

प्रणवस्य स्वरूपाढ्या शान्त्यतीतोत्तराभिधा ।
कलेयं वक्ष्यमाणानां षण्णामाद्या निगद्यते ।।

द्वितीयाऽऽनन्दरूपायाः पराशक्तेस्तथैव च ।
अन्यपर्याय-यमयी शान्त्यतीतकलेति च ।।

स्वतन्त्रा स्वप्रकाशा सा शक्तिरेव यथाक्रमम् ।
लिङ्गेष्वेतेषु सम्भूता नाम्ना षड्रूपतामगात् ।।

परम शिव की स्वयंप्रकाश स्वतन्त्र विमर्शशक्ति ही भावलिंग आदि छः लिंगो में अवतीर्ण होकर छः रूपों में विभक्त हुई ।

सूक्ष्मकार्यस्य करणं प्रपञ्चोत्पादनस्य तु ।
कारणीभूत-चिच्छक्तेरन्य-पर्याय-रूपिणः ।।
प्रणवस्य स्वरूपाढ्या शान्त्यतीतोत्तराभिधा ।
कलेयं वक्ष्यमाणानां षण्णामाद्या निगद्यते ।।

(परमशिव के छः लिंगस्थल हैं— १. भावलिंग, २. प्रसादलिंग, ३. चरलिंग, ४. शिवलिंग, ५. गुरुलिंग और ६. आचारलिंग। परम शिवलिंग ही महालिंगस्वरूप भावलिंग है ।)

उस **परम शिव** की स्वयंप्रकाश विमर्श शक्ति है **चिच्छक्ति** । वह **ओंकार** के रूप में अवतीर्ण होती है । प्रणव (ओंकार) भावलिंग का सूक्ष्म कार्य है और ओंकार के रूप में अवतीर्ण चिच्छक्ति समस्त प्रपञ्च की सृष्टि में कारण है । प्रणव और चिच्छक्ति एक दूसरे के पर्याय हैं । उसकी कारणस्वरूपा कला का नाम है **शान्त्यतीतोत्तरा**, जो वक्ष्यमाण सभी छः कलाओं में प्रथम कही जाती है ।

द्वितीयाऽऽनन्दरूपायाः पराशक्तेस्तथैव च ।
अन्यपर्याय-यमयी शान्त्यतीतकलेति च ।।

(परम शिव का ही अन्यतम लिंगस्थल है **प्रसादलिंग**। प्रसादलिंग के रूप में अवतीर्ण) उसकी विमर्शशक्ति परा शक्ति आनन्द स्वरूपा है । उसका अन्यतम पर्याय है

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

औन्मुख्यलक्षणायाः स्यादादिशक्तेस्तथैव च ।
अन्यपर्याय-वमयी शान्तिस्तार्तीयकी कला ।।

सूक्ष्मक्रियालक्षणाया इच्छाशक्तेस्तथैव च ।
विद्याकला तुरीयान्यपर्याया शिमयी भवेत् ।।

बहिर्मुखी ज्ञानशक्तेरन्यपर्यायरूपिणः ।
मकारस्य स्वरूपा च प्रतिष्ठा पञ्चमी कला ।।

स्थूलोद्यमक्रिया-शक्तेरन्यपर्याय-रूपिणः ।
नकाररूपिणी षष्ठी सा निवृत्तिकलाभिधा ।।

नमः शिवाय इस पञ्चाक्षर महामंत्र का अन्तिम वर्ण यकार। उसकी द्वितीय कला **शान्त्यतीतकला** नाम से प्रसिद्ध है ।

औत्सुक्यलक्षणायाः स्यादादिशक्तेस्तथैव च ।
अन्यपर्याय-वमयी शान्तिस्तार्तीयिकी कला ।।

(परम शिव का तृतीय लिंग स्थल है **चरलिंग** ।) उसकी विमर्श-शक्ति **औत्सुक्य** के स्वरूप में **आदिशक्ति** के नाम से विख्यात है । उसका अन्यतम पर्याय है पञ्चाक्षर मंत्र का चतुर्थ वर्ण 'वा' कार । उसकी तृतीय कला **शान्तिकला** है ।

सूक्ष्मक्रियालक्षणाया इच्छाशक्तेस्तथैव च ।
विद्याकला तुरीयाऽन्यपर्याया 'शि'मयी भवेत् ।।

(परम शिव का अन्यतम लिंग स्थल है **शिवलिंग**) उसकी विमर्शशक्ति **सूक्ष्म क्रिया** के स्वरूप में अवस्थित रहती है और **इच्छाशक्ति** के नाम से प्रसिद्ध है । उसकी चौथी कला **विद्याकला** के नाम से संबोधित है और उसका अन्यतम पर्याय है पञ्चाक्षर महामंत्र का चतुर्थ अक्षर 'शि' कार ।

बहिर्मुखी ज्ञानशक्तेरन्यपर्यायरूपिणः ।
मकारस्य स्वरूपा च प्रतिष्ठा पञ्चमी कला ।।

(परम शिव का अन्यतम लिंगस्थल है **गुरुलिंग** ।) उसकी विमर्श-शक्ति है बहिर्मुखी **ज्ञानशक्ति** । उसकी पांचवी कला **प्रतिष्ठा** संज्ञक है, तथा उसका अन्यतम पर्याय है पंचाक्षर महामंत्र का द्वितीय वर्ण 'म'कार ।

स्थूलोद्यम-क्रियाशक्तेरन्य-पर्याय-रूपिणः ।
नकाररूपिणी षष्ठी सा निवृत्तिकलाभिधा ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति स्वतन्त्रस्वप्रकाशताशक्तेरेव चिच्छक्त्यपरपर्याय-प्रणवसहित-यकारादि-नकारान्ता पञ्चाक्षरीविद्यात्मकत्वादियमेव कारणविद्या पराशब्दमयीत्युच्यते, **शिवा शब्दमयी प्रोक्ता शम्भुश्चार्थमयः स्मृत** इति स्मृतेः। अनयैव महामनुरूपया लिङ्गाङ्गसामरस्योपदेशः कर्तव्यः। तदुक्तं **क्रियासारे** चतुर्थोपदेशे—

लिङ्गाङ्गयोः सामरस्यं महावाक्योपदेशवत्।
पञ्चाक्षरमहामन्त्राद् बोधनीयं विपश्चिता॥ इति,

एकोनविंशोपदेशे च '**पञ्चाक्षरार्थतश्चेममर्थं शिष्यस्य बोधयेत्**' इति च।

(परम शिव का अन्यतम लिंगस्थल है **आचारलिंग**।) उसकी विमर्श शक्ति है **स्थूल उद्यमस्वरूपा क्रियाशक्ति**। उसकी छठी कला है **निवृत्ति कला**। उसका अन्यतम पर्याय है पंचाक्षर मंत्र का प्रथम अक्षर 'न'कार। इस प्रकार चिच्छक्ति, परा शक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति नामों से प्रसिद्ध परमशिव की स्वयं प्रकाश विमर्शशक्ति के छः रूप हैं। प्रणव और (पंचाक्षर महामंत्र के व्युत्क्रम से) 'य'कार से 'न'कार तक पांच अक्षर यथाक्रम उनके पर्याय हैं। यही पंचाक्षरी विद्यास्वरूप होने से कारणविद्या है। इसी को परा शब्दमयी कहते हैं। यह शक्ति-स्वरूपिणी परा विद्या वाचक है, उसका वाच्यार्थ है परम शिव। जैसा कि स्मृतिवचन है—

शिवा शब्दमयी प्रोक्ता शम्भुश्चार्थमयः स्मृतः।

शक्ति और शिव परस्पर संयुक्त हैं। प्रणवपूर्वक शब्दमयी पंचाक्षरी विद्या साक्षात् शिवा, शिवशक्ति है परमशिव अर्थस्वरूप है। अत एव कालिदास पार्वती-परमेश्वर का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतित्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

गुरु शिष्य को इसी प्रणवपूर्वक पंचाक्षर-महामंत्र-स्वरूपा परा विद्या के द्वारा लिङ्गाङ्गसामरस्य का उपदेश दे। जैसा कि **क्रियासार** के चतुर्थ उपदेश में प्रतिपादित है—

लिङ्गाङ्गयोः सामरस्यं महावाक्योपदेशवत्।
पञ्चाक्षरमहामन्त्राद् बोधनीयं विपश्चिता॥

जिस प्रकार **तत्त्वमसि** इस महावाक्योपदेश के द्वारा षट्स्थल ब्रह्मोपदेश दिया जाता है, उसी प्रकार विद्वान् गुरु का कर्तव्य है कि वह पंचाक्षर महामंत्र द्वारा शिष्य को लिङ्गाङ्गसामरस्य का उपदेश दे। उन्नीसवे उपदेश में यह प्रतिपादित है कि पञ्चाक्षरी महाविद्या के प्रत्येक अक्षर का अर्थबोध कराते हुए शिष्य को परम अर्थस्वरूप परम शिव के षट्स्थलों का साक्षात्कार कराना चाहिए।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पञ्चाक्षरीविद्याया अवेदबाह्यत्वम्

नन्वस्तु प्रणवोपेतपञ्चाक्षरीविद्यायाः कारणरूपत्वं परत्वम्। **तत्राऽपरा ऋग्वेद** इत्यादिना अपरविद्यां निरूप्य **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते** इति परायाः विद्यायाः पृथग् निरूपणेनाऽस्या ऋग्वेदादिबाह्यत्वस्यैव ज्ञायमानत्वात्, तद्बाह्यत्वे तस्या मुक्तिसाधनत्वाऽनुपपत्तेः,

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।।

इति स्मृतेः कुदृष्टित्वादनुपादेयत्वापत्तेः। किञ्च, **आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य** इति **बृहदारण्यक**-विधिवाक्येन श्रुतिवचनैरेव श्रवणस्य मोक्षोपयोगित्वेन विहितत्वात् श्रुतिवचनभिन्नवचनैरविहितत्वात् परायास्त्वदभिमताया विद्यायाः कथं मोक्षप्रापकत्वम्? **नीलकण्ठशिवाचार्योऽप्याह क्रियासारे**—

वेदबाह्य परा विद्या मुक्तिहेतु कैसे?

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भले ही प्रणवपूर्वक पञ्चाक्षरी विद्या कारणरूपा परा विद्या हो (तथा ऋग्वेदादिरूपा कार्यरूपा अपरा)। परन्तु पूर्वोक्त मंत्र में **तत्राऽपरा ऋग्वेदः** इत्यादि मंत्रभाग के द्वारा अपरा विद्या का निरूपण करने के उपरान्त **अथ परा, यया तदक्षरमभिधीयते** इस प्रकार परा विद्या का पृथक् निरूपण किया गया है। अतः यह प्रतीत होता है कि परा विद्या ऋग्वेद आदि से पृथक् और वेदवाह्य है। ऐसी स्थिति में परा विद्या मुक्ति का साधन कैसे होगी? दोनों की संगति बैठ नहीं रही है। यतः—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।।

ऐसा स्मृति वचन है। इसका अर्थ यह है कि जो वेद से बहिष्कृत वेदबाह्य स्मृतियाँ अथवा जो कोई कुदृष्टियां, कुतर्कपूर्ण विचारधाराएं हैं, वे सभी निष्फल, निष्प्रयोजन, व्यर्थ हैं। क्योंकि मरणोपरान्त जीव को वे अंधेरे में ढकलेनेवाली तामस प्रवृत्ति की हैं।

इस स्मृतिवचन के अनुसार परा विद्या कुदृष्टि, कुतर्कपूर्ण विचारधारा होगी, अत एव उस पर अनुपादेयता का आक्षेप किया जायगा। और भी, **आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः** यह **बृहदारण्यकोपनिषद्** का विधिवाक्य है, जो आत्म-साक्षात्कार, उसका श्रवण, मनन एवं निरन्तर ध्यान का उपदेश दे रहा है। इस प्रकार श्रुतिवचन ही मोक्षोपयोगी हैं। इनसे भिन्न वचन इस प्रकार विधायक न होने के कारण मोक्षोपयोगी नहीं हैं। ऐसी स्थिति में परा विद्या मोक्षप्राप्तिहेतु कैसे होगी? जैसा कि नीलकण्ठ शिवाचार्य **क्रियासार** में कहते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

श्रोतव्यवाक्यविहितं श्रवणं श्रुतिवाक्यतः ।
भाषाप्रबन्धैर्यद् ज्ञानं यच्च पौरुषवाक्यतः ।।

न तस्य चाऽत्र ज्ञानस्य पुरुषार्थैकहेतुता ।
तस्माद् वैदिकविज्ञानं साक्षान्मुक्तिप्रदं नृणाम् ।। इति ।

तस्मादवैदिकत्वात् त्वदभिमतप्रणवसहितपञ्चाक्षरीविद्यायाः स्वार्थानुसन्धानाभ्यासदार्ढ्यप्रयुक्तसाक्षात्कारद्वारा न शक्तिविकासात्मक-शिवत्वप्राप्तिरूप-मुक्तिप्रापकत्वमिति प्राप्ते ब्रूमः — यजुर्वेदश्रीरुद्राध्याय-पञ्चब्रह्मोपनिषत्-पञ्चाक्षरजाबालोपनिषत्-सिद्धान्तशिखोपनिषत्-भस्मजाबालोपनिषत्-त्रिपुरतापिन्युपनिषदादिप्रसिद्धप्रणवोपेत-पञ्चाक्षरीविद्याया न वेदबाह्यत्वं वक्तुं शक्यते, येन तस्या मुक्त्यसाधनता स्यात् । किन्तु वेदान्तर्गतत्वमेव । तर्हि ततः— **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते** इति विभागस्य वैयर्थ्यं स्यात्, स्याच्च पराया विद्याया

श्रोतव्यवाक्यविहितं श्रवणं श्रुतिवाक्यतः ।
भाषाप्रबन्धैर्यद् ज्ञानं यच्च पौरुषवाक्यतः ।।

न तस्य चात्र ज्ञानस्य पुरुषार्थैकहेतुता ।
तस्माद् वैदिकविज्ञानं साक्षान्मुक्तिप्रदं नृणाम् ।।

अर्थात् "श्रुति वचन ही श्रवणयोग्य होते हैं । उनमें विहित उपदेश परमपुरुषार्थ मोक्ष के एकमात्र हेतु होते हैं । श्रुतिवचन अपौरुषेय होने के कारण मोक्षसाधन हैं । किन्तु वैदिकेतर भाषाप्रबन्धों से अथवा पौरुषेय वाक्यों से जो ज्ञान होता है, वह मोक्ष का एकमात्र कारण नहीं है । अतः वैदिक विज्ञान ही जीवों के लिए साक्षात् मुक्तिप्रद है ।" अतः प्रणवपूर्वक पंचाक्षरी विद्या अवैदिक होने के कारण उसके अक्षरानुसन्धान, पुनः पुनः प्रवृत्ति और उसके द्वारा दृढ़तापूर्वक किये गए साक्षात्कार द्वारा चितिशक्ति का विकास नहीं हो सकता । चितिशक्ति का विकास परम शिवभाव की प्राप्ति है, और वही मुक्ति है । वह अवैदिक परा विद्या द्वारा कैसे सम्भव है?

समाधान, परा विद्या वेदबाह्य नहीं है

इसका समाधान यह है कि प्रणवसहित पञ्चाक्षरी विद्या को वेदबाह्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह यजुर्वेद के श्रीरुद्राध्याय-पञ्चब्रह्मोपनिषद् -पञ्चाक्षर-जाबालोपनिषद् सिद्धान्तशिखोपनिषद्-भस्मजाबालोपनिषद्-त्रिपुरतापिनी उपनिषद् आदि उपनिषदों में प्रसिद्ध है । जिससे उसे मुक्ति का साधन क्यों न माना जाय । वह वेदों के अन्तर्गत ही है, वेदबाह्य नहीं । क्योंकि उपनिषत्साहित्य ब्राह्मणों का भाग है । **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद-नामधेयम्**-ऋगादिसंहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ वेद-नाम से संबोधित हैं । पुनश्च यह

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मोक्षप्रापकत्वोक्तेरनौचित्यमिति चेन्न; कारणकार्यरूप-पृथिव्योः पृथिवीत्वेनैकत्वेऽपि पृथिवी द्विविधा–नित्या कारणरूपा, अनित्या कार्यरूपा चेति विभाजककारणत्वकार्यत्वभेदेन विभागवदत्रापि परशब्दितकारणात्मिकायाः प्रणवसहितपञ्चाक्षरीविद्यायाः, अपरशब्दित-कार्यरूपषडङ्गसहित-ऋग्वेदादिविद्यायाश्च वेदत्वेनैक्येऽपि विभाजककार्यत्व-कारणत्वधर्मभेदेन विभागोपपत्तेरवैदिकत्वाऽनापत्तेर्मुक्त्युपपत्तेर्न **यया तदक्षरमधिगम्यते** इत्युक्तेरनौचित्यं च। तदुक्तमागमे— **पञ्चाक्षरी परा विद्या शिवज्योतिरवाप्तये**। इति शिवागमानुकूल्येनैव वेदार्थस्यापि वर्णनीयत्वात्, **वेदसिद्धान्तयोरैक्यमेकार्थप्रतिपादनात्** (सि. शि. ५.१३) इति **रेणुकभगवत्पादाचार्येणाप्युक्तत्वाद्** अत्र मोक्षप्रापिका परा विद्या कारणरूप-प्रणवसहित-पञ्चाक्षरीविद्यैव। नान्यथा परविद्याशब्दो व्याख्यातुं शक्यते।

प्रतिप्रश्न उठता है कि परा विद्या को वेद के अन्तर्गत मानने पर **अथ परा यया तदक्षरमभिधीयते** इस प्रकार किया गया विद्या-विभाग निष्प्रयोजन होगा और परा विद्या को मुक्तिदात्री कहना भी अनुचित होगा। इस प्रकार का प्रतिप्रश्न करना भी ठीक नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार पृथिवी में पृथिवीत्व धर्म रहता है, इस दृष्टि से वह एक है, किन्तु कार्यकारणभाव की दृष्टि से पृथिवी दो प्रकार की है— १. नित्या कारण रूपा और २. अनित्या कार्य रूपा। इस प्रकार पृथिवी को दो विभागों में बाटने वाले दो तत्त्व हैं— १. कारणत्व और २. कार्यत्व। उसी प्रकार यद्यपि विद्या वेदत्व की दृष्टि से एक है, तथापि उसका विभाग कारणत्व और कार्यत्व इस धर्मभेद से किया गया है। परा विद्या पञ्चाक्षरी कारणस्वरूपा और अपरा विद्या वेद-वेदांग-विद्या कार्यस्वरूपा है। अतः विद्याविभाग निष्प्रयोजन नहीं है, परा विद्या को वेदबाह्य कहना संगत नहीं है और इसी से उसकी मुक्तिप्रदायकता की भी संगति बैठती है। अतः **यया तदक्षरमभिधीयते** इस प्रकार का कथन भी अनुचित नहीं है। जैसा कि आगमवचन है—

पञ्चाक्षरी परा विद्या शिवज्योतिरवाप्तये।

पञ्चाक्षरी परा विद्या परम शिव की ज्योति, प्रकाश प्राप्त करने के लिए है। साथ ही वह निगमागमसम्मत भी है, क्योंकि उसमें वर्णित वेदार्थ शिवागमों के अनुसार ही हैं। **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** भी यह प्रतिपादित करते हैं वेद और शिवागम (सिद्धान्त) दोनों एक है, क्योंकि दोनों में एक ही अर्थ का (परम शिव का) प्रतिपादन है। इसलिए परा विद्या ही मुक्तिदात्री है, वह प्रणवसहित पञ्चाक्षरी विद्या ही है, जो अपरा विद्या की कारणस्वरूपा होती है। दूसरी रीति से **परा विद्या** शब्द की व्याख्या संभव नहीं है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इतरेषां व्याख्यातॄणां मतेऽस्वरसोद्भावनम्; (१) तत्राद्वैतमतवादः

परेषामन्यथा व्याख्यानेऽस्वारस्यं प्रदर्शयिष्यामः। तत्सुधीभिरवलोकनीयम्। यदि पराविद्याशब्देन उपनिषद्ग्रन्थसन्दर्भविशेषस्य प्रतिपाद्यत्वम्, ऋग्वेदादिशब्देन मुख्यया वृत्त्या ऋग्वेदादीनामेव प्रतिपाद्यत्वम्, तदा ब्रह्मप्रतिपादकोपनिषदां वेदबहिर्भावप्रसङ्गेन **"या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः"** इत्युक्तरीत्या असदर्थत्वमेव स्यादित्यतो ऋग्वेदादिशब्दानां मुख्यार्थमाश्रित्य परैरुपनिषदां वेदबाह्यत्ववारणाय पराविद्याशब्दोऽत्रोपनिषद्-वेद्याक्षरविषयकज्ञानवाचीति व्याख्यातम्।

अन्य व्याख्याताओं के प्रतिपादन में अस्वारस्य

१. अद्वैतमतवाद

अन्य भाष्यकारों ने इसकी विपरीत व्याख्या की है। उसका अस्वारस्य क्या है इस पर प्रकाश डाला जा रहा है, जिसकी और सुधीजन ध्यान दें।

[श्रीमदादिशंकरभगवत्पादाचार्य इस मंत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं— 'ननु ऋग्वेदादिबाह्या, तर्हि सा कथं परा विद्या स्यात् मोक्षसाधनं च। **'या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः'** इति हि स्मरन्ति। कुदृष्टित्वान्निष्फलत्वादनादेया स्यात्। उपनिषदां च ऋग्वेदबाह्यत्वं स्यात्। ऋग्वेदादित्वे तु पृथक्करणमनर्थकम्। अथ कथं परेति? न, वेद-विषयविज्ञानस्य विवक्षिततत्वात्। उपनिषद्वेद्याक्षरविषयं हि विज्ञानमिह परा विद्येति प्राधान्येन विवक्षितम्, नोपनिषच्छब्दराशिः। वेदशब्देन तु सर्वत्र शब्दराशि- र्विवक्षितः। शब्दराश्यधिगमेऽपि यत्नान्तरमन्तरेण गुर्वभिगमनादिविलक्षणं वैराग्यं च नाक्षराधिगमः संभवतीति पृथक्करणं ब्रह्मविद्यायाः परा विद्येति। *(मुण्डकोपनिषत् १.१.५ शांकर भाष्य)*

इसी मत का संक्षिप्त अभिप्राय और उसके अस्वारस्य को प्रकट करते हुए ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री शक्तिविशिष्टाद्वैतमत की प्रतिष्ठापना कर रहे हैं।]

आचार्य शंकर अपने पूर्ववर्ती मत को उपस्थित करते हुए अपने मत की प्रतिष्ठापना इस प्रकार कर रहे हैं— यदि 'परा विद्या' शब्द के द्वारा उपनिषद्-ग्रन्थों का विशिष्ट संदर्भ प्रतिपाद्य हो और 'ऋग्वेदः', 'यजुर्वेदः' आदि शब्दों के द्वारा मुख्य वृत्ति अभिधा से ऋग्वेदादि वैदिक साहित्य ही विवक्षित हो, तो जो उपनिषदें ब्रह्म का प्रतिपादन करती हैं, वे वेदबाह्य होंगी और **या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः** इस वचन के अनुसार उनका विवेचन अप्रामाणिक और असदर्थप्रकाशक माना जाने लगेगा। अतः ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि शब्दों को वाचक मानते हुए उनके मुख्य अभिधेय अर्थ को स्वीकार करना चाहिए और उपनिषदों पर वेदबाह्यता के आक्षेप का निवारण करने के लिए 'परा विद्या' शब्द को उपनिषदों में निहित ज्ञानराशि का वाचक समझना चाहिए।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

(२) विशिष्टाद्वैतमतवादः

अत्रेदमस्वारस्यम्— **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इत्यत्र सकृत्प्रयुक्त एष विद्याशब्दोऽसत्यपि साधारणे प्रवृत्तिनिमित्ते ऋग्वेदादिग्रन्थसन्दर्भलक्षणामपरविद्यां ब्रह्मज्ञानलक्षणां परविद्यां च वक्तीति दोषोऽस्ति। अस्मन्मते स नास्ति। ऋग्वेदादिशब्दानामपि तज्जन्यज्ञानपरत्वात्।

(३) शक्तिविशिष्टाद्वैतमतवादः

किञ्च, पराव्याख्याने ऋग्वेदादिवेद्यविलक्षणत्वाद् ब्रह्मणो **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य** इति स्मृतिः पीड्येत। अत ऋग्वेदादिजन्यज्ञानं ब्रह्मविषयकमेवेत्युक्तम्। अतः परापरज्ञानशब्दितापरोक्षपरोक्षज्ञानविषयत्वं ब्रह्मण एवेत्यपरेण व्याख्यातं तदप्यसदेव, अपरोक्तरीत्यैव परमतेऽपि दोषसम्भवात्। तथा सकृत्प्रयुक्त एष विद्याशब्दोऽसत्यपि साधारणे प्रवृत्तिनिमित्ते ऋग्वेदादिजन्यपरोक्षज्ञानमपरोक्षज्ञानं च कथं लक्षयति? न च ऋग्वेदादिशब्दराशिरूपग्रन्थस्य ज्ञानस्य चाऽत्यन्तभेदात् तादृशदोषोऽस्तीत्युक्तम्, न त्वत्र

---

२. विशिष्टाद्वैतमतवाद

इस मत के अस्वारस्य को प्रकट करते हुए कुछ लोग इसका यह समाधान करते हैं— इस मत के अस्वारस्य में यह अरुचि-बीज है। '**द्वे विद्ये वेदितव्ये**' इस अँश में एकबार प्रयुक्त 'विद्या' शब्द सामान्यतया प्रवृत्ति-निमित्त न होने पर भी 'अपरा विद्या' को ऋग्वेदादि ग्रन्थों के संदर्भ में और 'परा विद्या' को ब्रह्मज्ञानस्वरूप प्रतिपादित करता है यही दोष है। हमारे मत में वह दोष नहीं है, क्योंकि हम ऋग्वेद आदि शब्दों को भी उन शब्दों से उत्पन्न ज्ञानपरक ही मानते हैं, उसे केवल शब्दराशि नहीं मानते। ऋग्वेदादि को मात्र शब्दराशिस्वरूप मानने पर ब्रह्म ऋग्वेदादि शब्दराशि से विलक्षण होगा और **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः** (सभी वेदों से केवल ब्रह्मस्वरूप मैं ही उसका वेद्य- विषय हूँ।) यह स्मृतिवचन बाधित होगा। अतः ऋग्वेदादि शब्दराशि से उत्पन्न ज्ञान भी ब्रह्म से संबद्ध है। दोनों में मात्र यही अंतर है कि 'ज्ञान' वाचक 'विद्या' शब्द एकत्र 'परा' शब्द से एवं अन्यत्र 'अपरा' शब्द से जुडा हुआ है। 'परा विद्या' शब्द से अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान और 'अपरा विद्या' शब्द से परोक्ष (अप्रत्यक्ष-परंपरा-प्राप्त) ज्ञान का बोध होता है, चाहे वह ज्ञान अपरोक्ष हो अथवा परोक्ष ब्रह्मविषयक ही हो।

शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन की दृष्टि

विशिष्टाद्वैतमत का निराकरण— इस प्रकार ब्रह्मश्री शंकर शास्त्री प्रथम अद्वैत-मत की उपस्थापना करते हैं और उसमें अरुचिबीज दिखलाते हुए पूर्वोक्त रीति से विशिष्टाद्वैतमत की उपस्थापना और उसका निराकरण इस प्रकार करते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तादृशदोषोऽस्ति परापरशब्दद्वयस्यापि तज्जन्यज्ञानद्वयलक्षकत्वादिति वाच्यम्, तादृशशब्दजन्यज्ञानवैलक्षण्यात्। अन्यथा अपरविद्याशब्देन परोक्षज्ञानं परविद्याशब्देन त्वपरोक्षज्ञानमिति वक्तुमशक्यत्वात्। यदि सकृत्प्रयुक्तविद्याशब्दो ऋग्वेदादिग्रन्थं ज्ञानं च न वक्ति, तदा परोक्षज्ञानमपरोक्षज्ञानं च कथं लक्षयति? परोक्षाऽपरोक्षयोर्ज्ञानयोरप्यत्यन्त-भिन्नत्वात्। किञ्च, परमते परशब्देनैकेन ज्ञाने लक्षणास्वीकारगौरवदोषः। अपरमते पराऽपरशब्दयोर्द्वयोरप्यपरोक्षपरोक्षज्ञानद्वये लक्षणाद्वयस्वीकारात् ततोऽप्यधिको गौरवदोषः।

किञ्च, **तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत** (३.२.१०) इत्युपसंहारवाक्यगतब्रह्मविद्याशब्दस्य **प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्** (१.२.१३) इति द्वितीयखण्डपठितब्रह्मविद्याशब्दस्य **ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह** (१.१.१) इत्युपक्रमगत-ब्रह्मविद्याशब्दस्य चोक्तिकर्मतयैव पठ्यमानत्वाद् विद्याशब्देन यदि ज्ञानं लक्ष्यते, तर्हि

इस प्रकार का व्याख्यान भी तथ्यपरक नहीं है। विशिष्टाद्वैत की सरणी से ही उसमें दोष निकाला जा सकता है। एक बार प्रयुक्त 'विद्या' शब्द साधारणतया प्रवृत्ति- निमित्त न होने पर भी ऋग्वेदादिजन्य परोक्ष ज्ञान एवं अन्यत्र अपरोक्ष ज्ञान को किस प्रकार लक्षित करता है? आप कहते हैं कि ऋग्वेदादि शब्दराशि और ब्रह्मज्ञान में अत्यंत अन्तर है, अतः शांकर मत में दोष है। हमारे मत में वह दोष नहीं है, क्योंकि पराशब्द से अपरोक्ष ज्ञान का और 'अपरा' शब्द से परोक्ष ज्ञान का बोध होता है। इस प्रकार आपको नहीं कहना चाहिए। क्योंकि दोनों ज्ञान एक नहीं हो सकते, दोनों ही ज्ञान परस्पर विलक्षण हैं। अन्यथा 'अपर विद्या' शब्द से परोक्ष ज्ञान और परा विद्या शब्द से अपरोक्ष ज्ञान होता है इस प्रकार नहीं कहा जा सकता। यदि एक बार प्रयुक्त 'विद्या' शब्द ऋग्वेदादि ग्रन्थ और ज्ञान का वाचक नहीं हो सकता, तो वह परोक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान को किस प्रकार लक्षित करता है? क्योंकि परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान भी अत्यंत भिन्न हैं। **शांकर मत** में 'पर' शब्द के द्वारा उसका वाक्यार्थ उपनिषद् का विशिष्ट ग्रन्थसंदर्भ न लेकर उपनिषद् वेद्याक्षर ज्ञान लक्ष्यार्थ लेना होगा। अतः अर्थज्ञान के लिए लक्षणा शक्ति को स्वीकार करना होगा यही गौरव दोष है। **विशिष्टाद्वैत मत** के अनुसार परा और अपरा शब्द से अपरोक्ष और परोक्ष ज्ञान इस अर्थबोध के लिए दो बार लक्षणा शक्ति की आवश्यकता होगी। यह उससे भी बढ़कर गौरव दोष होगा।

और भी, **'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत'** (३.२.१०) इस उपसंहार वाक्य में **प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्** (१.२.१३) इस द्वितीय खण्ड में पठित तथा **स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह** (१.१.१) इस उपक्रम मंत्र में प्रयुक्त 'ब्रह्मविद्या' शब्द वाक्य के कर्म के रूप में ही पठित हैं। अतः 'विद्या' शब्द का ज्ञान अर्थ लक्षणागम्य हो, तो वह वाक्य की कर्मकोटि में नहीं आ सकता। साथ ही यदि **द्वे विद्ये**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्रोक्तिकर्मताबाधोऽपि स्यात्। किञ्च, **द्वे विद्ये** इत्यस्य परमपरं चेति ज्ञानं द्विविधमित्यर्थः, तर्हि **वेदितव्ये** इत्यस्याऽसङ्गतिः स्यात्। कथं ज्ञाने ज्ञातव्ये ज्ञानविषये कर्तव्ये भवतः? स्वस्यैव स्वविषयकत्वाभावात्, विषयविषयिणोर्भेदावश्यंभावात्, ज्ञानस्य स्वातिरिक्त-विषयकत्वनियमात्। न **चौदनपाकं पचतीतिवन्निर्देश** इति वाच्यम्, भ्रान्तप्रयोगापत्तेः। विद्याशब्दस्य वेदशब्दसमूहरूपमुख्यार्थस्वीकारे वेदितव्यशब्दस्य च ज्ञातव्यार्थकत्वसामञ्जस्ये मन्दग्राम्यप्रयोगसादृश्यप्रदर्शनपि मन्दबुद्धिविलसितमेव स्यात्।

तस्मादपरविद्याशब्देन यथाश्रुतषडङ्गसहित-सशिरस्क-ऋग्वेदादिशब्दराश्यात्मिकैव विद्या कार्यरूपा विवक्षिता, परविद्याशब्देन महामनुरूपैव कारणविद्या विवक्षितेति बोध्यम्।

वेदनित्यत्वविचारः

किमिदमपूर्वं व्याख्यानम्? कथं वा एवं व्याख्याने **वाचा विरूपनित्यया,**

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

इसका अर्थ पर और अपर यह द्विविध ज्ञान किया जाय तो **वेदितव्ये** यह क्रियापद असंगत होगा। क्योंकि ज्ञान को ही ज्ञान का विषय कैसे बनाया जा सकता है? वह स्वयं ही अपना विषय नहीं हो सकता। ज्ञान विषयी है, विषय नहीं। विषय और विषयी में भेद अवश्यंभावी होता है। ज्ञान का विषय उससे भिन्न होता है, यही नियम है। 'ओदन-पाकं पचति' (भात को पकाता है) इस प्रकार के प्रयोग देखे जाते हैं, उसी प्रकार का यह निर्देश है इस प्रकार प्रतिपादन भी उचित नहीं है, क्योंकि इस प्रकार का प्रयोग भ्रम से भरा होगा। यदि विद्या शब्द का वाक्यार्थ वेदशब्दराशि स्वीकार किया जाय तो 'वेदितव्ये' के 'ज्ञातव्य' अथवा 'ज्ञेय' अर्थ के साथ उसका सामञ्जस्य स्थापित करना पडेगा और ऐसा करना मन्द ग्राम्य प्रयोग के प्रदर्शन जैसा होगा तथा मन्दबुद्धि का विलास ही होगा।

इसलिए यहां पर 'अपरा विद्या' शब्द प्रयोग से श्रुति परंपरागत वेदांगसहित शब्द-राशि ऋग्वेदादि शब्दराशि के रूप में अवस्थित कार्यस्वरूपा वेदविद्या विवक्षित है और 'परा विद्या' शब्द के प्रयोग से स्थूल-सूक्ष्म-पंचाक्षरी महामंत्र के रूप में कारणस्वरूपा विद्या ही विवक्षित है, यह समझना चाहिए।

वेद की नित्यता का विचार

शंका— अब यह प्रश्न उपस्थित होता है यह किस प्रकार की व्याख्या है, जो पहिले नहीं की गयी है। श्रुतियां एवं स्मृतियां ऋग्वेदादि वेदविद्या को नित्य कहती हैं। श्रुति कहती है— **वाचा विरूपनित्यया** (वेदवाणी के नाना रूप हैं और वह नित्य है।) स्मृति कहती है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति श्रुतिस्मृत्योर् ऋग्वेदादिविद्याया अपि नित्यत्ववादिन्योर्विरोधपरिहारः ? इति चेदुच्यते— **निश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद** इति, **तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे** इति, **ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्** इति च श्रुतेः, **योऽयं नकारः सोऽयमकारः स सद्योजातोऽभूद् ऋग्वेदः सम्पुट उच्यते** इत्यादेः, **योऽयं यकारस्तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषः प्रणवः सर्वोत्तर ईशान आकाश आगमो लिङ्गमुच्यत** इत्यन्तायाश्च श्रुतेर् ऋग्वेदादिविद्याया जन्यत्वावगमात्, ग्रीष्मे भूविलीनदूर्वादिर्वर्षाकाले पुनराविर्भाववत् सृष्टेः प्राक् परमेश्वरीविमर्शशक्तिविलीनवेदशब्दराशेः सृष्टिकाले पुनराविर्भावस्याऽभ्युपगमान्न नित्यत्ववादिन्योः श्रुतिस्मृत्योर्विरोधः, बीजाङ्कुरवदवस्थितस्यैव प्रकटीकरणमुत्पत्तिरित्यस्मदभ्युपगमान्न जन्यत्वाऽजन्यत्ववादिन्योः श्रुतिस्मृत्योर्विरोधः । तस्माद्

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

(सर्वप्रथम स्वयम्भू परम शिव ने अनादि अमर नित्य विद्यास्वरूपा वेदवाणी की सृष्टि की, जिससे सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ ।)

यदि शब्दराशिस्वरूप वेदविद्या को कार्यरूपा और पंचाक्षरी विद्या को कारणस्वरूपा माना जाय, तो श्रुतियों एवं स्मृतियों का प्रतिपादन विरुद्ध माना जायगा क्योंकि वे ऋग्वेदादि वेदविद्या की नित्यता प्रतिपादित करती हैं । उसका विरोध-परिहार किस प्रकार होगा?

समाधान— जिस प्रकार कतिपय श्रुतियां एवं स्मृतियां वेद की नित्यता का प्रतिपादन करती हैं, उसी प्रकार कुछ श्रुतियां वेद के जन्यत्व एवं अजन्यत्व का विचार करती हैं । उनमें परस्पर विरोध भी नहीं है । **निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः** यह श्रुतित्रयी को परम पुरुष का निश्वास कहती है । **तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे** यह पुरुषसूक्त का मंत्रभाग ऋग्वेद एवं सामवेद की उत्पत्ति सर्वहुत् यज्ञ से मानता है । **ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्** यह श्रुतिवचन परम शिव को सर्वविद्याओं का स्वामी स्वीकार करता है । **योऽयं नकारः सोऽयमकारः स सद्योजातोऽभूद् ऋग्वेदः सम्पुट उच्यते** से प्रारम्भ कर **योऽयं यकारस्तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषः प्रणवः सर्वोत्तर आकाश आगमो लिङ्गमुच्यते** तक का **सिद्धान्तशिखोपनिषद्** का मंत्रभाग ऋग्वेदादि-आगमान्त विद्या को उत्पन्न होनेवाला कहता है । इसी प्रकार कतिपय श्रुतियां वेद के जन्यत्व और अजन्यत्व का प्रतिपादन करती हैं और उनका नित्यत्यवादिनी श्रुतियों और स्मृतियों से किसी प्रकार का विरोध नहीं है । जैसे गर्मी में धरती के गर्भ में छिपी हुई दूर्वा आदि का वर्षाकाल में पुनः प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार सृष्टि के पूर्व जो शब्दराशिस्वरूप वेद परमेश्वर की विमर्शशक्ति में अपने को विलीन करता है वही सृष्टिकाल

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ऋग्वेदाद्यपरविद्याया: कार्यत्वमन्यथा शास्त्रयोनित्वाधिकरणविरोध: स्यात्, तत्र ऋग्वेदादिशास्त्रयोनित्वस्य शक्तिविशिष्टपरशिवब्रह्मण उक्तत्वात्।

ननु ऋग्वेदादीनां सृष्टे: प्रागपि सूक्ष्मरूपेण स्थितत्वे **न सन्न चासच्छिव एव केवल:, एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे, नेह नानास्ति किञ्चन, न द्वितीयमस्ति, नान्यत्किञ्चन मिषत्** इत्यादिश्रुतिषु सृष्टे: प्राग् द्वितीयवस्तुनिषेध: कथमुपदिश्यत इति चेन्न; तत्र परशिवब्रह्मगतविमर्शशक्त्यपरपर्यायप्रज्ञाशक्तेरनिषिद्धत्वात्। अन्यथा **प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी** इत्युत्तरोक्तं शिवाविर्भूतत्वं प्रज्ञाशक्तेरनुपपन्नं स्यात्।

चत्वारो वाक्प्रवृत्तय:

तस्माद् ऋग्वेदादीनां वैखरीवाग्रूपाणां सृष्टे: प्रागपि परशिवशक्तौ सूक्ष्मरूपेण स्थितत्वान्नित्यत्वम्, सृष्टिकाले पुन: स्थूलरूपेणाऽऽविर्भूतत्वादनित्यत्वं कार्यत्वमिति सिद्धम्। **चत्वारि वाक् परिमिता पदानि···· गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो**

में प्रगट होता है इसका हमें ज्ञान है, अत: नित्यवादिनी श्रुतियों से जन्यत्व अजन्यत्व का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों के साथ हमारा कोई विरोध नहीं है। अत एव ऋग्वेदादि अपरा विद्या को कार्य के रूप में देखना चाहिए। अन्यथा मीमांसादर्शन के शास्त्रयोनित्वाधिकरण का विरोध होगा। वहां शक्तिविशिष्ट परशिवब्रह्म को ऋग्वेदादि शास्त्रों का योनि कहा गया है।

प्रश्न— पुनश्च यह प्रश्न उठता है कि एकमात्र परमशिव की सत्ता बतानेवाली अनेक श्रुतियां सृष्टि के पूर्व द्वितीय वस्तु का निषेध करती है, **न सन्न चासच्छिव एव केवल:, एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे, नेह नानास्ति किञ्चन, न द्वितीयमस्ति, 'नाऽन्यथा किञ्चन मिषत्'** इत्यादि श्रुतियों में ऐसा ही है। यह कैसे?

समाधान— इसका उत्तर यह है कि परम शिव के साथ उसकी विमर्शशक्ति रहती है, जिसका अपर पर्याय प्रज्ञा शक्ति है, उसका यहां निषेध नहीं किया गया है, अन्यथा **प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी** इस मंत्रभाग द्वारा परम शिव से प्रज्ञाशक्ति के साथ आविर्भाव का वर्णन असंगत होगा।

वाणी की चार प्रवृत्तियां

ऋग्वेदादि वेदविद्या एवं अट्ठाईस आगम वैखरी वाणी के रूप में आविर्भूत हैं और सृष्टि के पूर्व भी परम शिव की विमर्श-शक्ति में सूक्ष्म रूप से अवस्थित हैं, अत: वे नित्य हैं। सृष्टि के समय वे पुन: स्थूल रूप से प्रकट होते हैं, अत: अनित्य एवं कार्यस्वरूप भी हैं, यह सिद्ध होता है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मनुष्या वदन्ति इति श्रुतेरङ्कुरायमाणाऽङ्कुरित-पल्लवित-फलितरूप—सूक्ष्मा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखर्यपरपर्यायाऽऽरम्भ-विवक्षाऽध्यवसायोक्तिरूपासु चतुर्विधासु वाक्षु **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै** इति श्रुत्युक्तरीत्या वेदशब्दजालमुपदेष्टुर्महेश्वरस्योक्तेः कण्ठदेशे फलितरूपाया उन्मेषक्रमवैलोम्यतो हृदये पल्लविताऽध्यवसायोक्तिरूपत्वात्, तस्या नाभावङ्कुरित-विवक्षा-वाक्-स्वरूपत्वात् तस्या आधारेऽङ्कुरायमाणाऽऽरम्भवागात्मकत्वात्, तस्या विमर्शशक्त्यात्मकत्वात्, तस्माद् वैखरीवाग्रूप-ऋग्वेदादिविद्यायाः स्थूलत्वम् ।

यदुक्तम्—

स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
वैखरी वाक् प्रयोक्तॄणां प्राणवृत्तिनिबन्धना ।।

श्रुति कहती है— **चत्वारि वाक् परिमिता पदानि ····गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति** । (वाणी के चार परिमित स्थान, रूप हैं, उनमें तीन गुहा में, गुप्त स्थानों में रहते हैं और व्यक्त-प्रकट नहीं होते । चौथी वैखरी वाणी को मनुष्य बोलते हैं ।) इस श्रुतिवचन के अनुसार वाणी के चार रूप हैं— आरम्भ, विवक्षा, अध्यवसाय एवं उक्ति । इन्हीं के यथाक्रम दूसरे पर्याय है— सूक्ष्मा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । इनमें सूक्ष्मा (आरम्भ) का रूप अङ्कुरायमाण, पश्यन्ती (विवक्षा) का रूप अङ्कुरित, मध्यमा (अध्यवसाय) का रूप पल्लवित और वैखरी (उक्ति) का रूप फलित होता है । **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै** यह श्रुति का उद्घोष है । इसके अनुसार परम शिव ने सर्वप्रथम ब्रह्मदेव की सृष्टि की और उसे वेदोपदेश दिया । इस श्रुति की दृष्टि से वेदोपदेशक महेश्वर के कण्ठ में फलित रूपा **वैखरी** (उक्ति) वाक् रहती है । उन्मेष क्रम के विलोम से हृदय में वही पल्लवित होकर **मध्यमा** (अध्यवसाय) का रूप धारण करती है । वही नाभि-प्रदेश में अङ्कुरित होकर **पश्यन्ती** (विवक्षा) बन जाती है और वही मूलाधार में अङ्कुरायमाण होकर **सूक्ष्मा** (आरम्भ) स्वरूप में नित्य वास करती है । **विमर्श-शक्ति** अथवा **प्रज्ञा-शक्ति** की ही ये चार वाङ्मय प्रवृत्तियां हैं । अतः चतुर्विधा वाणी विमर्श-रूपिणी ही है । ऋग्वेदादि वेदविद्या वैखरी- रूपा है तथा स्थूल-कार्यस्वरूपा है ।

जैसा कि कहा है—

स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
वैखरी वाक् प्रयोक्तॄणां प्राणवृत्तिनिबन्धना ।।

वैखरी वाणी (उक्ति) स्वर-व्यंजनादि वर्णों के स्वरूप में वायु के आघात से कण्ठादि स्थानों में विस्तार पाकर प्रयोग-कर्ताओं की प्राणवृत्ति द्वारा आबद्ध होती हुई कण्ठदेश में फलित होती है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

केवलं बुद्ध्युपादाना क्रमरूपानुपातिनी ।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ।।
अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा ।
स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी ।। इति ।

नन्वस्तु सूक्ष्मवागात्मकविमर्शशक्तेरेव ऋग्वेदादि-कारणत्वम्, किं पुनः षडक्षरीविद्यायाः कारणत्वप्रतिपादनेन? इति चेन्न,

स्वतन्त्रा स्वप्रकाशा सा शक्तिरेव यथाक्रमम् ।
लिङ्गेष्वेतेषु सम्भूतनाम्ना षड्रूपतामगात् ।।

इत्यादिभिः पूर्वोदाहृत-वातुलोत्तरश्लोकैर्विमर्शशक्तेः षडक्षर्यात्मकत्वोपदेशात् ।

केवलं बुद्ध्युपादाना क्रमरूपानुपातिनी ।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ।।

मध्यमा (अध्यबसाय) वाणी केवल बुद्धि के उपादान से प्राणवृत्ति का अतिक्रमण कर हृदय में पल्लवित होती है ।

अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा ।
स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी ।।

अविभक्त होने के कारण पश्यन्ती (विवक्षा) वाणी का क्रम सभी ओर से संहृत रहता है और वह नाभिदेश में अङ्कुरित होती है । सूक्ष्मा (आरम्भ अथवा परा) वाणी अनपाय (अविकृत) स्थिति में मूलाधार में स्वप्रकाश रूप में अन्तःप्रविष्ट होकर अङ्कुरायमाण रहती है ।

प्रश्न— सूक्ष्म वाणी के रूप अवतीर्ण विमर्श-शक्ति ही ऋग्वेदादि विद्या का कारण हो यह सम्भव है, किन्तु षडक्षरी महामंत्र-विद्या को ऋग्वेदादि ब्रह्मविद्या का कारण कैसे माना जाय?

उत्तर— इस प्रश्न का उत्तर यही है कि इसमें अनेक प्रमाण हैं । **स्वतन्त्रा स्वप्रकाशा सा** इत्यादि श्लोक, जो **क्रियासार** के चौबीसवे उपदेश में उद्धृत हैं और **वातुलागम** के उत्तर भाग से लिए गए हैं, उसमें षडक्षरी मंत्रविद्या का ही उपदेश वर्णित है, इन आगम श्लोकों के अनुसार ही **स्वप्रभानन्द शिवाचार्य** ने भी अपनी **शिवाद्वैतमंजरी** में **सा स्वतन्त्रा स्वप्रकाशताशक्तिरेव** इत्यादि से लेकर **षड्रूपतामगात्** तक वचनों से एवं **तद्वाचकषडक्षरीरूपताम्** इत्यादि वचनों द्वारा विमर्शशक्ति को ही षडक्षरी के रूप में

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एतदागमश्लोकानुसारेणैव **स्वप्रभानन्दशिवाचार्यैरपि शिवाद्वैतमञ्जर्यां** सा स्वतन्त्र-स्वप्रकाशता-शक्तिरेव क्रमादेषु लिङ्गेषु सूक्ष्मकार्यकरणप्रपञ्चोपादानकारणीभूतचिच्छक्त्यपर-पर्यायप्रणवरूप—'**शान्त्यतीतोत्तराख्यकलेतीत्यादिना षड्रूपतामगमद्** इत्यन्तेन **तद्वाचक-षडक्षरीरूपतामिति** विमर्शशक्तेः षडक्षरीरूपत्वव्यपदेशाच्च प्रणवव्यष्ट्यात्मक 'न'-कारादिजन्यत्वस्य ऋग्वेदादिविद्यायाः **सिद्धान्तशिखोपनिषदादिषूपदिष्टत्वात्** प्रणवसहित-पञ्चाक्षरीविद्याया एव कारणरूपत्वं परत्वम्। अत एव **रेणुकभगवत्पादाचार्येण**—

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः।।

(सि. शि. ८.२३)

इत्युक्तम्। एतेन मूलमित्यभिधानेन सर्व-ऋग्वेदादिविद्यानां मूलत्वं कारणत्वं पञ्चाक्षरीविद्याया एवेति स्पष्टं ज्ञातव्यम्, अन्यथा पूर्वोक्ता **सद्योजातेन ऋग्वेदम्** इत्यादिना वाच्यवाचकाभेदतात्पर्येणोक्ता स्मृतिः पीड्येत। मन्त्रतनोः शिवस्य चिच्छक्त्यपरपर्याय-प्रणवस्य अव्यक्तत्वाद् गोप्यमुखात्मक-महालिङ्गवाचकत्वात् प्रणवविकृतिरूप-नकारादि-यकारान्त-पञ्चाक्षर्याः सद्योजाताद्यपरपर्यायाचारादिलिङ्गपञ्चकस्य वाचकत्वात्, तस्य प्रकट-

---

प्रतिपादित किया है। **सिद्धान्तशिखोपनिषद्** आदि ग्रन्थों में यह उपदेश दिया गया है कि ऋग्वेदादि विद्या पञ्चाक्षरमहामंत्र के 'न'कारादिवर्णों से यथाक्रम उत्पन्न होती है और महामंत्र के 'न'कारादि वर्ण 'प्रणव' (ओंकार) के व्यष्टि-स्वरूप ही हैं। इस प्रकार प्रणवसहित पञ्चाक्षरी विद्या ही ऋग्वेदादि विद्या के कारण के रूप में अवस्थित परा विद्या है। अत एव **रेणुकभगवत्पादाचार्य** ने **मूलं विद्या शिवः शैवम्** (सि. शि. ८.२३) इत्यादि पञ्चाक्षरी विद्या के पर्याय परिगणित किये हैं। इनमें पञ्चाक्षरी विद्या का '**मूल**' यह नाम उसे ऋग्वेदादि विद्या का मूल कारण प्रतिपादित कर रहा है, यह स्पष्ट है। अन्यथा **योऽयं नकारः सोऽयमकारः** इत्यादि **सिद्धान्तशिखोपनिषत्** प्रतिपादित मंत्र का उपबृंहण करने वाले **सद्योजातेन ऋग्वेदम्** इत्यादि स्मृतिवचन का बाध होगा, जो वाच्य-वाचक में अभेद प्रतिपादन के तात्पर्य से उपन्यस्त है। परमशिव स्थूल-सूक्ष्म पञ्चाक्षरी महामंत्रविद्या उनका शरीर है, प्रकाश-चैतन्यस्वरूप शिव की विमर्श-स्वरूपिणी चिच्छक्ति है। उसका ही अन्य पर्याय है प्रणव अथवा ओङ्कार, जो अव्यक्त है तथा अव्यक्त पञ्च ब्रह्मतनु महालिङ्ग का वाचक है। पञ्चाक्षरी महाविद्या प्रणव की विकृति है, जिसके 'न'कार से लेकर 'य'कारान्त वर्ण आचारलिंग से लेकर प्रसादलिंग तक लिंगपञ्चक के वाचक हैं। 'सद्योजात' से लेकर 'ईशान' तक परमशिव के पञ्चमुख लिंगपञ्चक के ही पर्याय हैं। महामंत्रस्वरूप परमशिव के पञ्चाक्षर परमशिव के ही प्रत्यक्ष पंचमुख हैं यही उपदेश दिया जाता है। यद्यपि प्रणव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पञ्चमुखात्मकत्वोपदेशात्, नकारादि-पञ्चाक्षरसमष्ट्यात्मक-प्रणवस्य गोप्यमुखवाचकस्यापि न व्यष्टिरूप-ऋग्वेदादिकारणत्वं सम्भवति, व्यष्टिरूपकार्यस्य व्यष्टिरूपेणैव कारणत्वावश्यम्भावात्। अत एवोक्तं **क्रियासारे**—

वेदात्मना तथा व्यक्तः प्रणवो विकृतिं गत इति।

न वयं प्रणवस्य नकारादि-यकारान्तस्य च भेदं पश्यामः, प्रणवस्य सूक्ष्म-पञ्चाक्षरात्मकत्वात्, नकारादियकारान्तस्य स्थूलपञ्चाक्षरत्वात्। तदुक्तं **पञ्चाक्षरजाबालोपनिषदि**—

अकारोकार-मकार-बिन्दु-नाद-पञ्चकवाच्यार्थ-स्थूल-प्रणवरूप-नकारादि-पञ्चाक्षररूप-षडध्वमयविग्रह-स्थूलसूक्ष्मैकरूप-व्यष्टिसमष्ट्यात्मक-षडक्षरस्वरूपः पञ्चाक्षरः 'ॐ नमः शिवाये'ति इति।

तथैव **क्रियासारे** एकोनविंशोपदेशेऽप्युक्तम्–**पञ्चाक्षराख्यया प्रणवव्यष्टिरूपया पञ्चाक्षरसमष्टिरूपेण अकारोकारमकारबिन्दुनादात्मकप्रणवेन च वाच्यरूप-**

(ओंकार) न कारादि पञ्चाक्षरों का समष्टिस्वरूप है और गोपनीय (सद्योजातादि-ईशानान्त) पञ्चमुखस्वरूप परम शिव का वाचक है, तथापि वह ऋग्वेदादि का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि व्यष्टिस्वरूप है। नकारादि-यकारान्त पञ्चाक्षर मन्त्र व्यष्टिरूप से ही ऋग्वेदादि आगमान्त अपरा विद्या का कारण होता है, क्योंकि निगमागम विद्या व्यष्टिरूप में रहती है। अत एव **क्रियासार** का प्रतिपादन है कि 'प्रणव ने वेदविद्या के रूप में प्रकट होकर विकार को प्राप्त किया।'

हमलोग प्रणव (ओंकार) और परा विद्या के 'न'कारादि-'य'कारान्त पांच वर्णों में कोई भेद नहीं देखते, क्योंकि प्रणव (ओङ्कार) सूक्ष्म पञ्चाक्षर-स्वरूप है और नकारादि-यकारान्त परा विद्या स्थूल पञ्चाक्षर स्वरूप है। जैसा कि **पञ्चाक्षर जाबालोपनिषद्** में प्रतिपादित है––

अकारोकार-मकार-बिन्दु-नादपञ्चकवाच्यार्थस्थूलप्रणवरूप-नकारादि-पञ्चाक्षर- रूप-षडध्वमयविग्रहस्थूलसूक्ष्मैकरूप-व्यष्टि-समष्ट्यात्मक-षडक्षरस्वरूपः पञ्चाक्षरः 'ॐ नमः शिवाये'ति।

इसका तात्पर्य यह है— ''परा विद्या का आकार है-**ॐ नमः शिवाय**। प्रत्यक्ष रूप में वह षडक्षरस्वरूप है। प्रणव और पंचाक्षर मंत्र में अभेद-दृष्टि है। प्रणव सूक्ष्म-पञ्चाक्षरस्वरूप है, पञ्चाक्षर-महामंत्र स्थूलप्रणवस्वरूप है। 'न'कार से लेकर 'य'कार तक महामंत्र के पञ्चाक्षर प्रणव में अवस्थित अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नादस्वरूप वाच्यार्थ के वाचक हैं। इस प्रकार पञ्चाक्षर महामंत्र **षडध्वमय विग्रह है**। पञ्चाक्षर की दृष्टि से वह

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्याऽऽद्यतत्त्वरूपमहालिङ्गस्यैवोपास्यस्याऽऽगमिकैर्वैदिकैरपीत्यविशेषाच्च तदवान्तर-तत्त्वभेदेऽप्यदोष इति ।

तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम् ।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद् वटबीजवत् ।। इति,
साङ्गानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे ।

इत्यादि-वायवीयसंहितावचनैश्च प्रणवसहितपञ्चाक्षरीविद्याया एव कारणत्वावगमात्,

आश्रित्य परमां' विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम ।
आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं बुधः ।

स्थूलस्वरूप है तो प्रणव की दृष्टि से सूक्ष्मस्वरूप । प्रणव एवं पञ्चाक्षर-मंत्र में अभेद है । वह व्यष्टिस्वरूप भी है और समष्टिस्वरूप भी । यही स्थूल-सूक्ष्म- पञ्चाक्षरी परा विद्या का रहस्य है ।''

उसी प्रकार **क्रियासार** के उन्नीसवे पटल में भी कहा है—''प्रणव (ओंकार) का व्यष्टिरूप है पंचाक्षरी महाविद्या और उसमें विराजमान पञ्चाक्षरों का समष्टिरूप है प्रणव (ओंकार), जो अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नाद की समष्टि के रूप में अवस्थित है । दोनों ही आद्य तत्त्वस्वरूप महालिंग (परमशिव) के वाचक हैं । वेदानुयायी और आगमानुयायी दोनों ही इसी महालिङ्ग की उपासना करते हैं, जो पञ्चाक्षरी महाविद्या और प्रणव का वाच्यार्थ है । इस समानता के कारण इन दोनों में अवान्तर भेद प्रतीत होने पर भी कोई दोष नहीं है ।''

वायवीयसंहिता प्रणव सहित पञ्चाक्षरी विद्या को ऋग्वेदादि वेदविद्या का कारण मानती है । जैसा कि वचन है—

तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम् ।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद् वटबीजवत् ।।

षडक्षर आद्य महामंत्र सभी निगमागम विद्याओं का बीज है । उसे उसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु गंभीर अर्थ का प्रतिपादक समझना चाहिए, जैसे वटवृक्ष का बीज ।

साङ्गानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे ।

छः वेदाङ्ग, चार वेद तथा समस्त शास्त्र (अष्टादश विद्याएं) उसी षडक्षर महामंत्र में अव्यक्त रूप से अवस्थित हैं ।

श्रुतिवचनों को प्रमाणस्वरूप उद्धृत करते हुए **क्रियासार** उसे परा विद्या सिद्ध करता है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यादिश्रुतिभिः **क्रियासारो**दाहृतवाक्यैतस्या एव परत्वोपदेशाच्च प्रणवसहितपञ्चाक्षरविद्यैव कारणरूपा परा विद्येति निश्चीयते ।

तथा चाऽन्तर्लक्ष्य-बहिर्लक्ष्य-भेदेन द्विविधस्य ज्योतिर्लिङ्गाऽपरपर्यायप्राणलिङ्गस्येष्ट-लिङ्गस्य चाऽभ्यन्तरे सूक्ष्मशरीरे बाह्ये स्थूलशरीरे धारणमेवाऽनुसन्धानमुपासनम् । तच्च लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मक-शिवजीवैक्यविषयम् । तदैक्यबोधिकैव महामनुरूपा परा विद्या ।

पति-पशुकर्मविवेकः

तन्महामन्वर्थोपासनायामेव सर्वे वीरशैवीय-धर्मा भूतिरुद्राक्षधारणादय उपयुक्ताः । लिङ्गधारणरूपोपासनायां पतिधर्माऽपरपर्याय-शिवाश्रमोक्तधर्माणामङ्गभूतानामभावे महामन्त्रार्थाऽनुसन्धानरूपलिङ्गधारणस्याऽप्यङ्गिनः सिद्धेरभावात्, तदसिद्धौ उपासनस्य

आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम ।
आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं बुधः ।

इन दोनों अर्द्धालियों में पञ्चाक्षरी विद्या को 'परमा' और 'हृद्या' कहा है । इस प्रकार प्रणव-सहित पञ्चाक्षरी महामंत्रविद्या ही कारणरूपा परा विद्या है यह निर्धारित होता है ।

लिङ्गोपासना– उसी प्रकार महालिङ्ग (परम शिव) द्विविध है— १. अन्तस्तल में लक्षित होनेवाला ज्योतिर्लिङ्ग अथवा प्राणलिङ्ग, २. प्राणवद् धारण करने योग्य बहिर्लक्ष्य प्राणलिङ्ग अथवा इष्टलिङ्ग । अन्तर्लक्ष्य लिङ्ग का आभ्यन्तर सूक्ष्म शरीर में अनुसन्धान किया जाता है और बहिर्लक्ष्य इष्टलिंङ्ग को स्थूल शरीर के हृदयस्थल पर धारण किया जाता है, अन्तस्तल में ज्योर्तिलिङ्ग का अनुसन्धान भी उसका धारण ही है । लिङ्ग का अनुसन्धान और धारण दोनों ही लिंगोपासना है । उससे लिङ्गोपासना का विषय है, **लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप** परमशिव एवं जीव की एकता । वह छः लिङ्गस्थलों के साथ छः अङ्गस्थलों में समरसता स्थापित करने से होती है, फलतः शिव और जीव एक हो जाते हैं । स्थूल-सूक्ष्म-पञ्चाक्षरी महामंत्रस्वरूपिणी परा विद्या शिव और जीव की एकता की ही बोधक है ।

पतिकर्म और पशुकर्म का विवेक

पतिधर्म— (पञ्चाक्षर महामन्त्र का परमार्थ है परम शिव और मन्त्रार्थस्वरूप परम शिव का अनुसन्धान, जो आभ्यन्तर लिङ्गोपासना है ।) उसी महामंत्रार्थ की उपासना में सभी वीरशैव-सम्प्रदाय के धर्म उपयोगी हैं, जिसके अन्तर्गत भस्म-धारण, रुद्राक्ष-धारण आदि आते हैं । ये सभी शिवाश्रमोक्त अङ्गभूत धर्म हैं, जिनका अपर पर्याय है **पतिधर्म** । पतिधर्म का पालन अत्यन्त अनिवार्य है । इसके पालन न करने पर लिङ्गधारणस्वरूप प्रधान धर्म की सिद्धि ही नहीं होगी, जो महामन्त्र का अर्थानुसन्धानजन्य स्वरूप है । बिना महामंत्र सिद्ध

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

दर्शनाकारपरिणमनाऽसम्भवात्, तदसम्भवे स्वशक्तिविकासात्मक-शिवभावाभावाद् मुक्त्यभावप्रसङ्गः। तस्मात् साङ्गो महामनुः स्वार्थानुसन्धानरूप-लिङ्गधारणानन्तरभावि-साक्षात्कारद्वारा परशिवब्रह्मप्रापको भवतीत्येतत्सूचितं **यया तदक्षरमधिगम्यते** इत्यनेनेति मन्तव्यम्।

नाऽग्निष्टोमादीनां पशुकर्मणां ज्ञानसमुच्चितत्वम्। नहि तेषां निष्कामसमनुष्ठानमप्यस्माकं शिवभक्तानां वीरशैवानाम्। तदुक्तं **क्रियासारे**—

अग्निष्टोमादयो यज्ञा अश्वमेधाऽवसानकाः।
सर्वे ते शिवभक्त्यर्थं निश्चिता वेदशास्त्रयोः।।इति,

''प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'' इत्युक्तेः।

नन्वग्निष्टोमाद्यनुष्ठानाभावे तत्प्रतिपादक-वेदभागस्य ज्ञातव्यत्वे प्रयोजनाभावात् कथं **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इत्युक्ताज्ञा सङ्गच्छते ? ऋग्वेदाद्यपरविद्याया अग्निष्टोमादि-पशुकर्मप्रतिपादकत्वात्,

---

किये लिंङ्गोपासना का फल नहीं मिलेगा, परब्रह्मस्वरूप परमशिव का साक्षात्कार नहीं होगा। दूसरे शब्दों में महामंत्र परमशिव के रूप में हमें प्रत्यक्ष नहीं होगा। ऐसी स्थिति में चितिशक्ति का विकास नहीं होगा, यत: चितिशक्ति का विकास और चैतन्य पर्यायवाची हैं, अत: उसके अभाव में जीव शिवभाव, चैतन्यस्वरूप को प्राप्त नहीं करेगा। इस परिस्थिति में जीव की मुक्ति नहीं होगी। अत: **यया तदक्षरमधिगम्यते** इस मन्त्रभाग के द्वारा यह ज्ञात होता है कि भस्मधारण, रुद्राक्षधारण आदि अङ्गस्वरूप पतिधर्म के साथ अनुष्ठित प्रणवसहित पञ्चाक्षरी महामन्त्रविद्या मन्त्रार्थ के अनुसन्धानस्वरूप अन्तस्तल में विराजमान ज्योतिर्लिंङ्ग के धारण के अव्यवहित क्षण में होनेवाले साक्षात्कार द्वारा जीव को परब्रह्मस्वरूप परम शिव से मिलाती है।

पशुकर्म— अग्निष्टोम आदि यज्ञकर्म पशुकर्म हैं। परमात्मज्ञान एवं पशुकर्म एक साथ नहीं रह सकते। साथ ही हम वीरशैव-सम्प्रदाय के शिवभक्तों के लिए उनका निष्काम अनुष्ठान भी कर्तव्यकोटि में नहीं है। जैसा कि **क्रियासार** में प्रतिपादित है—

अग्निष्टोमादय इत्यादि। अग्निष्टोम से लेकर अश्वमेध तक सभी याग शिवभक्ति करने के लिए वेद एवं शास्त्रों में निर्धारित हैं। वे वीरशैवों के लिए विहित नहीं है। क्योंकि कीचड़ को धोने से अच्छा है दूर से ही उसे देखना, उसे स्पर्श न करना।

प्रश्न— अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अग्निष्टोमादि यागों का अनुष्ठान वीरशैवो के लिए निर्धारित नहीं है, ऐसी स्थिति में उसका प्रतिपादन करनेवाले वेदभागका अध्ययन निष्प्रयोजन होगा। फिर **द्वे विद्ये वेदितव्ये** (परा अपरा दोनों विद्याओं का अध्ययन करना चाहिए) इस वेदाज्ञा की संगति कैसी बैठेगी? क्योंकि ऋग्वेदादि अपरा विद्या

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अग्निष्टोमादीनां भवता पशुकर्मत्वेन परिगणिततत्वात्, इति चेत् सत्यम्। नहि मयैवेत्थं परिगण्यते । अस्यामेवोपनिषदि द्वितीयखण्डे **प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः** (१.२.७) इत्यादिना **इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति** (१.२.१०) इत्यन्तेन पशुकर्मणामत्यन्तनिन्दिततत्वात् । **नास्त्यकृतः कृतेन** (१.२.१२) इति मोक्षस्य कर्मफलत्वाभावे उक्तेऽप्यग्रे **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** (१.२.१२) इत्यादिना गुरूपसदनविधेः श्रूयमाणत्वात् । तृतीयमुण्डके **क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः** (३.१.४), **सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा** (३.१.५) इत्यादिना तप आदीनामपि साक्षान्मोक्षसाधनत्वस्योक्तत्वात्, **'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः'** (३.२.३) इत्यादिना वाक्येन 'लिङ्गधारणादि-पतिकर्माभावे मोक्षाभावः, तत्सत्त्वे मोक्षसत्त्वमिति पतिकर्मणां मोक्षफलकत्वग्राहकाऽन्वयव्यतिरेकयोः स्पष्टमुक्तत्वात्, **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाऽप्यलिङ्गात्**

अग्निष्टोमादि पशुकर्मों का प्रतिपादन करती हैं। अग्निष्टोमादि यागों का परिगणन आपने पशुकर्मों में किया है।

समाधान— इस प्रश्न का समाधान करते हुए **ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री** कहते हैं कि यह सत्य है कि अग्निष्टोमादि यागों का पशुकर्मों में परिगणन किया गया है। किन्तु ऐसा परिगणन मेरे द्वारा नहीं किया गया है। इसी उपनिषद के द्वितीय खण्ड में **प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः** (ये यज्ञरूपी कमजोर छोटी नौकाएं हैं) इस मंत्र से प्रारम्भ कर **इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति** (पशुकर्म करनेवाले अत्यन्त हीन लोक में प्रवेश करते हैं।) इस मंत्र तक पशुकर्मों की अत्यन्त निन्दा की गयी है। यद्यपि **नास्त्यकृतः कृतेन** इस मंत्र से मुक्ति की कर्मफलनिरपेक्षता का प्रतिपादन किया गया है, तथापि **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** (शिष्य का कर्तव्य है कि वह ब्रह्मज्ञान के लिए समिधाओं को उपायनस्वरूप हाथ में लेकर ब्रह्मज्ञान के लिए तत्पर श्रोत्रिय गुरु की शरण में जाय।) इत्यादि मंत्रद्वारा तपश्चरणादि को भी साक्षात् मोक्ष का साधन कहा गया है। तृतीय मुण्डक में **क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः, सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा** इत्यादि मंत्रभाग द्वारा तप आदि को साक्षात् मोक्षसाधन कहा गया है। **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः** (ब्रह्मप्राप्ति केवल प्रवचन से नहीं होती) इत्यादि मंत्रभाग द्वारा अन्वय-व्यतिरेक से यह स्पष्ट कहा गया है कि लिंङ्गधारण आदि पतिधर्म का यदि पालन नहीं किया तो मोक्ष प्राप्ति भी नहीं होगी, पतिधर्म का पालन करने पर ही मोक्ष प्राप्ति होगी। **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाऽप्यलिङ्गात्** (वलशून्य आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता, तपस्या में प्रमाद अथवा लिंङ्गधारण न करनेवाला भी ब्रह्मप्राप्ति नहीं कर सकता) इस मंत्र में **अलिङ्गात्** इस पद से स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है 'जो इष्टलिंग-धारण नहीं करता, उसे मोक्ष नहीं मिलता। उपसंहार करते समय

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

(३.२.४) इत्यत्र **अलिङ्गात्** इति पदेनेष्टलिङ्गाभावे मोक्षाभावस्याऽतिस्पष्टमुपदिष्टत्वात्, उपसंहारे च **नैतदचीर्णव्रतोऽधीते** (३.२.११) इत्यनेन लिङ्गधारणव्रतात्मक-पतिकर्माभावेऽध्ययनाधिकारस्यापि निषिद्धत्वाद् न पतिकर्मणां निन्दितत्वम्; पशुकर्मणां पाशाश्रयत्वात्, स्वर्गाद्यनित्यफलकत्वात्। **नास्त्यकृतः कृतेन** (१.२.१२) इति प्राकृतपशुकर्मणामेव निषिद्धत्वावगमात्रहि तेषां ज्ञानेन साकं साक्षान्मोक्षसाधनत्वम्, किन्तु उपक्रमोपसंहारमध्यवाक्यपर्यालोचने पतिकर्मणामेव ज्ञानेन साकं साक्षान्मोक्षसाधनत्वमिति निश्चीयते। तस्मात् पशुकर्मप्रतिपादकवेदभागस्य दौर्बल्यम्, पतिकर्मप्रतिपादकवेदभागस्य प्राबल्यं वक्तव्यम्। तदुक्तं **नीलकण्ठशिवाचार्येण**—

न क्वचिद् वेदभागस्य वेदमात्राप्रमाणताम्।
किन्तु वच्मः पूर्वकाण्डाद् ज्ञानकाण्डस्य मुख्यताम्॥

इति समग्रवेदप्रामाण्ये स्वीकृतेऽपि पतिकर्मप्रतिपादकवेदभागस्य मुख्यत्वेन वीरशैवैरङ्गीकरणीयत्वात् पशुकर्मणामपि परम्परया शिवोपासनद्वारा शिवत्वप्रापकत्वस्वीकारात् सङ्गच्छत एव तदाज्ञावचनम्। तदुक्तं **क्रियासारे**—

नैतदचीर्ण- व्रतोऽधीते इस मंत्रभाग द्वारा यह वर्णित है कि लिंङ्गधारणव्रतात्मक पतिकर्म का अनुष्ठान जो नहीं करता, वह वेदाध्ययन का अधिकारी भी नहीं होता। इस प्रकार अलिङ्गी के वेदाधिकार का भी निषेध किया गया है।

इस प्रकार लिङ्गधारणादि पतिकर्म की निन्दा नहीं की गयी है। पशुकर्म पाश पर आश्रित रहते हैं, (अज्ञान-पाश-बन्धन में पडा हुआ ही पशुकर्म करता है। यज्ञादि-पशुकर्मानुष्ठान से स्वर्ग की फलप्राप्ति होतीहै, जो अनित्य है। **नास्त्यकृतः कृतेन** इत्यादि मंत्रों से साधारण पशुकर्मों के निषेध का ही ज्ञान होता है। पशुकर्म साक्षात् मोक्ष के साधन नहीं होते, क्योंकि उनका ज्ञान के साथ संबंध नहीं होता। किन्तु उपक्रम, उपसंहार और बीच के मंत्रों से यह निश्चित है कि ज्ञान के साथ पतिकर्मों का सम्बन्ध होने के कारण वे साक्षात् मोक्ष के साधन होते हैं। अतः पशुकर्म का प्रतिपादक वेदभाग दुर्बल है और पतिकर्म-प्रतिपादक वेदभाग प्रबल है, ऐसा कहना चाहिए। जैसा कि **नीलकण्ठ शिवाचार्य** ने कहा है— कोई भी वेदभाग समग्र वेद को अप्रामाणिक सिद्ध नहीं करता। किन्तु हम पूर्वकाण्ड से ज्ञानकाण्ड को मुख्य रूप से प्रतिपादित करते हैं।

इस प्रकार समग्र वेदभाग की प्रामाणिकता स्वीकार करने पर भी वीरशैव धर्म के अनुयायी पतिकर्म-प्रतिपादक वेदभाग को मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं और अनुष्ठान में लाते हैं। साथ ही वे शिव की उपासना द्वारा पशुकर्मों को परम्परया शिवभाव की प्राप्ति का साधन मानते हैं। इस प्रकार **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इस वेदाज्ञा की संगति बैठती है। जैसा कि अनेक दृष्टान्तों द्वारा **क्रियासार** में वर्णित है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अनुतिष्ठन् पशोर्धर्मान् पतिधर्मान् स चार्हति ।
यथा पिपीलिका वृक्षमूलमाघ्राय तत्फलम् ।।
आरुह्य लभते तद्वत् पतिधर्मैकतत्परः ।
यथा विहङ्गः पक्षाभ्यां फलितं वृक्षमागतः ।
पश्यन् फलमवाप्नोति तद्वत् शीघ्रं तदर्हति ।। इति।

अपरो दृष्टान्तश्च तत्रैवोक्तः—

रत्नापणे निविष्टानां विविधानां क्रमेण हि ।
काचमुक्तामरकतप्रभृतीनां यथा पुनः ।।
क्रयाधिकारानुगुणान् दर्शयेत् तदतिक्रयम् ।।
गृहीतारः स्वसामर्थ्यानुगुण्येनैव केवलम् ।
गृह्णन्ति नैव चाऽन्यस्य दूषणायैव कल्पते ।।

'अनुतिष्ठन्' इत्यादि । ''वीरशैव भक्त जीव पशुधर्म का पालन करते हुए पतिधर्मों का अनुष्ठान भी कर सकता है । मात्र पतिधर्म का अनुष्ठान करनेवाला वीरशैव भक्त उसके फल को उस प्रकार प्राप्त करता है, जिस प्रकार चीटी वृक्ष के मूल को सूंघकर उसका फल प्राप्त करती है । जिस प्रकार पक्षी दो पंखों के सहारे फलदार वृक्ष पर पहुंच कर केवल उसे देखते ही उसके फल को प्राप्त करता है, उसी प्रकार वीरशैव भक्त भी ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले पतिधर्मानुष्ठान से उसके फल को प्राप्त करता है ।

दूसरा उदाहरण भी वहां प्रदर्शित है— **रत्नापणे** इत्यादि । रत्नों के बाजार में विभिन्न प्रकार के कांच, मोती, पन्ना आदि रत्न रखे जाते हैं । विक्रेता को चाहिए कि वह खरीददार की क्रयशक्ति का विचार करते हुए विक्रेय वस्तु प्रदर्शित करे । खरीददार लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार रत्नों को खरीदते हैं । इससे किसी के ऊपर दोष देना ठीक नहीं है ।

इसी प्रकार वेद की प्रामाणिकता सिद्ध होने पर वैदिक अपने अधिकारानुसार क्रमिक सोपान भागों में तीन अथवा दो सोपानों का अतिक्रमण कर सीढियाँ चढ सकते हैं, वे बीच की सीढी नहीं तोडते । वीरशैवानुयायी भी निगम और आगम सभी को प्रमाण मानते हैं । वीरशैव को तो कहीं भी सभी कर्मों का प्रयत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए, क्योंकि उनके लिए निगम और आगम सभी प्रमाणस्वरूप हैं, इस प्रकार का अपलाप भी नहीं करना चाहिए । राजा हो अथवा धनिक, वह लोगों के पास प्रचुर रत्नों के होने पर भी कम कीमत के मणि को यदि खरीदता है तो उस पर कोई दोष नहीं लगाता । उसी प्रकार वीरशैव भक्त वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार करने पर भी केवल पतिकर्म-प्रतिपादक वेदभाग को स्वीकार करते

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एवं सामान्यतो वेदप्रामाण्ये सति तत् पुनः ।
स्वाधिकारानुसारेण वैदिकेषु प्रवर्तते ।।
क्रमसोपानमार्गेषु त्रयाणामथवा द्वयोः ।
अतिक्रमेण चाऽऽरूढे सोपानोत्पाटनं नहि ।।
कुर्वन्ति तद्वदेवात्र सर्वेषां च प्रमाणता ।
तर्हि शैवः क्वचिद् वाऽपि सर्वकर्माणि यत्नतः ।।
अनुतिष्ठेत् प्रमाणं चेदित्येवं नापलप्यताम् ।
राजा धनी वा लोकेषु सत्सु रत्नेषु भूरिशः ।।
अल्पक्रयमणिं द(ध)त्ते तावता तन्न दूष्यते ।
एवं प्रमाणं वेदाश्चेत्यास्तां किं विस्तरेण तु ।। इति।
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । (२.४५)

इति गीतावाक्येनाप्यनित्यफलकपशुकर्मप्रतिपादकवेदभागस्यैव निन्दितत्वात् श्रुतिस्मृत्यनुसारेण अपरविद्यापदं पतिकर्मप्रतिपादक-ऋग्वेदादिभागपरम् । उक्तं च **रेणुकभगवत्पादाचार्यै**रपि—

शिवार्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम् ।
शिवार्चा कर्म विज्ञेयं वाक्यं यागादि नोच्यते ।।

हुए उतना ही अनुष्ठान करता है, तो उसके लिए अग्निष्टोमयागादि पशुकर्मानुष्ठान सम्पादन आवश्यक नहीं है । इत्यलम् अतिविस्तरेण ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवाऽर्जुन ! (गीता २.४५)

'अर्जुन ! वेद सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों से सम्बद्ध हैं, तुम्हें इन त्रिगुणात्मक कर्मों का परित्याग करना चाहिए । इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट गीतोपदेश द्वारा अनित्य फल देनेवाले पशुकर्म-प्रतिपादक वेदभाग की ही निन्दा की गयी है । श्रुतियों और स्मृतियों के अनुसार **अपरा विद्या** पद पतिकर्म-प्रतिपादक ऋग्वेदादि वेदभाग से सम्बद्ध है । इसका समर्थन **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** भी करते हैं—

'शिवार्थे देहसंशोषः' इत्यादि । ''शिवपूजा के लिए सामग्री-संपादन में शारीरिक श्रम ही वास्तविक तपश्चरण है, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रताचरण तपस्या की कोटि में नहीं है । शिवलिङ्ग का अर्चन ही मुख्य नित्य कर्म है ज्योतिष्टोमादि याग बाह्य कर्म हैं । अतः उनके अनुष्ठान का प्रतिपादन यहां नहीं किया गया है । मुख्य जप कोटि में पञ्चाक्षरी विद्या का वारंवार आवर्तन अथवा ओंकार का वारंवार अभ्यास ही प्रविष्ट है । उसी प्रकार रुद्राध्याय, श्रीरुद्रोपनिषद्, आथर्वण वेद की सिद्धान्त शिखोपनिषद् आदि की वारंवार आवृत्ति भी एक प्रकार का जप ही ही है, (अन्य मंत्र जप अथवा पशुधर्मपरक) वेदाध्ययन जपकोटि में नहीं

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा ।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ।
ध्यानं शिवस्य रूपादिचिन्ता नात्मादिचिन्तनम् ।।

शिवागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम् ।
इति पञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञः प्रकीर्तितः ।।

(सि. शि. ९.२२-२४) इति ।

रुद्राध्यायादिकाभ्यास इत्यत्राऽऽदिपदेन पतिकर्मपरक**श्रीरुद्रोपनिषदादि-**सर्ववेदोपनिषद्ग्रहणं सूचितम् । **वीरशैवाचारकौस्तुभे** —

श्रीरुद्रबृहदारण्यकश्वेताश्वतरमुण्डका इत्यादिना
सुसिद्धान्तशिखामुख्या भक्तियोगादयो मताः ।
सन्त्यसंख्याकोपनिषद उत्तरः काण्ड उच्यते ।।

इत्यन्तेनोपनिषद्गणनप्रस्तावे इति, **क्रियासारे** च श्रीरुद्रोपनिषद एव आदिमत्त्वेन पठितत्वात् । किञ्च, रुद्राध्यायाद्यर्थग्राहकवेदाङ्गाद्यभ्यासोऽप्यर्थात् सूचित एवेति मन्तव्यम् । वेदाङ्गादीनामभ्यासोऽपि कथं वेदाध्ययनं विना सम्भवति? कर्मकाण्डस्य ज्ञानकाण्डस्य

है । परम शिव का लिङ्गात्मक अथवा चन्द्रशेखरादि के साकार स्वरूप का अनुशीलन ही उनका वास्तविक ध्यान है, शरीर के अन्दर विराजमान जीवात्मा का अनुशीलन ध्यान कोटि में नहीं है; क्योंकि वह शरीर, मन, इन्द्रिय आदि उपाधियों से घिरा रहता है । शैवागमों से प्राप्त ज्ञान ही ज्ञानकोटि में आता है, दर्शनान्तरों से होनेवाला ज्ञान ज्ञान नहीं कहलाता । इस प्रकार शिव के लिए किए जाने वाले तप, कर्म, जप, ध्यान एवं ज्ञान इस प्रकार पांच प्रकार के शिवयज्ञ प्रतिपादित हैं,जो मनसा, वाचा एवं कर्मणा संपादित होते हैं" (सि. शि. ९.२२.२४)।

उपर्युक्त अर्थ-प्रतिपादक श्लोकों में **रुद्राध्यायादिकाभ्यासः** के अन्तर्गत प्रविष्ट 'आदि' पद पतिकर्म का प्रतिपादन करनेवाले **श्रीरुद्रोपनिषद्** आदि उपनिषदों को संकेतित करता है । वीरशैवाचारकौस्तुभ में **श्रीरुद्र-बृहदारण्यक-श्वेताश्वतर-मुण्डकाः** से प्रारम्भ कर

सुसिद्धान्तशिखामुख्या भक्तियोगादयो मताः ।
सन्त्यसंख्याकोपनिषद उत्तरः काण्ड उच्यते ॥

तक उपनिषदों के परिगणन में तथा **क्रियासार** में भी **श्रीरुद्रोपनिषद्** की ही आदिम उपनिषद् के रूप में गणना की है । इससे यह भी सूचित होता है कि **रुद्राध्याय** आदि के अर्थ-प्रतिपादक वेदांगों का अभ्यास भी जपकोटि में प्रविष्ट है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

चाऽङ्गभेदाभावादिति चेत्, समग्रवेदानां प्रामाण्यं वदता **नीलकण्ठशिवाचार्येण** पूर्वकाण्डोक्तपशुधर्मानुष्ठानमेव निषेधितम्, न तुं वीरशैवानां तत्प्रतिपादकवेदाध्ययनादिकमिति बोध्यम्। **न वेदाध्ययनादिकम्** इत्यस्य पशुधर्माचरणेच्छया पशुधर्मपर-वेदाध्ययनाभावार्थकत्वस्यैव सुवचत्वात्। अन्यथा वेदवेदाङ्गोपबृंहणाद्यभ्यासाभावे **श्रीरुद्रोपनिषदादीनाम**प्यर्थग्रहणाभावः स्यात्, वीरशैवानां पशुधर्माचरणे सिद्धान्तागम-सिद्धान्तशिखामणि-प्रतिपाद्य-पूर्वाश्रमनिरसनस्थलविरोधः स्यात्, अप्राकृतशिवाश्रमिणां पशुकर्मत्यागपूर्वक-पतिकर्माचरणस्यैव ईश्वरानुमत्वात्र तदाज्ञाभङ्गभीतिरपि विद्यते। **कर्मणो गहना गतिः** इति न्यायेन नहि कैरपि यावत्कर्माण्यनुष्ठातुं शक्यन्ते, किन्तु तत्तदाश्रमविहितकर्माण्यनुष्ठातुं शक्यन्ते। एकाश्रमिणोऽन्याश्रमाऽसाधारणधर्मानुष्ठानमवैदिकम्। तस्मात् तत्र तस्य नाऽधिकारः।

प्रश्न— अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदांग आदि का अभ्यास बिना वेदाध्ययन के किस प्रकार संभव है? क्योंकि जो कर्मकाण्ड के अंग हैं, वे ही ज्ञान काण्ड के भी हैं। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

समाधान— इसका समाधान यह हैं कि **नीलकण्ठ शिवाचार्य** ने समग्र वेदों को प्रमाण मानते हुए पूर्वकाण्ड में प्रतिपादित पशुधर्म के अनुष्ठान का ही निषेध किया है, वीरशैवों के उपयुक्त धर्म के प्रतिपादक वेदाध्ययन आदि का नहीं, क्योंकि **न वेदाध्ययनादिकम्** का केवल इतना ही अर्थ है कि पशुधर्म के आचरण की इच्छा से वह उस वेदभाग का अध्ययन न करे जो पशुधर्म की व्याख्या करता हो। इसका भिन्न अर्थ करने पर वेद, वेदाङ्ग और उनका उपबृंहण करने वाले साहित्य का अभ्यास नहीं किया जा सकता और ऐसी स्थिति में **श्रीरुद्रोपनिषद्** आदि का अर्थ समझना भी असंभव होगा। वीरशैवों द्वारा पशुधर्म का पालन करने की स्थिति में शैवागमों के अन्तर्गत **सिद्धान्तशिखामणि** ग्रन्थ में, जहां पूर्वाश्रम का निरसन किया गया है, उस प्रकरण का विरोध होगा। क्योंकि साधारण गृहस्थाश्रम से विलक्षण शिवाश्रम के अनुयायियों को ईश्वर यही अनुमति देता है कि वे प्रथम पशुकर्म का त्याग करें और अनन्तर पतिकर्म को आचरण में लाए। **द्वे विद्ये वेदितव्ये** (१.१.४) इस मंत्रभाग द्वारा अपरा और परा विद्याओं के अध्ययन की जो आज्ञा दी गयी हैं, उस आज्ञा के उल्लंघन का भय भी नहीं है। क्योंकि **कर्मणो गहना गतिः** (कर्म की गति अत्यन्त गहरी होती है।) इस न्याय से चाहे जो सभी कर्मों का सम्पादन नहीं कर सकता। वस्तुतः एक आश्रम के अनुयायी द्वारा अपने से भिन्न दूसरे आश्रम के असाधारण धर्मों का अनुष्ठान अवैदिक है, इसलिए शिवाश्रम के अनुयायी को पशुधर्म के अनुष्ठान का कोई अधिकार ही नहीं है। अपने आश्रमधर्म का अनुष्ठान न करने पर नाना विघ्न उपस्थित होते हैं। अपने आश्रम का त्याग करने के साथ दूसरे आश्रम को स्वीकार करने की स्थिति में वह उस धर्म के योग्य ही नहीं होगा। अतः 'अत्याश्रम' शब्द

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्वाश्रमोक्तधर्माननुष्ठाने प्रत्यवायः । स्वाश्रमत्यागपूर्वकाऽन्याश्रमस्वीकारे तद्धर्मानर्हतैव । एवमत्याश्रमशब्दित-शिवाश्रमनिषेविणां वीरशैवानां प्राकृताश्रमधर्माचरणमवैदिकं प्रत्यवायजनकं च । नहि तदननुष्ठानप्रयुक्ताऽवैदिकत्वम्, सर्वेषामपि सर्वधर्माननुष्ठान- प्रयुक्ताऽवैदिकत्वापत्तेः । उक्तं च **रेणुकभगवत्पादाचार्येण**—

लिङ्गनिष्ठस्य किं तस्य कर्मणा स्वर्गहेतुना (सि. शि. १०.२८) इति ।

उक्तं च **नीलकण्ठशिवाचार्येणापि**— **''यावतां समनुष्ठानं सप्तसागरशोषणम्''** इति । तस्मात् चतुर्विधशिवाश्रमधर्मसमुच्चित-स्वार्थलिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञानद्वारा परा विद्या शिवत्वप्रापिका ।

उक्तं च **रेणुकभगवत्पादाचार्येण**—

अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे ज्ञानकर्मणी ।
फलोत्पत्तौ विरक्तस्तु तस्मात् तद्द्वयमाचरेत् ।।

से संकेतित शिवाश्रम, अर्थात् लिंगधारणादि धर्म का पालन करने वाले वीरशैवों द्वारा साधारण गृहस्थाश्रमोक्त यज्ञ-यागादि पशुकर्मों का अनुष्ठान अवैदिक और प्रतिबन्धक होगा । उसका अनुष्ठान न करना अवैदिक नहीं है, क्योंकि सभी लोग, जो सभी धर्मों का पालन नहीं करते वे अवैदिक कहलाएंगे । **रेणुकभगवत्पादाचार्य** ने कहा है— 'इष्टलिङ्ग के प्रति आस्था रखनेवाले परम माहेश्वर वीरशैव के लिए केवल स्वर्ग प्राप्ति में कारणस्वरूप ज्योतिष्टोमादि-यागानुष्ठानस्वरूप पशुधर्म से क्या प्रयोजन?' (सि. शि. १०.२८)।

नीलकण्ठ शिवाचार्य का भी कथन है कि 'जितने कर्मों का सम्यक् अनुष्ठान होता है वह सात सागरों को सुखाना ही है ।' अतः यह सिद्धान्तित है कि परा विद्या चतुर्विध शिवाश्रम धर्म का पालन करते हुए पञ्चाक्षरमन्त्र के अर्थानुसन्धानपूर्वक लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञान के साथ भक्त को शिवभाव तक पहुंचाती है । अतः परा विद्या में कर्म एवं ज्ञान का समुच्चय है, वह कर्मविरोधिनी नहीं है ।

रेणुकभगवत्पादाचार्य का भी कथन है— **अन्धपङ्गुन्याय** से ज्ञान और कर्म परस्पर-सापेक्ष हैं । अन्धा चल सकता है, देख नहीं सकता । लंगड़ा चल नहीं सकता, देख सकता है । अतः दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता होती है, यही **अन्धपङ्गुन्याय** है । **शिवरहस्य** के अनुसार ज्ञान क्रियाशून्य नहीं होता और क्रिया ज्ञानशून्य नहीं होती । इस प्रकार ज्ञान और क्रिया परस्पर पूरक हैं। विरक्त को चाहिए कि वह परापरमुक्तिस्वरूप फल की अपेक्षा किये बिना ही ज्ञान एवं कर्म दोनों का सम्पादन करें । विद्वान् को चाहिए कि वह ज्ञान होने पर भी निष्काम कर्म करता रहे । (सि. शि. १६.११-१२)।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां कर्मापि विनियुज्यते ।
फलाभिसन्धिरहितं तस्मात् कर्म न सन्त्यजेत् ।
(सि. शि. १६.११-१२)

उक्तं च **नीलकण्ठशिवाचार्येणापि— यथा विहङ्गः पक्षाभ्यां फलितं वृक्षमागतः । पश्यन् फलमवाप्नोति** इत्यादिना विहगपक्षद्वयसाम्यं ज्ञानकर्मणोः । तस्मादक्षरशब्दवाच्यं परशिवलिङ्गं प्राप्तुं द्वयोरपि कार्यकारणरूपाऽपरपरयोर्विद्ययोर्ज्ञातव्यत्वेनोक्ताज्ञा सङ्गच्छते । पतिधर्मप्रतिपादकपरविद्याया अपि महामनुरूपपरविद्यार्थानुकूलत्वात् । एतदाशयेनैवोक्तं क्रियासारे द्वितीयोपदेशे—

आज्ञा चैवं परं ब्रह्म द्वे विद्ये च परापरे ।
शुद्धविद्या शुद्धकला सर्वशक्तिकृतं यतः ।। इति।

अत्राऽऽज्ञा च **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इत्युक्ता विधिरूपा । **इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति** इत्यत्र यत्पदनिर्दिष्टं ब्रह्मैवाऽत्रापि परब्रह्मशब्देन निर्दिश्यते । तादृशमक्षरशब्दवाच्यं ब्रह्म प्राप्तुमित्यत्राऽप्यध्याहर्तव्यम् । अन्यथाऽत्रापि 'परं ब्रह्म' इति ब्रह्मशब्दस्य वैयर्थ्यमेव स्यात् ।

नीलकण्ठ शिवाचार्य ने भी **यथा विहङ्गः पक्षाभ्याम्** इत्यादि द्वारा ज्ञान एवं कर्म की तुलना पक्षी के दो पंखों से की है । अतः **यया तदक्षरमभिधीयते** इस मंत्र भाग में 'अक्षर' शब्द से संकेतित परशिवलिङ्ग का साक्षात्कार करने के लिए **'द्वे विद्ये वेदितव्ये'** इस वेदाज्ञा की संगति बैठती है, क्योंकि उसके लिए कार्यरूपा अपरा विद्या एवं कारणरूपा परा विद्या दोनों विद्याओं का ज्ञान आवश्यक है । क्योंकि पतिधर्म का प्रतिपादन करनेवाली अपरा विद्या महामन्त्ररूपा परा विद्या का अर्थानुसन्धान करने के लिए उपादेय है । इसी आशय से **क्रियासार** के द्वितीयोपदेश में **नीलकण्ठ शिवाचार्य** कहते हैं—

आज्ञा चैवं परं ब्रह्म द्वे विद्ये च परापरे ।
शुद्धविद्या शुद्धकला सर्वं शक्तिकृतं यतः ।।

यह श्लोक **तस्मै स होवाच, द्वे विद्ये वेदितव्ये** (१.१.५) इत्यादि मन्त्रव्याख्यानात्मक है । तदनुसार यहां पर 'आज्ञा' शब्द का अर्थ है **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इस प्रकार की विधिरूप वेदाज्ञा । **परं ब्रह्म** का वही अर्थ है, जो **यद् ब्रह्मविदो वदन्ति** मन्त्रभाग में 'यत्' सर्वनाम द्वारा निर्दिष्ट है । जिस प्रकार उस मन्त्र में 'यत्' के साथ 'प्राप्तुम्' का अध्याहार आवश्यक है, उसी प्रकार यहां भी उसका अध्याहार आवश्यक है, जिसका निर्देश **तदक्षरमभिधीयते** इस मंत्रभाग में 'अक्षरम्' शब्द से किया गया है और जिसका अर्थ है 'परब्रह्म' । उक्त पद्य में भी 'परं ब्रह्म' यह प्रयोग उसी की व्याख्या करता है, अन्यथा वह प्रयोग व्यर्थ है । **परा चैवाऽपरा च** इस मंत्र को **द्वे विद्ये च परापरे** यह द्वितीय चरण स्पष्ट करता है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ते के पराऽपरे विद्ये इत्यत आह-**शुद्धविद्या शुद्धकलेति**। अपरविद्याशब्दस्य ऋग्वेदाद्यर्थकत्वस्य **तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः** (१.१.५) इत्यादिनोक्तत्वेऽपि तस्य शुद्धविद्येत्यर्थकत्वकथन-पाशाश्रयाशुद्धकर्मप्रतिपादकवेदभागव्यावृत्त्यर्थं **शुद्धकला** नाम प्रणवसहितपञ्चाक्षरमहामनुरिति बोध्यम्। तदुक्तं **क्रियासारे** द्वादशोपदेशे—

कला विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा।
नामान्यस्य विजानीयात् सैव मे हृदयं मतम्॥ इति।

कलाभिधानायां महामनुरूपायां परविद्यायां 'शुद्धकला' इति शुद्धत्वविशेषणं च काम्यफलव्यावृत्त्यर्थम्। काम्यफलोद्देशेन कृतमपि पञ्चाक्षरजपादिकं पशुकर्मैव। तस्मात् तद्व्यावृत्त्यर्थं शुद्धत्वविशेषणमुक्तं नीलकण्ठशिवाचार्येणेति बोध्यम्। इत्थं च त्रैगुण्यविषयत्वात् पाशाश्रयत्वात् पशुकर्मणां बन्धकत्वात् तत्प्रतिपादक-पूर्वकाण्डस्याऽशुद्धत्वम्, तद्रहितत्वात् ज्ञानकाण्डस्य ऋगादिवेदभागस्य शुद्धत्वमित्याशयः। पराऽपरविद्याद्वयमित्येतत् सर्वमपि

वे दोनों परा अपरा विद्याएं कौन सी हैं? इसका समाधान इस प्रकार है— **शुद्धविद्या शुद्धकला** इत्यादि। यद्यपि **तत्राऽपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः** इस मंत्रभाग द्वारा 'अपरा विद्या' का अर्थ ऋग्वेदादि वेदवेदांग-विद्या किया गया है, तथापि इस पद्य में 'शुद्ध-विद्या' के जुड़ा हुआ 'शुद्ध' पद त्रिविध मलात्मक पाश से संबद्ध अशुद्ध पशुकर्मों की निषेध करने के लिए प्रयुक्त है। **शुद्धकला** का अर्थ है प्रणवपूर्विका पंचाक्षरस्वरूपा महामंत्रविद्या। जैसा कि **क्रियासार** के द्वादशोपदेश में वर्णित है— 'परा विद्या के ही विभिन्न नाम हैं : कला, विद्या, शिव, शैवसूत्र, और पंञ्चाक्षर। वही मेरा हृदय है। कला का अर्थ ही महामंत्रस्वरूपा परा विद्या है। 'शुद्धकला' इस पद में उसके साथ प्रयुक्त 'शुद्ध' विशेषण काम्य फलों का निषेध कर रहा है। काम्य फल के उद्देश्य से किया गया पंचाक्षर मंत्रजप आदि अनुष्ठान भी पशुकर्म ही है। अतः उसका निवारण करने के लिए **नीलकण्ठ-शिवाचार्य** ने 'कला' के साथ शुद्ध विशेषण का प्रयोग किया है। इस प्रकार अपरा विद्या के अन्तर्गत पूर्वकाण्ड अशुद्ध है, क्योंकि पशुकर्म सत्व, रज एवं तमो गुण के विषय हैं और आणव, कार्मिक और मायीय त्रिविध मलस्वरूप अज्ञानात्मक पाश पर आश्रित और बन्धनकारक होते हैं तथा पूर्णकाण्ड पशुकर्मों का ही प्रतिपादन करता है। जो ज्ञानकाण्ड पशुकर्मों का प्रतिपादन नहीं करता ऐसा ऋगादिवेद भाग शुद्ध है, यही इसका आशय है। **सर्वं शक्तिकृतं यतः** का अर्थ यह है कि यतः परा एवं अपरा दोनों विद्याएं परम शिव की विमर्श-शक्ति की ही लीलाएं हैं, अतः दोनों ही परम शिवस्वरूप ब्रह्मपदप्राप्ति के साधन हैं। अन्यथा दोनों विद्याओं को ब्रह्म से भिन्न मानकर प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाय तो यह आपत्ति होगी कि जिस प्रकार वट जड़ है, उसी प्रकार ब्रह्म भी जड़ होगा और इस आक्षेप को हटाना कठिन होगा।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शिवविमर्शशक्तिकृतत्वात् तत्स्वरूपत्वादेव परशिवब्रह्म प्राप्तुं साधनभूतं भवति। अन्यथा स्वातिरिक्तं विद्याद्वयं प्रमाणवेद्यत्वे घटादिवद् ब्रह्मणो जडतापत्तिर्दुर्निवारा स्यात्— इत्याशयेन नीलकण्ठशिवाचार्येण **सर्वं शक्तिकृतं यत** इत्युक्तमित्यपि बोध्यम्।

विद्ययोः परापरत्वम्

तथा च लिङ्गाङ्गसामरस्यापरपर्याय-शिवजीवैक्यबोधक-महामनुरूपकारणविद्यायाः परत्वम्, तदर्थैक्योपासनाविधायकत्वात् कार्यरूप-ऋग्वेदाद्यन्तभागस्याऽपरत्वं च सिद्धम् ॥५॥

परविद्यास्वरूपं निष्कलमक्षरम्

तत्सामरस्योपासनाविषयमक्षरं किंविशेषणकमित्यत आह—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण-
मचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं
तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥

(क्योंकि ब्रह्म की चितिशक्ति उससे अभिन्न है और ब्रह्म चैतन्यस्वरूप है। संपूर्ण प्रपंच ब्रह्म की विमर्शात्मिका चितिशक्ति की ही लीला है।) इस आशय से नीलकण्ठ शिवाचार्य ने **सर्वं शक्तिकृतं यतः** यह कहा है।

द्विविध विद्या का पराऽपरत्व— लिङ्गाङ्गसामरस्य और शिव-जीवैक्य दोनों परस्पर एक दूसरे के पर्याय हैं। उसका बोध करानेवाली प्रणवपूर्वक पञ्चाक्षर महामंत्रविद्या परा विद्या और अपरा विद्या की कारणस्वरूपा है। परा विद्या का ही परमार्थ है परमशिवस्वरूप परब्रह्म। महामंत्र उसका वाचक है। महामंत्र एवं उसका परमार्थ परम शिव दोनों एक हैं। वेदविद्या उनकी ऐक्योपासना का विधान करती है, जो ऋग्वेद आदि के रूप में परा विद्या से आविर्भूत होने के कारण कार्यस्वरूपा है। इसी से उसका 'अपरा' होना सिद्ध है, क्योंकि वह 'परा' नहीं है ॥५॥

परविद्यास्वरूप निष्कल अक्षर

अवतरण— यया तदक्षरमभिधीयते इस मन्त्रभाग से 'परा विद्या' द्वारा बोध्य जिस अक्षर ब्रह्म परम शिव की ओर सङ्केत किया गया है, उसी की विशेषताएं यहां प्रदर्शित की गयी हैं—

***मन्त्रार्थ*– यह परमशिव परा विद्या से गम्य है। अशुद्ध अन्तःकरण से उसे जाना नहीं जा सकता। बाह्येन्द्रिय उसे ग्रहण नहीं कर सकता। वह अनादि,**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यत्तदद्रेश्यमिति । यत् यस्मात् परविद्याधिगम्यं परशिवलिङ्गं **तत्** तस्मात् कारणात् **अद्रेश्यम्** अदृश्यमशुद्धान्तःकरणेन साक्षात्कर्तुमशक्यमित्यर्थः । **दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिर्** इति श्रुतेः । **अग्राह्यम्** बहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयम्, न त्वत्यन्ताग्राह्यमेव, तस्य परविद्यार्थविषयकोपासनात्मकभावग्राह्यत्वात् ।

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ।।

(श्वे. उ. ५.१४)

इति श्रुतेः, **निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम्** इत्यनुभवसूत्रोक्तेः, **शिवोऽहमिति भावो हि शिवत्वापत्तिकारणम्** (सि. शि. १६.१६) इत्याचार्यभगवत्पादोक्तेश्च । **अगोत्रम्** = गोत्रं कुलम्, तद्रहितमनन्वयम नत्वक्षरशब्दवाच्यस्य मनुष्यादीनामिवान्वयोऽस्ति । **अवर्णम्** = वर्णाः शुक्लादयो गुणाः, तद्रहितम्, **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्** इति श्रुतेः । **अचक्षुःश्रोत्रम्** = ज्ञानेन्द्रियरहितम्, **पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्ण** इति श्रुतेः ।

निराकार, नित्य, विभु, सर्वान्तर्यामी अत्यन्त सूक्ष्म, अव्यय और विश्व का उपादानकारण है । वीरशैव उसका साक्षात्कार करते हैं।।६।।

व्याख्या– यत् तदद्रेश्यमिति । यत् = जिस कारण से परशिवलिङ्ग पराविद्या से बोध्य, **तत्** उसी कारण से, **अद्रेश्यम्** = वह अदृश्य है, अशुद्ध अन्तः करण से उसका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता । जैसा कि इस अर्थ का श्रुतिवचन है— 'सूक्ष्मदर्शी सूक्ष्म दृष्टि से उसका साक्षात्कार करते हैं ।' **अग्राह्यम्** = चक्षुरादि वाह्येन्द्रियों से उसे प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसका साक्षात्कार ही नहीं हो सकता । क्योंकि सूक्ष्म-स्थूल पञ्चाक्षरी पराविद्या के परमार्थ को समझकर इष्टलिङ्ग की उपासना द्वारा वह भावैकवेद्य है । जैसा कि श्रुतिवचन है— "भावैकवेद्य भावलिङ्ग का दूसरा नाम अनीड है । वह 'भावाभावकर' है । संसार में कारणमात्र की प्रतीति भाव के रूप में होती है, कार्यमात्र की प्रतीति असत् (अभाव) के रूप में होती है । परन्तु परम शिव का भावलिङ्ग न तो कारणात्मक भावस्वरूप है, और न कार्यात्मक अभावस्वरूप । इसीलिए उसे 'भावाभावकर' कहा गया है। वह कलामात्र की सृष्टि करता है । वह 'देव' अर्थात् दीप्तिशील प्रकाशस्वरूप है। ऐसे भावलिङ्ग का जो साक्षात्कार करते हैं, उसका शरीराभिमान छूट जाता है ।"

'अनुभवसूत्र' का वचन है—

निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम् ।
सन्मात्रं भावलिङ्गं स्यादिति निष्ठा महात्मनाम् ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अदृश्यं नेत्रवद् ब्रह्म द्रष्टव्यं चास्ति नेत्रवत्।
स्वात्मन्येवोपलम्भोऽस्य दर्शनं घटवन्न तु ।।

इत्यभियुक्तोक्तेः। **तत्** = प्रकृतं ब्रह्म। **अपाणिपादम्** = कर्मेन्द्रियरहितम्, **नित्यम्** = कालपरिच्छेदरहितम्, **विभुम्** = देशपरिच्छेदरहितम्, **सर्वगतम्** = सर्वान्तर्यामितया स्थितम्। कुतः? सुसूक्ष्मम्, अणोरणीय इत्यर्थः। **तत्** = प्रकृतं ब्रह्म, **अव्ययमक्षरशब्दवाच्यम्**, त्रिकालाबाध्यमित्यर्थः। **यत्** = एवमदृश्यत्वादिगुणकं ब्रह्म, **भूतयोनिम्** = शब्दार्थमय-विश्वोपादानकारणम्।

जन्माद्यस्य इति, **शास्त्रयोनित्वाद्** इति, **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, निःश्वसितमेतदृग्वेदः, छन्दांसि जज्ञिरे** इति च सूत्रश्रुतिभ्यः शब्दार्थमयप्रपञ्चस्य

भावलिङ्ग 'निष्कल' अर्थात् बैन्दवी कला के अतिरिक्त अन्यकलाविहीन है। वह परात्पर और एकमात्र भावद्वारा ग्राह्य है। **अस्तीत्येवोपलब्धव्यः** (उसका अस्तित्व है, अतः भाव द्वारा उसका साक्षात्कार करना चाहिए।) इस श्रुतिवचन के अनुसार वह सत्तामात्र है, यही महात्माओं की निष्ठा (श्रद्धा-विश्वास) है।

आचार्य **श्रीरेणुकभगवदाचार्य** अपने **सिद्धान्तशिखामणि** में कहते हैं कि 'ज्ञानयुक्त सदाचार की अपेक्षा शिवोऽहम् (मैं शिव हूँ) इस प्रकार की दृढ भावना ही शिवभाव की प्राप्ति का कारण है' (सि. शि. १६.१६)।

अगोत्रम् = परमशिव गोत्र (कुल) से भी परे हैं। 'अक्षर' स्वरूप परमशिव का अन्वय (वंश) उस प्रकार का नहीं है, जैसा सामान्य मनुष्यों का होता है क्योंकि वह अनादि अनन्त हैं, उनका कोई आदि नहीं है, प्रत्युत कुल-परम्परा का प्रवर्तन वहीं से होता है। **अवर्णम्** = शुक्ल आदि गुण 'वर्ण' कहे जाते हैं। निराकार होने से उनका कोई गोरा-काला आदि रंग-रूप भी नहीं है। **अचक्षुःश्रोत्रम्** = परमशिव पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से रहित है। जैसा कि श्रुति प्रतिपादित करती है— **पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः** (वह आंख न होने पर भी देखता है, कान न होने पर भी सुनता है।) इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार परम शिव सामान्य चक्षुरिन्द्रिय का विषय न होने पर भी चक्षुरादिज्ञानेन्द्रिय- शून्व वह सभी विषयों का साक्षात्कार चक्षुरिन्द्रिय से होने वाले विषयों के साक्षात्कार जैसा ही करता है। उसका प्रत्यक्ष घट-पटादि के समान नहीं होता, अपितु अपने अन्तस्तल में ही उसका प्रत्यक्ष किया जाता है। **तत्** = ऐसा वह परमशिव, **अपाणिपादम्** = हाथ-पैव आदि कर्मेन्द्रियों से शून्य है, क्योंकि वह अशरीरी है। **नित्यम्** = काल की सीमा से बंधे न होने के कारण नित्य है, सभी कालों में विराजमान है। **विभुम्** = देश की सीमा में आबद्ध न होने के कारण सर्वत्र

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कारणत्वावगमाद् एवम्भूतं परशिवलिङ्गं **धीराः** = लिङ्गाङ्गसामरस्यपरापरविद्या(यां) रममाणा वीराः, **परिपश्यन्ति** परशिवलिङ्गप्रसादात् साक्षात्कुर्वन्ति। नहि घटादिवत् स्वातिरिक्ततया पश्यन्ति, किन्तु दीक्षात्रयविगलितमलविलासा अनुष्ठितसाङ्गशिवलिङ्गार्चनादि-वीरशैवीय-धर्मविजृम्भितशिवप्रसादविकसितशिवचिच्छक्ति-सङ्कोचचित्तविशिष्टाः स्वाभेदेन स्वमात्मानं शिवं पश्यन्तीत्यर्थः। उक्तं च शक्तिसूत्रे—

चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसंकोचिनी चित्तम्। तत्परिज्ञाने चित्तमेवाऽन्तर्मुखीभावेन चेतनपदाध्यारोहाच्चितिरिति।

विराजमान है। **सर्वगतम्** = सर्वान्तर्यामी है। वह **सुसूक्ष्मम्** = अणु से भी सूक्ष्म है। **तत्** = वह पर ब्रह्म, **अव्ययम्** = अक्षर शब्दवाच्य होने से तीनों कालों में नाशरहित, अबाध्य है। **यत्** = ऐसा जो परम शिव है वह, **भूतयोनिम्** = शब्दार्थ-स्वरूप समस्त विश्व का उपादान कारण है। **जन्माद्यस्य यतः, शास्त्रयोनित्वात्, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदः, छन्दांसि जज्ञिरे** इत्यादि सूत्र एवं श्रुति वचन इसमें प्रमाण हैं। इस प्रकार के परशिवलिङ्ग का, **धीराः** = लिङ्गाङ्गसामरस्य से अभिन्न पराविद्या और उसका प्रतिपादन करने वाली अपरा विद्या में रमने वाले वीरशैव, **परिपश्यन्ति** = परशिवलिङ्ग के कृपाप्रसाद से ही साक्षात्कार करते हैं। जिस प्रकार घटादि का वे अपने से भिन्न रूप में साक्षात्कार करते हैं, उस प्रकार वे परशिवलिङ्ग का साक्षात्कार नहीं करते, अपितु प्रथम गुरुप्रदत्त वेधादीक्षा, मन्त्रदीक्षा और क्रिया-दीक्षा इस त्रिविध दीक्षा द्वारा उनके आणव, मायीय एवं कार्म मलों का प्रक्षालन होता है। विधिपूर्वक इष्टलिंग की अर्चना आदि वीरशैवधर्मसम्मत अनुष्ठान द्वारा परम शिव की कृपादृष्टि से जब चिच्छक्ति का विकास उनके चित्त में होता है, तब अपने से परम शिव के साथ अभेददृष्टि द्वारा वे स्वयं शिवस्वरूप हो जाते हैं और स्वयं में ही परम शिव का साक्षात्कार करते हैं।

जैसा कि **शक्तिसूत्र** का वचन है— **चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्, तत्परिज्ञाने चित्तमेवान्तर्मुखीभावेन चेतनपदाध्यारोहाच्चितिः।** चिति ही चित्त है और चित्त ही चिति। दोनों में अभेद है, किन्तु बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता के कारण वे उसकी दो अवस्थाएं हैं। चैतन्य पद पर आरूढ परम शिव की विमर्श शक्ति ही **चितिशक्ति** अथवा **चित् शक्ति** है। वह चिच्छक्ति जब चेतन पद से अवतीर्ण होकर सङ्कुचित होती हैं, **चित्त** कहलाती है। अर्थात् चिच्छक्ति का सङ्कोच ही **चित्त** है। जब तक उसका विकास नहीं होता, तब तक जीव उससे आबद्ध होता है। स्वस्वरूप का परिज्ञान होने पर **विमर्श-शक्ति** का सङ्कोच हटने लगता है, उसका विकास होता है और वह अन्तर्मुख होकर चेतन पद पर आरूढ होती है उस स्थिति में **चिति** कहलाती है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ।।

इति श्रुतेः ।

अत्र योनिशब्दस्योपादानकारणपरत्वम्, **यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च** इत्यग्रिमवाक्यात्, **यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य** इति महाकविप्रयोगाच्चाऽवगम्यते । एवं चाऽक्षरशब्दवाच्यस्य परशिवलिङ्गस्य

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः ।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात् ।।

इत्युक्तप्रकारेण विश्वोपादानत्वात् । तद्विषयकोपासनादार्ढ्ये परित्यक्तबहिर्मुखत्वरूप-सङ्कोचकलाशाल्यन्तर्मुखीभावप्रवृद्धचित्तशक्तिविशिष्टेन शुद्धशिवांशरूपात्मना प्रभाकरां-शचक्षुषीव

अणोरणीयान् महतो महीयान् इत्यादि श्रुति वचन के अनुसार परब्रह्मस्वरूप परम शिव अणु से भी सूक्ष्मतम है, और स्थूल से भी स्थूलतम है । वह प्राणिमात्र की गुहा (अन्तस्तल) में विद्यमान है । पशुकर्म से विरत वीतराग वीरशैव सृष्टिकर्ता की कृपा से महेश्वरस्वरूप उस परम शिव का साक्षात्कार करता है । इस मंत्र में **भूतयोनिम्** पद में स्थित योनि शब्द का अर्थ उपादान कारण है । यह तथ्य **यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च** इस अग्रिम मन्त्र वाक्य और **यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य** इस महाकवि द्वारा प्रयुक्त 'योनि' शब्द से ज्ञात होता है । 'अक्षर'शब्दवाच्य परशिवलिङ्ग

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः ।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात् ॥

इस श्लोक में प्रतिपादित रीति से विश्व का उपादान कारण है । इसका अर्थ यह है कि 'परम शिव अपनी शक्ति के विकास द्वारा समस्त विश्व के रूप में परिणत होता है, अर्थात् परमशिव की विमर्श शक्ति से समस्त चराचर जगत् की सृष्टि होती है, और इस प्रकार परमशिव विश्व का उपादान कारण है । पट जिस प्रकार अपने को फैलाकर कुटी का स्वरूप ग्रहण करता है, उसी प्रकार परम शिव अपनी विमर्श शक्ति के विकास से विश्व का आकार ग्रहण करता है ।'

उस परम शिव की उपासना में दृढता रखते हुए जब जीव अपनी बहिर्मुख प्रवृत्तियों को सङ्कुचित करता है और जब उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ जाग उठती हैं, तब उसकी चितिशक्ति विकसित होने लगती है । ऐसी स्थिति में वह स्वयं को शुद्ध शिव के अंश के रूप में अपने से अभिन्न अंशीस्वरूप परम शिव का साक्षात्कार करता है । यतः वह

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रभाकरे साक्षात्कृते सर्वोपादाने परशिवब्रह्मणि सर्वमिदं विज्ञातं भवति, विज्ञातब्रह्माभिन्नत्वात् सर्वस्येत्युपरिष्टात् स्पष्ट आशयः ॥६॥

अथाऽक्षरसृष्टिः

ननु लोके घटाद्युपादानं मृण्मयकपालादिकं तदतिरिक्तं च निमित्तं कुलालादिकं दृष्टम्, नहि घटाद्युपादाने दृष्टे निमित्तं निमित्ते च घटादिकं ज्ञायते। तत्कथमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानोपपत्तिरित्यत आह—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥

परशिवब्रह्म समस्त जगत् का उपादान कारण है, अतः अपने से अभिन्न परम शिव में समस्त चराचर जगत् का उसी प्रकार साक्षात्कार करता है, जिस प्रकार सम्पूर्ण लोक चक्षुस्वरूप प्रभाकर सूर्य के आलोक में स्थावर-जंगम-स्वरूप विश्व का साक्षात्कार करते हैं। क्योंकि जिस परम शिव का साक्षात्कार उसका अंशस्वरूप जीव करता है, समस्त विश्व उससे अभिन्न ही है। यह अतिरिक्त अर्थ भी ज्ञात होता है ॥६॥

अक्षर सृष्टि

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि दुनिया में किसी वस्तु के दो कारण होते हैं— १. उपादान कारण और २. निमित्त कारण। घट का उपादान कारण मृण्मय कपाल है और उसका निमित्त कारण उससे भिन्न कुम्हार हैं। उपादान कारण मृण्मय कपाल को देखकर उसके निमित्त कारण कुम्हार का ज्ञान नहीं होता। उसी प्रकार कुम्हार को देखकर उसकी कृति घट का भी ज्ञान नहीं होता। तब शौनक द्वारा किये गये **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** इस प्रश्न की संगति कैसे होगी? क्योंकि सामान्यतया किसी भी कृति का निमित्त कारण उससे भिन्न होता है। इसी प्रश्न का समाधान अनेक दृष्टान्तों द्वारा अग्रिम मंत्र में किया गया है।

***मन्त्रार्थ*— जिस प्रकार मकड़ी अपने ही शरीर से जाला बुनती है और उसको अपने में ही समेटती है, जिस प्रकार पृथिवी में रहने वाली औषधियाँ उसी से उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार चेतन पुरुष से केश और रोएं निकलते हैं, उसी प्रकार इस अक्षर परशिवलिङ्गस्वरूप अव्यक्त अक्षर ब्रह्म से विश्व आविर्भूत, व्यक्त होता है ॥७॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यथोर्णनाभिरिति । यथा **ऊर्णनाभिः** = लूताकीटः, स्वशरीरांशप्राधान्येन च स्वलीनतन्तून् बाह्ये जालाकारेण स्वेतराननपेक्ष्य **सृजते** = सृजत्युत्पादयति । पुनश्च तानेव **गृह्णते** = गृह्णाति = स्वात्मलीनान् करोति । यथा पृथिव्या**मोषधयः** = ग्रीष्मकाले पृथिव्यां बीजरूपेण स्थिताः पृथिवीतोऽव्यतिरिक्ता वर्षाकालेऽङ्कुरादिक्रमेण वनस्पतयः, **सम्भवन्ति** = जायन्ते । तथा च स्मृतिः—

सत्प्रज्ञानघनानन्दे शिवे परमकारणे ।
चराचरजगज्जालं ग्रीष्मे क्ष्मालीनबीजवत् ।।
सूक्ष्मरूपेण संस्थित्या पुनस्तस्य चिकीर्षया ।
स्थूलत्वेन बहिर्यातम् ।। इति।

यथा **सतः**=जीवतः, **पुरुषात्**=अजडात् चेतनात्, **केशलोमानि**=केशाश्च लोमानि च जडानि, **सम्भवन्ति**=उत्पद्यन्ते, तथा **अक्षरात्**=अक्षरशब्दवाच्यात् परब्रह्मणः शिवलिङ्गात्, **विश्वम्**=चेतनाचेतनात्मकम्, **इह**=अक्षर एव न त्वन्यत्र, **सम्भवति**=स्वेच्छया उन्मिषितं भवति । न त्वन्येच्छया प्रकटीकृतं भवति, अनीश्वरत्वप्रसङ्गात् । नहीच्छादिकल्याणगुणरहिताद्

यथोर्णनाभिरिति । **यथा** = जिस प्रकार, **ऊर्णनाभिः**=मकड़ी अपने शरीर के अंशस्वरूप मुख्य रूप से उसी में विलीन अपने ही तन्तुओं को बाहर जाल के रूप में बिना दूसरे उपादान की अपेक्षा किये, **सृजति** = उत्पन्न करती है, व्यक्त करती है, बुनती है । और फिर उन्हें ही, **गृह्णते** = संकलित करती है, अपने में समेटती है । **यथा** = जिस प्रकार, ग्रीष्म ऋतु में **पृथिव्याम्** = धरती में, **ओषधयः** = बीज रूप में अवस्थित उससे अभिन्न वर्षा काल में वनस्पतियां, **सम्भवन्ति** = उत्पन्न, अङ्कुरित होती हैं । जैसा कि—

सत्प्रज्ञानघनानन्दे शिवे परमकारणे ।
चराचरजगज्जालं ग्रीष्मे क्ष्मालीनबीजवत् ।।

इत्यादि स्मृतिवचन के **ग्रीष्मे क्ष्मालीनबीजवत्** इस चरण में उसी दृष्टान्त का उपन्यास किया गया है । इसका अर्थ यह है कि "चराचरस्वरूप समस्त ब्रह्माण्ड सत्य-ज्ञान-घनानन्दस्वरूप परम कारणस्वरूप परम शिव में उसी प्रकार अव्यक्त रूप में विद्यमान हैं, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में धरती में बोए गए बीज अव्यक्त, सूक्ष्म रूप से रहते हैं और फिर सृष्टि की इच्छा होने पर वे ही बीज स्थूल रूप से बाहर निकलते हैं"।

अन्य दृष्टान्त इस प्रकार है— **यथा** = जिस प्रकार, **सतः पुरुषात्** = जीवित, जड़तारहित चेतन-पुरुष से, **केशलोमानि** = केश और रोम निकलते हैं, **तथा** = उसी प्रकार **अक्षरात्** = अक्षर परब्रह्मस्वरूप शिवलिङ्ग से, **विश्वम्** = चेतन-अचेतन जगत्, **इह** = इस अक्षर ब्रह्म में, अन्यत्र नहीं, **सम्भवन्ति** = स्वेच्छा से उन्मिषित होता है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

निर्विशेषात् सम्भवति, जडत्वप्रसङ्गात्, जडस्य विश्वसृष्ट्यौन्मुख्याभावात्, **कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्, यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः** (२.२.७) इत्यादिना अक्षरे ब्रह्मणि ज्ञानादिकल्याणगुणानां वक्ष्यमाणत्वाद् अक्षरस्य निर्विशेषत्वे तस्य विरोधः स्यात् । तस्माद् ज्ञानाद्यनन्तशक्तिविशिष्टमेव परशिवलिङ्गमक्षरमिति बोध्यम् । तथा च **चैतन्यमात्मा, स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति, ईक्षतेर्नाशब्दम्, आत्मकृतेः परिणामात्, लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्** इत्यादिशिवसूत्र-शक्तिसूत्र-ब्रह्मसूत्राणां चाऽविरोधोऽपि द्रष्टव्यः, स्वलीलार्थं विश्वभुवननिर्माणे परब्रह्मणः स्वातिरिक्तकारणान्तरसापेक्षत्वेऽनीश्वरत्वप्रसङ्गात् । कारणान्तरनैरपेक्ष्येण ईप्सितार्थप्रद-चिन्तामण्यादिवद् योगिवच्च ऊर्णनाभिवच्च मयूराण्डरसगतपादपक्षादिवर्णवैचित्र्यन्यायेन जडाजडात्मकविश्वं शिवादिधरण्यन्तं प्रकटीकृत्य

अक्षरब्रह्म शक्तिविशिष्ट है, निर्विशेष नहीं

यह विश्व परशिव लिङ्ग से उसकी अपनी ही इच्छा से व्यक्त होता है, किसी दूसरे की इच्छा से नहीं । अन्यथा अनीश्वरत्व (ईश्वर की अस्तित्वहीनता) का ही प्रसङ्ग उपस्थित होगा । इसी प्रकार निर्गुण-निर्विशेष (इच्छा आदि कल्याणकारी गुणों से रहित, विशेषण-शून्य) परब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति होती है, ऐसी स्थिति में समस्त सृष्टि के कर्ता को जड़ मानना पड़ेगा । जड़ विश्व की सृष्टि की ओर उन्मुख नहीं हो सकता ।

कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्,
यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।। (१.१.९)

इत्यादि मन्त्रभाग द्वारा अक्षब्रह्म में ज्ञान आजि कल्याणकारी गुणों का आगे चलकर प्रतिपादन किया जानेवाला है । यदि अक्षर को निर्विशेष (गुणों या विशेषताओं से शून्य) माने तो उन मंत्रों के साथ विरोध प्रतीति होगी । अत: परशिवलिङ्गस्वरूप अक्षब्रह्म ज्ञान आदि अनन्त शक्तियों से विशिष्ट ही है यह समझना चाहिए । ऐसा मानने पर **चैतन्यमात्मा, स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति, ईक्षतेर्नाशब्दम्, आत्मकृतेः परिणामात्, लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्** इत्यादि **शिवसूत्र, शक्तिसूत्र** और **ब्रह्मसूत्र** के साथ इसका विरोध नहीं होगा । परब्रह्म अपनी ही लीला दिखाने के लिए समस्त चराचर जगत् का निर्माण करता है । उस निर्माण में परब्रह्म को अपने से भिन्न अन्य-कारण- सापेक्ष मानने पर 'अनीश्वरत्व' अर्थात् उसके अस्तित्व की समाप्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा । वस्तुत: सिद्धान्त यह है कि परशिवलिङ्ग ही अक्षर है, वह अन्य कारण की बिना अपेक्षा किये जड़ (अचेतन) और अजड़ (चेतन) विश्व को अपने से प्रकट करता है । वह उसकी स्थिति और संहार, बन्ध और मोक्ष आदि समस्त कृत्यों में प्रवीण है । इसके लिए अनेक दृष्टान्त हैं । वह उस चिन्तामणि के समान है, जो बिना अन्य उपादान के अभीष्टसिद्धि करता है । वह उस योगी के समान है, जो अपनी ही इच्छा से सभी की कामनापूर्ति करता है । वह उस **ऊर्णनाभि** (मकड़ी) के समान है, जो अपने ही शरीर के तन्तुजाल से जाला बुनती है और उसे अपने

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्स्थिति-संहार-बन्धमोक्षलक्षण-कृत्यप्रवीणं परशिवलिङ्गमेवाक्षरमिति सिद्धान्तः । उक्तं च **शिवाधिक्यरत्नावल्याम्—**

वेदान्ते पुरुषाक्षरामृतसदीशब्रह्ममुख्यैः प्रभुः
प्राधान्येन च वाच्य एव परमः शम्भुः प्रसिद्धैः पदैः ।
अन्यत्रांशतया शिवस्य हि तदा नामान्यमूनि क्वचिद्
वर्तन्ते निगमान्तविद्बुधजना जानन्ति तन्नेतरे ।।

यस्मादक्षरशब्दकादुदभवद् विश्वं परब्रह्मणः
शम्भोः शक्तिमतः स्फुलिङ्गततिवद् वह्नेस्तु दीप्तेःपरम् ।
यस्मिन्नस्तमुपैति चान्तसमये बीजेन सार्धं पुनः
सोऽप्येकः परमस्त्रिमूर्तिजनकः सर्वाण्डयूथाधिपः ।।

।।इति।।७।।

अथ सृष्टिप्रकारः

तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वमित्युक्तम्, तत् कथं सम्भवतीत्यत्र— **तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी, अनादिनिधनाच्छान्ताच्छिवात् परमकारणात् ।**

में ही समेटती है । वह उस **मयूराण्ड** के समान है जिस के रस से विविध वर्ण के पंखोंवाला मोर जन्म लेता है । इस प्रकार परशिवलिङ्ग ही अक्षरब्रह्म है, जो अन्य कारण की अपेक्षा किये बिना शिव से लेकर धरती तक चेतन-अचेतन संपूर्ण विश्व को अपने से ही प्रकट करता है । वही उसकी स्थिति और संहार में भी समर्थ है और बंध तथा मोक्ष में भी । जैसा कि **शिवाधिक्य- रत्नावली** का वचन है—

वेदान्ते इत्यादि । "वेदान्त दर्शन में परम शिव को पुरुष, अक्षर, अमृत, सत्, ईश, ब्रह्म आदि नामों से प्रधानतया संबोधित किया गया है । अन्यत्र क्वचित् उक्त नाम उसके अंशस्वरूप में हैं । वेदान्तवेत्ता विद्वान् ही इसको जान सकते हैं, अन्य नहीं ।

जिस प्रकार अग्नि के तेज से चिनगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार शक्तिविशिष्ट अक्षर-शब्द-वाच्य परब्रह्मस्वरूप जिस परमशिव से समस्त जगत् का प्रादुर्भाव हुआ अन्त समय में पुन: बीज के साथ जिसमें वह विश्व अस्तंगत होता है, वह एक अद्वितीय परम शिव सत्त्वमूर्ति ब्रह्मदेव, रजोमूर्ति विष्णु और तमोमूर्ति महेश का जनक समस्त ब्रह्माण्डों कें समूह का स्वामी है" ।।७।।

सृष्टि-प्रकार

पूर्व मन्त्र में **तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्** इस प्रकार अक्षरब्रह्म से सृष्टि प्रतिपादित है । वह किस प्रकार होती है? इस विषय में **तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इच्छाशक्तिर्विनिष्क्रान्ता इत्यागमोक्तेः, **बहु स्याम्** इत्याकारकेच्छाशक्त्यपरपर्यायविमर्शशक्त्या जलाधिवासित-चणकादिवत् सृष्ट्युन्मुखपरशिवलिङ्गमेव ईशानादिपञ्चब्रह्मरूप-लिङ्गस्थलात्मना आविर्भूय, ततः चेतनाल्लोमनखादिवत् स्वविमर्शशक्त्यंशोन्मिषिताऽज्ञानापरपर्याय-बन्धात्मकभेदबुद्धिरूपाऽशुद्धमायाप्रतिस्फुरितज्ञानक्रियागर्भेच्छाशक्तिरूपप्रकृत्यादिधरान्ततत्त्व-ब्रह्माण्डादिविचित्रतनुकरणभुवनभोक्तृभोग्यात्मकविश्वात्मना विजृम्भत इति सृष्टिप्रकारमाह—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ।।८।।

तपसेति । तपसा=ज्ञानेन सङ्कल्पात्मकेन, **यस्य ज्ञानमयं तप** इति वक्ष्यमाणत्वात् । **ब्रह्म**=उपक्रान्ताक्षरशब्दवाच्यं परशिवलिङ्गमेव, न तु चतुर्मुखविष्ण्वादिकम्, तस्य माया-

---

प्रसृता पुराणी और **अनादिनिधनाच्छान्ताच्छिवात् परमकारणात् । इच्छाशक्ति-र्विनिष्क्रान्ता** इन आगमवचनों से यह प्रतिपादित किया गया है कि उसी अनादि-अनन्त परम शिव से इच्छाशक्ति अथवा विमर्शशक्ति का प्रादुर्भाव होता है । **बहु स्याम्** इस प्रकार परम शिवलिङ्ग की इच्छाशक्ति जागृत होती है और वह उससे सृष्टि की ओर उन्मुख होता है । जिस प्रकार जलपूर्ण कलश में बोए हुए चना, जौ आदि से अँकुर फूटते हैं, उसी प्रकार परमशिवलिङ्ग से ईशान आदि पञ्चब्रह्मस्वरूप प्रसादलिङ्ग आदि लिङ्गस्थलों का आविर्भाव हुआ । पश्चात् जिस प्रकार चेतन पुरुष से लोम, नख आदि का प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार पञ्चब्रह्मतनु परम शिव से प्रकृति से लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त ब्रह्माण्ड आदि विविध विचित्र रूपों में विश्व अवतीर्ण होता है, जो उसी की अपनी विमर्शशक्ति के अंश से प्रकट होनेवाली अज्ञानबन्धात्मिका भेदबुद्धिरूपा अशुद्ध माया से स्फुरण पानेवाली ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति के गर्भ में रहनेवाली इच्छाशक्ति का ही रूपान्तरण है । वह विश्व भुवनभोक्ता के द्वारा उपभोग के योग्य होता है । उसी सृष्टि क्रम को अग्रिम- मंत्र में प्रदर्शित किया गया है—

***मन्त्रार्थ*– संकल्पात्मक ज्ञान से परशिवलिङ्गात्मक अक्षरब्रह्म पञ्च ब्रह्मों के रूप में वृद्धिंगत होता है । उससे त्रिगुणात्मिका प्रकृति जन्म लेती है । त्रिगुणात्मिका प्रकृति से पञ्च प्राण, अन्तःकरण, भोक्तृवर्ग, सप्तलोक और लिंगधारणादि पतिकर्मों में प्रवृत्त होने पर चित्त के विकास से शिवत्वप्राप्तिरूप अमृतपद (मोक्ष) मिलता है ।।८।।**

***व्याख्या*– तपसा चीयते ब्रह्म— तपसा** = संकल्पात्मक ज्ञान के द्वारा, जैसा कि **यस्य ज्ञानमयं तपः** इस प्रकार अग्रिम मंत्र में प्रतिपादित है। **ब्रह्म = यया तदक्षरमभिधीयते** (१.१.५) इस मंत्र में 'अक्षर' शब्द से संकेतित ब्रह्मस्वरूप पर शिवलिङ्ग ही, चतुर्मुख ब्रह्मदेव, चतुर्भुज विष्णु आदि नहीं । क्योंकि वे माया से परिकल्पित हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परिकल्पितत्वात्, पञ्चब्रह्मात्मकेन परशिवेन पञ्चकृत्येषु नियमितत्वात्, सद्योजाताऽपरनामकाचारलिङ्गेन चतुर्मुखस्य सृष्टिकर्मणि नियमितत्वात्, वामदेवेन गुरुलिङ्गेन विष्णोः स्थितिकर्मणि नियमितत्वात्, अघोरेण शिवलिङ्गेन कालरुद्रस्य संहारकर्मणि नियमितत्वात्, तत्पुरुषेण चरलिङ्गेन ईश्वरस्य नियमनकर्मणि नियमितत्वात्, ईशानेन प्रसादलिङ्गेन सदाशिवस्य अनुग्रहात्मकबन्धमोचनकर्मणि नियुक्तत्वात्, **पञ्चकृत्यनियन्तारं पञ्चब्रह्मात्मकं बृहद्** इति श्रुतेः, चतुर्मुखादीनामङ्गशब्दित-भक्ताद्युपासक-कोटिप्रविष्टत्वात्, सद्योजातादि-पञ्चब्रह्मणां लिङ्गस्थलसंज्ञितोपास्यकोटिप्रविष्टत्वात्, **ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सेव्यं सर्वेषां जनकं परम्** इति श्रुतेः । **चीयते**=पञ्चब्रह्मात्मना उपचीयते ।

पञ्चब्रह्मस्वरूप परशिव स्वयं **पञ्च कृत्यों** के लिए अधिकृत है । १. परशिवलिंग का **सद्योजात** मुख (आचारलिङ्ग) चतुर्मुख **ब्रह्मदेव** को सृष्टिकर्म के लिए अधिकृत करता है । २. परशिव ब्रह्म से आविर्भुत **वामदेव** मुख (गुरुलिङ्ग) चतुर्भुज **नारायण** को पालनकर्म के लिए अधिकृत करता है । ३. उससे प्रकट **अघोर** मुख (शिवलिङ्ग) **श्रीकालरुद्र** को संहारकर्म के लिए अधिकृत करता है । ४. उसका चतुर्थ **तत्पुरुष** मुख (चरलिङ्ग) **ईश्वर** को नियमन का अधिकार देता है । ५. उसका पञ्चम विग्रह **ईशान** (प्रसाद लिङ्ग) **सदाशिव** को अनुग्रहस्वरूप मुक्ति (बन्धन से छुटकारा) दिलाने का अधिकार प्रदान करता है । इस प्रकार पञ्चब्रह्मस्वरूप परशिव ही अपने विभिन्न रूपों में प्रकट होकर यथाक्रम पृथक् पृथक् पञ्च कृत्यों का सम्पादन करता है । जैसा कि श्रुतिवचन है—

पञ्चकृत्यनियन्तारं पञ्चब्रह्मात्मकं बृहत् ।

ब्रह्मदेव, नारायण, कालरुद्र, सदाशिव, ईश्वर और सदाशिव अङ्गस्थल हैं और भक्तस्थल आदि उपासकों की कोटि में प्रविष्ट हैं । सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान ये परम शिव के पञ्चब्रह्म हैं । आचारलिङ्ग, गुरुलिङ्ग, शिवलिङ्ग, चरलिङ्ग और प्रसादलिङ्ग उसी के यथाक्रम विभिन्न पर्याय हैं तथा उपास्यकोटि में प्रविष्ट हैं । इसमें यह श्रुतिवचन प्रमाण है—

ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सेव्यं सर्वेषां जनकं परम् ।

परम शिव ब्रह्मदेव, विष्णु आदि सभी के जनक हैं और उनके द्वारा पूजित हैं । **चीयते** = (इस प्रकार परम शिव पञ्च ब्रह्मों के रूप में) विस्तार पाता है ।

ततोऽन्नमभिजायते— (ततः=) इस प्रकार जिस प्रकार मकड़ी आदि से तन्तुजाल आदि का आविर्भाव होता है, उसी प्रकार अपने ही अंश से प्रकट होने वाले अज्ञान बन्धन में स्फुरण पाने वाले पूर्वोक्त रीति से उपचित, विस्तारशील ब्रह्मस्वरूप परमशिव लिङ्ग से, **अन्नम्** = 'अद्यते इति अन्नम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार उपभोग्या त्रिगुणात्मिका प्रकृति (प्रधान) का, **अभिजायन्ते** = प्रादुर्भाव होता है । **अन्नात्** = त्रिगुणात्मिका प्रकृति से,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत एवमुपचिताद् विमर्शशक्तिविशिष्टाद् ब्रह्मण ऊर्णनाभ्यादेस्तन्त्वादिकमिव स्वांशेनाविर्भूतेऽज्ञाने बन्धरूपे प्रतिस्फुरितात्, **अन्नम्**=अद्यते इत्यन्नं त्रिगुणात्मकं प्रधानाख्यम्, **अभिजायते**=प्रादुर्भवति । अन्नात् **प्राणः** प्रसिद्धः, **मनः**=अन्तःकरणम्, **सत्यम्**=भोक्तृवर्गः, **लोकाः**=प्रसिद्धाः सप्त उत्पद्यन्ते इत्यर्थः । किञ्च, **कर्मसु**=पतिकर्मसु सत्सु विशुद्धादन्नात् चित्तापरपर्यायात् चितिरूपाद**मृतम्**=शिवत्वप्राप्तिरूपमोक्षोऽभिजायत इत्यनुषङ्गः ।

उत्पत्तिक्रमोऽत्राविवक्षितः । भूतादिशुद्ध्यापादकशिवलिङ्गार्चनादिपतिकर्मानुष्ठायिनोऽशुद्धिरूपमलस्य बन्धकस्य निरस्तत्वादमृतत्वमाविर्भवति । तथा च **अज्ञानं बन्ध** इति सूत्रेण कार्यसहितभेदबुद्धिरूपाज्ञानस्य बन्धकत्वमुक्त्वा **उद्यमः शिव** इति सूत्रेण क्रियादिदीक्षोपायरूपोद्यमस्य शिवत्वसम्पादकत्वमुक्तं शिवेन । उक्तं **चानुभवसूत्रे**ऽपि परिशुद्धात्मनः शिवरूपत्वम्—

प्राणः = पञ्च प्राण, **मनः** = अन्तःकरण, **सत्यम्** = भोक्तावर्ग, **लोकाः** = प्रसिद्ध सात लोक (**अभिजायन्ते**=) उत्पन्न होते हैं । और भी, **कर्मसु** = लिङ्ग धारण आदि पतिकर्मों का अनुष्ठान न करने पर, विशुद्ध अन्न से, सङ्कुचित चिति शक्ति से, जिसका अन्य पर्याय चित्त भी है (उसके विकसित होने पर), **अमृतम्** =शिवभावप्राप्तिरूप मोक्ष का, **अभिजायते** = आविर्भाव होता है, यह सम्बन्ध है ।

[आचार्य **शंकर** उत्पत्तिक्रम को मानते हैं । इस मंत्र के अवतरण में वे कहते हैं— **'यद् ब्रह्मण उत्पद्यमानं विश्वं तदनेन क्रमेणोत्पद्यते, न युगपद् बदरमुष्टिप्रक्षेपवदिति'**। उनके मत में ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति का एक क्रम है । वह सृष्टि एक साथ नहीं होती, जैसा कि मुट्ठी भर बैर को एक साथ छिड़कने पर एक साथ बैर उगते हैं । उनके मतानुसार त्रिगुणात्मिका प्रकृति से यथाक्रम प्राण (हिरण्यगर्भ), मन, पञ्च महाभूत, सप्त लोक प्रकट होते हैं । इसी शांकर मत से अपना मतभेद प्रगट करते हुए ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री कहते हैं—]

प्रस्तुत प्रसङ्ग में उत्पत्तिक्रम की विवक्षा नहीं है । शिवलिङ्ग आदि की अर्चना पतिकर्म हैं, उनसे भूतादि की शुद्धि होती है । उनका अनुष्ठान करनेवाले वीरशैव भक्त का अशुद्धिस्वरूप मल हट जाता है, जो मोक्ष में बन्धनकारक होता है । उसके निरसनमात्र से 'अमृतत्व'रूप मोक्ष का प्रादुर्भाव होता है । जैसा कि **शिवसूत्र** में प्रतिपादित है— **अज्ञानं बन्धः**। इस सूत्र में कार्यसहित भेदबुद्धिस्वरूप अज्ञान को मोक्ष का बन्धनकारक कहा गया है । **'उद्यमः शिवः'** इस सूत्र से यह प्रतिपादित किया गया है कि जो क्रियादीक्षा, वेधादीक्षा और मंत्रदीक्षा आदि विविध उपायों में उद्यमशील रहता है, वह वीरशैव शिवभाव प्राप्त करता है । **अनुभवसूत्र** में परिशुद्ध जीवात्मा के शिवस्वरूप को इस प्रकार प्रकट किया गया है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आत्मायं केवलः शुद्धः शिवस्यांऽशः सदाऽमलः ।
नित्यो निरञ्जनः शान्तस्तस्मादात्मा स्वयं शिवः ।। इति।

उक्तं च **पञ्चब्रह्मोपनिषदि—**

पञ्चब्रह्मात्मकं सर्वं स्वात्मनि प्रविलाप्य च ।
सोऽहमस्मीति जानीयाद् विद्वान् ब्रह्मामृतो भवेत् ।।

इत्येतद् ब्रह्म जानीयाद् यः स मुक्तो न संशयः ।
पञ्चाक्षरमयं शम्भुं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।।

नकारादियकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरं जपेत् ।
सर्वं पञ्चात्मकं विद्यात् पञ्चब्रह्मात्मतत्त्वतः ।। इति।

तस्मादमृतपदस्य स्वर्गाद्यनित्यफलार्थपरत्वानौचित्यात् पूर्वोक्तोर्णनाभिदृष्टान्तवैषम्याच्च तत्र लूताकीटाद्यस्मात् तन्तुप्रसारणस्य तत्रैव तद्विलयस्योक्तत्वात्, तथा दृष्टान्तादक्षराद्

आत्मायम् इत्यादि। ''यत: त्रिविध मलों से मुक्त सदा निर्मल केवल एकमात्र शुद्ध जीवात्मा शिव का अंश ही है, अत: शिव में विलीन वह जीवात्मा नित्य निरञ्जन शान्त एवं स्वयं शिवस्वरूप ही है''।

पञ्चब्रह्मोपनिषद् में भी इस प्रकार वर्णन है—

पञ्चब्रह्मात्मकम् इत्यादि। ''विद्वान् जीवात्मा को चाहिए कि वह पञ्चब्रह्मस्वरूप परमशिवमय समस्त विश्व को अपने में विलीन करते हुए **'सोऽहमस्मि'** इस भावना के साथ 'ब्रह्मीभूत' हो, अर्थात् परमशिवस्वरूप ब्रह्म के साथ सामरस्य (ऐक्य) स्थापित कर 'अमृत' पद (मोक्ष) प्राप्त करे। इस प्रकार जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है, वह मुक्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है''।

पञ्चाक्षरमयम् इत्यादि । ''पञ्चाक्षर मन्त्र का नकार से लेकर यकार तक प्रत्येक अक्षर परब्रह्मस्वरूप शिव ही है यह तथ्य समझकर पञ्चाक्षर-मन्त्रजप करना चाहिए और पञ्चब्रह्मतनु परमात्मा को अपने से अभिन्न समझते हुए समस्त जगत् को पञ्चब्रह्मस्वरूप शिवमय जानना चाहिए''।

इस मन्त्र में 'अमृतम्' पद का अर्थ 'स्वर्गादि अनित्य फल' करना उचित नहीं है। ऐसा करने पर **यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च** इत्यादि मंत्र में चर्चित दृष्टान्त के साथ संगति नहीं बैठ सकती। [क्योंकि **ऊर्णनाभि** शब्द का निर्वचन होगा— **'ऊर्णा नाभौ यस्य स ऊर्णनाभिः = लूताकीटः**। जिसकी नाभि में तन्तु विलीन हो वह मकड़ी **'ऊर्णनाभि'** कहलाती है।] यह दृष्टान्त देकर 'मकड़ी जिस प्रकार जन्तुओं को फैलाकर

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विश्वोत्पत्तेस्तत्र विलयस्य च वक्तव्यत्वस्यौचित्यात्, तच्चाऽमृतपदस्य मुक्तिपरत्वेन व्याख्यानेनैव घटते। तत्परकत्वे तु स्वात्मबन्धात्मकानर्थप्रपञ्चस्य परप्रमातृशिवलिङ्ग-लीलाविजृम्भितस्य शिवार्चनात्मकशिवयोगाङ्गभूतप्रविलापन-चिन्तन-धारणदार्ढ्ये शुद्धचित्तस्य जीवस्य जीवत्वापादकाऽऽणवादिमलानां स्वकारणशक्तिरूपत्वात्, तस्या लिङ्गे नदीनां समुद्र इव सामरस्यात् सर्वस्यापि शिवरूपत्वात् सम्भवति।

इतरव्याख्यानानौचित्यनिरूपणम्

अत: परव्याख्यानं पूर्वाऽपरमन्त्रतात्पर्यविरुद्धम्, **मुक्तिः कैवल्यनिर्वाण-श्रेयोनिःश्रेयसामृतम्** इति कोशावगतरूढिविरुद्धं च। **शक्त्या प्रपञ्चसृष्टिः स्याद् भक्त्या तद्विलयो मत** इत्यनुभवसूत्रोक्तप्रकारेण **तपसा** इत्यारभ्य **लोका** इत्यन्तेन

उसका जाला बुनती है और अपने में ही समेटती है, उसी प्रकार अक्षरब्रह्मस्वरूप परम शिव से विश्व की उत्पत्ति और उसी में विलय होता है' यह अर्थसंगति उचित है। 'अमृत'- पद का 'मुक्ति'-परक व्याख्यान करने पर जीव को यह बोध होता है कि समस्त अनर्थकारी प्रपञ्च बन्धनकारी हैं और परप्रमाता शिवलिङ्ग का लीला-विलास है। फलत: जीव शिवपूजा में तत्पर होता है, जो 'शिवयोग' ही है। **शिवयोग** के अन्तर्गत पंचाक्षर-मंत्र-जप, मंत्र और परमशिव में एकात्मता का बोध, दृढतापूर्वक शिव का सतत चिन्तन और लिङ्गधारण आदि आते हैं। शिवार्चन से जीव का चित्त शुद्ध, निर्मल होता है। आणव, कार्मिक और मायीय मल जीव को 'जीवत्व' का बोध कराते हैं, जो उसकी कारण-शक्ति, संकुचित चितिशक्ति के ही रूप हैं। उस संकुचित शक्ति का जब विकास होता है उस जीव के आणव, कार्मिक और मायीय मल हट जाते हैं। इस प्रकार शिवार्चा से जब जीव की चितिशक्ति का विकास होता है, तब उस का चित्त शुद्ध, निर्मल होता है। जीव की विकसित चितिशक्ति परशिवलिङ्ग से उसी प्रकार समरस होती है, जिस प्रकार नदियां समुद्र में समरस होती हैं। इस प्रकार 'अमृत' पद की मुक्तिपरक व्याख्या से सभी जीवों का शिवरूप होना संगत प्रतीत होता है।

इतर व्याख्याओं का अनौचित्य

शाङ्करमत— [पूर्वोक्त असहमति **आचार्य शंकर** के मत से है। वे **कर्मसु कौशलम्** की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **तेषु (लोकेषु) मनुष्यादि-प्राणि-वर्णाश्रम-क्रमेण कर्माणि। कर्मसु च निमित्तभूतेषु अमृतं कर्मजं फलम्। यावत् कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि न विनश्यन्ति, तावत्फलं न विनश्यति इत्यमृतम्।** अर्थात् 'सृष्टिक्रम में सप्त लोक और उन सप्त लोकों में मनुष्य आदि जीवों में वर्णाश्रमधर्मसम्मत कर्म उत्पन्न होते हैं। निमित्त-स्वरूप उन कर्मों का अनुष्ठान करने पर 'अमृत' अर्थात् सत्कर्म दुष्कर्म-जनित पुण्य-पाप-फल का प्रादुर्भाव होता है। जब तक वे

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रपञ्चसृष्टिः, **कर्मसु चाऽमृतम्** इत्यनेन तद्विलय उक्त इति दृष्टान्तानुगुण्येन स्पष्टं ज्ञायमानत्वेऽपि प्रपञ्चसृष्टिमात्रपरत्वेन व्याख्याने किमपि बीजं न पश्यामः। न च **नाऽस्त्यकृतः कृतेन** इति वक्ष्यमाणश्रुत्यनुरोधेनाऽमृतत्वस्याऽजन्यत्वं वक्तव्यम्। तच्च भवदुक्तरीत्या मोक्षस्य शुद्धादन्नाज्जायमानत्वे विरुद्धं स्यादित्येव बीजमिति वाच्यम्, तत्र

कर्म सैकड़ों करोड़ों कल्पों तक नष्ट नहीं होते, तब तक उनका फल भी नष्ट नहीं होता, अत: वे **अमृत** हैं।

खण्डन— पूर्ववर्ती शाङ्कर-व्याख्यान पूर्वापरमन्त्रतात्पर्यविरुद्ध है। कोशकार के अनुसार **अमृत** पद मुक्ति के पर्यायों में परिगणित है — **मुक्तिः कैवल्य-निर्वाण-श्रेयोनिःश्रेयसाऽमृतम्**। **'अमृतम्'** पद का अर्थ कर्मज फल करने पर वह कोश से ज्ञात रूढ अर्थ के विरुद्ध होगा। (आचार्य शंकर संपूर्ण मंत्र का व्याख्यान सृष्टिक्रम की दृष्टि से करते हैं। एक तो इस व्याख्यान में क्रम की विवक्षा आवश्यक नहीं है, साथ ही केवल सृष्टिप्रकार यहां प्रतिपादित नहीं है, अपितु उसका विलय भी प्रतिपादित है। इसी को स्पष्ट करते हुए ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री अपना मत स्थापित कर रहे हैं—)

वीरशैवमत– **अनुभवसूत्र** का कथन है— **शक्त्या प्रपञ्चसृष्टिः स्याद् भक्त्या तद्विलयो मतः**। "परम शिव की ज्ञान-क्रिया-गर्भ इच्छाशक्ति से प्रपञ्च की सृष्टि होती है और जीव की शिव के प्रति लिङ्गाङ्ग-सामरस्यात्मिका भक्ति से परम शिव में ही प्रपञ्च का विलय होता है"।

इस रीति से उक्त मन्त्र के **तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते। अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः** इस मन्त्रभाग से प्रपञ्च की सृष्टि और **कर्मसु चाऽमृतम्** इस अंश से प्रपञ्च का विलय प्रतिपादित है। यह व्याख्या **यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च** इत्यादि मन्त्र में प्रतिपादित अनेक दृष्टान्तों के अनुसार स्पष्ट अवगत होने पर भी इस की व्याख्या केवल सृष्टिपरक करने में कोई मूल कारण दिखलाई नहीं देता।

(**परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान्** (१.२.१२) मंत्र के **नास्त्यकृतः कृतेन** इस अंश की व्याख्या करते हुए **आचार्य शंकर** कहते हैं कि यत: प्राणिमात्रकृत कर्म अनित्य होते हैं, अत: उनके स्वर्गादि-फल भी अनित्य हैं। कृत अनित्य कर्मों का फल भी कृत (अनित्य) होता है, अकृत (नित्य) नहीं। अत: ब्रह्मवेत्ता को उनसे विरत रहना चाहिए।' इस श्रुति को ध्यान में रखकर **ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री** पूर्वपक्ष की कल्पना और उसका उत्तर इसप्रकार दे रहे हैं—)

पूर्वपक्ष– स्वर्गादि फल कर्मजन्य हैं, अत एव अनित्य हैं। किन्तु सैकड़ों करोड़ों कल्पों तक उनकी सत्ता के कारण ही उस मंत्र में उसे 'अमृत' कहा गया है। **'नास्त्यकृतः**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धातोराविर्भावार्थकत्वस्योक्तत्वात्, असदुत्पत्तेरसम्भवात्, **नासतो विद्यते भाव** इति कृष्णेन गीतत्वात्, सर्वस्यापि प्रपञ्चस्य सूक्ष्मरूपेण परशिवस्थितेरभ्युपगमात् । नन्वेवं चेद् विश्वस्य सत्यतापत्त्या बन्धस्यापि सत्यत्वात् **नाभावो विद्यते सत** इति कृष्णगीतत्वाच्च बन्धस्यापि निवृत्तिर्न स्याद् इति चेन्न; सत्यस्याऽपि कीटभावस्य भ्रमरत्वप्राप्तिदशायां निवृत्तिदर्शनात्

कृतेन' इस श्रुति में 'अकृत' पद का अर्थ आप 'नित्य शिवलोक' अथवा 'मोक्ष' करते हैं और इस मन्त्र में 'अमृत' पद की व्याख्या मुक्तिपरक करते हैं । अत: **'नास्त्यकृतः कृतेन'** इस श्रुतिवचन के अनुरोध से मोक्ष को उत्पत्ति को अनर्ह कहना पड़ेगा, जबकि 'अभिजायते' का अर्थ उत्पन्न होता है, यह है । आपके मतानुसार विशुद्ध अन्न = निर्मल चित्त से उसकी उत्पत्ति होगी । अत: अजन्य मोक्ष को जन्य मानना विरुद्ध होगा । इसी मूल कारण को ध्यान में रखकर 'अमृत' पद की स्वर्गपरक व्याख्या की गयी है, मुक्तिपरक नहीं ।

वीरशैव मत में इस प्रकार की कल्पना योग्य नहीं है, क्योंकि यहां **'अभिजायते'** का अर्थ **'उत्पद्यते'** न होकर **'आविर्भूयते'** यह है । वहां धातु का अर्थ आविर्भाव ही है उत्पत्ति नहीं । जिसकी सत्ता नहीं है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती । **नाऽसतो विद्यते भावः** इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है, जिसका तात्पर्य यहीं है कि जो अस्तित्व-शून्य है, उसकी सत्ता नहीं रहती । समस्त प्रपञ्च की अवस्थिति सूक्ष्म परशिव में मानने पर इसकी संगति लगती है ।

शांकर दृष्टि— आचार्य शंकर जगत् को मिथ्या मानते हैं । सूक्ष्म रूप से परब्रह्म में प्रपञ्च की सत्ता को स्वीकार करने पर बन्धन को भी सत्य मानना पड़ेगा तथा **नाभावो विद्यते सतः** इस भगवद्गीता के वचनानुसार बन्धन से छुटकारा नहीं मिलेगा । फिर मोक्ष कैसे मिल सकता है ?

वीरशैव दृष्टि— इस पूर्वपक्ष की परिकल्पना करते हुए शास्त्रीजी उसका उत्तर यह दे रहे हैं कि **कीटभ्रमरन्याय** से बन्धन को सत्य मानकर भी उससे छुटकारा मिल सकता है ।

[**कीटभ्रमरन्याय**–

भ्रमद्भ्रमरचिन्तायां कीटस्य भ्रमरत्ववत् ।
शिवोऽहमिति भावेन शिवो भवति च ध्रुवम् ।।

अर्थात् जिस प्रकार कोई कीड़ा अपनी ओर मंडरानेवाले कीड़े को देखकर स्वयं को भौंरा समझता है, और भ्रमरस्वरूप हो जाता है, उसी प्रकार जीव शिव का सतत चिन्तन करते हुए स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है ।]

जिस प्रकार यद्यपि कीड़ा कीडा ही रहता है, भ्रमर नहीं । किन्तु जब वह स्वयं को भ्रमर समझ कर भ्रमररूप हो जाता है । उसी प्रकार बन्धन की सत्ता स्वीकार करने पर भी

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सत्यस्यापि बन्धस्य निवृत्तिरुपपद्यते । **निवृत्तिः कारणलय** इति न्यायेन श्रीगुरुस्थापित-लिङ्गत्रयबीजस्य ध्यानधारणादिजलसेचनयोगेन अङ्कुरादिक्रमेण फलितत्वे बीजभावस्य स्वकारणविलीनत्वाद् जीवः शिव एव भवति । उक्तं च **गौतमस्मृतौ**—

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति सर्वदा ।। इति।

इच्छादिभूमिप्रविष्टघटादिवन्मुक्तस्य न पुनर्बन्धः, परमेश्वरस्येच्छायास्तत्र नियामकत्वात् ।

ननु भवन्मते शिवशक्तेः शिवाभिन्नत्वेन निरवयवत्वात् सावयवप्रपञ्चोपादान-कारणत्वस्यासम्भवात् पूर्वोक्तस्य एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रश्नस्यानुपपद्यमानत्वात् तदुपपादनार्थं

शिवभावना से उससे छुटकारा मिल सकता है । **निवृत्तिः कारणलयः**-मोक्ष (निवृत्ति) का अर्थ है अपने कारण में विलय ।

बीजाङ्कुरन्याय से इसे समझा जा सकता है । बीज को बोने पर उसमें अंकुर फूटता है, पत्ते आते हैं, कली आती है, वह खिलकर फूल बन जाती है और वह फल का आकार लेता है, उसी प्रकार जीव शिव का ही अंश है । श्रीगुरु दीक्षा द्वारा उसे त्रिविध लिङ्ग (इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग) धारण का उपदेश देता है । त्रिविध लिङ्गस्वरूप ईश एक ही है, जो जीव का बीज (मूल कारण) है । जब श्रीगुरु परम शिव का ध्यान (सतत चिंतन) लिंगधारण आदि जलसेचन द्वारा सेवा करता है, तब भक्त जीव में शिवभाव के अंकुर फूटते हैं, वह क्रमशः पल्लवित, कोरकित, पुष्पित और फलित होता है और **निवृत्तिः कारणलयः** इस न्याय से जीव को जीवभाव से छुटकारा मिलता है, जो बन्धनस्वरूप है, और वह शिवभाव को प्राप्त होता है, जो मोक्षस्वरूप है । इस प्रकार जीव के बीजभाव (शिवत्व) का जब अपने कारण परमशिव में विलय होता है, तब जीव शिव ही हो जाता है । जैसा कि **गौतम स्मृति** का वचन है—

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति सर्वदा ।।

जिस प्रकार कीट भ्रमर के साथ सामरस्य स्थापित कर भ्रमर हो जाता है, उसी प्रकार शिवयोग (लिङ्गाङ्ग-सामरस्य) के द्वारा मानव सदा-सर्वदा शिवस्वरूप हो जाता है । जिस प्रकार परमेश्वर की इच्छा से किसी घड़े को मिट्टी में मिला दिया जाय, तो वह मिट्टी बन जाता है, घड़ा नहीं रहता, उसी प्रकार भक्त मुक्त हो जाता है वह पुनः बन्धन में नहीं पड़ता । क्योंकि परमेश्वर परम शिव की इच्छा ही उसमें नियामक होती है ।

शांकर मत—पुनश्च यदि यह मन्तव्य उपस्थापित करें कि यतः परम शिव की शक्ति शिव से अभिन्न है, अतः उसका उपादान कारण नहीं हो सकती । फलतः **कस्मिन्नु भगवो**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्स्वातन्त्र्यपरिकल्पितसावयवमायाशक्तिं परिकल्प्य तत्र प्रतिस्फुरणगत्या प्रविष्टविमर्शशक्ते-स्त्रिगुणात्मकविद्यात्वकथनप्रयासापेक्षया मिथ्याभूताध्यासात्मकमूलाऽविद्यां स्वीकृत्य तत्र प्रतिबिम्बितेश्वरस्य जगदुपादानकारणत्वमुपपाद्यतामिति चेन्न; तस्या दोषरूपत्वेन ब्रह्मणस्तदाश्रयत्वे दोषित्वप्रसङ्गात्। न च शुक्तिकाशकले भासमानस्य रजतस्य सम्पर्को यथा तस्य न विद्यते, तथा ब्रह्मणि भासमानस्य ज्ञानस्यापि संपर्काभाव इति वाच्यम्, जीवेश्वरविवेकस्यानुपपत्तेः, ब्रह्मणस्तत्सम्पर्काभावात्। न च प्रतिबिम्बद्वारा तद्विवेकः सम्भवतीति वाच्यम्, बिम्बबाह्यदर्पणादिवद् ब्रह्मबाह्यदेशाभावात्। यत्र यदस्ति तत्र तत्प्रतिबिम्बो नास्ति, जलप्रविष्टमुखवद्दर्पणरेखावच्चेति व्याप्तेः, प्रतिबिम्बस्यार्थ-क्रियाशून्यत्वेन जगदुपादानकारणत्वभोक्तृत्वादेर्निराश्रयत्वप्रसङ्गात्।

विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति (१.१.३) यह प्रश्न असंगत होगा। उसकी संगति बैठाने के लिए परमशिव में उसी के स्वातंत्र्य से प्रस्फुटित सावयव माया शक्ति की कल्पना करके उसके प्रतिस्फुरण से प्रविष्ट विमर्श शक्ति के त्रिगुणात्मक अविद्या भाव का प्रतिपादन करना पड़ेगा। इस निरर्थक प्रयास की अपेक्षा मिथ्याभूत मूल अविद्या को मानकर उसमें प्रतिबिम्बित ईश्वर को विश्व का उपादानकारण मानने में क्या आपत्ति है?

वीरशैवदृष्टि— इसका समाधान **ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री** इस प्रकार करते हैं— इसमें यह आपत्ति है कि मिथ्याभूत अध्यासात्मिका मूल अविद्या (अज्ञान) दोषस्वरूप है। यदि उसका आश्रय लेकर उसमें प्रतिबिम्बित ईश्वर को विश्व का उपादानकारण मानें, तो ईश्वर को भी दोषी मानना पड़ेगा, जो उचित नहीं है।

शांकर मत —शांकर मत के अनुयायी जगत् को आभास मात्र स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार जिस प्रकार लोग सींप को चांदी समझ लेते हैं, किन्तु वह वास्तव में चांदी नहीं होती, सींप ही रहती है। उसी प्रकार ब्रह्म में आभासमान विश्व ब्रह्म नहीं होता। दोनों ही ज्ञान भ्रममूलक हैं, जिसका संपर्क शुक्ति अथवा ब्रह्म से नहीं रहता। इस प्रकार ब्रह्म विश्व का उपादानकारण हो सकता है।

वीरशैव मत— इस शांकर मत का निरसन करते हुए शास्त्रीजी कहते हैं कि ब्रह्म में भासमान ज्ञान का ईश्वर के साथ संपर्क स्वीकार न करने पर उसके अभाव में जीवात्मा कौन है और ईश्वर कौन इस पार्थक्य को करना अनुपपन्न होगा।

अद्वैतमत— बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव द्वारा जीव और ईश्वर का ज्ञान पृथक्-पृथक् किया जा सकता है।

वीरशैवमत— इस प्रकार सोचना भी ठीक नहीं है। यतः जिस प्रकार बिम्ब का प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न दर्पण में पड़ता है उस प्रकार विश्व का प्रतिबिम्ब ब्रह्म के अतिरिक्त बाह्यस्थल पर नहीं पड़ता। [उपादान-कारण में कार्य अवश्य रहता है, वह न रहने पर कार्य

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

न च दर्पणप्रतिबिम्बितादित्यनेत्रचक्षुवत् सम्भवतीति वाच्यम्, तद्वद्बिम्बरूपे शुद्धब्रह्मणि जगत्कर्तृत्वादेरसत्त्वात्, पूर्वोक्तप्रश्नस्यानुप-पन्नत्वात् । न च हरिद्राचूर्णसंयोगेनाऽनुभयनिष्ठ-लौहित्यभासनमिव सम्भवतीति वाच्यम्, तद्वदविद्याप्रतिबिम्बयोः पारमार्थिकसत्यत्वाभावात्,

---

भी नहीं होता । इस प्रकार कार्यकारणभाव में अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति दोनों होती है । **तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् इत्यन्वयव्याप्तिः, तदभावे तदभाव इति व्यतिरेक- व्याप्तिः** । किन्तु बिम्बप्रतिबिम्बभाव में कार्यकारणभाव नहीं बन सकता, क्योंकि] जहां बिम्ब रहता है, वहां उसका प्रतिबिम्ब नहीं होता । जैसे जल में पड़नेवाली मुख का परछाई मुख में नहीं रहती, उसी प्रकार दर्पण में रहनेवाला प्रतिबिम्ब बिम्ब में नहीं रहता । साथ ही प्रतिबिम्ब अर्थ-क्रियाशून्य होता है, वह न तो विश्व का उपादानकारण हो सकता है, और न जगत् का भोक्ता ही । [इस प्रकार मिथ्याभूत अध्यासात्मिका मूल अविद्या को स्वीकार कर उसमें प्रतिबिम्बित ईश्वर को जगत् का उपादानकारण मानना युक्तिसङ्गत नहीं है, अन्यथा वह आश्रयहीन होगा ।]

शांकर मत— जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्बित सूर्यकिरणें अर्थक्रियाकारी प्रकाशमान होती हैं, उसी प्रकार बिम्बप्रतिबिम्बभाव को मानकर अध्यासात्मिका मूल अविद्या में प्रतिबिम्बित ईश्वर जगत् का उपादानकारण और उसका उपभोक्ता हो सकता है ।

वीरशैवमत— यह उत्तर भी समुचित नहीं है, क्योंकि (प्रतिबिंबित ईश्वर को जगत् का उपादानकारण और उसका उपभोक्ता मानने पर) बिम्बस्वरूप शुद्ध ब्रह्म जगत् का सृष्टिकर्ता और उसका उपभोक्ता नहीं बन सकता । ऐसी स्थिति में **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** (१.१.३) यह पूर्व मंत्रस्थ प्रश्न ही असंगत होगा ।

शांकर मत— जिस प्रकार हल्दी और चूना दोनों को मिलाने से दोनों में न रहने-वाली लालिमा आभासित होती है, उसी प्रकार मूलभूत अध्यासात्मिका अविद्या और उसमें पड़नेवाले ईश्वर के प्रतिबिंब से विश्व-सर्जना हो सकती है, जो उन दोनों में नहीं रहती ।

वीरशैव मत की दृष्टि से शांकर संप्रदाय की यह दृष्टि भी युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि ऐसा मानने से **तत्त्वमसि** इस महावाक्य का उपदेश व्यर्थ होगा । (इस महावाक्य में गुरु शिष्य को उपदेश देता है— तुम वही जीवात्मा ब्रह्म हो, ब्रह्म से भिन्न नहीं हो, अपितु उसके अंश ही हो ।) जीवात्मा और परमात्मा में एकता संभव ही नहीं है । इसके अनेक कारण हैं— १. शुद्ध ब्रह्म की अविद्या और उससे भासमान प्रतिबिम्ब-स्वरूप ईश्वर दोनों की ही पारमार्थिक सत्यता (अस्तित्व) नहीं है । शुद्ध ब्रह्म का किसी से कोई संपर्क (संग) नहीं है, क्योंकि दोनों में सम्बन्ध स्थापित करने वाला अन्य संयोजक वहां नहीं है, अतः शुद्ध ब्रह्म का उनमें सम्बन्ध ही नहीं हो सकता । **हरिद्राचूर्ण-संयोग दृष्टान्त** के निराकरण से **लोहमणि दृष्टान्त** भी दूर हो जाता है । **लोहमणि दृष्टान्त** का तात्पर्य यह है कि जिस

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

संयोजकान्तरशून्यत्वाच्च शुद्धब्रह्मणोऽसङ्गत्वात्, संयोजकत्वाभावात्, अनेनैव लोहमणिदृष्टान्तस्यापि दूरापास्तत्वात्, प्रतिबिम्बस्य मायाकार्यत्वेन मिथ्यात्वात्, ऐक्यासम्भवात् **'तत्त्वमसि'** इत्युपदेशस्य वैयर्थ्यं स्यात्। न चाऽविद्यानिवृत्तिद्वारा प्रतिबिम्बस्यापीश्वरस्य जीवस्य च निवृत्तिर्जायत इतीदमेवाऽऽत्मैक्यम्, तद्बोधकत्वादुपदेशस्य सार्थक्यमिति वाच्यम्, तथा वदतो नास्तिक्यात्मघातापत्तेः, कस्यापि भवदभिमतमुक्तौ प्रवृत्त्यनुपपत्तेः।

तस्मात्—

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।
समस्त-लोक-निर्माण-समवाय-स्वरूपिणी।
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात् तत्स्वरूपानुकारिणी॥

(सि. शि. २.१२-१३)

प्रकार लोहा और पारसमणि के संयोग से एक तीसरा ही धातु सोना बन जाता है, जो उन दोनों से भिन्न है और उन दोनों में नहीं रहता। उसी प्रकार अध्यासात्मिका अविद्या में भासमान ईश्वर से जगत् की सृष्टि होती है। इस प्रकार की कल्पना भी ठीक नहीं है। क्योंकि प्रतिबिम्बित ईश्वर में भासमान जगत् माया का कार्य होने से मिथ्या है और अस्तित्वशून्य है। अविद्या और प्रतिबिम्ब की एकता संभव न होने से **तत् त्वमसि** इस महावाक्य में निहित उपदेश व्यर्थ होगा।

शांकर मत— इस मत में अविद्या की निवृति द्वारा प्रतिबिम्बस्वरूप परमात्मा और जीवात्मा दोनों की ही निवृत्ति होगी। अर्थात् जिस क्षण में अविद्या की निवृत्ति होगी, उसी क्षण केवल शुद्ध ब्रह्म रह जायगा एवं उसमें जीवात्मा का विलय होगा, और यही जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता है। **तत्त्वमसि** यह महावाक्य इसी का बोधक है। इस प्रकार इस उपदेश की सार्थकता है, वह व्यर्थ नहीं है।

वीरशैव मत— (ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री उक्त मत से असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि) ऐसा कहने पर (भासमान प्रतिबिंबित ईश्वर की निवृत्ति की स्वीकृति से) आप पर नास्तिकता का आक्षेप लगेगा और यह आत्मघात होगा। आपकी किसी भी उक्ति पर लोगों की प्रवृत्ति नहीं होगी। अतः श्रीमद्भगवत्पाद **रेणुकाचार्य** की दृष्टि ही इस विषय में समीचीन है। वे कहते हैं—

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।
समस्त-लोक-निर्माण-समवाय-स्वरूपिणी।
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात् तत्त्वरूपानुसारिणी॥

(सि. शि. २.१२-१३)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्भाण्डस्थलमुच्यते ।

(सि. शि. २.२०-२९)

पराहन्ता-समावेश-परिपूर्ण-विमर्शवान् ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः ।।

विश्वाधार-महासंवित्प्रकाश-परिपूरितम् ।
पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः ।।

(सि. शि. २०.३२-३३)

उस परम शिव की परमा विमर्शशक्ति, जो उसी की इच्छा से उसके साक्षात् स्वरूप का अनुसरण करती हुई सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप को धारण कर सम्पूर्ण विश्व की सर्जना के उपादानकारण के रूप में विश्व के स्वरूप में अवभासित होती है।

ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्ग-स्थिति-लयान् प्रति ।
स्थानभूतो विमर्शो यस्तद् भाण्डस्थलमुच्यते ।।[१]

(सि. शि. २०.२९)

अश्वत्थवृक्ष की शाखाओं के समान विस्तारशील अनेक कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार के प्रति (परा बिंदु) विमर्श शक्ति ही उसका आधार है, जिसे **भाण्डस्थल** कहा जाता है।

पराहन्ता-समावेश-परिपूर्ण-विमर्शवान् ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः ॥

विश्वाधार-महासंवित्-प्रकाशपरिपूरितम् ।
पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः ॥

(सि. शि. २०.३२-३३)

[जब गुरु यह उपदेश देता है— **तत् त्वमसि** (तुम जीवात्मा ही परम शिवस्वरूप हो, तब जीवात्मा यह बोध करता है— **अहं ब्रह्मास्मि** (मैं जीवात्मा परब्रह्म-परशिवस्वरूप हूँ। लिंगांगसामरस्य स्वरूप] इसी पराहन्ता-भावना से परिपूर्ण विमर्शशक्ति महेश्वर में वास

---

१. **कठवल्ली** एवं **विश्वसारोत्तर** के अग्रिम वचन इसमें प्रमाण हैं—

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्लं तद् ब्रह्म तदेवाऽमृतमुच्यते ॥ (कठ.)
यथा कुण्डलिनीशक्तिर्माया कर्मानुसारिणी ।
नादबिन्द्वादिकं कार्यं तस्या इति जगत्स्थितिः ॥ (विश्वसारोत्तर)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिता ।।

(सि. शि. २०-३८)

इत्याचार्यभगवत्पादोक्तप्रकारेण निरवयवशक्तिविशिष्टपरमात्मनो मायादि-सकलप्रपञ्चो-पादानकारणत्वं वाच्यम्, तच्छक्तेरघटनघटनापटीयस्त्वान्न काचिदनुपपत्तिः ।

किञ्च, भवन्मतेऽविद्याया अनादिभावत्वेनाऽङ्गीकृतत्वात् सत्यत्वापत्तिः स्यात्। तर्ह्यनादिभावरूपापि न स्यात्, घटवत् । किञ्च, ब्रह्मातिरिक्तत्वेनाऽङ्गीकृतत्वाद् द्वैतापत्तिरनिवार्यैव स्यात्, तद्भिन्नस्य तद(द्)बाह्यत्वनियमेन ब्रह्माश्रितत्वानुपपत्तेः । न च घटतद्गतरूपवत्

करती है, जिससे वह सर्ववेत्ता, सर्वत्र गतिशील (सर्वव्यापक), साक्षी और सम्पूर्ण जगत् का सृष्टिकर्ता होता है ।

विमर्शशक्ति का स्वरूप भी इसी से ज्ञात होता है, जो इस प्रकार है— 'अहम्' पदवाच्य परब्रह्म-परमशिव-परमात्मा की पराशक्ति को ही विमर्शशक्ति कहते हैं, जिसका अपर पर्याय 'पराहन्ता' है, जो विश्व की आधारस्वरूपा है तथा महासंवित् (महाचित्) के प्रकाश से परिपूर्ण है ।

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिता ।।

(सि. शि. २०.३८)

जिस प्रकार चन्द्र में शाश्वत रूप से विद्यमान चन्द्रिका विश्व की समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार प्रकाशस्वरूप ब्रह्म में (अथवा **प्रकारे** यह पाठ स्वीकार करने पर अपनी स्वातंत्र्यशक्ति के द्वारा ब्रह्म के कल्पित अंश में) स्थिर रूप से विद्यमान विमर्श- शक्ति समस्त जगत् को प्रकाशित करती है ।(जिस प्रकार चन्द्रिका चन्द्र को छोड़कर नहीं रहती, उसी प्रकार शक्ति शिव को छोड़कर नहीं रहती ।)

इस प्रकार श्रीमत्भगवत्वाद **रेणुकाचार्य** के वचनों की रीति से यह कथन समीचीन होगा कि निरवयव बिन्दु मात्र अवस्थित विमर्श शक्ति से विशिष्ट परब्रह्म-परमशिवस्वरूप परमात्मा ही माया आदि सम्पूर्ण प्रपञ्च का उपादान कारण है । उसकी शक्ति में वह क्षमता है, जो अघटित का भी सर्जन कर सकती है । इस प्रकार की अर्थसङ्गति में किसी प्रकार की बाधा नहीं है ।

(ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री शांकरमतानुयायियों से कहते हैं कि) आपके मत में अध्यासात्मिका अविद्या को अनादि रूप से स्वीकार करने पर उसकी सत्यता (अस्तित्व) को स्वीकार करना पड़ेगा । जिस प्रकार घट का अस्तित्व आरंभ से न होने के कारण वह

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सम्भवतीति वाच्यम्, तद्वत्समवेतत्वाभावात् । न च निरंशेऽप्याकाशे नक्षत्रादि-स्थितिवत्सम्भवतीति वाच्यम्, आकाशस्यापि जन्यद्रव्यत्वेन सांशत्वाङ्गीकारात्, दृष्टान्तवैषम्यात् । तस्मात् पराभिमताविद्यायां मानाभावात् श्रुतेर्मानत्वे तत्सत्यत्वप्रसङ्गाद् द्वैतापत्तेरनिवार्यत्वाद् ब्रह्मणो जडत्वदोषनिवारणार्थं तत्स्वभावभूतविमर्शशक्तेरङ्गीकरणीयत्वेन तस्या विश्वोपादान-

---

अनादि नहीं होता, उसी प्रकार यदि वह सत्य (अस्तित्वयुक्त) न हो, तो वह अनादि भी नहीं होगा और उसे ब्रह्म से भिन्न स्वीकार करने पर अनिवार्य रूप से द्वैत की स्थिति बनेगी। क्योंकि ब्रह्म से भिन्न ब्रह्म का आश्रित नहीं होता, जब कि अध्यासात्मिका माया उससे बाह्य नहीं है । माया को ब्रह्म से भिन्न मानने पर वह ब्रह्म की आश्रित कैसै होगी? इसकी संगति नही लगती ।

जिस प्रकार घट और उसमें रहने वाले रूप दोनों में आश्रयाश्रयिभाव है, उसी प्रकार ब्रह्म की माया ब्रह्म में स्थित है, इस प्रकार का कथन भी ठीक नहीं है, (क्योंकि **नित्यसम्बन्धः समवायः** इस परिभाषा के अनुसार गुण और गुणी का सम्बन्ध नित्य सम्बन्ध होने के कारण समवाय सम्बन्ध है ।) घट गुणी है और रूप उसका गुण, जो उसमें समवाय- सम्बन्ध से रहता है । शुद्ध ब्रह्म एवं माया का आश्रयाश्रयिभाव भी नहीं बनता, जिससे दोनों में नित्य सम्बन्ध स्थापित किया जा सके । जिस प्रकार अंशरहित आकाश में ग्रह-नक्षत्र आदि रहते हैं, उसी प्रकार अंशरहित शुद्ध ब्रह्म में माया रहती है ऐसा भी आप नहीं कह सकते, क्योंकि आकाश की भी उत्पत्ति हुई है । अतः उसे ब्रह्म के ही अंशद्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है । आकाश का दृष्टान्त उससे मेल नहीं खाता । अतः परमत-(शांकरमत-) सम्मत अविद्या को स्वीकार करने में कोई प्रमाण नहीं है । श्रुति को प्रमाण रूप में मानने पर माया की सत्यता, शाश्वत स्थिति माननी पड़ेगी, ऐसी स्थिति में अनिवार्य तया द्वैत की स्थिति बनेगी (अद्वैत की नहीं) । ब्रह्म जड़ता चैतन्य-शून्यता दोष दूर करने के लिए उसकी स्वभाव भूत विमर्शशक्ति को स्वीकार करते हुए उसी को विश्व की उपादानकारणस्वरूपा माया के रूप में प्रतिपादित करना होगा और इसके लिए '**अन्न**' पद की व्याख्या के पूर्व '**अन्योन्याभाव**' बुद्धिरूप अज्ञान सृष्टि का वर्णन करना होगा क्योंकि वहां प्रस्फुरण पानेवाली त्रिगुणात्मिका शक्ति माया ही है और उसे ही 'अन्न' पद से संबोधित किया जाता है इस प्रकार का व्याख्यान सिद्धिकारक (साधक) होगा यह समझना चाहिए ॥

अन्योन्याभाव– तर्कसंग्रहकार अन्नंभट्ट के मतानुसार सप्त पदार्थों में अन्तिम **अभाव** पदार्थ के चार भेद हैं, जिसमें 'अन्योन्याभाव' अन्तिम है । इसका लक्षण और लक्ष्य इस प्रकार हैं— **तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः** । यथा— **घटः पटो नेति** । सत्ता का न रहना ही **अभाव** पदार्थ है, जिसका अन्यतम भेद है **अन्योन्याभाव** । **ब्रह्म सत्यं जगद् मिथ्या** यह अद्वैत दर्शन का सिद्धान्त है । शांकर वेदान्ती शुद्ध ब्रह्म की अध्यास-स्वरूपा माया में प्रतिबिंबित ईश्वर से प्रकाशमान जगत् को मिथ्या मानते हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कारणीभूतमायात्वमुपपादयितुमन्नपदव्याख्यानात् पूर्वमन्योन्याभाव-बुद्धिरूपाज्ञानसृष्टिमुक्त्वा तत्र प्रतिस्फुरितविमर्शशक्तिरेव त्रिगुणात्मिका माया सैवाऽन्नपदवाच्येति व्याख्यानप्रयासः साधक इति बोध्यम् ॥८॥

पराविद्याया उपसंहारः

ऊर्णनाभ्यादिदृष्टान्तेन अक्षरस्य ब्रह्मणो भूतयोनेर्विश्वोपादानकारणत्वमुक्तम् । तच्च न सम्भवति, ऊर्णनाभ्यादिवदङ्गस्याऽभावादित्याशङ्क्य गुणापरपर्यायसर्वज्ञत्वाद्य- ङ्गविधानानन्तरं पूर्वोक्ततपश्शब्दार्थं विवृण्वन् अक्षरस्य विश्वोपादानकारणत्वं दर्शयत्ययं मन्त्रः—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥९॥

वीरशैवदर्शन के अनुयायी कहते हैं कि माया ब्रह्म नहीं है' । इस प्रकार के अन्योन्याभाव बुद्धि-रूप समस्त अज्ञानमूलक सृष्टि का निरूपण कर तदनन्तर यह व्याख्या करनी चाहिए कि ब्रह्म में स्फुरणशील विमर्शशक्ति ही त्रिगुणात्मिका माया है, जिसे **'अन्न'** भी कहते हैं, जो जगत् की सृष्टि का हेतु है । ऐसा प्रयास साधक होगा और अन्य प्रयास निरर्थक एवं बाधक होंगे ॥८॥

परा विद्या का उपसंहार

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च (१.१.७) इत्यादि मन्त्र द्वारा 'ऊर्णनाभि' (मकड़ी) आदि दृष्टान्तों के माध्यम से यह प्रतिपादन किया गया है कि **अक्षर** अर्थात् क्षरणरहित परशिवलिङ्ग ही **भूतयोनि** अर्थात् शब्दार्थमय विश्व का उपादान कारण है, और उसी से सम्पूर्ण विश्व का आविर्भाव होता है । इस पर यह शंका उपस्थित होती है कि यह कैसे संभव है? जिस प्रकार ऊर्णनाभि, पृथिवी और जीवित व्यक्ति के विभिन्न अंग होते हैं, उस प्रकार अक्षर ब्रह्म के तो अङ्ग ही नहीं है । इस शंका का समाधान इस मन्त्र से होता है । इस मन्त्र में **सर्ववित्** विशेषण के द्वारा **सर्वज्ञ** शिव के **सर्वज्ञता** आदि उन छः अङ्गों का विधान किया गया है, जिनका अपर पर्याय **गुण** भी है । तदनन्तर **तपः** पदार्थ का विवरण **ज्ञानमयम्** इस विशेषण के द्वारा किया गया है । पश्चात् मन्त्र के उत्तरभाग से अक्षरब्रह्म को विश्व के उपादानकारण के रूप में प्रदर्शित किया गया है ।

***मन्त्रार्थ*– जो सर्वज्ञ (परशिव) सर्वज्ञता आदि षडङ्गसम्पन्न है, जिसकी सर्वज्ञता ही उसका तप है, उसी सर्वज्ञ महेश्वर से ब्रह्म (चिच्छक्ति विशिष्ट लिङ्ग) 'नामरूप' (शब्दार्थ-प्रपञ्चस्वरूप समस्त कार्यसमूह) और 'अन्न' (मलात्मक भेदज्ञान) का आविर्भाव होता है ॥९॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

।। इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ।।

यः सर्वज्ञ इति । **यः सर्वज्ञः**=परशिवः, **कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहित** इति कोशावगतरूढ्या सर्वज्ञशब्दस्य शिव एव प्रसिद्धत्वात्, **सर्ववित्**=सर्वं विश्वं वेत्तीति सर्ववित् । सर्वत्वसामानाधिकरण्येन सर्वत्वावच्छेदेन सर्वज्ञानाद्यङ्गः । नहि निरतिशयसर्वज्ञत्वं शिवातिरिक्तविष्ण्वादिदेवेषु सम्भवति । तदुक्तं **ब्रह्मगीतायामपि** नवमाध्याये देवान् प्रति ब्रह्मवाक्यम्—

युष्मभ्योऽहं महाप्राज्ञो मत्तः प्राज्ञो जनार्दनः ।
जनार्दनादपि प्राज्ञः श्रीरुद्रो गुरुमूर्तिमान् ।।
ततः प्राज्ञतमः साक्षात् शिवः साम्बः सनातनः ।
स एव साक्षात् सर्वज्ञस्ततोऽन्यो नास्ति कश्चन ।। इति।

व्याख्या– **यः सर्वज्ञः** इति । यः = जो, **सर्वज्ञः** = परम शिव, क्योंकि **कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः** इस **अमरकोष** के वचन द्वारा **सर्वज्ञ** शब्द का अर्थ शिव ही है । **सर्ववित्— सर्वं विश्वं वेत्ति इति सर्ववित्**, जो सभी विश्व का ज्ञाता है, वह **सर्ववित्** है । [**सर्वज्ञः सर्ववित्** ये दोनों पद समानाधिकरणक (समानविभक्तिक) होने के कारण इन दोनों में विशेषण-विशेष्यभाव है ।] इसका तात्पर्य यह है कि दोनों पदों में सर्वत्व का सामानाधिकरण्य रहने के कारण सर्वत्व अवच्छेद से सर्वज्ञता (सर्वज्ञान) आदि जिसके अङ्ग हैं, वही **सर्ववित्** है, क्योंकि निरतिशय सर्वातिशायिनी सर्वज्ञता शिव के अतिरिक्त विष्णु आदि देवों में सम्भव ही नहीं है । जैसा कि **ब्रह्मगीता** के नवम अध्याय में देवताओं के प्रति ब्रह्मदेव का कथन है—

"देवताओं ! मैं (ब्रह्मदेव) आप देवताओं से भी महाप्राज्ञ (महाज्ञानी) हूँ, मुझसे भी महाज्ञानी जनार्दन (महाविष्णु) है । महाविष्णु से भी महाज्ञानी श्रीगुरु के रूप में मूर्तिमान् श्रीरुद्र ही है । उनसे भी महाज्ञानी साक्षात् सनातन साम्ब सदाशिव है । वस्तुतः वही सर्वज्ञ है, उनसे बढ़ कर अन्य कोई सर्वज्ञ नहीं है ।"

सर्ववित् यह विशेषण है, **सर्वज्ञ** पद केवल विशेष्यपरक है । **शिव** के पर्यायों में परिगणित **सर्वज्ञ** पद यद्यपि शिव की **सर्वज्ञता** आदि विशेषताओं का सूचक है, तथापि उसका पृथक् विशेषण **सर्ववित्** यहां प्रयुक्त है । वह उसी प्रकार का प्रयोग है, जिस प्रकार अन्य प्रयोग मिलते हैं। महाकवि कालिदास ने **सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्** इस प्रकार का प्रयोग किया है । **कीचक** वे बांस होते हैं, जो हवा के स्पर्शमात्र से बज उठते हैं । जैसा कि **अमरकोष** का प्रमाण वचन है— **वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः** । किन्तु कालिदास ने **सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सर्ववित् इत्येतद्विशेषणम्, सर्वज्ञपदस्य विशेष्यमात्रपरत्वात् । विशिष्टवाचकसर्वज्ञ-पदस्य पृथग्विशेषणसमवधानात्, **सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्** इति कालिदासमहाकविप्रयोगदर्शनात्, **वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धता** इत्यमरवाक्याद् विशिष्टवाचककीचकपदस्य विशेष्यवेणुमात्रपरत्वम् । किञ्च, **न्यायमुक्तावल्यामपि विघ्नविघाताय** इत्यत्र विशिष्टवाचकघातपदस्य विशेष्यभूताभावमात्रपरत्वं दृष्टम् । सर्ववित्पदं च तृप्त्याद्यङ्गपञ्चकोपलक्षणम् । उक्तं च **पारमेश्वरागमे**—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।।(६.३३) इति।

यस्य सर्वज्ञत्वाद्यङ्गस्य, **ज्ञानमयं** सृज्यमानसर्वज्ञानरूपप्रथमाङ्गमेव **तपः**, न त्ववाप्तसकलकामस्याऽस्य निरतिशयसर्वज्ञत्वाद्यङ्गषट्कस्य विश्वामित्रादीनामिव सृष्टिसामर्थ्यापादकायासबहुलतपः सम्भवति । उक्तं च **कक्ष्यास्तोत्रे— तत्र सर्वज्ञता ज्ञानं सर्वं च जायते यत** इति । उक्तं च षाड्गुण्यविवेके — 'गुणेषु ज्ञानमाद्यं 'ते' इति। **तस्मात्** सर्वज्ञत्वाद्यङ्गाद् भाविप्रपञ्चनिमित्तकारणभूताद् महेश्वराद् निस्तङ्गसमुद्रसमात्, **ब्रह्म**

प्रयोग करते हुए पृथक् विशेषण के साथ **कीचक** पद को सामान्य विशेष्य के रूप में प्रस्तुत किया है और उसका अर्थ 'बांसुरी' किया है । इसी प्रकार **न्यायमुक्तावली** में भी प्रयोग मिलता है— विघ्नविघाताय, जिसका अर्थ होता है 'विशिष्ट घात' । किन्तु वहां केवल विशेष्यस्वरूप 'अभाव' के अर्थ में ही उसका प्रयोग किया गया है । क्योंकि ग्रन्थकार का अभीष्ट निर्विघ्न ग्रन्थपूर्ति मात्र है ।

सर्ववित् पद 'सर्वज्ञ' शिव की 'सर्वज्ञता' के साथ ही उसकी 'तृप्ति' आदि अन्य पांच अङ्गों का भी उपलक्षण है। जैसा कि **पारमेश्वरागम** का वचन है— सर्वज्ञता (भक्तस्थल), तृप्ति (माहेश्वरस्थल), अनादिबोध (प्रसादिस्थल), स्वतन्त्रता (प्राणलिङ्गस्थल), अलुप्तशक्ति (शरणस्थल) और अनन्तशक्ति (ऐक्यस्थल) इन सर्वव्यापक महेश्वर के छः अङ्गस्थलों का निरूपण विधिवेत्ता विद्वानों ने किया है ।(६.३३) । **यस्य** = षडङ्ग-सम्पन्न अर्थात् छः अङ्गस्थलों से परिपूर्ण जिस महेश्वर का, **ज्ञानमयम्** = सर्वप्रथम प्रादुर्भूत होनेवाला सर्वज्ञानस्वरूप (सर्वज्ञतास्वरूप) प्रथम अङ्ग ही, **तपः** = **तपश्चरण** है । सर्वज्ञता[1] आदि छः अङ्गस्थलों के सोपानों पर आरोहण करते हुए सम्पूर्ण कामनाओं से परिपूर्ण विश्वामित्र आदि महर्षियों ने संपूर्ण सृष्टि में समर्थ परिश्रमसाध्य जो तप किया था, वह **तप** कोटि में नहीं आता । जैसा कि **कक्ष्यास्तोत्र** में वर्णित है— "उस महेश्वर में सर्वज्ञता ज्ञान विराजमान है, जिससे समस्त सृष्टि प्रकट होती है"। **षाड्गुण्यविवेक** में इसी का समर्थन इस प्रकार

---

१. 'यद् भक्तस्थलमित्याहुस्तत् सर्वज्ञत्वमुच्यते' पारमेश्वरागमोक्त (६.३४) इस वचन के अनुसार भक्तस्थल का साधक ही महेश्वर सर्वज्ञता नामक प्रथम अंग है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

चिच्छक्तिवपुर्लिङ्गम्, **या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी** इति श्रुतेः, **लिङ्गं तु शिवयोर्देह** इत्यागमोक्तेः, स्वात्मनि **अण्डरसन्यायेन** अहमित्यविभागपरामर्शात्मना स्थितस्य विश्वस्य विभागपरामर्शमयमृष्टिलीलायामुपादानकारणं लिङ्गतत्त्वमित्यर्थः। तस्य किञ्चिच्चलनविसृष्टसामरस्याधिकभावापन्नस्वप्रकाशतामयसूक्ष्मकार्यकरणप्रपञ्चोपादा-कारणीभूतचिच्छक्त्यपरपर्यायप्रणवरूपशान्त्यतीतोत्तराख्यशक्तिविशिष्टत्वात्, **प्रज्ञानं ब्रह्म** इति श्रुतेः। ब्रह्मणो लिङ्गरूपत्वं चोक्तं **सिद्धान्तशिखामणौ– ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं ब्रह्मणः पतिरीश्वरः** (६.६०) इति। विश्वोपादानत्वं च—

किया है— ''महेश्वर ! आप के छः गुणों (अङ्गों) में सर्वज्ञतास्वरूप ज्ञान ही सर्वप्रथम गुण (अङ्ग) है।''

तस्मात् = सर्वज्ञता आदि छः अङ्गों से सम्पन्न होनेवाले प्रपञ्च का निमित्तकारण-स्वरूप वह महेश्वर उस समुद्र के समान है, जिसमें लहरें नहीं होतीं। उससे, **ब्रह्म** = चिच्छक्तिस्वरूप लिङ्ग का, **जायते**= आविर्भाव होता है। इसमें **या ते रुद्र ! शिवा तनूरघोरा पापनाशिनी** (हे रुद्र ! (महेश्वर !) जो तुम्हारी मङ्गलमयी सौम्य पापनाशिनी लिंगमूर्ति है) इस श्रुतिवचन तथा **लिङ्गं तु शिवयोर्देहः** (लिङ्ग तो पार्वती-परमेश्वर का प्रत्यक्ष शरीर है) इस आगमवचन के अनुसार चिच्छक्ति शरीर लिङ्ग की तुलना **मयूराण्डरसन्याय** से की जा सकती है। जिस प्रकार अण्डस्थित रस में जीव की स्थिति प्रथमतः अविभक्त रहती है और सृष्टि की स्थिति में जीव के शरीर का विभाग क्रमशः भासमान होता है, उसी प्रकार चिच्छक्तिविशिष्ट लिङ्ग में प्रथम विश्व का परामर्श **'अहम्'** इस रूप में अविभक्त स्थिति में होता है और तदनन्तर सृष्टिलीला के समय शनैःशनैः क्रमशः विश्व का पृथक्-पृथक् भान होता है। इसका उपादानकारण चिच्छक्तिविशिष्ट वह लिङ्ग ही है, जिसे यहां ब्रह्म कहा गया है। क्योंकि जब उस ब्रह्म में कुछ स्पन्दन होता है तब वह ब्रह्म अपने आप ज्योतिपुञ्ज बन जाता है, जो उसके सामरस्य की अधिकता है और उसका सूक्ष्म कार्य भी है। ब्रह्म का प्रकाशपुञ्ज ही प्रणव के रूप में प्रकट होता है, उसी का दूसरा पर्याय चिच्छक्ति है। उसी चिच्छक्ति को शान्त्यतीतोत्तर शक्ति नाम से भी संबोधित करते हैं और वही ब्रह्म से आविर्भूत प्रपञ्च का **करण** भी है। यद्यपि ब्रह्म ही उस प्रपञ्च का साक्षात् उपादानकारण है, तथापि उसकी स्पन्दनस्वरूपा प्रकाशमयी चिच्छक्ति परम्परया उस प्रपंच का उपादानकारण बनती है। (क्योंकि ब्रह्म के किंचित् स्पंदन से ओंकारस्वरूप जो प्रकाश फैलता है, उससे सारा प्रपञ्च आविर्भूत होता है।) इसमें यह श्रुतिवचन प्रमाण है— **प्रज्ञानं ब्रह्म**। ब्रह्म ही 'प्रज्ञा' अर्थात् चिच्छक्ति से सम्पन्न है। **'सिद्धान्तशिखामणि'** में ब्रह्म को लिङ्ग का रूप कहा गया है—

ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं ब्रह्मणः पतिरीश्वरः। (६.६०)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम् ।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम् ।। (६.३७)

इत्युक्तम् । निमित्तान्महेश्वरादाविर्भूतत्वं च —

समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी ।
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात् तत्स्वरूपानुकारिणी ।।

(सि. शि. २.१२-१३)

इत्युक्तम् । एतस्यैव लिङ्गस्य चिदम्बरप्रकृतिशब्दिताङ्गत्वेन व्यपदेशः, **आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता, आकाशशरीरं ब्रह्म** इत्यादिश्रुतेः ।

अर्थात् "वह लिंग परब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है तथा चतुर्मुख ब्रह्मदेव का ईश्वर, अधिपति भी है ।" 'लिङ्ग ब्रह्म' विश्व का उपादान कारण है—

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम् ।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम् ।।

(सि. सि. ६.३७)

जिस में सम्पूर्ण चर (जंगम) और अचर (स्थावर) विश्व का विलय होता है और पुनः जिससे प्रकट होता है उसी शाश्वत ब्रह्म को **लिङ्ग** कहते हैं । निमित्तकारणस्वरूप महेश्वर से लिङ्गस्वरूप परब्रह्म के आविर्भाव में यह वचन प्रमाण है—

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ।
समस्त-लोक-निर्माण-समवाय-स्वरूपिणी ।
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात् तत्स्वरूपानुकारिणी ।।

(सि. शि. २.१२-१३)

परम शिव की सच्चिदानन्दस्वरूपा विमर्शशक्ति ही सम्पूर्ण विश्व का उपादान कारण बनकर महेश्वर, परम शिव की इच्छा से ही उसी के स्वरूप का अनुकरण करती है । अर्थात् जो परम शिव का स्वरूप है, उसकी चिच्छक्ति का भी वही स्वरूप है ।

श्रुति लिङ्गस्वरूप परब्रह्म को चिदम्बर की प्रकृति कहती है और चिदम्बर (आकाश) को उसका अंग कहती है । अग्रिम श्रुतिवचन इसमें प्रमाण हैं— **आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता** । (लिङ्गस्वरूप परब्रह्म का आकाश नाम भी है और उसका रूप भी ।) **आकाशशरीर ब्रह्म** आकाश ही ब्रह्म का शरीर है ।

तस्मात् = उसी महेश्वर से, **एतत्** = दृष्टिगोचर होनेवाला, **नाम रूपम्** = शब्द और अर्थ के रूप में विद्यमान संपूर्ण कार्य, (**जायते** = आविर्भूत होते हैं) और उस शब्दार्थमय

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एतत् परिदृश्यमानं **नामरूपं** शब्दार्थप्रपञ्चमयं कार्यजातं जायते। किञ्च, एतत्कारण**मन्नं** मलात्मकं भेदज्ञानमद्यमानत्वाद् ग्रस्यमानत्वाच्छिवयोगिनामन्नम्, **ज्ञानमन्नम्** (शि. सू. २.२) इति शिवेनापि सूत्रितत्वात् (च) **जायते**=आविर्भवति। **तस्मात्** सर्वज्ञत्वाद्यङ्गत्वाद् अक्षरशब्दात् परमेश्वराद् आविर्भूतं चिदम्बरशक्तिवपुर्लिङ्गमेव कार्यकारणविश्वात्मना **स्वर्णकुण्डलन्यायेन** विकाराराहित्येन स्वस्वातन्त्र्येण परिणमतीत्यर्थः।

जगन्मिथ्यात्ववादनिरासः

तस्मात् सर्वं जगत् स्वाभाविकं सत्यम्, न तु मिथ्याभूतमायाकल्पितम्। **यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावत** इति श्रुत्यन्तराच्च। उक्तं चाभियुक्तैः—

यथा हेम्नो रूपकेषु वैचित्र्यं स्वान्नातिरिच्यते।
अथ नित्यस्वरूपस्य तथा ते विश्वरूपता॥

प्रपञ्च का कारण है भेदज्ञान, जो वास्तव में **मल** (अज्ञान) स्वरूप है। उसे **अन्न** इसलिए कहते हैं कि शिवयोगी उस भेदज्ञान को अपना ग्रास बनाते हैं। **अद्यमानत्वाद् ग्रस्यमानत्वात् शिवयोगिनामन्नम्**। यतः भेदज्ञान शिवयोगियों को नहीं होता, वह उनका ग्रास बन जाता है, अतः मलस्वरूप भेदज्ञान को अन्न कहते हैं। इसमें **शिवसूत्र** प्रमाण है— **ज्ञानमन्नम्**। वह अन्न भी उस महेश्वर से ही प्रकट होता है। इसका भावार्थ यह है कि सर्वज्ञता आदि छः अङ्गो से सम्पन्न **अक्षर** शब्द से संकेतित परमेश्वर, परमशिव से 'चित्' का वसन परिधान करने वाली शक्ति से विशिष्ट परब्रह्मस्वरूप लिङ्ग ही अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से निर्विकार रूप से विश्व का आकार ग्रहण करता है, जो (सृष्टिस्थिति में) उसका कार्य भी है और (संहारस्थिति में) कारण भी। परब्रह्मस्वरूप लिङ्ग का विश्व के रूप में यह परिणमन **स्वर्णकुण्डल** न्याय से होता है। जिस प्रकार सुवर्ण कुण्डल का आकार ग्रहण करने पर भी सुवर्ण ही रहता है, उसी प्रकार परब्रह्मस्वरूप लिङ्ग भी विश्व के रूप में परिणत होने पर भी परब्रह्म ही रहता है।

जगन्मिथ्यात्ववाद का खण्डन

इसलिए यह सम्पूर्ण जगत् स्वाभाविक रूप से सत्य है, मिथ्यास्वरूप माया से कल्पित, स्वप्नसृष्टि नहीं है। इसमें यह भिन्न श्रुति भी प्रमाण है— **यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः**। (जिस प्रकार मकड़ी अपने ही ताने-बाने से स्वाभाविक रूप से जाला बन जाती है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा विश्व के रूप में परिणत होता है।

इसमें **यथा हेम्नो रूपकेषु** इत्यादि अभियुक्तोक्ति भी प्रमाण है, जिसका भावार्थ इस प्रकार है— "जिस प्रकार सोने के (अलंकारों के) विभिन्न स्वरूपों में रहनेवाली विचित्रता अथवा विविधता अपने से पृथक् (अतिरिक्त) नहीं होती, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! नित्यस्वरूप

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यथा दलितरूपस्य हेम्नः पिण्डात्मना स्थितिः ।
तथा गलितवेद्यस्य तव शुद्धचिदात्मता ।। इति।

उक्तं चानुभवसूत्रे —

स्वशक्तिक्षोभामात्रेण स्थलं तद् द्विविधं भवेत् ।
एकं लिङ्गस्थलं प्रोक्तमन्यदङ्गस्थलं भवेत् ।।

इति महेश्वरादाविर्भूतत्वं लिङ्गतत्त्वस्य । तथा चोर्णनाभिरिव परमेश्वर एक एव स्वप्राधान्येन सशक्तिवपुर्लिङ्गमूर्तिप्राधान्येन च विश्वनिमित्तोपादानकारणं भवतीति दर्शितमनेन मन्त्रेण । अतो न भ्रमितव्यमक्षरात् सर्वज्ञाद् ब्रह्मणो लिङ्गमूर्तेर्भिन्नत्वात् पूर्वप्रश्नवाक्यासङ्गतिरिति ।

शक्तिशक्तिमत्पदार्थयोर्भेदाभेदविवेकः

शक्तिशक्तिमतोरभिन्नत्वस्याऽभ्युपगमात् । तथा चोक्तं कूर्मे —

में वर्तमान तुम हो और विश्व के रूप में तुम्हारा रूपान्तरण होता है । जिस प्रकार (गहनों को) गलाने पर सोना पिण्ड के रूप में रहता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! भेदज्ञान के नष्ट होने पर तुम शुद्ध चिद्रूप में विद्यमान रहते हो ।''

स्वशक्तिक्षोभमात्रेण इत्यादि अनुभवसूत्र का वचन भी इसमें प्रमाण है, जिसका अर्थ इस प्रकार है— ''अपनी विमर्शस्वरूपा चित्शक्ति के क्षोभमात्र से स्थल के दो रूप होते हैं— एक को लिङ्गस्थल कहते हैं और अन्य अङ्गस्थल होता है ।''

इस प्रकार महेश्वर से परब्रह्मस्वरूप लिङ्गतत्त्व का आविर्भाव सिद्ध है । निष्कर्ष यह है कि परमेश्वर एक ही है । वह उस मकड़ी के समान है, जो अपने ही ताने-बाने से जाला बन जाती है । परमेश्वर भी अपनी ही प्रधानता से विश्व का निमित्तकारण होता है और स्वयं से प्रकट होनेवाले चित्शक्तिविशिष्ट लिङ्गमूर्ति द्वारा उसका उपादान-कारण होता है यही **तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते** इस मन्त्रभाग द्वारा प्रदर्शित किया गया है । अतः इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि यतः **अक्षर** शब्द से संकेतित सर्वज्ञता आदि अंगों से सम्पन्न परब्रह्मस्वरूप परमशिव से उसका लिङ्गस्वरूप भिन्न है, अतः **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** इस पूर्व प्रश्न से इस प्रश्न की असंगति बैठती है ।

शक्ति और शक्तिमान् दोनों पदार्थों में भेदाभेदविवेक

पूर्व प्रश्न से इस प्रश्न की असंगति इस लिए नहीं होती कि दोनों में अभेदबुद्धि होती है । इसमें कूर्मपुराण के **व्योमसंज्ञा परा काष्ठा** इत्यादि वचन प्रमाण हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

व्योमसंज्ञा परा काष्ठा ज्ञानरूपातिलालसा ।
स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवाऽमला ।।

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः ।
परापरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ ।।

सेयं करोति सकलं पश्य कार्यमिदं जगत् ।
न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः ।।

अनया सहितो देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते ।
तया सर्वमिदं प्रोतमेतच्चैवाऽखिलं जगत् ।।

एका शक्तिः शिवो ह्येकः शक्तिमानुच्यते शिवः ।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः ।
अभेदं चाऽनुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः ।। इति।

तथा च **प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी** इति श्रुत्युक्तप्रज्ञाशब्दितचिच्छक्तिविशिष्टमेव लिङ्गरूपं ब्रह्म **तस्मादेतद् ब्रह्म** इत्यत्र 'ब्रह्म'-शब्देन विधीयत इति बोध्यम् । एते पूर्वमन्त्रात्

"जिस प्रकार सूर्य की निर्मल एकमात्र तेजोमय प्रभा होती है, उसी प्रकार **व्योम** (आकाश) नाम की चित्स्वरूप (ज्ञानस्वरूप) अत्यन्त तरल **परा काष्ठा** (समस्त दिशाओं में व्याप्त, दिशाओं से परे) महेश्वर की एकमात्र स्वाभाविक शक्ति है, जो अनेक उपाधियों के योग से परा और अपरा रूप से उसकी सन्निधि में (उसके निकट) क्रीडा करती है । देखो, वही शक्ति इस चराचर जगत् की सृष्टि करती है, जो महेश्वर का कार्यस्वरूप है । वह जगत् न तो परमेश्वर का कार्य है और न कारण इस प्रकार विद्वानों की सम्मति है । इस चित्-शक्ति के साथ प्रकाशमान ईश्वर आत्मानन्द का उपभोग करता है । उसी चित्शक्ति से यह सम्पूर्ण दृश्यमान चराचर जगत् अनुस्यूत और व्याप्त है ।

एक ही शिव है और एक ही शक्ति । शिव शक्ति से अभिन्न है और शक्ति शिव से अभिन्न । दोनों में परस्पर भेद नहीं है । तथापि शिव को शक्तिविशिष्ट कह कर लोग दोनों में भेद प्रतिपादित करते हैं, जब कि तत्त्वचिन्तक योगी दोनों में अभेद देखते हैं ।

निष्कर्ष यह है कि **प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी** (उसी महेश्वर से पुराणी प्रज्ञा प्रकट हुई।) इस श्रुति द्वारा जिसे प्रज्ञा कहा गया है, लिङ्गस्वरूप परब्रह्म उसी चित्शक्ति से विशिष्ट है । **तस्माद् एतद् ब्रह्म** इस मंत्रभाग में 'ब्रह्म'-शब्द से विधेय प्रतिपादित है यह समझना चाहिए । (**'यः सर्वज्ञः सर्ववित्'** इस मन्त्रभाग में **'सर्ववित्'** विशेषण है और **'सर्वज्ञ'** विशेष्य ।) इस मंत्र में प्रतिपादित सर्वज्ञता' आदि स्वाभाविक छः गुण **यया**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्राप्ताः सर्वज्ञत्वादयः स्वाभाविका गुणा उपक्रान्ताक्षरस्यैव महेश्वरस्य विहिताः। तस्मान्निर्गुणब्रह्मवादिनो निरस्ता एवेति मन्तव्यम्।

निर्गुणब्रह्मवादनिरासः

न च निर्गुणं ब्रह्माऽस्ति, येन निर्गुणवाक्यानां विषयं किञ्चिद्भवेत्, प्रमाणाभावात्। न च **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च** इत्यादिश्रुतिर्ब्रह्मणो निर्गुणत्वे प्रमाणम्, **अरूपवदेव हि तत्त्वप्रधानत्वात्** इति सूत्रं चेति वाच्यम्, **यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्** इत्यादिश्रुतिभिः, **ईक्षतेर्नाशब्दम्, सुखविशिष्टाभिधानादेव, विवक्षितगुणोपपत्तेश्च** इत्यादिसूत्रैश्च ब्रह्मणो गुणवत्त्वस्याऽभ्युपगमात्। न च विरोधोऽपि, प्रतिषिद्धगुणासम्भवेऽपि प्रतिपादितगुणसम्भवात्। नहि **वह्नौ गन्धो नास्ति रूपमस्तीत्यनयोर्विरोधः**। एवम् **अशब्दमस्पर्शम्** इत्यादिना शब्दादीनां प्रतिषेधात् शब्दस्पर्शरूपादयो गुणा मा भूवन्, **यः सर्वज्ञः स सर्ववित्** इत्यादिना सर्वज्ञत्वादीनां प्रतिपादनात् सर्वज्ञानादिगुणाः किं न भवेयुः? तस्मात्र **केवलो निर्गुणश्च** इति

तदक्षरमभिधीयते (१.१.५) इस मन्त्र में 'अक्षर' शब्द से संकेतित 'सर्वज्ञता' आदि गुण उस महेश्वर के ही है। अतः यह समझना चाहिए कि निर्गुण ब्रह्मवादियों का निराकरण इसी से हो जाता है।

निर्गुण ब्रह्मवाद का निराकरण

निर्गुण (गुणातीत, गुणों से परे) ब्रह्म का कोई अस्तित्व ही नहीं है, जिससे निर्गुण वाक्यों का कोई विषय हो। उसमें कोई प्रमाण नहीं है। **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्**, '**साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च** इत्यादि श्रुतिवचन और '**अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्**' यह सूत्र भी ब्रह्म की निर्गुण सत्ता को प्रमाणित करते हैं, ऐसा भी आप नहीं कह सकते। क्योंकि '**यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः**' (मु. १.१.९), '**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्**', इत्यादि श्रुतिवचन और '**ईक्षतेर्नाशब्दम्**', '**सुखविशिष्टाभिधानादेव विवक्षितगुणोपपत्तेश्च**' इत्यादि सूत्र भी ब्रह्म की गुणवत्ता को ही प्रमाणित करते हैं। इन श्रुतिवचनों और सूत्रों में परस्पर विरोध भी नहीं है। क्योंकि जिन गुणों का निषेध किया गया है, वे यद्यपि उस ब्रह्म में नहीं है, तथापि जिनका प्रतिपादन किया गया है, वे गुण उसमें हैं। उदाहरणार्थ आग में गन्ध नहीं है, रूप है इन वाक्यों में परस्पर विरोध नहीं है। उसी प्रकार यद्यपि **अशब्दमस्पर्शम्** इत्यादि श्रुतिवाक्य ब्रह्म में शब्द, स्पर्श आदि गुणों का निषेध करते हैं, अतः शब्द, स्पर्श, रूप आदि गुण ब्रह्म में भले ही न हों, किन्तु **यः सर्वज्ञः सर्ववित्** इत्यादि मन्त्रों द्वारा ब्रह्म में सर्वज्ञता आदि गुणों का प्रतिपादन होने से वे क्यों नहीं हो सकते? अतः यह समझना चाहिए कि '**केवलो निर्गुणश्च**' इत्यादि वाक्य ब्रह्म में सामान्य

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वाक्यस्य गुणसामान्याभावबोधकत्वम्, किन्तु हेयप्राकृतगुणविशेषाभाव-बोधकत्वमेव। अन्यथा **स विश्ववद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः, यः सर्वज्ञः सर्ववित्** इति **श्वेताश्वतरोपनिषदादिवाक्यविरोधः** स्यादेव। न च **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इत्यादिना ज्ञानादिकं ब्रह्मणः स्वरूपत्वेन प्रतीयते न गुणत्वेनेति वाच्यम्, **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति, स ईक्षांचक्रे, तपसा चीयते ब्रह्म** इति च श्रूयमाणज्ञानादेराविर्भूतत्वावगमेन स्वरूपत्वायोगात्। न चाऽविद्यावृत्तिरूपं ज्ञानान्तरमेव जन्यते, न स्वरूपज्ञानम्, स्वरूपत्वेऽपि वा विषयोपरक्तत्वाकारेण जन्यत्वश्रुतेरुपपत्तिरिति वाच्यम्, अविद्यायाः शशविषाणतुल्यत्वात्, तस्या असद्व्यक्तित्वेन तत्रेक्षणायोगात्, अन्यथा प्रधानस्यापीक्षणसम्भवे **ईक्षतेर्नाशब्दम्** इति सूत्रासङ्गत्यापातात्। यदुक्तं स्वरूपत्वेऽपि विषयोपरक्तत्वाकारेण जन्यत्वश्रुत्युपपत्तिरिति, तत्र, सृष्टिकारणभूतेक्षणकाले विषयाभावात्। न च तदाप्यव्याकृतं नामरूपादिकमस्त्येवेति वाच्यम्, तत्सम्भवे प्रमाणाभावात्। **तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते** इत्यनेनाऽव्याकृतस्य जन्यत्वावगमात्, अनादित्वाभावात्, अन्नपदस्य व्याकृतार्थकत्वस्य व्याख्यातत्वात्, तदानीं

गुणों के अभाव को प्रतिपादित नहीं करते, उनके अस्तित्व को नहीं नकारते, किन्तु परित्याग-योग्य प्राकृत विशिष्ट गुणों के अभाव को सूचित करते हैं, उनके अस्तित्व को नकारते है। अन्यथा **स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः', 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्'** इन **श्वेताश्वतरोपनिषद्** इत्यादि उपनिषद् वाक्यों में परस्पर विरोध-प्रतीति होगी। आप यह भी नहीं कह सकते कि **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इत्यादि वाक्यों द्वारा सत्यत्व, ज्ञानत्व आदि धर्म ब्रह्म के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं, गुणों को नहीं। **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय, स ईक्षाञ्चक्रे, तपसा चीयते ब्रह्म** इत्यादि श्रुतिवाक्य ज्ञान आदि के आविर्भाव के ज्ञापक हैं, उनमें ब्रह्म की स्वरूपाधायकता नहीं है। आप यह भी नहीं कह सकते कि वहां ज्ञान के आविर्भाव का तात्पर्य है अविद्यावृत्तिरूप अतिरिक्त भेदज्ञान का आविर्भाव अथवा उसको ब्रह्म का स्वरूपाधायक स्वीकार करने पर भी विषयाकारस्वरूप में ब्रह्म की स्वीकृति प्रदान करना। इस प्रकार **'जन्यत्वश्रुति'** (ज्ञानादि आविर्भाव प्रतिपादक श्रुति) की संगति बैठ जायगी। क्योंकि अविद्या का अस्तित्व उसी प्रकार है, जिस प्रकार खरगोश के सींग। कपोलकल्पित अविद्या का साक्षात्कार वहां सम्भव नहीं है। अन्यथा प्रधान ब्रह्म का साक्षात्कार भी सम्भव नहीं होगा और ऐसी स्थिति में **ईक्षतेर्नाशब्दम्** इस सूत्र की सङ्गति नहीं लग सकती। आपका यह कथन भी समुचित नहीं है कि ज्ञानादिको ब्रह्म का स्वरूप मानने पर भी विषयाकार ब्रह्म के रूप में इस श्रुति की संगति बैठती है, क्योंकि जब ब्रह्म का आविर्भाव होगा, तभी उसका साक्षात्कार होगा। अतः ब्रह्म की सृष्टि कार्य है और साक्षात्कार अथवा ईक्षण उसमें कारण हैं। जिस समय ब्रह्मसाक्षात्कार होता है, उस समय उसमें कोई विषय नहीं होता। आप यह भी नहीं कह सकते कि ब्रह्मसाक्षात्कार करते समय नाम-रूप आदि

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लोकसृष्ट्यादेरभावात्, तद्वासिनो जीवस्योपाधिभूताविद्याव्यष्टित्वेनाऽन्नपदस्य व्याख्यातुमशक्यत्वाच्च ।

कथं हि तर्हि **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इति सामानाधिकरण्यमिति **चेन्नीलमुत्पलमि**त्यादिवत् गुणगुणिनोर्भेदाभेदाभ्युपगमात् । स्वशक्तिस्वस्थतादशावच्छेदेन ज्ञानादिगुणानामभेदः, स्वशक्तिक्षोभदशावच्छेदेन भेद इत्यङ्गीकरणीयत्वेन सामानाधिकरण्योपपत्तेरिति बोध्यम् । ज्ञानमस्यास्तीति मत्वर्थीयार्शाद्यच्प्रत्ययेन ज्ञानवदित्यर्थलाभाद्वोपपत्तेः । अत एव **तद्गुणसारत्वात् तद्व्यपदेशः प्राज्ञवद्** इति सूत्रितम् । तस्मादिदं निर्गुणप्रतिपादकमिदं सगुणप्रतिपादकमिति भागकल्पनमयुक्तमेव । एतेन मिथ्यामायाकल्पितमेव सार्वज्ञलक्षणं ज्ञानमित्याशयेन परव्याख्यानं परास्तम् । किञ्च, परव्याख्याने '**सर्वज्ञः सर्ववित्**' इत्यत्र पौनरुक्त्यं दुर्वारम्, उभयत्र योगार्थस्यैवाऽभ्युपगमात् । सामान्यविशेषभावेन सर्वज्ञानवत्वं चैकेनैव सर्वज्ञपदेन ज्ञातुं शक्यम् । **सामान्यतः सर्वं जानातीति सर्वज्ञः, विशेषतः सर्वं वेत्तीति सर्ववित्**' इति

अव्यक्त रूप में उसमें विद्यमान रहते हैं, क्योंकि उसके अस्तित्व में कोई प्रमाण नहीं है । **तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते** इस मन्त्र से अविभक्त ब्रह्म के आविर्भाव का ज्ञान होता है । अत एव ब्रह्म अनादि नहीं है । '**अन्न**' पद का अर्थ ही है अव्याकृत ज्ञान । उस समय चतुर्दश भुवनों की सृष्टि न होने के कारण उसमें रहनेवाले जीवात्मा में उपाधिभूत व्यष्टिस्वरूप 'अविद्या' यह 'अन्न' पद का अर्थ नहीं किया जा सकता ।

फिर **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इस श्रुतिप्रतिपादित सत्यादि पदों का ब्रह्म के साथ सामानाधिकरण्य की संगति किस प्रकार बैठेगी? (क्योंकि सभी शब्द अकारान्त नपुंसकलिंगी और प्रथमा विभक्ति के एकवचन में हैं ।) इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार **नीलमुत्पलम्** इत्यादि की संगति विशेषण-विशेष्य-भाव के द्वारा होती है, उसी प्रकार '**सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम्**' का '**ब्रह्म**' के साथ विशेषणविशेष्यभाव स्थापित करते हुए उनमें संगति बैठानी होगी । जिस प्रकार **नीलम् उत्पलम्** इत्यादि में नित्य समवायसम्बन्ध है । 'नील' गुणत्व-विशिष्ट विशेषण है और उत्पल विशेष्य है । दोनों में भेदप्रतीति भी है और अभेदप्रतीति भी । उसी प्रकार जब ब्रह्म की अपनी विमर्शशक्ति में क्षोभ नहीं होता, विमर्शशक्ति जब स्वस्थ रहती है उस अवस्था में ज्ञानादि गुणों की अभेदप्रतीति होती है और जब उसमें क्षोभ होता है, उस अवस्था में भेदप्रतीति होती है । इस प्रकार अर्थ स्वीकार करने से **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** के सामानाधिकरण्य की संगति बैठती है । अथवा **ज्ञानमस्तीति ज्ञानम्** इस प्रकार मत्वर्थीय अर्शादि अच् प्रत्यय करने पर **ज्ञानम्** आदि का अर्थ 'ज्ञानवत्' आदि करने पर भी अर्थसंगति होगी । अत एव **तद्गुणसारत्वाद् तद्व्यपदेशः** इस प्रकार सूत्ररचना की गयी है । इन कारणों से विभिन्न श्रुतियों में कतिपय श्रुतियां निर्गुण ब्रह्म की प्रतिपादक हैं और कतिपय सगुण ब्रह्म की । इस प्रकार विभागकल्पना समीचीन नहीं है । इससे '**यः सर्वज्ञः**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यत्तदयुक्तमेव । किञ्च, अपरव्याख्यानमप्ययुक्तमेव, स्वरूपतः प्रकारतश्च सर्वज्ञानवत्त्वमित्यस्यैकेनैव पदेन वक्तुमौचित्यात् ॥९॥

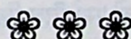
।। इति मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्ये प्रथममुण्डक-
प्रथमखण्डवीरशैवभाष्यं हर-गुरु-चर-
चरणार्पितं भूयात् ।।



सर्ववित् इस मंत्रभाग की वेदान्तदर्शनसम्मत इस व्याख्या का निराकरण हो जाता है कि 'सर्वज्ञता ज्ञान मिथ्या, माया के द्वारा कल्पित है' ।

इसीप्रकार शांकर-वेदान्त-दर्शनसम्मत व्याख्या में **सर्वज्ञः** और **सर्ववित्** दोनों पदों की अर्थपुनरुक्ति हटाना कठिन हैं, क्योंकि दोनों स्थलों में प्रकृति-प्रत्ययजन्य यौगिक अर्थ की ही अनुभूति होती है । एक ही 'सर्वज्ञ' पद से सामान्यविशेषभाव से सर्वज्ञान-वत्ता का ज्ञान संभव होने से **सामान्यतः (सामान्येन) सर्वं जानातीति सर्वज्ञः । विशेषतः (विशेषेण) सर्वं वेत्तीति सर्ववित्** इस प्रकार की व्याख्या समीचीन नहीं है । कतिपय लोग **सर्वज्ञ** का अर्थ **स्वरूपतो जानाति** और **'सर्ववित्'** का अर्थ **प्रकारतो वेत्ति** इस प्रकार करते हैं, जो अनुचित है । एक ही पद से उसकी स्वरूपतः और प्रकाशतः दोनों दृष्टियों से 'सर्वज्ञानवत्ता' का ही प्रतिपादन समुचित है ॥९॥

॥ इस प्रकार मुण्डकोपनिषद् के वीरशैवभाष्यस्थित प्रथममुण्डक के
प्रथम खण्ड का वीरशैवभाष्य और उसकी हिन्दी 'भावार्थदीपिका'
परमशिव, गुरु एवं जङ्गम योगी के चरणों में समर्पित है ॥



---

१. **यः सर्वज्ञः** का शांकरभाष्य इस प्रकार है—**य उक्तलक्षणोऽक्षराख्यः सर्वज्ञः = सामान्येन सर्वं जानातीति सर्वज्ञः** । शांकर भाष्य के सामान्येन पद की व्याख्या आनन्दगिरि इस प्रकार करते हैं— **समष्टिरूपेण मायाख्येनोपाधिनेत्यर्थः**। उसी का निराकरण उमचिगि शंकरशास्त्री ने किया है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अथ प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः

मोक्षोपकारकपतिकर्मनिरूपणम्

यया तदक्षरमधिगम्यते, सा परा विद्या सूत्रात्मिका उक्ता, तद्व्याख्यानं च संक्षेपतो **यत्तदद्रेश्यम्** इत्यादिना **अन्न च जायते** इत्यन्तेनोक्तम्, परविद्याया लिङ्गाङ्गसामरस्यपरत्वात्। सामरस्यं च **कर्मसु चामृतम्** इत्यनेनोक्तम्। एतावता कानि तान्यमृतार्थानि कर्माणीति विशेषतो नोक्तम्। तस्मात्तद्विशेषं वक्तुं द्वितीयखण्डे प्रथममन्त्रः प्रवर्तते —

तदेतत् सत्यम्

मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यं-
स्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा
एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥१॥

मोक्ष के उपकारक पतिकर्मों का निरूपण

अवतरण — जिसके द्वारा उस अक्षर परब्रह्मस्वरूप परम शिव का साक्षात्कार किया जाता है, उस परा विद्या का निरूपण सूत्ररूप में किया गया और उसकी व्याख्या भी **यत् तदद्रेश्यम्** (१.१-६) इत्यादि मन्त्र से **अन्नं च जायते** (१.१.९) मन्त्रभाग तक संक्षेप से की गयी। यतः परा विद्या लिङ्गाङ्गसामरस्य से सम्बन्धित है, अतः **कर्मसु चामृतम्** (१.१.८) इस मन्त्रभाग द्वारा सामरस्य को सङ्केतित किया गया। इस विवरण के द्वारा विशेष रूप से इस जिज्ञासा का कहीं भी समाधान नहीं किया गया है कि वे **अमृत** (लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप मोक्ष) के प्रतिपादक कर्म कौन है? उनका विशेष रूप से निरूपण करने के लिए द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत अग्रिम प्रथम मन्त्र प्रवृत्त है।

***मन्त्रार्थ*– वेदमन्त्रों में मोक्षपरक जिन पतिकर्मों का साक्षात्कार अतिक्रान्तदर्शी मन्त्रद्रष्टा आचार्यों ने किया था, उनका अनुष्ठान त्रेतायुग में अनेक रीति से उनके अधिकारी नित्य करते थे, यह सच ही है। शिष्यों! निगम और आगमों में प्रतिपादित उन पतिकर्मों को तुमलोग नित्य आचरण में लाओ। मुमुक्षुजनों! आप लोगों द्वारा आचरित पतिकर्म का मोक्ष की प्राप्ति के लिए यही एकमात्र मार्ग उपाय है ॥१॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तदेतदिति । मन्त्रेषु=ऋग्वेदादिषु, **यानि कर्माणि**=मोक्षार्थानि पतिकर्माणि, **यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि** इति श्रुतेः । **कवयः**= अतीन्द्रियार्थसाक्षात्कारसमर्थास्त्रेतायुगाचार्या एकवक्त्रादयः, कलियुगे रेवणसिद्धमरुलसिद्धादि-पुण्याभिधानाः, **अपश्यन्** दृष्टवन्तः, अस्थिरफलकान् पशुधर्मान् तृणीकृत्य स्थिरमुक्तिफलकान् सारभूतान् पतिधर्मान् ज्ञातवन्त इत्यर्थः । **तानि**=तैर्दृष्टान्याचारे स्थापितानि पतिकर्माणि, **त्रेतायां**=त्रेतायुगे, **बहुधा**=बहुप्रकारम् अधिकारिषु कश्यपाद्यर्षिमनुष्ययक्षगन्धर्वादिगणेषु **सन्ततानि**=नित्यान्यासन्, नित्यानुष्ठेयान्यासन्निति यत् **तदेतत् सत्यमेव**। **तानि**= वेदवेदान्तविहितानि, **नियतं**=नियमेन, यथाक्रमं यथाविधि, **आचरथ** यूयं हे शिष्याः, **सत्यकामाः**=**सत्यं** मोक्षं कामयमाना मुमुक्षवः सन्तः । **एषः**=लिङ्गाङ्गसामरस्या-नुकूलपञ्चाचाराऽष्टवरणानुष्ठानरूपः **वः**=युष्माकम्, **पन्थाः**=मार्गः, उपाय इत्यर्थः । **सुकृतस्य**=यथाविध्यनुष्ठितस्य पतिकर्मणः । पतिज्ञानं विना कृतं कर्म सुकृतं न भवति, किन्तु तदननुष्ठितसममेव, तज्ज्ञानमन्तरा तदर्चनादेरसम्भवात् ।

नकारादि-यकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरीं जपेत्

व्याख्या– **तदेतदिति । मन्त्रेषु** = ऋग्वेद आदि के वेद-मन्त्रों में, **यानि कर्माणि** = मोक्षफल प्रद जिन पतिकर्मों का । इसमें श्रुतिवचन प्रमाण है— **यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि**। (जो निर्दुष्ट पतिकर्म हैं, उनका अनुष्ठान करना चाहिए, अन्य कर्मों का नहीं ।) **कवयः** = अतीन्द्रिय, इन्द्रियों से परे होनेवाले ज्ञान का साक्षात्कार करने में समर्थ त्रेतायुग में एकवक्त्र आदि और कलियुग में रेवणसिद्ध, मरुलसिद्ध आदि पुण्यप्रद नामों से प्रसिद्ध आचार्यों ने, **अपश्यन्** = साक्षात्कार किया अर्थात् अस्थिर फल प्रदान करनेवाले पशुधर्मों को तुच्छ समझकर शाश्वत मुक्तिफल प्रदान करनेवाले सारसर्वस्व पतिधर्मों का ज्ञान प्राप्त किया; **तानि** = उनके द्वारा साक्षात्कृत, अनुष्ठित और प्रचारित उन पतिकर्मों का, **त्रेतायाम्** = त्रेता युग में **बहुधा** = अनेक प्रकारों से, उनके अधिकारी कश्यप आदि देवर्षि, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व आदि गणों में, **सन्ततानि** = नित्य यथाविधि अनुष्ठान प्रचलित था इस प्रकार का जो इतिहास है, **तदेतत् सत्यम्** = वह सच ही है । शिष्यों **तानि** = वेद और वेदान्त में उपदिष्ट उन कर्मों का, **नियतम्** = नियमपूर्वक यथाक्रम यथाविधि, **आचरथ** = आचरण करो । **सत्यकामाः** = ('सत्यं कामयन्ते इति तत्सम्बुद्धौ हे सत्यकामाः!') शाश्वत सत्य मोक्ष की कामना करनेवाले हे मुमुक्षुजनों ! **एषः** = यही लिङ्गाङ्गसामरस्य के अनुकुल पञ्चाचार और अष्टावरण के अनुष्ठानस्वरूप, **वः** = तुम लोगों का, **पन्थाः** = मार्ग, उपाय है ।

[**सुकृतस्य लोके एष वः पन्था** = मोक्ष प्राप्ति के लिए पुण्य पतिकर्म का अनुष्ठान ही एकमात्र उपाय है ।]

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्याऽन्तो भविष्यति ।।

इत्यादिश्रुतेः । उक्तं च कौर्मे— **तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तद्ध्यानपरमो भवेत्** इति । उक्तं चान्यत्र— **ज्ञात्वा तमर्चयेन्मन्त्री चान्यथा निष्फलं भवेत्** इति । **लोके**=''लोक्यतेऽनुभूयते **चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः** इति स्वस्वरूपशिवधर्मः स्वशक्त्यभिव्यक्ततादशायां मुक्तैरिति'' लोकः, तस्मिन् लोके मोक्षे शिवत्वप्राप्तिरूपे फले, मोक्षप्राप्तये एष मार्ग इत्यर्थः ।

सुकृतस्य विधानपूर्वक अनुष्ठान में लाया गया कर्म पतिकर्म ही 'सुकृत' (पुण्य कर्म) है । पतिज्ञान के बिना किया हुआ कर्म 'सुकृत' नहीं होता, वह करना न करने के समान ही है । क्योंकि बिना '**पति**' के ज्ञान के उसकी अर्चना ही सम्भव नहीं है । इसमें अनेक श्रुतिवचन प्रमाण हैं —

नकारादि-यकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरीं जपेत् ।

(**नमः शिवाय** इस पञ्चाक्षर मन्त्र के 'न' कार से लेकर 'य' कार तक प्रत्येक अक्षर के मर्म को समझ कर ही पञ्चाक्षरमन्त्रजप करना चाहिए ।)

यदा चर्मवदकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्याऽन्तो भविष्यति ।।

(जिस प्रकार चर्म के आवरण से आकाश को ढकना सम्भव नहीं हैं, उसी प्रकार परम शिव को भी किसी आवरण से ढकना सम्भव नहीं है । मानव परम शिव के स्वरूप को बिना जाने उसको आच्छादित करने का उसी प्रकार प्रयास करते हैं, जिस प्रकार चर्म के द्वारा आकाश का आच्छादन । जिस क्षण परम शिव के स्वरूप का ज्ञान होगा, उसी क्षण त्रिविध दुःखों का अन्त होगा ।)

कूर्मपुराण भी इसी का समर्थन करता है— **यस्मान्महेश्वरम्** इत्यादि ।'अतः महेश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार करते हुए उसके ध्यान में लीन होना चाहिए ।'' अन्य प्रमाण भी इस विषय में इस प्रकार मिलता है— **ज्ञात्वा तम्** आदि ।''मन्त्रजपकर्ता को मन्त्रार्थ समझ कर ही शिवोपासना करनी चाहिए, अन्यथा वह निष्फल होगी ।''

लोके = 'लोक्यत इति लोकः' । **'चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः'** (मैं चित्स्वरूप अद्वितीय सदाशिव हूँ) इस प्रकार मुक्त लोग अपनी चित्शक्ति की अभिव्यक्ति की दशा में अपने स्वरूप में विद्यमान जिस शिवधर्म, शिवत्व की अनुभूति करते हैं, उस मोक्ष को ही **लोक** कहते हैं । यहां निमित्त अर्थ में सप्तमी विभक्ति है, जिसका अर्थ है शिवत्व प्राप्तिरूप फल अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए । उसके लिए पञ्चाचार और अष्टावरण का अनुष्ठान ही एक मात्र उपाय है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आत्मवुद्धिशक्त्योः परस्परविषयविषयिभावापन्नत्वात् स्वबुद्धिशक्त्या शुद्धया स्वात्मानन्दं समश्नुते मुक्त इति वक्तुमुचितम्, अन्यथा पाषाणप्रायमुक्तौ न केषाञ्चित्प्रवृत्तिर्भवेत्। तस्मान्मुक्तात्मन्यपि पराहङ्कारमयबुद्धिशक्तिः पुष्पगन्धवद् जलशैत्यंवद् अग्नितदीयौष्ण्यवद् दीपदीप्तिवद् अहिकुण्डलवत् सङ्गच्छतेतराम्, बुद्धिशक्तिवृत्तीनां नित्यत्वाभ्युपगमात्, **आत्मरतिरात्मक्रीडः, चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः, अहं ब्रह्मास्मि** इत्यादिश्रुतेः ॥१॥

पशुकर्मनिरूपणम्

एवं मोक्षार्थानि कर्माणि विधाय **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इति ब्रह्मविदाज्ञावाक्येन वेदितव्यत्वेन प्राप्ताया ऋग्वेदादिलक्षणपरविद्याया अपि ब्रह्मप्रापकत्वात् तदुक्ताग्निहोत्रादियावत्कर्मानुष्ठानस्याप्यावश्यकत्वे मुमुक्षूणां **मन्त्रेषु कर्माणि** इत्यत्र कर्मपदार्थ-सङ्कोचानौचित्यभ्रमो

क्योंकि परमशिवस्वरूप परमात्मा का बुद्धिशक्ति के साथ विषय-विषयिभावस्वरूप नित्य समवाय-सम्बन्ध है, परमशिवस्वरूप परमात्मा ही मुक्त की बुद्धिशक्ति (विषयी) का विषय है। अतः यह कहना समीचीन होगा कि अपनी शुद्ध (निर्मल) बुद्धि की चित्शक्ति द्वारा मुक्त स्वस्वरूप परमशिव के परमानन्द का उपभोग करता है। ऐसा न समझने पर वह मोक्ष पाषाण के समान कठोर और नीरस होगा और उसमें किसी की प्रवृत्ति ही नहीं होगी। अतः मुक्त जीवात्मा में (देहत्याग के उपरान्त) भी पराहन्ता के रूप में बुद्धिशक्ति उसी प्रकार नित्य समवाय सम्बन्ध से रहती है, जिस प्रकार पुष्प में गन्ध, जल में शीतलता, अग्नि में उष्णता, दीप में कान्ति, और सर्प में उसकी कुण्डलाकृति नित्य सम्बन्ध से रहती है। क्योंकि बुद्धि, चित्-शक्ति और वृत्तियों में नित्य समवायसम्बन्ध रहता है।

इसमें अनेक श्रुतिवचन प्रमाण हैं— **आत्मरतिरात्मक्रीडः** मैं (मुक्त जीव स्वस्वरूप में रमण और चिस्वरूप में क्रीडा करता है) **चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः**– (मैं जीवात्मा चित्स्वरूप एकमात्र सदाशिव हूँ।), **अहं ब्रह्माऽस्मि** (मैं जीवात्मा परब्रह्म-परमात्मा ही हूँ।) ॥१॥

पशुकर्म

अवतरण — इस प्रकार प्रथम मोक्षोपयोगी पतिकर्मों का विधान किया गया। **द्वे विद्ये वेदितव्ये** (१.१.४) इस मन्त्रभाग में ब्रह्मवेत्ताओं के आज्ञावाक्य के अनुसार यतः ऋग्वेदादि वेदवेदाङ्गस्वरूप परा विद्या भी परब्रह्मस्वरूप परम शिव का साक्षात्कार कराती है और उनमें प्रतिपादित अग्निहोत्रादि पशुकर्मों का अनुष्ठान भी मुमुक्षुजनों के लिए आवश्यक हैं। इस द्वितीय खण्ड के प्रथम मन्त्र में **मन्त्रेषु कर्माणि** इस अंश में **'कर्म'** पद का संकुचित अर्थ पतिकर्म किया गया है, जो अनुचित नहीं है। अग्रिम मन्त्र द्वारा लोग कहीं भ्रमवश इसका अर्थ पशुकर्म भी न करें इस आशय से भगवती वेदमाता ही अग्निहोत्र आदि पशुकर्मों का तिरस्कार, उनकी उपेक्षा करते हुए सर्वप्रथम उनमें निहित उन उन विनश्वर, अस्थिर फलों

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मा भूदित्याशयेन श्रुतिरेव भगवती अग्निहोत्रादिपशुकर्माणि तिरस्कृत्य प्रथमतस्तत्तदस्थिरफलानि प्रदर्श्य च पुनरावृत्तिरहितमोक्षफलापेक्षिणः पशुकर्मभ्यो निवर्तयति—

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ।।
श्रद्धया हुतम् ।।२।।

यदेति। **यदा**=यस्मिन् काले, **हव्यवाहने**=अग्नौ, **समिद्धे**=इन्धनादिभिः प्रज्वलिते सति, **अर्चिः**=अग्नेः शिखा, **लेलायते**=चलति, **तदा हि**=तस्मिन् काले, **आज्यभागौ**= आज्याभागयोरन्तरेण, मध्ये, **आहुतीः प्रतिपादयेत्**=प्रतिक्षिपेत्। तदेतत् **श्रद्धया हुतं** भवतीत्यर्थः ।।२।।

का प्रतिपादन करते हुई, उन मुमुक्षु जनों को पशुकर्म न करने के लिए प्रेरणा दे रही है, जो जन्म-मरण-चक्र की बार बार आवृत्ति जिसमें न हों, उस लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप केवल मोक्षफल की आकांक्षा करते हैं—

मन्त्रार्थ— जिस समय अग्नि इन्धन आदि सामग्री से अच्छी तरह प्रज्ज्वलित हो और उसकी ज्वाला धधक उठे, उस समय यजमान को पूर्वाभिमुख बैठकर आहवनीय अग्नि के दक्षिण की ओर 'अग्नये स्वाहा' इस स्वाहाकार से दर्शेष्टि का और उस अग्नि के उत्तर की ओर 'सोमाय स्वाहा' इस स्वाहाकार से पूर्णमासेष्टि का सम्पादन करे । उसके अतिरिक्त अन्य यागों में उन दोनों आज्यभागों के बीच मध्य आवापस्थान में सायं-प्रातः प्रतिदिन आज्याहुतियों को समर्पित करते हुए अग्निहोत्र सम्पादन करे, यही श्रद्धापूर्वक हवन है[1] ।।२।।

व्याख्या– **यदेति** । **यदा** = जिस समय **हव्यवाहने** = 'हव्यवाह' नामक अग्नि के, **समिद्धे** = इन्धनसामग्रीद्वारा प्रज्वलित होनेपर, **अर्चिः** = आग भी लपट, लेलायते = धधक

---

१. इसका सुस्पष्ट अर्थ **शांकर भाष्य** और **आनन्दगिरि** की व्याख्या द्वारा जाना जा सकता है, जिसके आधार पर मन्त्रार्थ दिया गया है । **'आज्यभागावन्तरेण'** इसकी व्याख्या करते हुए आनन्दगिरि कहते हैं— **''आहवनीयस्य दक्षिणोत्तरपार्श्वयोराज्यभागाविज्येते 'अग्नये स्वाहा', सोमाय स्वाहा' इति दर्शपूर्णमासे । तयोर्मध्येऽन्ये यागा अनुष्ठीयन्ते । तन्मध्यम् आवापस्थानमुच्यते ।''** मन्त्र के **'आहुतीः प्रतिपादयेत्'** इस अंश में 'आहुति' शब्द के द्वितीया बहुवचन का प्रयोग किया गया है, इसका स्पष्टीकरण आचार्य **शंकर** ने इस प्रकार किया है— **''अनेकाहप्रयोगापेक्षया 'आहुतीरि'ति बहुवचनम्''** । इसको आनन्दगिरि इस प्रकार और स्पष्ट कर रहे हैं— **''अग्निहोत्राहुत्योर्द्वित्वं प्रसिद्धम् । 'सूर्याय स्वाहा', 'प्रजापतये स्वाहे'ति प्रातः, 'अग्नये स्वाहा' प्रजापतये स्वाहे'ति सायम्, तत्कथमग्निहोत्रं प्रक्रम्या'ऽऽहुतीरि'ति बहुवचनम् ? तत्राऽऽह– 'अनेकाहे'ति । अनेकेष्वहस्सु प्रयोगानुष्ठानानि, तदपेक्षयेत्यर्थः ।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पशुकर्मणः फलम्

यस्याऽग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास-
मचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च ।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुत-
मासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ।।३।।

यस्येति । **यस्याऽग्निहोत्रिणः अग्निहोत्रम**ग्निहोत्राख्यं कर्म । **अदर्शम्**=दर्शाख्यकर्मरहितम्, **अपौर्णमासम्**=पौर्णमासाख्येष्टिरहितम्, **अचातुर्मास्यम्**=चातुर्मास्यकर्मणा विरहितम्, **अनाग्रयणम्**=शरत्कालकर्तव्यताकाऽग्रायणाख्येनेष्टिविशेषेण वर्जितम्, **अतिथिवर्जितं च**=अतिथिसत्कारवर्जितम्, **अहुतम्**=होमरहितम्, **अवैश्वदेवम्**=वैश्वदेवकर्मवर्जितम्, **अविधिना हुतम्**=यथाशास्त्रमननुष्ठितम्, अनुष्ठितमप्यग्निहोत्रादिकर्म, **तस्य**=अग्निहोत्रिणः फलभूतान्, **आसप्तमान्**=सत्याख्यसप्तमलोकपर्यन्तान्, **लोकान्**=भूरादीन्, **हिनस्ति**= नाशयति । यद्यपि दर्शपूर्णमासादिकमग्निहोत्राङ्गं न भवति, तथाऽप्यग्निहोत्रे **अदर्शमित्यादि**- विशेषणं

उठे, तदा हि = उस समय, **आज्यभागौ अन्तरेण** = दो आज्य भागों के मध्य में, आहुतीः = आज्याहुतियों को **प्रतिपादयेत्** = डालना चाहिए। **श्रद्धया हुतम्** = यही श्रद्धापूर्वक हवन होगा । ।।२।।

पशुकर्म का फल

***मन्त्रार्थ*– जिस अग्निहोत्री का अग्निहोत्रानुष्ठान, दर्शेष्टि, पौर्णमासेष्टि, चातुर्मास्येष्टि और अग्रायणेष्टि से रहित होता है, अर्थात् जो अग्निहोत्री दर्शेष्टि आदि इष्टिसम्पादन नहीं करता, जो अतिथिसत्कार, हवन और वैश्वदेव का सम्पादन नहीं करता अथवा जो शास्त्रोक्त विधियों का उल्लघंन करते हुए इन इष्टियों का सम्पादन करता हैं, उस अग्निहोत्री को सातवें लोक तक कोई भी लोक प्राप्त नहीं होता ।।३।।**

व्याख्या— **यस्य** = जिस अग्निहोत्री का, **अग्निहोत्रम्** = अग्निहोत्र नामक अनुष्ठान, **अदर्शम्** = दर्शेष्टि से रहित, **अपौर्णमासम्** = पूर्णमासष्टि से शून्य, **अचातुर्मास्यम्** = चातुर्मास्येष्टि से विरहित, **अनाग्रयणम्** = शरद् ऋतु में सम्पादित किये जानेवाले अग्रायण इष्टि से शून्य, **अतिथिवर्जितम्** = अतिथिसत्कार से रहित, **अहुतम्** = हवन से रहित, **अवैश्वदेवम्** = वैश्वदेव से रहित, **अविधिना हुतं च** = और शास्त्रोक्त विधि का उल्लंघन कर सम्पादित रहता है; (तत् = वह अग्निहोत्रानुष्ठान) **तस्य** = उस अग्निहोत्री के, **आसप्तमान् लोकान्** = सत्य नामक सातवें लोक तक का, **हिनस्ति** = विनाश होता है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नित्यनैमित्तिकं यावत्कर्मानुष्ठेयमित्यत्र तात्पर्यप्रकाशार्थम् । तथा चाऽग्निहोत्रादि-सकलकर्मणां यथाशास्त्रमनुष्ठाने तत्तत्कर्मानुगुण्येन प्राप्या ये भूरादयः सत्यान्ता लोकास्ते यथाशास्त्रं यावत्कर्माननुष्ठानेन प्राप्यन्ते कर्त्रा इत्यर्थः ।।३।।

अग्निजिह्वाः

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ।।४।।

कालीति— देवीति पदं विश्वरुच्या विशेषणम् । तथा च मन्त्रोक्तप्रकारेण काल्यादिभेदाद् अग्नेः सप्त जिह्वा इत्यर्थः ।।४।।

यद्यपि दर्श-पूर्णमास आदि इष्टियां अग्निहोत्रानुष्ठान के अङ्ग नहीं है, तथापि अग्निहोत्र के 'अदर्शम्' इत्यादि विशेषणों का प्रयोग यह सूचित करता है कि अग्निहोत्री को नित्य-नैमित्तिक रूप में जब तक उसे अग्निहोत्र का सम्पादन करना है, तब तक उनका आजीवन अनुष्ठान करना चाहिए इस तात्पर्य को प्रकाशित करने के लिए किया गया है । निष्कर्ष यह है कि अग्निहोत्र आदि के सम्पूर्ण कर्मों का शास्त्रोक्त विधि से अनुष्ठान न करने पर उन उन कर्मों के अनुकूल जो भूर्लोक से लेकर सत्यलोक तक (भूर्लोक, भुवर्लोक, सुवर्लोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक) जो सात लोक प्राप्त होते हैं, वे उस कर्ता को शास्त्रोक्त विधि का उल्लंघन करने पर अथवा उनका अनुष्ठान न करने पर प्राप्त नहीं होते ।।३।।

मन्त्रार्थ– अग्नि की सात प्रकार की लपटें होती है, जो जीभ की तरह लपलपाती हैं । वे इस प्रकार हैं– १. काली = काले रंग की, २. कराली = भयङ्कर, डरावनी, ३. मनोजवा = मन के समान तीव्र गति सम्पन्न, ४. सुलोहिता = गाढ़े लाल रङ्गवर्णा, ५. सुधूम्रवर्णा = गाढे धूमिल कान्ति की, ६. स्फुलिङ्गिनी = चिनगारियोंवाली और ७. देवी विश्वरुची = विश्व की नानाविध कान्तियों से सम्पन्न प्रकाशमान अग्नि की उक्त सात लपटें इन्हीं सात नामों से प्रसिद्ध हैं और जीभ की तरह लपलपाती हैं । उक्त निर्वचन के अनुसार उनके सभी नाम सार्थक हैं ।।४।।

भाष्यार्थ— कालीति । 'देवी' पद 'विश्वरूपी' नामक अग्नि की सातवी जिह्वा (ज्वाला) का विशेषण है । इस प्रकार मन्त्र में वर्णित रीति से 'काली' आदि नामभेद से अग्नि की सात जिह्वाएं होती हैं यही इसका तात्पर्य है ।।४।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पशुकर्मफलं ब्रह्मलोकप्राप्तिः

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकालं चाऽऽहुतयो ह्याददायन् ।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ।।५।।

एतेष्विति । एतेषु **भ्राजमानेषु**=दीप्यमानेषु जिह्वाभेदेषु, **यथाकालं**=यस्य कर्मणः यस्मिन् कालेऽनुष्ठानं तत्कालम्, विहितकालानतिक्रमेणेत्यर्थः । **आददायन्**=होमद्रव्यं गृह्णन् । **यः** अग्निहोत्रादि कर्म **चरते**; अधिवसतीत्यधिवासः, यस्मिन् सत्यलोके **देवानां** पतिरेकश्चतुर्मुख आस्ते, **तत्र (एताः)** आहुतयः **सूर्यस्य रश्मयो** भूत्वा **तं** यजमानं **नयन्ति**=प्रापयन्तीत्यर्थः ।।५।।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ।।६।।

पशुकर्म का फल

मन्त्रार्थ– **प्रकाशमान इन पूर्वोक्त अग्नि की ज्वालामयी विविध जिह्वाओं में यथासमय होम द्रव्य को लेकर जो यजमान अग्निहोत्रानुष्ठान सम्पन्न करता है, जिस सत्यलोक में देवताओं के स्वामी चतुर्मुख निवास करते हैं, वे आहुतियां सूर्य की किरणे बनकर उस यजमान को उस सत्यलोक में पहुंचाती हैं ।।५।।**

भाष्यार्थ— भ्राजमानेषु एतेषु = प्रकाशमान पूर्वोक्त अग्नि की विविध ज्वालामयी जिह्वाओं में, **यथाकालम्** = जिस कर्म के जिस समय अनुष्ठान का विधान है, उस समय का अतिक्रमण न करते हुए; **आददायन्** = होमद्रव्य को लेकर, **यः** = जो यजमान, **चरते** = अग्निहोत्रादि का सम्पादन करता है; **यत्र** = जिस सत्यलोक में, **देवानां पतिः** = देवताओं के स्वामी, **एकः** = अकेले चतुर्मुख ही, **अधिवासः** = अधिवसती-त्यधिवासः = निवास करते हैं, **(तत्र** = उस सत्यलोक में, **एताः** = वे**) आहुतयः** = यजमान द्वारा समर्पित आहुतियाँ, **सूर्यस्य** = सूर्य की, **रश्मयः** = किरणें, **(भूत्वा** = बनकर**)**, **तम्** = उस यजमान को, **नयन्ति** = पहुंचाती हैं ।।५।।

मन्त्रार्थ– **'आओ आओ' इस प्रकार आवाहन करने वाली, सूर्य की किरणों के साथ सम्मिलित होने से कान्तिसम्पन्न आहुतियां सत्कारपूर्वक यजमान से मधुर**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एह्येहीति। **एहि एहीत्याह्वयन्त्यः** सूर्यस्य रश्मिभिर्मिलिताः, अत एव **सुवर्चसः**= सुदीप्ता **आहुतयः**, **तं यजमानमर्चयन्त्यः प्रियामिष्टां वाचमभिवदन्त्यः**। '**एष वः**=युष्माकम्, **पुण्यः**=पावनः, **सुकृतः**=सुकृतसाध्यः, **ब्रह्मलोकः**=फलरूपश्चतुर्मुखलोक' इति हितवचनम् **अभिवदन्त्यः** उच्चारयन्त्यः सत्यः, **वहन्ति**=ब्रह्मलोकं प्रापयन्तीत्यर्थः ॥६॥

पशुकर्म-निन्दा

भूरादयस्त्रयो लोकाः सपातालाः सहार्णवाः ।
ब्रह्मणो दिनपर्यन्ते संह्रियन्ते पुनः पुनः ॥
अहरादौ च सृज्यन्ते यथापूर्वं मुहुर्मुहुः ।
जनलोकादयः सर्वे लीयन्ते ब्रह्मणः क्षये ॥

इति **शिवतत्त्वरत्नाकरोक्तप्रकारेण** अग्निहोत्रादिकर्मसाध्यब्रह्मलोकपर्यन्तानामपि लोकानां क्षयिष्णुत्वात् तत्साधककर्माणि निन्द्यन्ते **प्लवा ह्येते अदृढा** इत्यादिना—

वाणी में कहती हैं– 'यह पवित्र सुकृतों के फलस्वरूप प्राप्त ब्रह्मदेव का ब्रह्मलोक हैं और उसे ब्रह्मलोक ले जाती हैं ॥६॥

भाष्यार्थ— **एहीति**। **एहि एहि** = आओ आओ इस प्रकार आवाहनपूर्वक **सूर्यस्य रश्मिभिः** = सूर्य की किरणों के साथ मिली हुई, **सुवर्चसः** = दीप्तिसम्पन्न, **आहुतयः** = आहुतियां, **तं यजमानम्** = उस यजमान का, **अर्चयन्त्यः** = पूजा-साकार करती हुई, **प्रियाम्** = अभीष्ट, **वाचम्** = वाणी का, **अभिवदन्त्यः** = उच्चारण करती हुई, **वहन्ति** = ब्रह्मलोक पहुंचाती हैं। वे क्या कहती हैं ? '**एष वः सुकृतः ब्रह्मलोकः**' = 'यह आपके द्वारा अर्पित यज्ञानुष्ठानफलस्वरूप परम पावन ब्रह्मलोक है' ॥६॥

पशुकर्म की निन्दा

शिवतत्त्वरत्नाकर में **भूरादयस्त्रयो लोकाः** इत्यादि दो श्लोकों में यह प्रतिपादित है कि भूः आदि (भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक नाम से प्रसिद्ध) तीन लोक पाताल और समुद्रों के साथ ब्रह्मदेव का दिन ढलते ढलते बार बार उपसंहृत (विलीन) होते हैं और दिन के प्रारम्भ में वारंवार पूर्व के समान उनकी रचना, उनका प्रादुर्भाव होता है। इसी प्रकार जनलोक आदि (महलोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक) सभी ब्रह्मदेव के तिरोधान के साथ ही विलीन होते हैं। इस प्रकार यतः अग्निहोत्र आदि कर्मानुष्ठान द्वारा प्राप्त होने वाले ब्रह्मलोक तक के सभी लोक विनश्वर हैं, अतः उनके साधक कर्मों की निन्दा **प्लवा ह्येते अदृढा** इत्यादि अग्रिम मन्त्र से की गयी है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतत् श्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवाऽपि यन्ति ।।७।।

अष्टादशोक्तम्=षोडशऋत्विक्-पत्नीयजमान-रूपाऽष्टादशकर्त्राश्रितत्वेनोक्तम्, **अवरम्**=पाशाश्रयत्वादश्रेष्ठम् । **कर्म**=पशुकर्मेत्यर्थः । **येषु**=यजमानेषु वर्तते, **एते यज्ञरूपाः**=यज्ञप्रधानाः पुरुषाः, **अदृढाः**=जीर्णाः, **प्लवाः**=अल्पनौका इव, **उडुपं तु प्लवः कोल** इत्यमरोक्तेः, भवाब्धिसन्तरणासमर्थाः । **एतत्**=पशुकर्म, **श्रेयः**=श्रेयस्करम्, **ये अभिनन्दन्ति**=तुष्यन्ति, **ते मूढाः**=अविवेकिनः । इदमत्र तेषां मौढ्यम्— **अमृतस्य देवधारणो भूयासम्, सर्वं लिङ्गं स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम्, ॐ नमो ब्रह्मणे, धारणं मेऽस्त्वनिराकरणं धारयिता भूयासम्, मोक्षार्थिनां मुक्तिहेतुर्लिङ्गधारणमीर्यते**— इत्यादिपरश्शतश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादिवाक्यैर्भस्मधारण-रुद्राक्षधारण- पञ्चाक्षरीमहामनुजप-

---

मन्त्रार्थ– **सोलह ऋत्विक्, यजमानपत्नी और यजमान द्वारा सम्पादनयोग्य अथवा अष्टादश विद्याओं द्वारा प्रतिपादित निकृष्ट पशुकर्म जिन यजमानों में रहता है, वे यज्ञकर्म को प्रधान माननेवाले जीव उन कमजोर छोटी सी नौकाओं के समान हैं, जो संसारसागर को पार करने में असमर्थ हैं । इस पशुकर्म को श्रेयस्कर समझकर उनकी जो प्रशंसा करते हैं, वे अज्ञानी विवेकशून्य जीव बार बार जरता (बुढ़ापा) और मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।।७।।**

भाष्यार्थ— **प्लवा इति । अष्टादशोक्तम्** = सोलह ऋत्विज और सपत्नीक यजमान इन अठारह यज्ञ सम्पादनकर्ताओं के द्वारा सम्पादनयोग्य, **अवरम्** = आणव, कार्मिक और मायीम, त्रिविध मल (अज्ञान) स्वरूप पाश का आश्रय लेने के कारण निकृष्ट, **कर्म** = पशुकर्म, **येषु** = जिन यजमानों पर होता है, **एते** = वे, **यज्ञरूपाः** = यज्ञ को प्रधान मानने वाले, **अदृढा** = कमजोर, **प्लवाः** = छोटी सी नौकाओं के समान होते हैं । **उडुपं तु प्लवः कोलः** इस अमरकोश के वचनानुसार स्वल्प नाव के तीन पर्याय हैं — उडुप (न.), प्लव और कौल (पुं) । अर्थात् वे संसारसागर को पार करने में असमर्थ होते हैं । **एतत्** = इस पशुकर्म को, **ये** = जो लोग, **श्रेयः** = श्रेयस्कर, कल्याणकारी, अभिमन्यन्ति = मानते हैं और संतुष्ट होते हैं, **ते** = वे, मूढाः = अविवेकी होते हैं । उनकी मूढता (अज्ञान) यही है कि **'अमृतस्य देवधारणो भूयासम्', सर्वलिङ्गं स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम्', ॐ नमो ब्रह्मणे, धारणं मेऽस्त्वनिराकरणम्, धारयिता भूयासम्, मोक्षार्थिनां मुक्तिहेतुर्लिङ्गधारणमीर्यते'** इत्यादि सैकड़ों श्रुति (वेद), स्मृति, इतिहास-पुराण के वाक्य

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

हरगुरुचरचरणार्चन-तदर्पितग्रहणेष्टलिङ्गध्यानधारणादिपतिकर्मणां पुनरावृत्तिरहितमोक्षफल-विधायकत्वेऽप्यनवगतपतिकर्मतत्त्वलेशा बह्वायाससाध्यास्थिरस्वर्गादिफलकपशुकर्मणामेव श्रेयस्करत्वमित्यभिमन्यन्तीति । अतस्ते **जरां मृत्युं च पुनरेव** भूयो भूय एव । **अपियन्ति** = प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तदुक्तं **रेणुकभगवत्पादाचार्यैरपि**—

चोदिताः परमेशेन स्वस्वकर्मानुसारतः ।
स्वर्गं वा नरकं वाऽपि प्राणिनो यान्ति कर्मिणः ।।

पुनः कर्मविशेषेण जायन्ते गर्भकोटरात् ।
जाता मृताः पुनर्जाताः पुनर्मरणभाजिनः ।
भ्रमन्ति घोरसंसारे विश्रान्तिकथया विना ।। इति।

(सि. शि. १८.१५-१६)

यद्वा अष्टादशपदेनाऽष्टादशविद्याश्रयो वेदो लक्ष्यते । अष्टादशविद्याश्चोक्ताः **शैवे वायवीयसंहितायाम्**—

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।।

यद्यपि भस्मधारण, रुद्राक्षधारण, पञ्चाक्षरी महामन्त्र जप, शिव, गुरु और जंगमयोगी के चरणों की पूजा, उनको समर्पित तीर्थ (पादोदक) और प्रसाद का ग्रहण, इष्टलिंग का ध्यान और धारण आदि पतिकर्म उस मोक्षफल का विधान करते हैं, जो जन्म-मरण चक्र की पुनरावृत्ति से रहित हैं, तथापि वे पतिकर्म के दार्शनिक तत्त्व को जरा भी न समझकर, उस पशुकर्म को श्रेयस्कर समझते हैं, जो अत्यन्त परिश्रमसाध्य हैं और अस्थिर स्वर्ग आदि फल प्रदान करते हैं। अतः **ते** = वे, **जरामृत्युम्** = बुढापा और मौत को, पुनरेव = वार वार, अपियन्ति = प्राप्त करते हैं। जैसा कि रेणुकभगवत्पादाचार्य ने भी **चोदिताः परमेशेन** इत्यादि दो श्लोकों में इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

"अपने-अपने कर्मों के अनुसार परमेश्वर, परमशिव की प्रेरणा सें कर्म करनेवाले जीवात्मा स्वर्ग अथवा नरक को प्राप्त करते हैं। पुनश्च वे अपने विशिष्ट कर्म के कारण गर्भ के घोसले से उत्पन्न होते हैं, जन्म लेकर पुनः मृत्यु प्राप्त करते हैं, पुनः जन्म लेते हैं और पुनः मृत्यु के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार बिना विश्राम के वे वारंवार घोर संसार में जन्म-मरण चक्र में भ्रमण करते रहते हैं।" (सि. शि. म. १८.१५-१६)

अथवा **अष्टादशोक्तम्** इस पद में 'अष्टादश' संख्यावाचक पद के द्वारा अठारह विद्याओं का आश्रय वेद रूप अर्थ परिलक्षित होता है। वे **अठारह विद्याएं शिवपुराण**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आयुर्वेदो धनुर्वेदो ह्यथ गन्धर्ववेदकः ।
अर्थशास्त्रान्तरं तस्माद् विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ।।

अष्टादशानामेतासां विद्यानां भिन्नवर्त्मनाम् ।
आदिकर्ता कविः साक्षात् शूलपाणिरिति श्रुतिः ।।

विद्या ह्यष्टादश प्रोक्ता वैदिका रेणुकेश्वर ।
इदानीं शैवतन्त्राणां लक्षणं कथय प्रभो ! ।।

इति चोलरेणुकसंवादे चोलभूपालवाक्याच्चाऽष्टादशानां विद्यानां वैदिकत्वं सिद्धमेव । **तेनोक्तं** कथित**मवरं**=वरात् पुनरावृत्तिरहितादपवर्गसाधकादनवद्यात् पशुविशसनादिरहितात् पतिकर्मणो भिन्नमवरं कर्म पुनरावृत्तिसहितफलजनकमनवद्यं पशुविशसन-मांसभक्षण-सुरापानाद्यनेकदोषदुष्टं पशुकर्मेत्यर्थः । येषु यजमानेष्वनुष्ठेयत्वेन वर्तते, तदेतत्स्वानुष्ठेयमवरं कर्म वस्तुतोऽश्रेयस्करमपि, **श्रेयः** = श्रेयस्करम्, **अभिनन्दन्ति** प्रहृष्यन्ति ये, **ते** = एते **मूढाः** = भ्रान्ताः, **यज्ञरूपा** यज्ञस्येव रूपं स्वरूपमस्थैर्यमेषां ते, यज्ञो रूप्यते = निरूप्यते निर्वर्त्यते यैस्ते **यज्ञरूपाः** =

की वायवीय संहिता में **अङ्गानि वेदाश्चत्वारः** इत्यादि तीन श्लोकों में इस प्रकार वर्णित हैं—(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्दशास्त्र ये छः) वेदाङ्ग, (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) ये चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र (ये चार उपवेद) इन सबको मिलाकर अठारह विद्याओं का स्मरण किया गया है । उक्त अठारह विद्याएं भिन्न-भिन्न मार्ग की हैं और उनके आदि उपदेष्टा साक्षात् भगवान् शंकर हैं इस प्रकार वेदमाता कहती है ।

विद्या ह्यष्टादश प्रोक्ता इत्यादि चोल-रेणुक-संवाद के अन्तर्गत चोलनरेश भगवत्पाद-रेणुकाचार्य से यह कहते हैं— "हे रेणुकेश्वर ! आपने वेद-प्रतिपादित अठारह विद्याओं का निरूपण किया । प्रभो ! अब आप शैवागमों का स्वरूप निरूपण करें ।" इन वाक्यों द्वारा अठारह विद्याओं का वेदप्रोक्त होना सिद्ध है । इस प्रकार **अष्टादशोक्तम्** का अर्थ होगा उक्त अष्टादश विद्याओं द्वारा विहित । **अवरम्** = वर (श्रेष्ठ) कर्म से भिन्न । पति कर्म वर (श्रेष्ठ) कर्म हैं, क्योंकि वे जन्ममरणचक्र की पुनरावृत्ति से रहित, अपवर्ग (लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप मोक्ष) के साधक, और पशुहिंसा आदि से मुक्त होते हैं । पशुकर्म इनसे भिन्न होते हैं, उनमें जन्म-मरण-चक्र की आवृत्ति वारंवार होती है, वे स्वर्ग से अस्थिर फलदायी और पशुहिंसा, मांसभक्षण आदि दोषों से ग्रस्त होते हैं । इन निकृष्ट पशुकर्मों का अनुष्ठान जो यजमान करते हैं, यद्यपि वे कल्याणकारी नहीं होते, तथापि जो उन्हें अनुष्ठान योग्य और कल्याणकारी समझकर आनन्दित होते हैं (**अभिनन्दन्ति** पाठ को मानकर = उनकी प्रशंसा करते हैं) एते मूढाः = वे भ्रान्त हैं, **यज्ञरूपाः** = यज्ञस्येव रूपं स्वरूपमेषां ते) जिस प्रकार यज्ञ का स्वरूप अस्थिर रहता है, उसी प्रकार उनका स्वरूप

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यज्ञनिर्वर्तका इति वार्थः । **अदृढाश्च**पलाः, **प्लवाः** = वानरा इव, **उडुपे वानरे भेके प्लुते कारण्डवे प्लव** इति निघण्टुपाठात् चपलचित्ताः, शिवलिङ्गध्यानधारणादिराहित्यात् । **अशान्ताः** = पशुकर्मिणः । **जरां मृत्युं च पुनरेवापि** भूयो भूय **एवापियन्ति** = प्राप्नुवन्ति हि ।

यथा चपलचित्ता कपयः कञ्चित्कालं फलपुष्पमाधुर्यमकरन्दादिरमणीयवृक्षविशेषमारुह्य तत्रत्यफलादीनुपभुज्य स्वकर्मवशात् परित्यक्तवृक्षविशेषा अधोऽवतीर्य सञ्चरन्तः कालक्रमेण जरामनन्तरं मरणं च प्राप्नुवन्ति, तथैवैते कर्मिणः स्वकर्मानुगुण्येन स्वर्गादि-चतुर्मुखलोकपर्यन्तमपि लोकमारुह्य तत्रत्य-रमणीय-रमणीमण्यादीनपि विषयानुपभुज्य क्षीणे स्वपुण्ये मर्त्यलोकमवतीर्य संसरन्तो जरां मरणं च प्राप्नुवन्तीति भावः ॥७॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढाः
अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥८॥

भी अस्थिर रहता है । अथवा यज्ञो रूप्यते निरूप्यते निर्वर्त्यते यैस्ते यज्ञरूपाः जो यज्ञ का संपादन करते हैं वे; **अदृढाः** = अस्थिर चंचल, **प्लवाः** = वानरों के समान होते हैं । **उडुपे वानरे भेके प्लुते कारण्डवे प्लवः** इस निघण्टुपाठ के अनुसार 'प्लव' के अनेक अर्थों में उसका एक अर्थ वानर भी है । (ऐसे पशुकर्म के अनुष्ठानकर्ता जीव शिवलिङ्ग का ध्यान और धारण न करने के कारण वानरों के संमान अत्यन्त चञ्चलचित्त और अशान्त होते हैं और वृद्धावस्था और मृत्यु का वारंवार वरण करते हैं ।

जिस प्रकार चञ्चल चित्त के वानर कुछ समय तक फल, पुष्प और मकरन्द (पुष्परस) की मधुरिमा से आकर्षक किसी वृक्ष पर चढकर और वहां के फल आदि का उपभोग कर अपने कर्मों के अधीन होने के कारण उस वृक्ष का परित्याग करते हैं, फिर नीचे उतर कर विचरण करते हुए कालक्रम से वृद्धावस्था को और पश्चात् मृत्यु को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार पशुकर्माचरण करनेवाले जीव अपने-अपने कर्म के अनुसार स्वर्गलोक से लेकर ब्रह्मलोक तक लोकों में आरोहण कर वहां के रमणीय रमणी, रत्न आदि विषयों का उपभोग कर अपना पुण्यक्षय होने पर मृत्युलोक में अवतीर्ण होकर संसरण (विचरण) करते हुए पुनश्च वार वार वृद्धावस्था और मृत्यु का वरण करते रहते हैं ॥७॥

मन्त्रार्थः– **अविद्या (अज्ञान) क्लेश का मूल है । उसके बीच में रहनेवाले जो अविवेकी पुरुष स्वयं को बुद्धिमान् और पण्डित समझते हैं, वे वस्तुतः मूर्ख होते हैं । वे वारंवार संसार में उसी प्रकार संसरण करते हुए अत्यंत कष्ट पाते हैं, जिस प्रकार एक अन्धे द्वारा ले जाने वाले दृष्टिहीन व्यक्ति बार-बार गड्ढों और कांटो के बीच में फंसकर कष्ट पाते हैं ॥८॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अविद्यायामिति । **अविद्यायाम्**=क्लेशमूलायाम्, **अन्तरे**=मध्ये, **वर्तमानाः**= अविवेकिनः पुरुषाः, **स्वयं**=स्वयमेव, **धीराः**=धीमन्तः स्वात्मानं **पण्डितंमन्यमानाः**, वस्तुतो मूढाः । अत एव, **अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धा** गर्तकण्टकादिना पीड्यन्ते, तथा **जङ्घन्यमानाः**=भृशं हन्यमानाः पीड्यमानाः, **परियन्ति**=संसरन्तीत्यर्थः ॥८॥

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्
तेनाऽऽतुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ।।९।।

अविद्यायामिति । **अविद्यायां बहुधा** = बहुप्रकारं **वर्तमानाः**, **वयं कृतार्थाः** = वयमेव कृतकृत्या **इत्यभिमन्यन्ति बालाः** = बालिशसमाः, अज्ञानिन इत्यर्थः । **यत्** = यस्मात् कारणात्, **कर्मिणः** = पशुकर्मिणः, **रागात्** = कर्मफलेऽनुरागात्, **न प्रवेदयन्ति** = लिङ्गधारण-

---

भाष्यार्थ— **अविद्यायामिति** । **अविद्यायाम्** = परा विद्या को छोड़कर शेष अविद्या है, जो क्लेशमूलक है, उसके, **अन्तरे** = बीच में, **वर्तमानाः** = रहने वाले विवेकशून्य पुरुष, **स्वयम्** = अपने को, **धीराः** = बुद्धिमान समझते हैं और **पण्डितंमन्यमानाः** = अपने को पण्डित समझते हैं । वस्तुतः वे मूढ अर्थात् सदसद्विवेकशून्य होते हैं । अत एव वे संसार के जन्ममरण चक्र में पड़कर उसी प्रकार कष्ट पाते हैं, जिस प्रकार एक दृष्टिहीन द्वारा जिनका मार्ग प्रदर्शन किया जा रहा हो, ऐसे अन्य दृष्टिहीन जीव वारंवार गड्ढों में गिरकर और कांटों में फंसकर बार बार कष्ट पाते हैं ॥८॥

***मन्त्रार्थ*– अज्ञानी जीव बालकों के समान अबोध होते हैं । वे अनेक प्रकार से अविद्या के आवरण में रहते हैं और यह समझते हैं कि हमलोग सफल हैं । यज्ञादि पशुकर्म को अनुष्ठित करने वाले वे स्वर्गादि कर्मफल में अनुराग रखने के कारण शाश्वत सत्य को नहीं पहचानते । फलतः वे पुण्य नष्ट होने पर स्वर्गादि से गिरते हैं और मृत्युलोक में प्रवेशकर पुनः जन्म-मरण चक्र में पड़ते हैं और दुःखी होते हैं ।।९।।**

भाष्यार्थ— **अविद्यायामिति** । **अविद्यायाम्** = अविद्या का दूसरा अर्थ है अज्ञान । आणव, कार्म और मायीय त्रिविध मल अज्ञानस्वरूप हैं, जो जीव के लिए पाश हैं । उस पाश में, **बहुधा** = अनेक प्रकार से, **वर्तमानाः** = रहने वाले, **बालाः** = अज्ञानी अबोध जीव, जो बालकों के समान होते हैं, वे **वयं कृतार्थाः** = हमलोगों ने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, हमारा प्रयोजन सिद्ध है, **इति** = इस प्रकार, **अभिमन्यन्ति** = अभिमान करते हैं, समझते हैं । **यत्** = जिस कारण से, **कर्मिणः** = यज्ञादि पशुकर्म करनेवाले,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

दीक्षाविरहात् शिवत्वं शाश्वतफलप्रदं न जानन्ति । **तेन** = कारणेन, **आतुराः** = व्याकुलचित्ताः, **क्षीणलोकाः** = नष्टस्वकर्मसाध्यस्वर्गादिलोकाः, **च्यवन्ते** = भ्रष्टा भवन्तीत्यर्थः ।।९।।

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नाऽन्यत् श्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वे-
मं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।।१०।।

इष्टापूर्तमिति । इष्टापूर्तम्, **त्रिष्वथ क्रतुकर्मेष्टं पूर्तं खातादि कर्म च** इत्यमरोक्तं श्रेयस्करमिति **मन्यमानाः**, **अन्यत्**=इष्टापूर्तकर्मभिन्नम्, **वरिष्ठम्**=श्रेष्ठम्, पाशानाश्रयत्वात् हिंसादिदोषशून्यत्वात् पतिकर्म वस्तुतः श्रेयस्करमपि, **न वेदयन्ते**=न जानन्ति, ये ते

रागात् = कर्मफल में अनुराग के कारण, **न प्रवेदयन्ति** = लिङ्गधारण दीक्षा से रहित होने के कारण शाश्वत फल लिङ्गाङ्ग-सामरस्य-स्वरूप शिवभाव (मोक्ष) को नहीं समझ पाते । **तेन** = उस कारण से, आतुराः = व्याकुल-चित्त होते हैं, **क्षीणलोकाः** = स्वर्गादि से च्युत होते हैं और **च्यवन्ते** = पुनश्च मृत्युलोक में जन्म लेकर संसारचक्र में पड़ते हैं ।।९।।

***मन्त्रार्थ*– जो श्रौत और स्मार्त कर्म 'इष्ट' यज्ञ-यागादि और 'पूर्त' कूप-तडागादि निर्माण को ही प्रधान मानते हैं और उससे भिन्न कर्म को मोक्षोपयोगी नहीं समझते, वे अत्यन्त मोहग्रस्त होते हैं । वे स्वर्ग के पृष्ठभाग पर पुण्यकर्म प्राप्त लोक में सुखोपभोग करते हुए पुण्य क्षय होने पर मनुष्यलोक में मनुष्ययोनि अथवा उससे भी निकृष्ट पशु-पक्षियों की योनि प्राप्त करते हैं ।।१०।।**

भाष्यार्थ— इष्टापूर्तमिति । त्रिष्वथ क्रतुकर्मेष्टं पूर्तं खातादि कर्म च इस अमरकोष के वचनानुसार यज्ञकर्म को 'इष्ट'[1] तथा जलाशयादि निर्माण को 'पूर्त' कर्म कहते हैं । इसी को जो वरिष्ठ (कल्याणकारी) समझकर इससे भिन्न पाशमुक्त होने से हिंसादि-दोष-शून्य पतिकर्म को, जो वस्तुतः कल्याणकारी है, श्रेयस्कर नहीं समझते, वे अत्यन्त मोहग्रस्त-मोहान्ध, दृष्टिहीन होते हैं और एक बार स्वर्ग के सर्वोच्च स्थान में, जो उन्हें अपने

---

१. **इष्टलक्षणम्—** अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदाध्ययनलक्षणम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च 'इष्टमि'त्यभिधीयते ।।

अग्निहोत्र, तपश्चरण, सत्य, वेदाध्ययन, अतिथिसत्कार और वैश्वदेव को 'इष्ट' (श्रौत कर्म) कहते हैं ।

पूर्तलक्षणम्— वापी-कूप-तटाकादिदेवतायतनानि च ।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ।।

बावड़ी, कूवां, सरोवर, मन्दिर, उपवन आदि का निर्माण और अन्नदानादि स्मार्त कर्म को 'पूर्त' कहते हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रमूढाः=अतिशयेन मोहान्धाः, **नाकस्य**=स्वर्गस्य, **पृष्ठे**=ऊर्ध्वस्थाने, **सुकृते**=सुकृतकर्मसाध्ये लोके, **अनुभूत्वा**=कर्मफलमनुभूय, क्षीणे पुण्ये, **इमं लोकम्**=मर्त्यलोकम्, **हीनतरं वा**= अस्मान्मर्त्यलोकादपि हीनतरमत्यन्तजुगुप्सितं नरकादिलक्षणं वा विशन्ति ॥१०॥

पतिकर्मानुष्ठानफलम्

हिंसादिदोषमुक्तत्वाद् विशुद्धश्चित्तसाधनः ।
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः ॥
तस्मादशुद्धं स्वर्गीयमनित्यं बाह्यसाधनम् ।
यज्ञाद्यं कर्म सन्त्यज्य योगं मुक्त्यर्थमभ्यसेत् ॥
ध्यानज्ञानात्मकः सूक्ष्मः शिवयोगो महामखः ।
विशिष्टः सर्वयज्ञानामसंख्यातैर्महामखैः ॥

इति शिवधर्मोक्तप्रकारेण पशुकर्माणि सन्त्यज्य ज्ञानिभिः पतिकर्माणि मोक्षफलकान्यनुष्ठेयानीत्याशयवान् मन्त्रः प्रवर्तते—

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः ।

सुकृत (पुण्य) से प्राप्तियोग्य होता है, उसमें कर्मफल का उपभोग कर पुण्य क्षीण होने पर इस [1]मृत्युलोक में अथवा उससे निकृष्ट नरकलोक में प्रवेश करते हैं। (और मनुष्यादि योनि अथवा पशु-पक्षी आदि के योनि में जन्म लेकर वारंवार जन्म-मरण-चक्र में फंसते हैं। उन्हें मोक्षप्राप्ति नहीं होती) ॥१०॥

पतिकर्म के अनुष्ठान का फल

अवतरणभाष्य— हिंसादिदोषमुक्तत्वात् इत्यादि **शिवधर्म** के तीन श्लोकों में शिवयोग को महायज्ञ कहते हुए उसे सब यज्ञों में श्रेष्ठ कहा गया है। उनका भाव इस प्रकार है— "ध्यानयज्ञ, हिंसा आदि दोषों से मुक्त होने के कारण अन्तःकरण को निर्मल करने का उत्कृष्ट साधन और अपवर्ग (मोक्ष) को प्रदान करता है। अतः मोक्षप्राप्ति के लिए यज्ञादि पशुकर्म का परित्याग करते हुए वारंवार शिवयोग का अभ्यास करना चाहिए। ध्यानयज्ञस्वरूप शिवयोग, लिङ्गाङ्गसामरस्य अत्यन्त सूक्ष्म महायज्ञ है, जो अगणित सभी महायज्ञों में अत्यन्त श्रेष्ठ है।"

इसी रीति से अग्रिम मन्त्र भी ज्ञानियों को पशुकर्मों का परित्याग करते हुए मोक्षफलप्रदायक पतिकर्मों का अनुष्ठान करने के लिए प्रेरित कर रहा है—

---

१. क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति = पुण्य क्षय होने पर मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ।।११।।

तपःश्रद्धे इति । **तपश्च** शिवाश्रमोचितो धर्मः, न तु प्राकृतो धर्मः । शिवाश्रमोचित-धर्माश्चोक्ताः **शिवधर्मे**—

शिवार्चाऽग्निपरो नित्यं तद्भक्तानां च भोजनम् ।
परमैथुनवर्जी स्यात् श्रीमान् शिवगृहाश्रमी ।।

देवाग्न्यतिथिभैक्षार्थं पचेन्नैऽऽवात्मकारणात् ।
आत्मार्थे यः पचेदन्नं नरकार्थं स जीवति ।।

यः शिवब्रह्मचारी स्यात् स शिवार्चाग्नितत्परः ।
भवेज्जितेन्द्रियः शान्तो नैष्ठिको भौतिकोऽपि वा ।।

मन्त्रार्थ– तप (शिवाश्रम के लिए उचित धर्म) और गुरु के द्वारा उपदिष्ट मन्त्रोपासना में श्रद्धा रखने वाले शान्त प्रकृति के शिवस्वरूपवेत्ता ज्ञानी केवल भिक्षा सामग्री पर प्राणधारण करते हुए निर्जन अरण्य में वास करते हैं, वे अज्ञान के रज (धूलि) से मुक्त निर्मल होकर सूर्यमण्डल का भेदन करते हुए पुनः जन्ममरणचक्र में न पड़ने के लिए वहां प्रयाण करते हैं, जहां अविनाशी, पुरुषपदवाच्य, नित्य, ज्ञान-क्रिया आदि स्वभावशाली, अव्यय परमशिव अविनाभावसम्बन्ध से विराजमान हैं ।।११।।

भाष्यार्थ— तपःश्रद्धे इति । **तपःश्रद्धे** (तपश्च श्रद्धा च तपःश्रद्धे) = शिवाश्रम के योग्यधर्म को **तप** कहते हैं, प्राकृत धर्म को नहीं । 'शिवधर्म' के **शिवार्चाग्निपरः** इत्यादि पांच श्लोकों में शिवाश्रम के योग्य धर्मों का निरूपण किया गया है, जिनका आशय इस प्रकार है—

"शिवाश्रम में रहने वाला गृहस्थ नित्य शिवोपासना करनेवाला, अग्निकार्य में लीन, शिवभक्तों को अन्नदान करनेवाला और परस्त्रीसंग से मुक्त होता है । वह शिवोपासना, भजन और अतिथिसेवा के लिए अन्न पकाता है, अपने लिए नहीं । जो अपने लिए अन्न पकाता है, वह नरक जाने के लिए ही जीवित रहता है । शिवाश्रम में रहनेवाला ब्रह्मचारी शिवोपासक, यजनकर्ता, जितेन्द्रिय (अपने इन्द्रियों को वश में रखनेवाला) शान्तप्रकृति आजीवन ब्रह्मचर्यपालन करता है । जो सर्वसङ्गपरित्यागपूर्वक कन्दमूल- फल के द्वारा जीवनयापन करते हुए शिवोपासना आदि करता है, वह शिवाश्रम में रहनेवाला वानप्रस्थ होता है । जो सर्वसङ्गपरित्यागपूर्वक अपने इन्द्रियों को वश में रखते हुए भस्मधारण के साथ सदा-सर्वदा शिवध्यान में लीन रहता है, उसे शिवाश्रम का श्रेष्ठ संन्यासी समझना चाहिए ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

य: सर्वसङ्गनिर्मुक्तः कन्दमूलफलाशनः ।
शिववैखानसो ज्ञेयः शिवार्चादिपरो भवेत् ।।
निवृत्तः सर्वसङ्गेभ्यः शिवध्यानपरः सदा ।
ज्ञेयः शिवयतीन्द्रोऽयं भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः ।। इति।

सिद्धान्तशिखामणावप्युक्तम्—

शिवोक्तधर्मनिष्ठा तु शिवाश्रमनिषेविणाम् ।।

(सि. शि. १०.३६) इति ।

प्राकृताश्रमधर्मेण मोक्षात्मकाऽकृतकलोकप्राप्त्यसम्भवात्, तस्य ज्ञानसमुच्चितत्वाभावात्, **नास्त्यकृतः कृतेन** (१.२.१२) इति वक्ष्यमाणत्वाच्च पशुकर्मिणामत्रोक्तविरजस्त्व-विरोधात् । पतिकर्मिणां तु—

भवभक्तिपरा ये तु भवप्रवणचेतसः ।
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भागिनः ।।

सिद्धान्तशिखामणि में भी कहा है कि "शिवाश्रम के अनुयायियों को अपने आश्रम धर्म के अनुसार भस्मादिधारण, लिंगधारण और लिंगपूजनादि करना ही समुचित है" (१०.३६) । सामान्य वर्णाश्रमधर्म का पालन करने पर मोक्षस्वरूप सहज शिवलोक की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि वह कर्मप्रधान धर्म है, उसमें ज्ञान-काण्ड का समुच्चय नहीं है, **'नास्त्यकृतः कृतेन'** (१.२.१२) (नित्य शिवलोक पशुकर्म से प्राप्त नहीं हो सकता) । इस मंत्र में यह प्रतिपादित है कि पतिकर्मानुष्ठान करनेवाले दुःखादि को जन्म देने वाले अज्ञानपङ्क से रहित, निर्मल होते हैं । इस प्रकार पशुकर्म और पतिकर्म के अनुयायियों मे परस्पर विरोध है । **शिवधर्म** में भी यह सिद्ध किया गया है कि 'पतिकर्म के अनुयायी दुःख के भागी नहीं होते ।' उसके अनुसार "जो जीव शिव की भक्ति में तत्पर और शिव के प्रति अत्यंत आसक्त होते हैं और जो सदा शिवस्मरण करते हैं वे दुःख नहीं पाते ।" गुरुद्वारा प्राप्त पञ्चाक्षर मंत्र के परमार्थ (परम शिव) की उपासना में विश्वास रखना ही 'श्रद्धा' है । जो शिवाश्रम धर्म का पालन करते हैं और गुरूपदिष्ट मन्त्र में श्रद्धा रखते हैं । **भैक्षचर्यां चरन्तः** = जो भिक्षा मांगकर उस अन्न से जीवन यापन करते हैं, अमर कोष के अनुसार भिक्षासामग्री को **'भैक्ष'** कहते हैं— **भैक्षं भिक्षाकदम्बकम्** और **शान्ता विद्वांसः** = शान्त प्रकृति के परिग्रहशील आश्रम-धर्म का पालन करनेवाले शिवस्वरूपवेत्ता ज्ञानी, **अरण्ये** = निर्जन प्रदेश जंगल में रहते हैं, **ते** वे वीरशैवधर्म का पालनकरने वाले जीव, **विरेजाः** = पङ्कमुक्त, सुख-दुःखादि के- जन्मदाता मोक्ष के प्रतिबन्धक अधर्म आदि के साधनस्वरूप त्रिविध मल से अलग रहते हैं । ऐसे जीव, **सूर्यद्वारेण** = सूर्य-मण्डल के

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति **शिवधर्मोक्ते**र्विरजस्त्वसत्त्वात् । **श्रद्धा च** = गुरूपदिष्टमन्त्रार्थोपासनायां विश्वासः । ते **ये शान्ताः** = शान्तियुक्ताः, **भैक्षचर्याम्** = भैक्षेण भिक्षाणां समूहेनाऽशनेन, **भैक्षं भिक्षाकदम्बकम्** इत्यमरः, **चर्याम्** = वृत्तिं प्राणधारणम्, **चरन्तः** = कुर्वन्तः, परिग्रहयुक्ताश्रमिणश्च । **विद्वांसः** = शिवस्वरूपज्ञानिनः, **अरण्ये** = विविक्तदेशे वर्तमानाः, **उपवसन्ति** = सेवन्ते, **ते** = पुरुषाः, **विरजाः** = व्यपगतरजसः, दुःखाद्युत्पादकमोक्षप्रतिबन्धकाऽधर्मादिसाधनमलाऽसम्बद्धाः सन्तः, **सूर्यद्वारेण** = सूर्यमण्डलभेदनद्वारा, **प्रयान्ति** = प्रकर्षेण पुनरावृत्तिराहित्येन यान्ति गच्छन्ति । तदुक्तं **वातुलागमे**—

लिङ्गाङ्गसङ्गं कुर्वन्तं दृष्ट्वा द्विजवरं रविः ।
स्थानाच्चलत्ययं भित्वा मण्डलं मे व्रजेच्छिवम् ।। इति।

कुत्रेत्यत आह— **यत्रेति** । **यत्र** = चिच्छक्त्यपरपर्यायपराहन्तामयदिव्यतेजोमण्डलमध्यात्मके लोके, **अमृतः** = अविनाशी शिवः । अमृतत्वं च नान्येषां देवानाम्, **जातस्य**

भेदनद्वारा, (**तत्र** = वहां), **प्रयान्ति** = प्रयाण करते हैं, जहां जन्म-मृत्युचक्र का वारंवार चक्कर न हो । जैसा कि '**वातुलागम**' के '**लिङ्गाङ्गसङ्गं कुर्वन्तम्**' इत्यादि पद्य में यह प्रतिपादन किया है कि "सूर्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को लिङ्गाङ्गसामरस्य करते हुए देखकर अपने स्थान में चालित होता है और वह ब्राह्मण सूर्यमण्डल का भेदन कर शिव के पास पहुंचता है ।" वह शिवलोक कहां है? इस जिज्ञासा का समाधान इस मंत्र के चतुर्थ चरण में है । **यत्र** = जहाँ, चिच्छक्ति के नाम से ज्ञात पराहन्तास्वरूप दिव्य तेजोमण्डल के मध्य विराजमान शिव-लोक में, **अमृतः** = जन्ममरणरहित, अविनाशी परम शिव । अमृतत्व अथवा अमरता केवल परम शिव में ही विद्यमान है, वह अन्य देवों में सम्भव नहीं है । यतः **जातस्य मरणं ध्रुवम्** (जो जन्मशील है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है) यह सिद्धान्त देवताओं पर भी लागू है, क्योंकि ब्रह्मदेव, विष्णु आदि देवताओं का जन्म पूर्वप्रतिपादित है । उनकी मृत्यु भी उतनी ही प्रसिद्ध है । श्रुतियों में परशिव को 'अमृत' कहा गया है । जैसे **कठवल्ली उपनिषद्** में **तदेव शुक्लं तद् ब्रह्म तदेवाऽमृतमुच्यते** उसी परम शिव को सत्त्वमय होने के कारण 'शुक्ल' अर्थात् अत्यन्त शुभ्र, विस्तारशील और विशाल होने के कारण 'ब्रह्म' और जन्म-मृत्युरहित होने के कारण 'अमृत' कहते हैं । '**श्वेताश्वतर उपनिषद्**' में भी इसका इस प्रकार प्रतिपादन है— "जो वेदों में अत्यन्त गूढ उपनिषदों में वास करता है, केवल चतुर्मुख ब्रह्मदेव ही ब्रह्माण्ड के कारणस्वरूप उसे जानते हैं । जिन पूर्ववर्ती इन्द्रादि देवताओं और क्रान्तदर्शी वामदेव आदि महर्षियों ने उस परमशिवस्वरूप क़ा साक्षात्कार किया, वे ब्रह्मस्वरूप और 'अमृत' (मृत्युधर्म से रहित) हो गए । (५.६) । '**कैवल्योपनिषद्**' का भी इस विषय में प्रमाण वचन है— **शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्** (परम शिव शमगुणप्रधान, मृत्युधर्म से रहित और ब्रह्म के मूल

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मरणं ध्रुवम् इत्यनेन ब्रह्मविष्णवादिदेवानां जातत्वस्य पूर्वमुक्तत्वात्, मृतत्वस्याऽपि तेषां प्रसिद्धेः, परशिवस्य त्वमृतशब्दवाच्यत्वस्य श्रुतिप्रसिद्धत्वात्। कठवल्ल्युपनिषदि—

तदेव शुक्लं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।

श्वेताश्वतरोपनिषदि—

यद्वेद गुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्म वेद ते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तं विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ।।

कैवल्योपनिषदि—

"शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्" इति।

पुरुषः = पुरुषपदवाच्यः,

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।।(३.१.३)

इति वक्ष्यमाणवाक्यात्,

तमीशानं पुरुषं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ।

इत्यथर्वशिरःश्रुतेः, **तत्पुरुषाय विद्महे** इति तैत्तिरीयश्रुतेश्च। अव्ययात्मा नित्यज्ञानक्रियादिस्वभावः सः, **यया तदक्षरमधिगम्यते** इत्यत्रोक्तेः, अक्षरशब्दनिर्दिष्टः परशिवः, **अस्ति** = अविनाभावेन वर्तते तत्रेत्यर्थः ।

हैं।) उसी लोक में, **पुरुषः** = पुरुष पद से संकेतित, जैसा कि इसी उपनिषद् में **यदा पश्यः पश्यते** (३.१.३) इत्यादि मन्त्र में यह प्रतिपादन किया है कि "जिस समय परा विद्या से प्राप्त होनेवाले ज्ञान का अधिकारी जीव सुवर्णकान्ति, सृष्टि-स्थिति-संहार-बन्ध-मोक्षादिपञ्चकृत्यकारी चराचरजगन्नियन्ता परमेश्वर, चतुर्मुख आदि पञ्चकार्य ब्रह्मजनक पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण परम शिव का साक्षात्कार करता है; उस समय वह परमतत्त्ववेत्ता अत्यन्त निर्मल होकर पुण्य और पाप दोनों से मुक्त होते हुए शिवस्वरूप हो जाता है (३.१.३)। इसी प्रकार अन्य श्रुतिवचनों में भी परम शिव को **पुरुष** कहा गया है। जैसे— अथर्वशिरःश्रुति–**तमीशानं पुरुषं देवमीड्यम्** । तैत्तिरीयश्रुति— **तत्पुरुषाय विद्महे** इत्यादि। **अव्ययात्मा** = नित्यज्ञान क्रिया आदि स्वभावशाली 'अक्षर' शब्द से संकेतित परम शिव अविनाभाव सम्बन्ध से रहता है, जैसा कि इसी उपनिषद् में पूर्व-प्रतिपादित है— **यया तदक्षरमभिधीयते** (१.१.५)। जहां अमृत-पुरुष अव्ययात्मा परमशिव वास करते हैं, उस पद (स्थान) को रेणुकभगवत्पादाचार्य **'तुर्यातीत'** कहते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तुर्यातीतपदं यत्तत्परं वाङ्मनसाध्वनः ।
अनुप्रविश्य तद्योगी न भूयो विश्वमीक्षते ।।

(सि. सि. २०.२६)

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेरत्राऽमृतपुरुषाव्ययात्मत्वधर्मेभ्यो यत्रेति यत्पदनिर्दिष्ट-स्थलस्य परशिवाऽविनाभूतस्य मोक्षरूपस्वशक्तिपरकत्वेन व्याख्यातुं शक्यत्वेऽपि तस्य हिरण्यगर्भस्थानपरकत्वेन व्याख्यानम्, अव्ययामृतपदसमभिव्याहृतपुरुषपदस्य हिरण्यगर्भपरत्वेन व्याख्यानं च केषाञ्चिदसमञ्जसम्, **एष वः सुकृतो ब्रह्मलोक** इत्यनेन पूर्वमेव तस्य प्राप्तत्वात्। स्वर्गादिचतुर्मुखलोकप्राप्त्यादिपशुकर्मफलं तु पूर्वमेवोक्तम्। **तपःश्रद्धे** इत्यादिना

तुर्यातीतपदं यत् तत् परं वाङ्मनसाध्वनः ।
अनुप्रविश्य तद् योगी न भूयो विश्वमीक्षते ।।

(सि. शि. २०.२६)

अर्थात् जो वह तुर्यातीत पद है मौनान्त मुद्रा से सुलभ स्थान है । न वाणी ही उसकी स्तुति कर सकती है और न मन ही उसका ध्यान कर सकता है । जो शिवयोगी उस तुर्यातीत पद में प्रवेश करता है, वह पुनश्च जन्म-मरण-चक्रस्वरूप इस चराचर जगत् को नहीं देखता । अत एव वह वहां अविनाभाव-सम्बन्ध से रहता है । प्रस्तुत मन्त्र में परशिव के तीन विशेषण हैं— **अमृतः पुरुषोऽव्ययात्मा** । इन धर्मों से युक्त परम शिव का 'तुर्यातीत पद' से अविनाभाव सम्बन्ध है, जिसका निर्देश '**यत्र**' द्वारा किया गया है । वह स्थान मोक्ष ही है, जो परम शिव की अपनी शक्ति है और यही व्याख्या समुचित है ।

[आचार्य **शंकर** इस मन्त्र के चतुर्थ चरण की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **यत्र यस्मिन् सत्यलोकादौ अमृतः स पुरुषः प्रथमजो हिरण्यगर्भो हि अव्ययात्माऽव्ययस्वभावो यावत् संसारस्थायी** । जिस सत्यलोक आदि में अमृत और अव्ययात्मा सर्वप्रथम उत्पन्न पुरुष हिरण्यगर्भ तबतक रहते हैं, जबतक संसार स्थायी रूप से रहता है । आचार्य शंकर की इसी व्याख्या से असहमत होते हुए उमचिगि शंकर शास्त्री कहते हैं]

इस प्रकार उस **तुर्यातीत** पद का अर्थ परम शिव की शक्ति मुक्ति न करते हुए उसका अर्थ हिरण्यगर्भ का स्थान और '**पुरुष**' पद का अर्थ 'हिरण्यगर्भ करना समुचित नहीं है । क्योंकि **एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः** (१.२.६) इस मन्त्र द्वारा वह व्याख्या पहले ही की गयी है, जो पशुकर्म का फल है । स्वर्ग से लेकर ब्रह्मलोक तक की प्राप्ति पशुकर्म से होती है । **तपःश्रद्धे** इस मन्त्रद्वारा पतिकर्म का फल शिवत्वप्राप्ति निरूपित है, जो मोक्ष है । [जीव की संकुचित शक्ति है **चित्त** और शक्ति के विकास को '**चित्**'कहते हैं । आणव-कार्म और मायीय त्रिविध मल **पाश** हैं, जो अज्ञान के बीज है ।] उनकी निवृत्ति से जीव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तु पतिकर्मफलं मोक्षरूपपाशात्मकबीजाभावनिवृत्तिपूर्वकस्वशक्तिविकासात्मक-चिच्छक्तिविशिष्टशिवत्वप्राप्तिरूपमुक्तम्। ब्रह्मप्रेप्सुना परापरोभयविद्याया वेदितव्यत्वेऽप्यपर ऋग्वेदादिप्रतिपाद्यानामग्निष्टोमादीनां न ज्ञानसमुच्चितत्वम्, किन्तु तदुत्तरकाण्डप्रति-पाद्यपतिकर्मणां शिवाश्रमोचितानामेव। लिङ्गाङ्गसामरस्यरूपमोक्षे निष्कामसमनुष्ठितानां तेषां पारम्पर्येणोपयुक्तत्वेऽप्यस्माकं न किञ्चित्प्रयोजनं परमशिवभक्तानामित्युक्तं पूर्वम्। "पाशाश्रयत्वात् तच्चोक्तं पशुकर्मेति वै मया" इति लिङ्गाङ्गसामरस्यापरपर्यायजीव-ब्रह्मैक्यलक्षणमुक्तौ पारम्पर्येणोपयुक्तपशुकर्मैवाऽत्र **प्लवा ह्येते** इत्यादिना स्वर्गाद्यनित्यलोक-फलकावरककर्मपदेनोक्तमिति स्फुटं ज्ञायमानत्वाद् अमृतादिपदसमभिव्याहृतस्य यत्रेति यत्पदनिर्दिष्ट-पराहन्तामयचिच्छक्त्यात्मकलोकस्य पतिकर्मसाध्यस्य नित्यत्वस्य **तपःश्रद्धे**

के चित्त का विकास होकर वह **चित्‌शक्ति** के रूप में परिणत होता है। उस चित्‌शक्ति से विशिष्ट शिवत्वप्राप्तिरूप मोक्ष का निरूपण इस मंत्र में है, जो पतिकर्म का फल है। यद्यपि परमशिवस्वरूप ब्रह्मसाक्षात्कार की कामना करनेवाले जीव को चाहिए कि वह परा और अपरा दोनों विद्याओं का अध्ययन करे। [अपरा विद्या (वेद विद्या) के दो भाग हैं मन्त्र (ऋग्वेदादि संहिता) और ब्राह्मण (ब्राह्मण-आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ— **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**।] ऋग्वेदादि मंत्रभाग में अग्निष्टोमादि भागों का निरूपण है, जो ज्ञानकाण्ड से संबद्ध नहीं है। किन्तु उसके उत्तर-भाग (उत्तरकाण्ड) उपनिषदों में जिन पतिकर्मों का निरूपण किया गया है, वे शिवाश्रम के लिए समीचीन और ज्ञानकाण्ड से सम्बद्ध हैं। यद्यपि निष्काम भाव से अनुष्ठान में प्रयुक्त अग्निष्टोमादि याग परम्परा से लिङ्गाङ्ग-सामरस्य-स्वरूप मोक्ष के उपयोगी हो सकते हैं, किन्तु हम परमशिव भक्तों को उन पशुकर्मों से कोई प्रयोजन नहीं है ऐसा पहले भी प्रतिपादित है।

जीव और ब्रह्म की एकता मुक्ति (मोक्ष) है, जिसका दूसरा नाम है **लिङ्गाङ्गसामरस्य**। उसका निरूपण करते समय यह भी निरूपित किया गया है कि अग्निष्टोमादियाग इस लिए पशुकर्म हैं, क्योंकि वे **पाश** (बन्धन) का आश्रय लेते हैं, बन्धनकारी हैं— **पाशाश्रयत्वात् तच्चोक्तं पशुकर्मेति वै मया**। उसी परम्पराप्राप्त पशुकर्म को इस उपनिषद् में **प्लवा ह्येते** (१.२-७) इत्यादि मन्त्रद्वारा स्वर्गादि अनित्य फलप्रदायक होने के कारण अवर (निकृष्ट) कर्म कहा गया है। **तपःश्रद्धे** इस मन्त्र के चतुर्थ चरण **यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा** द्वारा **'यत्'** पद से उस नित्यलोक का निर्देश किया गया है, जो पतिकर्म से साध्य है। वह नित्यलोक पराहन्तामय चिच्छाक्तिस्वरूप है, जहां अमृत अव्ययात्मा परम-पुरुष परम शिव वास करते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों से क्रमशः स्वर्गादि की अनित्यता और शिवलोक की नित्यता का हमें ज्ञान होता है। इस प्रकार अब तक के मन्त्रसन्दर्भ से यह स्पष्ट किया गया है कि नित्य शिवलोक की प्राप्ति पतिकर्म से और अनित्य स्वर्गादिलोकों

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यादिना ज्ञायमानत्वाच्च पतिकर्मसाध्यश्च नित्यो लोकः, कर्मसाध्याश्चानित्या लोका वर्तन्त इति स्फुटीकृतमेतावता मन्त्रसन्दर्भेण ।।११।।

संसारहेयस्थलापन्नो भक्तः परविद्यार्थं श्रीगुरुमुपसर्पेत

इतः परं पतिकर्म-पशुकर्मसाध्य-नित्याऽनित्यलोकपरीक्षानन्तरमनित्यफलतज्जनक-पशुकर्मणि निर्विण्णस्य नित्यफलकशिवाश्रमोचितपतिकर्माऽऽचिचीर्षोः परशिवमहालिङ्गजिज्ञासोः संसारहेयस्थलापन्नस्य सांसारिकसकलदुःखविध्वंसिनी श्रीगुरूपसत्तिर्विधीयते —

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नाऽस्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाऽभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।१२।।

की प्राप्ति पशुकर्म से होती हैं। (अतः वीरशैवों के लिए पतिकर्म उपादेय और पशुकर्म उपेक्षणीय हैं।) ।।११।।

अवतरण भाष्य— जीवात्मा **पिण्ड** (शरीर) से पृथक् होता है तथा परमात्मा जीवात्मा से पृथक् होता है, जो जीवात्मा का प्रेरक होता है। इस प्रकार का ज्ञान रखने वाला जीवात्मा भक्त **पिण्डज्ञानी** कहलाता है। जब जीवात्मा को संसार की निःसारता एवं अनित्यता का ज्ञान होता है, तब ऐसा भक्त उसे हेय (त्याज्य) समझता है। फलतः परमात्मा से मिलन की इच्छा करता है, एतदर्थ उसके लिए पराविद्या का अध्ययन परमावश्यक है। अतः संसारहेयस्थलापन्न संसारहेयता की स्थिति को प्राप्त भक्त का कर्तव्य है कि वह परमात्मा से सामरस्य स्थापित करने के लिए परा विद्या का विशिष्ट ज्ञान अर्जित करे और परा विद्या की प्राप्ति के लिए श्रीगुरु की शरण में जाय। इसी की आज्ञा वेदमाता अग्रिम मन्त्र में दे रही है—

***मन्त्रार्थः*– ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक विहित कर्मों द्वारा अर्जित पृथ्वीतल के ऊपर अथवा नीचे अवस्थित लोकों की नित्यानित्यता का समुचित परीक्षण कर अध्वशोधन संस्कार का अधिकारी 'ब्राह्मण' अनित्य लोक और उनके लिए विधि-प्राप्त पशुकर्मों से विरत हो। पशुकर्मों के आचरण से स्वर्गादिलोक प्राप्त होते हैं, जो अनित्य हैं। उनके आचरण से नित्य शिवलोक प्राप्त नहीं होता। किन्तु वह पतिकर्म के अनुष्ठान से ही प्राप्त होता है। उस नित्य शिवलोक की प्राप्ति के लिए वह भक्त समिधा आदि उपायन को हाथ में लेकर वेदान्त दर्शन के वेत्ता, केवल परब्रह्म स्वरूप शिवलिंग में आस्था रखनेवाले श्रीगुरु की शरण में जाये ।।१२।।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् इति । **कर्मचितान्** = कर्मभ्यां ज्ञानसमुच्चितासमुच्चिताभ्यां, चितान् संचितान् लभ्यानित्यर्थः, **लोकान्** = अधोर्ध्ववर्तमानान्, तत्तत्कर्मिभिरनुभूयमानान्, **परीक्ष्य** = प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्नित्यत्वानित्यत्वाभ्यां विचार्य, **ब्राह्मण** इत्येतत्पदमध्वशुद्ध्यादिसंस्कारार्हवर्णोपलक्षणार्थम् । **य** इत्यध्याहार्यम्, स इत्युत्तरत्र श्रवणात् ।। **यः ब्राह्मणः** अध्वशोधनरूपसंस्काराधिकारी। **निर्वेदम्** = अनित्येषु लोकेषु तत्साधकेषु पशुकर्मसु च वैराग्यम्, **आयात्** = प्राप्नुयात् ।

कुत इत्यात्राऽऽह— **नाऽस्त्यकृतः कृतेन** इति । **अकृतः** = नित्यः शिवलोकः, पराहन्तामयचिच्छक्त्यात्मको मोक्ष इत्यर्थः । **कृतेन** = ज्ञानसमुच्चितेन पशुकर्मणा, **नाऽस्ति** = लभ्यो न भवति, किन्तु पतिकर्मणा लभ्यो भवति । पतिकर्मणा मोक्षं प्राप्नोत्यधिकारीति यावत् ।

व्याख्या– परीक्ष्य लोकान् इति । इसके पश्चात् पतिकर्मों से साध्य नित्यलोक का और पशुकर्मों से साध्य अनित्यलोकों का समुचित परीक्षण करने के उपरान्त अनित्य स्वर्गादि फल और उसके उत्पादक पशुकर्मों के प्रति वैराग्यधारण करनेवाले और नित्यफल को प्रदान करने में समर्थ शिवाश्रम के योग्य पतिकर्माचरण के लिए इच्छुक परशिवस्वरूप महालिङ्ग की जिज्ञासा रखनेवाले संसारहेयस्थनापन्न भक्त को श्रीगुरु के शरण में जाने का विधान इस मन्त्र में है, जो संसार के समस्त दुःखों का विनाश करनेवाला है ।

कर्मचितान् = दो प्रकार के कर्म होते हैं, ज्ञानपूर्वक किए गए और ज्ञान के बिना किए गए । उन द्विविध कर्मों से प्राप्त होनेवाले, **लोकान्** = उन उन कर्मों का आचरण करने वाले लोगों द्वारा उपभोग में लाए गए अपने ऊपर अथवा नीचे अवस्थित समस्त लोकों का, **परीक्ष्य** = प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान-आगम प्रमाणों द्वारा उनकी नित्यता और अनित्यता का समुचित परीक्षण कर, **ब्राह्मणः** = यह पद ब्राह्मण वर्ण का वाचक न होकर, उस वर्ण को उपलक्षित करता है, जो **अध्वशुद्धि** आदि संस्कारयोग्य है । यहां 'यः' इस प्रकार अध्याहार करना चाहिए, क्योंकि मन्त्र के उत्तरार्ध में 'सः' पद का विन्यास है । अतः **'यो ब्राह्मणः'** का अर्थ होगा, जो अध्वशोधनरूप संस्कार का अधिकारी है, **निर्वेदम्** = अनित्य स्वर्गादि लोकों से और उसके लिए अनुष्ठेय कर्मों से वैराग्य, **आयात्** = प्राप्त करे ।

नास्त्यकृतः कृतेन— वह ब्रह्मजिज्ञासु क्यों वैराग्य प्राप्त करे, उसका यह हेतुवाक्य है । **अकृतः कृतेन नास्ति** जो कृत पशुकर्मों से प्राप्त नहीं होता, वह शिवलोक **अकृत** कहलाता है, जो नित्य है । पशुकर्मों से प्राप्त होनेवाले स्वर्गादिलोक 'कृत' और 'अनित्य' हैं । उनके लिए पशुकर्म अनुष्ठेय हैं । अतः इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी— **अकृतः** = पशुकर्मों द्वारा अप्राप्य नित्य शिवलोक, अर्थात् पराहन्तामय चित्शक्तिस्वरूप मोक्ष, **कृतेन** = ज्ञान के साथ किए गए पशुकर्म द्वारा, **नास्ति** = प्राप्त नहीं हो सकता।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

न च कर्मजन्यत्वे मोक्षस्याऽनित्यत्वं स्यात्, यत्कृतकं तदनित्यमिति व्याप्तेः, **तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवात्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते** इति श्रुतेश्चेति वाच्यम्, **यदिहाप्यनेवंविन्महत्पुण्यं करोति तद्धास्या न्ततः क्षीयत एव। आत्मानमेव**

शाङ्कर मत— [उमचिगि शंकरशास्त्री की यह व्याख्या **आचार्य शंकर** की व्याख्या से मेल नहीं खाती, जो इस प्रकार है— **इह संसारे नास्ति कश्चिदपि अकृतः पदार्थः। सर्व एव लोकाः कर्मचिताः, कर्मकृतत्वाच्च अनित्याः, न नित्यं किञ्चिदस्तीत्यभिप्रायः। सर्वं तु कर्मानित्यस्यैव साधनम्। यस्माच्चतुर्विधमेव हि सर्वं कर्म-कार्यम्, उत्पाद्यम्, आप्यम्, संस्कार्यं विकार्यं वा। नातः परं कर्मणो विशेषोऽस्ति। अहं च नित्येन अमृतेन अभयेन कूटस्थेन अचलेन ध्रुवेणाऽर्थेन अर्थी, न तद्विपरीतेन। अतः किं कर्मणा आयासबहुलेन अनर्थसाधनेन?**]

इसका **आशय** इस प्रकार है— "इस संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो बिना किए प्राप्त हो। अतः वह '**कृत**' कहलाता है। समस्त लोक अपने सुकृत–दुष्कृत कर्मों से प्राप्त होते हैं। यतः वे लोक शुभाशुभ कर्मों से प्राप्त होते हैं, अतः वे अनित्य हैं, संसार में कुछ भी नित्य नहीं है। सभी कर्म अनित्य फल के ही साधन हैं। कर्म चार प्रकार के होते हैं— कार्य, उत्पाद्य, आप्य और संस्कार्य अथवा विकार्य। इससे भिन्न प्रकार का कोई कर्म नहीं होता। जब जीव को वैराग्य होता है, तब वह इस प्रकार सोचता है— **नास्त्यकृतः कृतेन**। "मैं नित्य, अमृत (अविनाशी) भयमुक्त, कूटस्थ, अचल (स्थिर) ध्रुव ब्रह्मपद (मोक्ष) का अर्थी हूँ। जिसे नहीं चाहता, उस अनित्य स्वर्गादि के साधनस्वरूप परिश्रमसाध्य कर्मों से मेरा क्या प्रयोजन है? कुछ भी नहीं।"

वीरशैव मत— [उमचिगि शंकरशास्त्री जी की दृष्टि में आचार्य शंकर की यह व्याख्या समीचीन नहीं है कि "**सर्वं तु कर्म अनित्यस्यैव साधनम्**" अर्थात् सभी कर्म अनित्य स्वर्गादि फलप्रदायक होते हैं। आपके अनुसार वीरशैवदर्शनागम की दृष्टि में शिवलोक नित्य है और उसके लिए भी कर्मानुष्ठान आवश्यक है और वह है पतिकर्म। अतः आप आगे कहते हैं कि यद्यपि नित्य शिवलोक की प्राप्ति पशुकर्मों से नहीं होती, किन्तु पतिकर्मों से होती है। अत एव जो पतिकर्मों से मोक्ष प्राप्त कर सकता है, वही **अध्वशोधनरूप संस्कार** का अधिकारी है। अद्वैत वेदान्त का यह वक्तव्य भी समीचीन नहीं है कि यदि शिवलोक (मोक्ष) को कर्मजन्य मानें तो उसको अनित्य मानना पड़ेगा। क्योंकि जो कृत्रिम (क्रियासम्पादित) होता है, वह अनित्य होता है यह अन्वयव्याप्ति का सिद्धान्त है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रुतिवचन भी प्रमाण है— **तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवाऽत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते**। (जैसे यहां कर्मों द्वारा अर्जित लोकों के क्षय का विनाश होता है, वैसे ही पुण्यकर्म से प्राप्त स्वर्गलोक का भी क्षय (विनाश) होता है।]

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लोकमुपासीत, स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते नाऽस्य कर्म क्षीयते इति अनात्मविदा कृतस्य कर्मण: फलोपभोगान्ते क्षयस्य, ब्रह्मविदा तु कृतस्य कर्मण: क्षयाभावस्य प्रतिपादनेन अनित्यत्वप्रसक्त्यभावात्, न्यायस्य श्रुतिबाधितत्वात् । न च क्रियाया आशुतरविनाशित्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् कथमक्षयत्वप्रतिपादनमिति वाच्यम्, क्रियाया: सूक्ष्मावस्थारूपस्याऽपूर्वस्य कर्मशब्दवाच्यस्याऽक्षयत्वप्रतिपादनात् । न च तस्मिन् मानाभाव इति वाच्यम्, तदपूर्वाभावे आशुतरविनाशिन्या: क्रियाया: कालान्तरे फलजन-कत्वानुपपत्ते: । तदभावे—

प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम् ।
तस्माल्लोकात् पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मणे ।। इति।

(बृह. ४.४.६)

यह मत निराकरणीय है । यत: 'जो आत्मतत्त्ववेत्ता नहीं होता, यदि वह महत् पुण्य करता है, तो अन्तत: उसका अवश्य क्षय होता है, अत: परमात्मस्वरूप नित्य शिवलोक की उपासना करनी चाहिए । जो नित्य शिवलोक की उपासना करता है उसका कर्मक्षय नहीं होता' इस आशय की यह श्रुति इसमें प्रमाण है— **यदिहाप्यनेवंविन्महत् पुण्यं करोति, तद्धास्याऽन्तत: क्षीयत एव । आत्मानमेव लोकमुपासीत स च आत्मानमेव लोकमुपास्ते नास्य कर्म क्षीयते** । इस श्रुतिवचन के अनुसार जो आत्मतत्त्व नहीं जानता, उसके द्वारा विहित कर्मों का क्षय कर्मफल के उपभोग के बाद होता है । ब्रह्मवेत्ता द्वारा विहित कर्मों का क्षय नहीं होता । अत: मोक्ष की अनित्यता सिद्ध नहीं होती । यह श्रुतिवचन अन्वयव्याप्ति के तर्क का बाध कर रहा है ।

वेदान्त दर्शन का पक्ष— यह प्रत्यक्षसिद्ध है कि क्रिया अत्यन्त शीघ्र नष्ट होती है । फिर कर्म अक्षय कैसे हो सकते है ।

निराकरण— यह तर्क भी ठीक नहीं है । क्योंकि क्रिया की सूक्ष्मावस्था को 'अपूर्व' कर्म कहते हैं, उस दृष्टि से यहां कर्म की अक्षयता का प्रतिपादन है । 'इसमें कोई प्रमाण नहीं है' ऐसा भी आप नहीं कह सकते । क्योंकि अपूर्व क्रिया ही कालान्तर में फलजनक होती है । सूक्ष्म क्रिया की अपूर्वता न मानने पर शीघ्र विनाशशील उस क्रिया की कालान्तर में फलप्रदायकता की संगति नहीं बैठेगी । क्योंकि कर्मप्रधान लोक के विषय में **बृहदारण्यकोपनिषद्** कहती है—

प्राप्याऽन्तं कर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम् ।
तस्माल्लोकात् पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मणे ।। (बृह. ४.४.६)

(जीव जो कुछ कर्म इस लोक में करता है, उसके कर्मफल का उपभोग परलोक में कर पुनश्च इस लोक में कर्म करने के लिए जन्म लेता है ।)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कस्य वा क्षये परलोकादिहागमनमुच्येत । किञ्च, **रमणीयचरणा रमणीयां योनिमापद्येरन्** (छां.५.१०.६) इति वाक्ये केन वा योनिविशेषप्राप्तिरुच्येत? तस्माद्धर्माऽधर्मयोः शास्त्रैकगम्यत्वान्न तर्केण प्रयोजनमस्ति । **श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्** इति ह्युक्तम् ।

नास्त्यकृतः कृतेन इति, **तद्यथेह कर्मचित** इति च श्रुतिरविद्वद्विषयेति बोध्यम् । तस्माद् ज्ञानसमुच्चितपतिकर्मप्राप्यमोक्षस्य नित्यत्वं सिद्धम् । तस्मात्तद्विज्ञानार्थं तस्य नित्यस्य पतिकर्मसमुच्चितज्ञानप्राप्यस्य विशेषेणाधिगमार्थम्, **सः** ब्राह्मणः, **समित्पाणिः** लिङ्गधारणात्मकशिवदीक्षाङ्गभूतहोमाद्यर्थं समिदाद्युपायनहस्तः, **श्रोत्रियम्** = श्रुतवेदान्तम्, **ब्रह्मनिष्ठम्** = ब्रह्मणि शिवलिङ्गे धार्यत्वेन निष्ठा यस्य तं परित्यक्ताऽनित्यफलकपशुकर्माणं नित्यफलकलिङ्गधारणादिपतिकर्मनिष्ठमित्यर्थः । तदुक्तं **नीलकण्ठशिवाचार्येण**—

नायमात्मेति वाक्येन शिवस्य वरणं तनोः ।
वरणं नाम तद्रूपधारणं विधिमार्गतः ।।

गुरु की महिमा—इस श्रुतिवाक्य में किस कर्म का क्षय होने पर परलोक से इसलोक में आगमन का संकेत है? अथवा **रमणीयचरणाः** (छां. उ. ५-१०.७) इत्यादि श्रुतिवचन के अनुसार किस कर्म से विशिष्ट योनि में जन्म लेने की ओर संकेत है? (क्योंकि इसका आशय है—'सुन्दर स्वभाव एवं चरित्र के जीव सुन्दर योनि में जन्म लेते हैं ।) धर्म और अधर्म केवल शास्त्र द्वारा जाने जा सकते हैं । अतः यहां अन्वयव्याप्ति के तर्क का कोई प्रयोजन नहीं है । श्रुति शब्दप्रधान होती है, इसीलिए यहाँ श्रुति कहती है— **'नास्त्यकृतः कृतेन'**, **'तद् यथेह कर्मचितः'** (छां. उ. ८१-६) इत्यादि श्रुतिवचन उनके लिए हैं, जो आत्मतत्त्व नहीं जानते । अतः यह सिद्ध है कि ज्ञान-सहकृत पतिकर्म द्वारा प्राप्तियोग्य मोक्ष नित्य होता है । अतः **तद्विज्ञानार्थम्** = पतिकर्म सहकृत ज्ञान की विशिष्ट प्राप्ति के लिए, **सः** = वह ब्राह्मण अध्वशोधनरूप संस्कार का अधिकारी, **समित्पाणिः** = लिंगधारणस्वरूप शिवदीक्षा के अंगभूत होम आदि के संपादन के लिए समिधा, कुशा आदि उपायनों को हाथों में लिए हुए गुरुमेवाभिगच्छेत् गुरु की ही शरण में जाय । वह कैसा होना चाहिए? **श्रोत्रियम्** = वेदान्त दर्शनवेत्ता श्रोत्रिय होना चाहिए । **ब्रह्मनिष्ठम्** = परब्रह्म स्वरूप शिवलिंग को धारणयोग्य समझकर उसके प्रति एकमात्र श्रद्धा रखने वाले अर्थात् अनित्य फ़ल देने वाले पशुकर्मों का परित्याग करते हुए नित्य फल देने वाले लिङ्ग धारण आदि पतिकर्मों में आसक्त गुरु **ब्रह्मनिष्ठ** होता है । जैसा कि **नीलकण्ठ** शिवाचार्य ने ब्रह्मनिष्ठ गुरु का निरूपण किया है । इसका अर्थ इस प्रकार है— **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य** इत्यादि श्रुति द्वारा शिवलिङ्ग के वरण का वर्णन है । **'वरण'** का अर्थ है विधि मार्ग से आत्मस्वरूप शिवलिङ्ग का धारण, अर्थात् श्रवण-मनन-निदिध्यासन । **लिङ्गाङ्ग** इत्यादि वाक्य से मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होकर **अमृतस्य** इत्यादि वाक्य से लिंगधारण का विधान है । केवल लिङ्गधारण में श्रद्धा रखनेवाले अतिवर्णाश्रम (शिवाश्रम) धर्म में आसक्त महात्मा **'ब्रह्मनिष्ठ'** होते हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लिङ्गाङ्गेति च वाक्येन मोक्षमार्गैकतत्पराः ।
अमृतस्येति वाक्येन धारणं प्रतिपादितम् ।।

तन्निष्ठा एव मनुजा अतिवर्णाश्रमे रताः ।
त एव हि महात्मानो ब्रह्मनिष्ठा उदाहृताः ।।

इति गुरुमेव **गुरुस्थलसमाख्याता गुरवः सर्वलिङ्गिनाम्** इत्युक्तप्रकारेण लोके गुरुस्थलीयत्वेन प्रसिद्धमाचार्यमेव, अत्रैवकारेण नियमविधिः सूचितः । तथा च श्रुतिः— **आचार्याद्ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयतीति** (छां ४.९.२) इति । **आचार्यवान् पुरुषो वेद** इति, **आचार्यदेवो भव** इति च, **गुरुरुपायः** (२.६) इति शिवसूत्राच्च । **अभिगच्छेत्**=उपसङ्गच्छेत् ।

श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद् यथाविधि ।
गुरुस्तस्मै परां विद्यां दद्याद् ब्रह्मात्मबोधिनीम् ।।

(रुद्रहृदयोपनिषत् ३४-३५) इति श्रुतेः । उक्तं च **क्रियासारे** द्वादशोपदेशे—

उपगम्य गुरुं विप्रमार्यं तत्त्वार्थवेदिनम् ।
जापिनं सद्गुरूपेतं ध्यानयोगपरायणम् ।। इति।

गुरुमेवाऽभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् — विरक्त ब्रह्मजिज्ञासु शिष्य को परा विद्या का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरु की सन्निधि में ही जाना चाहिए ।

गुरुस्थलसमाख्याता गुरवः सर्वलिङ्गिनाम् इसमें वर्णित रीति के अनुसार लोक में गुरुस्थल के रूप में प्रसिद्ध आचार्य गुरु होता है । **गुरुमेव** में प्रयुक्त 'एव' अव्यय यहां नियम-विधि को संकेतित कर रहा है । जैसा कि **छान्दोग्य उपनिषद्** का प्रमाणवचन है— **आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति** (छा. ४.९-२), अर्थात् केवल आचार्य से अधीत विद्या अपने समीचीन लक्ष्य को प्राप्त करती है । **आचार्यवान् पुरुषो वेद** (गुरु की शरण में जानेवाला शिष्य ही परा विद्या जानता है ।) **आचार्यदेवो भव** (हे शिष्य! आचार्य को देवता के रूप में प्रतिष्ठित कर उसकी शरण में जाओ ।) **'शिवसूत्र'** भी इसमें प्रमाण है— **गुरुरुपायः** परा विद्या प्राप्ति का एकमात्र उपाय है श्रीगुरु की शरण में जाना ।

रुद्रहृदयोपनिषद् (३४-३५) कहती है— भक्तस्थलापन्न शिष्य शास्त्रमार्ग से श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अपने गुरु की शरण में जाय । श्रीगुरु उसे लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञापिका परा विद्या का उपदेश दे ।

क्रियासार के द्वादशोपदेश में कहा गया है— ब्रह्मजिज्ञासु को ऐसे श्रीगुरुकी शरण में जाना चाहिए, जो विप्र हो, आर्य हो, परमतत्त्व को जाननेवाला हो, पञ्चाक्षरी मन्त्रजपकर्ता हो, सद्गुरु की शरण में गया हुआ हों और ध्यानयोगपरायण हो ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

किञ्च, तत्रैव त्रयोदशोपदेशे—

तत्रादावुपसङ्गम्य ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
गुरुमाराधयेत् प्राज्ञं सुभगं प्रियदर्शनम् ।।
सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रान्तमानसम् ।
तोषयेत् तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ।। इति।

उक्तं च तत्रैव पञ्चविंशोपदेशे दीक्षागुरुलक्षणम् — **सा दीक्षा गुरुणा कार्या स गुरुः कथ्यतेऽधुना** इत्यादिना **दीक्षाकर्मणि कर्मठ** इत्यन्तेन । श्रीकरभाष्यकारैरपि **नास्त्यकृतः कृतेन इति वाक्येन प्राकृतस्यैव कर्मणो निषिद्धत्वाद्** इत्युक्तम् । तस्मान्न कर्मसामान्यबोधकत्वं कृतशब्दस्य, किन्तु पतिकर्मव्यतिरिक्तपशुकर्मबोधकत्वमेव । **अमृतस्य देवधारणो भूयासम्, तस्याऽभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः, व्रतमेतच्छाम्भवं तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्नपुनर्भवाय** इति तैत्तिरीय-श्वेताश्वतरादिषु शिवलिङ्गध्यानधारणाद्यप्राकृतपतिकर्मणां मोक्षहेतुत्वोपदेशात् चिच्छक्त्यात्मकशिवलोकस्य शिवार्चनादिपतिकर्मसाध्यस्य

और वहीं तेरहवें उपदेश में यह प्रतिपादित है— सर्वप्रथम शिष्य को सौभाग्यसम्पन्न प्रिय-दर्शन सम्पूर्ण अभयदान देने वाले दयालु वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण श्रीगुरु की शरण में जाना चाहिए और उसे प्रयत्नपूर्वक मन-कर्म और वाणी द्वारा प्रसन्न करना चाहिए । और वहीं पचीसवें उपदेश में दीक्षागुरु का लक्षण **सा दीक्षा गुरुणा कार्या स गुरुः कथ्यतेऽधुना** इत्यादि से लेकर **दीक्षाकर्मणि कर्मठः** तक दिया हुआ है ।

श्रीकरभाष्यकार ने भी **'नास्त्यकृतः कृतेन'** इस वाक्य से यह सिद्ध किया है कि 'प्राकृत कर्म ही निषिद्ध है, अतः 'कृत' शब्द यहां सामान्य कर्म अर्थ का ज्ञापक नहीं है, किन्तु पतिकर्म से भिन्न पशुकर्म अर्थ का ज्ञापक है । क्योंकि **अमृतस्य देवधारणो भूयासम्, तस्याऽभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चाऽन्ते विश्वमायानिवृत्तिः, व्रतमेतत् शाम्भवं तत् समाचरेद् मुमुक्षुर्नपुनर्भवाय** तैत्तिरीयोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् इत्यादि उपनिषदों के उक्त वचनों में यह उपदेश है कि शिवलिङ्ग का ध्यान, उसका धारण आदि अप्राकृत पतिकर्म मोक्ष के कारण हैं ।

चित्शक्तिस्वरूप शिवलोक शिवार्चन आदि पतिकर्मों से प्राप्त होता है, जिसकी नित्यता को **भस्मजाबालोपनिषद्** का श्रुतिवचन प्रमाणित करता है— **'नाऽन्यं मल्लोकात् परम्, यमवाप्य न शोचति, न स पुनरावर्तते । लिङ्गरूपिणं मां सम्पूज्य चिन्तयन्ति योगिनः सिद्धाः सिद्धिं गताः** । यह भगवान् शिव वहां स्वयं कहते हैं । (इसका आशय इस प्रकार है— "मेरे लोक, शिवलोक से दूसरा श्रेष्ठ कोई लोक नहीं है, जिसे प्राप्त कर कोई शोक नहीं करता । फिर जीव का संसार में वारंवार आगमन नहीं होता, जन्म-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नित्यत्वं श्रूयते । भस्मजाबालोपनिषदि— **नान्यं मल्लोकात्परम्, यमवाप्य न शोचति, न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते, लिङ्गरूपिणं मां सम्पूज्य चिन्तयन्ति योगिनः सिद्धाः सिद्धिं गता** इति शिवोक्तेः । उक्तं च शिवधर्मोत्तरे—

दिनकृत्कोटिसंकाशं स्थानमाश्चर्यसंयुतम् ।
सर्वकामसमायुक्तं विशुद्धं नित्यमक्षयम् ।।

सम्प्राप्य तत्पदं दिव्यं समस्तक्लेशवर्जिताः ।
सर्वज्ञाः सर्वगाः शुद्धाः परिपूर्णा भवन्ति च ।।

विशुद्धकार्यकरणाः परमैश्वर्यसंयुताः ।
सदेहाश्च विदेहाश्च भवन्त्यात्मेच्छया पुनः ।।

ये सम्प्राप्ताः परं स्थानं यज्ञयोगरता नराः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारमण्डले ।। इति।

किञ्च, **स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते** (छां ८.१५.१) इति श्रुत्यापि ब्रह्मलोकशब्दितमोक्षात्मक-शिवलोकप्राप्तानां पुनरावृत्तिराहित्यमुच्यते । तस्मान्न कर्मसाध्यत्वं मुक्तेरिति परेषां व्याख्यानं श्रुतिविरुद्धम् । पतिकर्मसहकृतज्ञानप्राप्यशिवलोकात्मकमुक्तेर्नित्यत्वं सिद्धम् ॥१२॥

मरण-चक्र में वारंवार उसका आवर्तन नहीं होता । लिङ्ग के रूप में मेरी अर्चना कर सिद्धि प्राप्त करनेवाले सिद्ध शिवयोगी मेरा ही सतत श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते हैं।''

शिवधर्मोत्तर में **दिनकृत्कोटिसंकाशं** से लेकर **संसारमण्डले** तक चार श्लोकों में यह प्रतिपादित है कि ''करोड़ो सूर्यों के समान तेजसम्पन्न आश्चर्यकारी सभी मनोरथों से परिपूर्ण, विशुद्ध नित्य अक्षय दिव्य शिवलोक में पहुंचकर जीव सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, निर्मल और परिपूर्ण होते हैं । वे विशुद्ध कार्य करनेवाले परम ऐश्वर्यशाली देहधारी होते हुए भी विदेहस्थिति में होते हैं और अपनी इच्छा से पुनश्च अवतीर्ण होते हैं, वे पुनश्च परम ज्ञान-यज्ञ में लीन होकर परम पद प्राप्त करते हैं और फिर से वे भयंकर संसारमण्डल में नहीं लौटते ।'' और भी, **''स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते, न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते''** इस प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् (८-१५-१) भी कहती है, जिसका आशय है— 'इस प्रकार आजीवन पतिकर्माचरण करते हुए जीव परब्रह्मस्वरूप शिवलोक प्राप्त करता है, और पुनश्च वह संसारसागर में नहीं लौटता, नहीं लौटता ।' इस प्रकार जो श्रुतिवचनों द्वारा 'ब्रह्मलोक' शब्द से संकेतित मोक्षस्वरूप शिवलोक प्राप्त करते हैं, उनकी संसारचक्र में पुनरावृत्ति का निषेध किया गया है । अतः कर्मों से मोक्ष प्राप्त नहीं होता यह आचार्यशंकरसम्मतव्याख्यान श्रुति के विरुद्ध है । इस प्रकार पतिकर्म-सहकृत-ज्ञान से प्राप्तियोग्य शिवलोकस्वरूप मुक्ति की नित्यता सिद्ध होती है ॥१२॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

गुरुकर्तव्यम्

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ।।१३।।

इति प्रथममुण्डके द्वितीय:खण्ड: ।।२।।

इति प्रथममुण्डकम् ।।१।।

तस्मै स विद्वान् इति। **सः** भुवनप्रसिद्धरेणुकादिपञ्चाचार्याणां वीरादिगोत्रजातो गुरुस्थलीयत्वेन प्रसिद्ध आचार्य:। कथंभूत इत्यत आह— **विद्वानिति**। **विद्वान्** = लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञानवान्। **उपसन्नाय**–

भो कल्याणमहाभाग शिवज्ञानमहोदधे ।
आचार्यवर्य सम्प्राप्तं रक्ष मां भवरोगिणम् ।।

इति प्रार्थनापुरस्सरमुपगताय समिदाद्युपायनपाणये शरणागताय, **सम्यक्** = सुष्ठु, **प्रशान्तचित्ताय** = शुद्धचित्ताय, भूतशुद्ध्यादिगर्भगुरुकृतस्वस्तिकारोहणादिदीक्षासंस्कारसंस्कृतं चित्तं प्रशान्तं शुद्धं भवति। **शमान्विताय** = शमेन शुद्ध्यात्मकेन अन्विताय युक्ताय। मन्त्र-

---

श्रीगुरु का कर्तव्य

***मन्त्रार्थ*– लिङ्गाङ्गसामरस्य के वे आचार्य अपने शरण में प्राप्त शुद्ध अन्त:करणशाली शुद्धात्मा शिष्य को उस पञ्चाक्षरी मन्त्रस्वरूपा परा विद्या का उपदेश प्रदान करें, जिसके द्वारा वह शिष्य 'अक्षर-पुरुष' पदवाच्य सत्स्वरूप परम शिवलिङ्ग का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सके ।।१३।।**

भाष्यार्थ— तस्मै स विद्वान् इति। **सः** = विश्वविख्यात रेणुकाचार्य आदि पञ्चाचार्यों के वीर आदि गोत्र में उत्पन्न गुरुस्थलापन्न वह आचार्य। वह आचार्य किस प्रकार होना चाहिए उसका विशेषण है— **विद्वान्,** जिसका अर्थ होता है लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मक ज्ञान से सम्पन्न। **उपसन्नाय** = श्रीगुरु को शरणागत। जब शिष्य समिधा आदि उपायन हाथ में लेकर गुरु की शरण में जाता है, तब वह इस प्रकार प्रार्थना करता है—

भो कल्याणमहाभाग! शिवज्ञानमहोदधे!।
आचार्यवर्य! सम्प्राप्तं रक्ष मां भवरोगिणम्।।

(हे कल्याण की चिन्ता करनेवाले परमशिवस्वरूप ज्ञान के महासागर आचार्यवर्य! आप संसार के रोगी शरणागत मेरी, शिष्य की रक्षा करें।)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मन्त्रेश्वर–मन्त्रमहेश्वराऽपरपर्यायेष्टादिलिङ्गत्रयानुयोगिकगुरुकृताङ्गत्रयप्रविलापनसम्पन्न: शिष्य: शुद्धात्मा भवति, गुरुकृतदीक्षात्रयनिर्दग्धमलत्रयवत्त्वात् । तस्मै **शुद्धचित्ताय** शुद्धात्मने शिष्याय । **येन** = यया परविद्यात्मकस्थूलसूक्ष्मपञ्चाक्षरमहामनुरूपम् अक्षरम् अद्रेश्यादिविशेषणं **पुरुषं** = पुरुषपदवाच्यं शिवलिङ्गम्, **वेद** = जानात्युक्तशिष्यस्तां परां विद्यां **तत्त्वतो ब्रह्मविद्यां** = वस्तुतो ब्रह्मविद्यां पञ्चाक्षरीम्, ऋग्वेदादीनां ब्रह्मविद्यात्वेऽपि न ऋग्वेदादिविद्या तत्त्वतो ब्रह्मविद्या भवितुमर्हति, तस्या: पूर्वकाण्डरूपाया अवरपशुकर्म- परत्वात्, उत्तरकाण्डस्य परविद्यात्वस्य पूर्वमुक्तत्वात्, पञ्चाक्षरमहामनुरूपाया: परविद्याया एव साक्षान्मोक्षोपयोगित्वात्, तस्या एव लिङ्गाङ्गसामरस्यबोधकत्वात् पञ्चाक्षरी पराविद्यैव तत्त्वतो ब्रह्मविद्या । **तां प्रोवाच** = वातुलतन्त्रादिशिवागमोक्तप्रकारेण प्रब्रूयात् । उक्तं च **क्रियासारे** पञ्चाक्षरीविद्याया: परत्वम्— **आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम** इति, **अस्या:**

सम्यक् प्रशान्तचित्ताय (प्रशान्तं चित्तं यस्य स: प्रशान्तचित्त:, तस्मै)— जिसका चित्त, अन्त:करण निर्मल हो, वह शुद्धचित्त होता है । ऐसे शिष्य का अन्त:करण गुरु द्वारा सम्पादित भूतशुद्धि आदि सहित स्वस्तिकारोहण आदि दीक्षासंस्कारों से जब सुसंस्कृत होता है, तब 'प्रशान्त' (शुद्ध) होता है । **शमान्विताय**-शमेन अन्विताय = शुद्धि-प्रचुर शम से सम्पन्न । इष्टलिङ्ग, प्राणलिंग और भावलिंग के दूसरे पर्याय हैं मन्त्र, मन्त्रेश्वर और मन्त्र-महेश्वर । जीव के तीन स्वरूप हैं— 'विश्व', 'तैजस' और 'प्राज्ञ' जो तीन अङ्गस्थलों के रूप में प्रसिद्ध हैं । श्रीगुरु आणव, कार्म और मायीय मलों को त्रिविधदीक्षा द्वारा जब जला डालता है, तब जीव स्वयोग्यतानुसार यथाक्रम त्रिविध लिङ्गों से सामरस्य स्थापित करता है । ऐसा शिष्य 'शमान्वित' अर्थात् शुद्धात्मा होता है । **तस्मै** = ऐसे शरणागत प्रशान्तचित्त शुद्धात्मा शिष्य को, जिस परा विद्या के द्वारा स्थूल एवं सूक्ष्म पञ्चाक्षर, महामन्त्र स्वरूप, **अक्षरम्** = क्षरणरहित 'अद्रेश्य'-'अग्राह्य' आदि विशेषतासम्पन्न, **'पुरुषम्'**= अन्त:करण में सुप्तरूप से रहने के कारण 'पुरुष' पद वाच्य, (**सत्यम्** = सत्स्वरूप) शिवलिङ्ग को, **वेद** = जानता है, **प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्**— यद्यपि ऋग्वेद आदि वेदविद्या ब्रह्मविद्या हो सकती है, तथापि वह वास्तविक ब्रह्मविद्या नहीं हो सकती, क्योंकि उसके दो भाग हैं—१. पूर्वकाण्ड और २. उत्तर काण्ड । पूर्व काण्ड में कनिष्ठ पशुकर्मों का निरूपण है जो मंत्रभागस्वरूप है । उत्तर काण्ड का निरूपण अपरा विद्या के रूप में पूर्व में किया जा चुका है । परा विद्या पञ्चाक्षरी महामन्त्रविद्या के रूप में विद्यमान है, जो साक्षात् मोक्ष के लिए उपादेय है, वही लिङ्गाङ्गसामरस्य का ज्ञान कराती है, अत: वही तात्त्विक रूप से ब्रह्मविद्या है । **ताम्** = उस पराविद्या का, **प्रोवाच** = आचार्य वातुलागम आदि शिवागमों में वर्णित रीति से उपदेश दें ।

पराविद्या पञ्चाक्षरी— 'क्रियासार' में पञ्चाक्षरी विद्या को परा विद्या के रूप में प्रतिपादित किया गया है शिव कहते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परमविद्यायाः स्वरूपमधुनोच्यत इति। उक्तं च **वीरमाहेश्वराचारसंग्रहे— आश्रयेत् परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं बुध** इति। उक्तं **चानुभवसूत्रे**ऽपि **पञ्चाक्षरी परा विद्या सतारा तु षडक्षरी** इति।

तस्य दक्षिणकर्णे तु निगूढमपि कीर्तयेत्।
छन्दोरूपमृषिं चास्य देवतान्यासपद्धतिम्॥

(सि. शि. ६.२१)

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तप्रकारेणोपदिशेद् गुरुरित्यर्थः। एतादृशपरविद्योपदेशानन्तरं मन्त्रपूतः शिष्यो गुरुपुत्र इति लोके प्रसिद्धो भवति। उक्तं च **क्रियासारे** तृतीयोपदेशे—

जिह्वालिङ्गान्मन्त्रशुक्लं कर्णयोनौ निषिच्य वै।
जातः पुत्रो मन्त्रपूतः पितरं पूजयेद् गुरुम्॥

''आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम'', ''अस्याः परमविद्यायाः स्वरूपमधुनोच्यते'' इति।

वीरमाहेश्वराचारसंग्रह में कहा गया है—

आश्रयेत् परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं बुधः।

[इन सबका तात्पर्य यह है कि पञ्चाक्षरी विद्या परमशिव के महामंत्र के रूप में अवस्थित चित्ताकर्षक परा विद्या है, जिसका अवलम्बन तत्त्ववेत्ता को करना चाहिए।] **अनुभवसूत्र** का कथन है—

पञ्चाक्षरी परा विद्या सतारा तु षडक्षरी।

अर्थात् **'नमः शिवाय'** यह पांच अक्षरों वाला शिवमन्त्र **पञ्चाक्षरी** परा विद्या है, जो **'ॐ'** इस तार (प्रणवनाद) के साथ **षडक्षरी** हो जाती है। ''शिष्य के दक्षिण कर्ण में अत्यन्त गुप्त रूप से गुरु शिष्य को पञ्चाक्षर मंत्रजपोपदेश करे और उसका स्वरूप, छन्द, ऋषि, देवता और न्यासपद्धति शिष्य को समझाए'', यह प्रतिपादन **'सिद्धान्त-शिखामणि'**कार श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य ने किया है। (**तत्त्वप्रदीपिका** के अनुसार इसके साथ ही अधिदेवता, पञ्चब्रह्म, पञ्चसादाख्य, पर्यायनाम, पञ्चाचार, लिङ्गत्रय, करन्यास और अङ्गन्यास मन्त्रोपदेश-क्रम में समाविष्ट हैं।)

गुरुपुत्र— इस प्रकार परा विद्या के उपदेश के पश्चात् मन्त्र से पवित्र किये गये शिष्य को **गुरुपुत्र** कहते हैं। जैसा कि क्रियासार के तृतीय उपदेश में वर्णित है। तदनुसार ''जिह्वास्वरूप लिङ्ग के द्वारा कर्णस्वरूप योनि में पञ्चाक्षर-मन्त्रस्वरूप शुक्र (वीर्य) के निषेक से उत्पन्न मन्त्रजप से पवित्र शिष्य 'गुरुपुत्र' होता है, जो अपने गुरुस्वरूप पिता की विधिवत्

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

निमज्जयति वै पुत्रं संसारे जनकः पिता ।
सन्तारयति संसाराद् गुरुर्वै बोधकः पिता ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा पितरं सम्प्रपूजयेत् ।।

इत्यनन्तरं परविद्यार्थं लिङ्गाङ्गसामरस्यं बोधयेदाचार्यः । तदुक्तं **क्रियासारे** एकोनविंशोपदेशे—

लीनार्थगमकं लिङ्गमन्यदङ्गमुदीरितम् ।
लिङ्गाङ्गयोः सामरस्यं जीवब्रह्मैक्यलक्षणम् ।।

तदपि द्विविधं प्रोक्तं साधनेन समन्वितम् ।
द्वितीयं तद्विनिर्मुक्तमाद्यं गुरुकृतं पुरा ।।

द्वितीयमपि शिष्यस्य गुरुवाक्यस्य पालनात् ।
आद्यं वेधादिदीक्षाभ्यस्त्रिपुण्ड्रस्यापि धारणात् ।।

रुद्राक्षधारणाच्चापि पञ्चाक्षरजपादपि ।
मुख्याल्लिङ्गधृतेश्चापि दहराकाशमण्डले ।।

अर्चना करे । क्योंकि जनक पिता जन्य पुत्र को संसारसागर में डुबोता है और उपदेष्टा गुरुस्वरूप पिता संसार से शिष्यपुत्र को तारता है । दोनों का यह अन्तर समझकर पिता की सम्यक् रीति से पूजा करनी चाहिए ।

लिङ्गाङ्गसामरस्य— इसके पश्चात् आचार्य परा विद्या की प्राप्ति के लिए लिङ्गाङ्ग-सामरस्य का उपदेश दे । जैसा कि **क्रियासार** के उन्नीसवे उपदेश में वर्णित है— 'जो अपने में लीन करता है, उसे '**लिङ्ग**' और उससे भिन्न को '**अङ्ग**' कहते हैं । '**लिङ्ग**' और '**अङ्ग**' का **सामरस्य** जीव और ब्रह्म (परमशिव) के ऐक्य (एकता = अद्वयस्थिति) का ही स्वरूप है । वह लिंगांग सामरस्य दो प्रकार का होता है— १. साधन से युक्त और २. उससे विरहित । इन दोनों में प्रथम साधनयुक्त सामरस्य पहले गुरुपदेश से होता है । दूसरा साधनविरहित सामरस्य गुरु की आज्ञा के पालन से होता है । साधन-सहित लिंगांग सामरस्य गुरुकृत वेधा आदि दीक्षा, त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष का धारण, पञ्चाक्षर-मंत्र-जप, अन्तःकरण और बाह्यप्रदेश में लिंगधारण से होता है । अतः श्रीगुरु स्वयं प्रथम क्रमागत पद्धति से हृदयादि अंगन्यास और करन्यास करे और अपने समस्त देह को एकत्र कर पञ्चाक्षर मंत्र के उस उस बीजाक्षर का शिष्य के उस उस स्थान में प्रविलापनपूर्वक निवेश करते हुए, जो अङ्गतत्त्व और लिङ्ग-तत्त्व प्रतिपादित हैं, उनके सामरस्य को स्वयं समझकर शास्त्रोक्त रीति से पञ्चाक्षर महामन्त्र के प्रत्येक अक्षर के अर्थ का शिष्य को तत्त्वोपदेश करे । श्रीगुरु इस प्रकार शिष्य को मन्त्रार्थ का बोध कराए— पञ्चाक्षर मंत्र के तीन अंश हैं— 'नमः',

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

बहिर्दहरदेशे च हृदये लिङ्गधारणात् ।
क्रमागतेन मार्गेण कृताङ्गन्यासवान् गुरुः ।।
सकलीकृत्य देहं स्वं प्रविलापनपुरःसरम् ।
तत्तद्बीजाक्षरं न्यस्य तत्तत्स्थानेऽपि बुद्धिमान् ।।
अङ्गतत्त्वानि यान्याहुर्लिङ्गतत्त्वानि यानि च ।।
सामरस्यं तयोर्ज्ञात्वा शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
पञ्चाक्षरार्थतश्चेममर्थं शिष्यस्य बोधयेत् ।।
नमःशब्देनाङ्गतत्त्वं लिङ्गतत्त्वं शिवेति च ।
आयेत्यैक्यार्थबोधः स्यादिति मन्त्रार्थबोधकः ।। इति।

गुरुश्च लिङ्गाङ्गसामरस्यापरपर्यायलिङ्गाङ्गैक्यबोधकप्रमाणसहितपञ्चाक्षरमन्त्ररूपां षट्स्थलब्रह्मविद्यां परां प्रणवसहितपञ्चाक्षरीं कया रीत्या बोधयेदित्यादिनियमोऽप्याचार्यस्य प्रोवाचेत्यनेनोक्तः । स नियमश्च **क्रियासारादिवीरशैवीयशास्त्रे** प्रसिद्धः । तथाहि क्रियासारे त्रयोदशोपदेशे— **गुरुश्च स्वाश्रये शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्** इत्यादिना **तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम्** इत्यन्तेनोक्तः । किञ्च, तत्रैव—

'शिव' और 'आय' । '**नमः**' का अर्थ है अङ्गतत्त्व, '**शिव**' का अर्थ है लिङ्गतत्त्व, और '**आय**' का अर्थ है दोनों की एकता = अद्वय (अभिन्न) स्थिति ।

उपदेशविधि— '**प्रोवाच**' इस क्रियापद के द्वारा यह नियम समझाया गया है कि श्रीगुरु किस प्रकार प्रणवसहित पञ्चाक्षरी मन्त्रस्वरूपा उस परा विद्या का शिष्य को तत्त्वोपदेश दे, जो षट्स्थलब्रह्मविद्या है और जिसके पांचो अक्षर पृथक्-पृथक् **लिङ्गाङ्गसामरस्य** नाम से ज्ञात **लिङ्गाङ्गैक्य** के बोधक प्रमाण हैं। और वह नियम **क्रियासार** आदि वीरशैवागमसम्बद्ध शास्त्रग्रन्थों में प्रसिद्ध है । जैसा कि क्रियासार के तेरहवें उपदेश में **गुरुश्च स्वाश्रये शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्** इत्यादि से लेकर **तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम्** तक वह नियम निरूपित है और वहीं यह नियम भी निरूपित है कि श्रीगुरु प्रचुर रूप से शक्तिपात के चिह्नो की परीक्षा करे अथवा ज्ञान किंवा क्रिया द्वारा शिष्य की परीक्षा करे । जो मोह से इसके विपरीत आचरण करता है, वह दुर्बुद्धि नष्ट होता है । अतः **तत् त्वम् असि** इस महावाक्य के लिङ्गाङ्ग-सामरस्य का (तुम जीव ही वह परब्रह्म-परमशिव हो) अर्थ-बोध करानेवाली परा विद्या को प्राप्त कर उसके अनुकुल श्रुति-स्मृति पुराण आदि का श्रवण-मनन और निदिध्यासन (चिन्तन) के द्वारा विविध संशयों से मुक्त शिष्य उसका गम्भींर आशय समझता है और उसका अर्थज्ञान दृढ़ होने पर वह शिष्य मोक्ष प्राप्त करता है । जैसा कि **क्रियासार** के तेरहवें उपदेश में वर्णित है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तस्माल्लिङ्गानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूरिशः ।
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुः शिष्यं परीक्षयेत् ।
योऽन्यथा कुरुते मोहात् स विनश्यति दुर्मतिः ।।

इत्यादिनियमोऽप्युक्तः । तस्मात् तत्त्वमस्यादिमहावाक्यार्थलिङ्गाङ्गसामरस्यबोधिकां परां विद्यां प्राप्य तत्तदनुकूलश्रुतिस्मृत्यादिश्रवणमनननिदिध्यासनविध्वस्तसंशयादिः शिष्य- स्तदर्थज्ञानदार्ढ्ये मुक्तो भवति । तदुक्तं क्रियासारे त्रयोदशोपदेशे—

पञ्चाक्षरप्रभावेण सर्वकामाः समाहिताः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सर्वसञ्जीवनौषधम् ।।

पञ्चाक्षरामृतं पीत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
नाऽऽवर्तते पुनर्मर्त्यः पुनर्नाऽऽवर्तते ध्रुवम् ।। इति।

पूर्वोक्तक्रमेण प्रणवस्यापि सूक्ष्मपञ्चाक्षरात्मकत्वाद् निर्गुणब्रह्मप्रतिपादकत्वान्नकारा- दियकारान्तस्य स्थूलात्मकत्वात्, सगुणाचारादिपञ्चब्रह्मप्रतिपादकत्वात्, सगुणनिर्गुणयो- रभिन्नत्वेनोपासनाया वीरशैवाचार्यानुमतत्वात्, सिद्धान्ततस्तु नीरूपस्यैवाकारविशेषवतः साधकानुग्रहार्थं स्वीकर्तव्यत्वेन आरूढप्राप्यस्य निर्गुणस्योपासनानर्हत्वेनाऽऽरुरुक्षुतावस्थायां

"पञ्चाक्षर मन्त्र के प्रभाव से सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं । यह त्रिवार सत्य है कि वह सभी के लिए सञ्जीवन औषध है । मृत्युलोक का जीव पञ्चाक्षर मन्त्र-स्वरूप पञ्चामृत का पान कर शिवसायुज्य प्राप्त करता है और यह ध्रुव सत्य है कि वह पुनः इस संसारचक्र में फंसने के लिए नहीं लौटता, नहीं लौटता ।"

प्रणवसहित पञ्चाक्षर का उपास्यत्व— पूर्वोक्त रीति से प्रणव या ओङ्कार भी सूक्ष्म पञ्चाक्षरस्वरूप होने के कारण निर्गुणब्रह्म प्रतिपादक है और पञ्चाक्षर मन्त्र नकार से यकार तक स्थूल स्वरूप होने के कारण सगुण आचारादि-पञ्चब्रह्म-प्रतिपादक है । इस प्रकार वीरशैवाचार्य सगुण और निर्गुण ब्रह्म की अभिन्न रूप से उपासना का अनुमोदन करते हैं । सिद्धान्त रूप से निर्गुण निराकार ही आकारविशेष (लिङ्ग) के रूप में अवतीर्ण होता है, जिसकी उपासना साधकों पर अनुग्रह करने के लिए स्वीकृत है । यतः **'आरूढ'**-प्राप्य निर्गुण ब्रह्म की उपासना सम्भव नहीं है, अतः **'आरुरुक्षु'** अवस्था में सगुण उपासना का विधान किया गया है । संसार के दावानल से संतप्त जीवों को अज्ञान-बन्धन-पाश से मुक्त करने के लिए षडक्षरी परा विद्या सगुण और निर्गुण उभयविध ब्रह्म की उपासना में साधारण रूप से तारक होती है, ऐसा प्रतिपादित है । सगुण ब्रह्म की उपासना में भिन्न मन्त्र तारक होते हैं और निर्गुण ब्रह्म की उपासना में भिन्न, इस प्रकार वैयधिकरण्य से विभिन्न मन्त्रों को तारक मानना अनुचित होगा । निर्गुण ब्रह्म की उपासना में असमर्थ जीव भी सगुण ब्रह्म की उपासना

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सगुणोपासनस्य विधानात्, सगुणनिर्गुणोभयसाधारण्येन संसारदावानलपरितप्तानां पाशविच्छेदार्थं षडक्षर्यास्तारकत्ववर्णनात्, सगुणेऽन्यन्निर्गुणेऽन्यदिति वैयधिकरण्येन तारकत्वानौचित्यात्, निर्गुणोपासनायामशक्तोऽपि सगुणोपासनावसरे नित्यप्राप्ताया: प्रणवविशिष्टपञ्चाक्षर्या एव वाचकत्वेन सगुणब्रह्माऽनुशील्योपासनं कुर्यात् । यत्तु सगुणोपासनायां पञ्चाक्षर्या: षडक्षर्या एव वाच्यवाचकयोरभेदोपासना, निर्गुणोपासनायां तु प्रणवमात्रस्य वाच्यवाचकयोरभेदोपासनेति, तदविचारितरमणीयम्, सगुणनिर्गुणयोर्भेदाभावात्, साधकानुग्रहार्थमाविर्भूतशक्ते: परमेश्वस्योभयत्र साधारण्येन षडक्षर्यास्तारकत्वमिति महालिङ्गस्य परब्रह्मण एवोपासनं युक्तमिति **नीलकण्ठशिवाचार्यो**क्तत्वात् । प्रणवसहितपञ्चाक्षर-मन्त्रातिरिक्तमन्त्राणां मुक्ति-साधनत्वेनानभ्युपगमात्, **क्रियासारे** एकोनविंशोपदेशे पञ्चाक्षरेतर-मन्त्राणामनेकेषां साधनत्वप्रतिषेधात् पञ्चाक्षरस्यैव वीरशैवानां मुक्तिसाधनत्वं नान्येषामिति **नीलकण्ठशिवाचार्यै:** कण्ठत: स्पष्टमुपदिष्टत्वात्, अस्यैव महामनो: सप्तकोटिमन्त्रोत्पत्ति-स्थानत्वात्,

---

के समय उसके वाचक नित्यप्राप्त प्रणव से युक्त पञ्चाक्षरी मंत्रविद्या द्वारा सगुण ब्रह्म का अनुशीलन कर उसकी उपासना करे । कुछ लोग यह मानते हैं कि यत: प्रणव-सहित पञ्चाक्षरी (षडक्षरी) द्वारा उसे सगुण ब्रह्म का वाचक मान कर उसकी अभेदोपासना की जाती है और निर्गुण ब्रह्म की उपासना में केवल प्रणव उसका वाचक होता है, अत: केवल प्रणव द्वारा उसकी अभेदोपासना की जाती है । यह विचार समीचीन नहीं है, क्योंकि सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं है । साधकों पर अनुग्रह करने के लिए अपनी चित्शक्ति को (लिङ्ग रूप में) प्रकट होने वाले परमशिव की उपासना में समान रूप से षडक्षरी मन्त्र तारक होता है, अत: परब्रह्मस्वरूप महालिङ्ग की उपासना करना ही समीचीन है'' इस प्रकार नीलकण्ठ शिवाचार्य का मंतव्य है । प्रणवसहित पंचाक्षरी मंत्र से भिन्न अन्य मंत्र मुक्तिसाधन के रूप में मान्य नहीं है । **क्रियासार** के उन्नीसवें उपदेश में **पञ्चाक्षरेतरमन्त्राणामनेकेषां साधनत्वप्रतिषेधात् पञ्चाक्षरस्यैव वीरशैवानां मुक्तिसाधनत्वं नान्येषाम्** इस प्रकार **नीलकण्ठ शिवाचार्य** का अक्षरश: स्पष्ट उपदेश है । यही महामन्त्र सात करोड़ मन्त्रों का उत्पत्तिस्थान है । इसी मंत्र का लिङ्गाङ्गसामरस्य-स्वरूप षट्स्थल-ब्रह्म के उपदेश में विनियोग हैं । **पञ्चाक्षरार्थतश्चेममर्थं शिष्यस्य बोधयेत्** इस प्रकार श्रौत-प्रकरण में यही मंत्र पठित है और अष्टावरणों में अन्यतम घटक के रूप में श्रीकरभाष्यकार आदि इसी का समादर करते हैं । इस मन्त्र के अतिरिक्त अन्य मन्त्र को वीरशैवसंप्रदाय के किसी एक स्थान में मुक्ति का साधन मानने पर वह अष्ट आवरणों से बहिर्भूत, पृथक् होने के कारण वीरशैवों के लिए अनादरणीय, उपेक्षणीय होगा । पुराणप्रसिद्ध **सानन्द-चरित्र** की यह ख्याति है कि ''सानन्द योगीन्द्र ने इस महामंत्र के केवल उच्चारण मात्र से अट्ठाईस अग्रगण्य नरकों में अवस्थित पापी लोगों का उद्धार किया । सानन्द, शतानन्द, उपमन्यु, वसिष्ठ, वामदेव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मकषट्स्थलब्रह्मोपदेशे विनियुक्तत्वात्, **पञ्चाक्षरार्थतश्चेममर्थं शिष्यस्य बोधयेत्** इत्युक्तत्वात्, अस्यैव श्रौतप्रकरणपठितत्वात्, अष्टावरणघटकत्वेन **श्रीकरभाष्यकारा**दिभिरप्यादृतत्वाच्च एतन्मन्त्रातिरिक्तमन्त्रस्य वीरशैवैकदेशे मुक्तिसाधनत्वेनाऽनुमतत्वे तस्याऽष्टावरणबाह्यत्वाद् वीरशैवानादरणीयत्वमेव स्यात्। **सानन्दयोगीन्द्रो** महामनोरुच्चारमात्रेणाऽष्टाविंशतिनायकनरकस्थितपापिजनानुद्धृतवानिति सानन्दचरितस्य पुराणप्रसिद्धेः, **सानन्दशतानन्दोपमन्युवसिष्ठवामदेवादिमुनयो**ऽप्यनेनैव महामनुना संसिद्धमहातेजस्विनो भूत्वाऽन्ते मोक्षलक्ष्मीमपि प्राप्नुवन्तीति सुप्रसिद्धम्। ये केचिद्वीरशैवा गुरूपदिष्टमहामनुं त्यक्त्वा मन्त्रान्तरं जपन्ति, तदर्थं चानुसन्दधते, तेषां वीरशैवत्वभङ्गः स्यात्, स्याच्चाऽष्टावरणभङ्गः, तद्भङ्गे च कथं वा तेषां लिङ्गपूजाधिकारः, तदभावे कथं वा लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मकः शिवयोगः? तदभावे कथं वा तेषां मोक्षाधिकारः? तस्मात् सर्वेऽपि शिवाश्रमिणो वीरशैवा दीक्षाकाले ब्रह्मविद्गुरूपदिष्टप्रणवविशिष्टपञ्चाक्षरमन्त्रार्थमनुसन्दधानास्तदुपदेशकं गुरुं च श्रद्दधाना मुक्ता भवेयुरित्यस्माकमाशयः। न चाऽऽश्रमवैलक्षण्यादष्टावरणवैलक्षण्यं स्वीकर्तुं शक्यम्, आवरणानां द्वात्रिंशत्त्वापत्तेः।

आदि मुनि भी इसी महामंत्रजप से अत्यंत सिद्ध और महातेजस्वी हुए तथा अन्त में मोक्षलक्ष्मी का वरण किया यह सुप्रसिद्ध है"। जो कोई वीरशैव गुरु द्वारा उपदिष्ट पञ्चाक्षर महामन्त्र का परित्याग कर अन्य मन्त्र का जप और उसका अर्थानुसंधान करेंगे, वे वीरशैवधर्म से भ्रष्ट होंगे। उनका अष्टावरणभंग होगा और उसका भंग होने पर उन्हें लिङ्गपूजा का अधिकार कैसे प्राप्त होगा और उसके अभाव में वे किस प्रकार लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप शिवयोग के अधिकारी होंगे और उसके अभाव में वे किस प्रकार मोक्ष के अधिकारी होंगे? अतः शिवाश्रम के सभी अनुयायी वीरशैव-दीक्षा के समय ब्रह्मवेत्ता श्रीगुरु के द्वारा उपदिष्ट प्रणवसहित पञ्चाक्षर मन्त्र का अर्थानुसंधान करते हुए और उसके उपदेशक श्रीगुरु पर श्रद्धा रखते हुए मोक्ष के भागी हों यही हमारा अभिप्राय है। शिवाश्रम की विलक्षणता को मानकर हम अष्टावरण की विलक्षणता को स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि फिर बत्तीस (३२) आवरण मानने पडेंगे। पूर्व के तीन (ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्र्य-वानप्रस्थ) आश्रमों में आवरणों में विलक्षणता न मान कर चतुर्थ संन्यास आश्रम में अष्टावरण में विलक्षणता है ऐसा मन्तव्य तुच्छ है, क्योंकि इसमें कोई विनिगमक प्रमाण नहीं है। क्योंकि प्रथम तीन आश्रमों के आवरण भी मोक्षफल प्रदान करते हैं। सभी शिवाश्रमी (वीरशैव) मोक्ष के अधिकारी हैं। अतः **भस्मजाबालोपनिषद्** आदि उपनिषदों में उपदिष्ट संसार सागर से तारने वाले ब्रह्मविद्या और परविद्यास्वरूप महामन्त्र के उपदेष्टा ही त्रिविध (ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ) वीरशैवों द्वारा वन्दनीय, पूजनीय और उनके लिए मुक्तिदायक हैं। **स्वगुरुं गच्छेद् यथाविधि, भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य** इत्यादि **रुद्रहृदयोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्** आदि उपनिषदों में वर्णित रीति

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

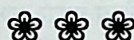
पूर्वाश्रमत्रये आवरणवैलक्षण्याभावे चतुर्थाश्रमेऽष्टावरणवैलक्षण्यमिति यत्, तत्तुच्छम्, विनिगमनाविरहात्, पूर्वाश्रमत्रयनिष्ठावरणानामपि मोक्षफलकत्वात्, सर्वेषां शिवाश्रमिणां मोक्षाधिकारात्। तस्माद् भस्मजाबालाद्युपनिषदुपदिष्टतारकत्वब्रह्मविद्यात्वविशिष्टपर-विद्यात्मकमहामनुबोधकदीक्षाशिक्षाज्ञानगुरुरेव त्रिविधवीरशैवैर्वन्द्यः = पूज्यः, कैवल्यप्रापकश्च तेषाम्। **स्वगुरुं गच्छेद्यथाविधि, भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य** इत्यादि-रुद्रहृदयोपनिषत्-कैवल्योपनिषदाद्युक्तप्रकारेण अत्याश्रमशब्दितशिवाश्रमविशिष्टाः सर्वे वीरशैवाः स्वस्वगुरूपसदनं कृत्वा तदनुभवभोगरसिका भवेयुः ॥१३॥

।। इति प्रथममुण्डके द्वितीयखण्डवीरशैवभाष्यं
हर-गुरु-चरचरणार्पितं भूयात् ।।



से 'अत्याश्रम' शब्द से संकेतित 'शिवाश्रम' के अनुयायी सभी वीरशैवों को अपने अपने गुरु की शरण में जाकर वहां के अनुभवों का रसास्वादन करना चाहिए ॥१३॥

॥ इस प्रकार प्रथम मुण्डक के द्वितीय खण्ड के साथ ही प्रथम मुण्डक और उसके वीरशैव भाष्य की हिन्दी भावार्थदीपिका पूर्ण हुई। वह परम शिव, श्रीगुरु और जंगम शिवयोगी के चरण कमलों में समर्पित है ॥



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

प्रथममुण्डके पशुकर्म-पतिकर्मसाध्ययोरनित्यनित्यलोकयोः प्राप्तिफलमुक्त्वा परविद्याख्यमहामन्वर्थं लिङ्गाङ्गसामरस्यं बोधयितुं द्वितीयमुण्डकमारभ्यते। तत्रादौ तद्घटकलिङ्गाङ्गस्वरूपज्ञानमन्तरा तत्सामरस्यज्ञानाभावाद् दृष्टान्तद्वारा तत्स्वरूपं प्रदर्श्य तत्सामरस्यं प्रदर्शयत्ययं मन्त्रः—

तदेतत् सत्यम्–
यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाऽक्षराद् विविधाः सोम्य ! भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवाऽपियन्ति ।।१।।

तदेतत्सत्यम्– यथा सुदीप्तात् पावकात् इति । **यथा** = येन प्रकारेण, **सुदीप्तात्** = काष्ठयोगेन सुष्ठु प्रज्वलितात्, **पावकाद्** = वह्नेः, **सहस्रशः** = अनेके, **विस्फुलिङ्गाः** = कणाः । कथम्भूता इत्यत आह– **सरूपा** इति सदृशरूपाः, **प्रभवन्ते** = निर्गच्छन्ति ।

अवतरण भाष्य— प्रथम मुण्डक में भक्तस्थल का निरुपण करते हुए ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय की आचार्यपरम्परा, शिष्य शौनक की जिज्ञासा और गुरु आङ्गिरस द्वारा उसके समाधान के अन्तर्गत पशुकर्म से अनित्य लोक की प्राप्ति और पतिकर्म से नित्यलोक की प्राप्ति का निरूपण किया गया है । अपरा विद्या का विषय है स्वर्गादि अनित्य लोक और परा विद्या का विषय है नित्य शिवलोक । परा विद्या प्रणवसहित पञ्चाक्षरी महाविद्या है, जिसका मुख्य तात्पर्य है लिङ्गाङ्ग-सामरस्य । उसको समझाने के लिए द्वितीय मुण्डक का उपक्रम है । लिङ्गाङ्ग-सामरस्य का ज्ञान तभी सम्भव है, जब उसके घटक लिङ्ग और अङ्ग के स्वरूप का पृथक्-पृथक् ज्ञान हो । उसके बिना सामरस्य का ज्ञान सम्भव नहीं है । अतः दृष्टान्त द्वारा लिङ्ग और अङ्ग के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए यह मन्त्र उसके सामरस्य को प्रकट कर रहा है ।

मन्त्रार्थ— यह परम सत्य है कि जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से तरह तरह की समान रंग रूप की हजारों चिनगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार हे प्रियदर्शन ! चित्शक्ति-विशिष्ट अक्षर परब्रह्मस्वरूप परम शिव से विविध प्रकार के अनादि

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

साधारणाऽसाधारणधर्माभ्यां भिन्नाऽभिन्ना इत्यर्थः । यद्यग्नेर्विस्फुलिङ्गयोरत्यन्तमेव भेदस्तदा विस्फुलिङ्गेन दह्यमानेऽपि तूलादावाग्निर्दहतीत्यभेदप्रतीत्यनुपपत्तिः स्यात्, स्याच्चाऽग्निभिन्न-जलादाविव तूलादिदाहकत्वोष्णत्वप्रकाशकत्वाद्यभावोऽपि विस्फुलिङ्गे । यद्यत्यन्तमभेदस्तदा **'अग्नेर्विस्फुलिङ्गाः'** इति भेदप्रतीत्यनुपपत्तिः स्यात् । स्याच्चाऽग्नाविव विस्फुलिङ्गेऽप्यार्द्र-काष्ठदाहकत्व-शीतनिवर्तकत्व-पाकसाधनत्वादिधर्मवत्त्वम् । तस्मादंशांशिनोर्भेदाऽभेदयोः पारमार्थिकत्वमेवाभिव्यक्तं **सरूपा** इति विशेषणेन ।

तथा **सोम्य** = हे प्रियदर्शन, **अक्षरात्** = चिच्छक्तिविशिष्टात् परशिवब्रह्मणः स्वेच्छाशक्तिवशाद् विभक्ता **विविधाः** = नानाविधाः, **भावाः** = शिवांशा अनाद्यविद्यासम्बद्धा

अविद्या से सम्बद्ध उसी के अंशस्वरूप जीव बाहर निकलते हैं और उसी परम शिव में लीन हो जाते हैं ।।१।।

व्याख्या— यथा सुदीप्तात् पावकात् इत्यादि। **यथा** = जिस प्रकार, **सुदीप्तात्** = लकड़ी के संयोग से अच्छी तरह प्रज्वलित, **पावकात्** = अग्नि से, **सहस्रशः** = असंख्य, **विस्फुलिङ्गाः** = चिनगारियां, **प्रभवन्ते** = निकलती हैं । वे अग्निकण कैसे हैं? उसके विशेषण है— **सरूपाः** = समान रंग-रूपसम्पन्न । साधारण धर्म द्वारा वे परस्पर अभिन्न भी हैं, और असाधारण धर्म द्वारा परस्पर भिन्न भी । यदि आग और उसकी चिनगारी में अत्यन्त भेद हो, तो केवल एक चिनगारी से कपास के जलने पर 'आग जलाती है' इस प्रकार की अभेद प्रतीति युक्तियुक्त नहीं होगी । ऐसी स्थिति में जिस प्रकार आग से भिन्न पानी में कपास आदि को जलाने की शक्ति, उष्णता, प्रकाश आदि का अभाव रहता है, उसी प्रकार चिनगारी में आग के उक्त धर्म नहीं होंगे । यदि आग और उसकी चिनगारी में अत्यन्त अभेद हो, तो 'आग की चिनगारियां' इस प्रकार की भेदप्रतीति नहीं हो सकती । साथ ही आग में जिस प्रकार गीली लकड़ी को जलाने की शक्ति, शीत को दूर करने की क्षमता और रसोई बनाने का सामर्थ्य होता है उसी प्रकार दोनों में अभेद मानने पर चिनगारी में भी उक्त धर्म समाविष्ट होंगे । अतः **'विस्फुलिङ्गाः'** का **'सरूपाः'** यह विशेषण यह सूचित करता है कि अग्नि अंशी है और विस्फुलिङ्ग उसके अंश । अंशी के साधारण धर्म अंश में रहते हैं, असाधारण धर्म नहीं । इस दृष्टि से चिनगारियां अग्नि से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी । **'सरूपाः'** यह विशेषण अंश और अंशी में रहनेवाले पारमार्थिक भिन्न और अभिन्न धर्म को प्रकट कर रहा है ।

हे सोम्य = प्रियदर्शन, (यथा जिस प्रकार आग की एक समान हजारों चिनगारियां आग से निकलती है), **तथा** = उसी प्रकार, **अक्षरात्** = चित्शक्ति से सम्पन्न परमशिवस्वरूप अक्षर ब्रह्म से, **विविधाः** = अपनी (शिव की ही) इच्छाशक्ति से पृथक्-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जीवनामकाः सन्तः, **प्रजायन्ते** = स्वात्मनि चिच्छक्तौ कुसूलधान्यवद् वर्तमाना अंशा विभक्ता मायाक्रान्ता जीवनामका निर्गच्छन्तीत्यर्थः।

अनाद्यविद्यासम्बन्धात् तदंशो जीवनामकः (सि. शि. ५.३४)

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेः। न तु घटादिवदुत्पद्यन्ते। **न जीवो म्रियते** (छां ६.११.३) इति, **ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशाऽनीशौ** (श्वे. १.९) इति च श्रुतेर्जीवानामजत्वात्। **तत्र चैव** = तस्मिन्नेवाऽक्षरे परशिवब्रह्मणि लिङ्गे, नद्योऽब्धाविव **अपियन्ति** = विलीयन्ते।

तदेतत् सत्यम् = न त्वसत्यमित्यर्थः। परविद्यार्थं सामरस्यानुसन्धानाभ्यासदार्ढ्य-समुदितशिवत्वाभिव्यक्तिभाजो भवन्ति,

---

पृथक् होनेवाले अनेक प्रकार के **भावाः** = अनादि अविद्या से सम्बद्ध, जीव नाम के शिव के अंश ही, **प्रजायन्ते** = प्रकट होते हैं। जिस प्रकार धान में कूटने पर उसके छिलके और धान अलग अलग होते हैं, उसी प्रकार परमात्म-स्वरूप शिव की चित्शक्ति में रहने वाले उसके ही अंश, जिसे माया (अविद्या) से आच्छादित होने के कारण जीव कहते हैं, उसी अक्षरब्रह्मस्वरूप परम शिव से अलग होकर बाहर निकलते हैं।

जैसा कि **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** अपने **सिद्धान्तशिखामणि** ग्रन्थ में कहते हैं— **अनाद्यविद्यासम्बन्धात् तदंशो जीवनामकः** (सि. शि. ५.३४) (अनादि अविद्या के सम्बन्ध से परमशिव का अंश जीव कहलाता है।) जिस प्रकार घट की उत्पत्ति होती है, उस प्रकार जीव की उत्पत्ति नहीं होती। न तो जीव का जन्म होता है, और न उसकी मृत्यु। छान्दोग्य उपनिषद् कहती है— **न जीवो म्रियते** (छां. ६.११.३) (जीव कभी नहीं मरता।)

श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है— **ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशाऽनीशौ** (श्वे. उ. १.९) (इस मन्त्र में जीव और ईश्वर की विलक्षणता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि ईश्वर और जीव में ईश्वर सर्वज्ञ है तो जीव अज्ञ (अनभिज्ञ)। किन्तु दोनों अजन्मा है, प्रथम शिव परमैश्वर्य-सम्पन्न है और दूसरा जीव अनीश (ऐश्वर्यरहित)। जीव अजन्मा होने के कारण उसकी घटादि के समान उत्पत्ति नहीं होती अपितु उसका आविर्भाव होता है।

तत्र चैव अपियन्ति = और उसी प्रकार अक्षर परशिव ब्रह्मस्वरूप लिङ्ग में विलीन होते हैं, जिस प्रकार नदियां समुद्र में विलीन होती हैं, उसी प्रकार परशिव लिङ्ग में शिवांशस्वरूप जीव विलय प्राप्त करते हैं।

तदेतत् सत्यम्— [मुण्डकोपनिषद्' के द्वितीय खण्ड के प्रारम्भ में भी **मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्** इस मन्त्र के पूर्व **तदेतत् सत्यम्** वेदमाता इस प्रकार की घोषणा करती है। फिर दोनों में सत्य क्या है? इसके सम्बन्ध में **आचार्य शंकर** से

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।
(मुण्ड.३.२.७)

इत्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । यथा विस्फुलिङ्गाग्न्योरंशांशिभावेन भेदाऽभेदयोः पारमार्थिकत्वम्, तथा लिङ्गाङ्गशब्दितशिवजीवयोरंशांशिभावेन भेदाऽभेदयोः पारमार्थिकत्वमिति भावः ।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्याऽवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।। इति (श्वे. ४.९),

उमचिगि शंकर शास्त्री मतभेद रखते हैं । **आचार्य शंकर** कहते हैं— **यदपरविद्याविषयं कर्मफललक्षणं सत्यं तदापेक्षिकम्। इदं तु पराविद्याविषयं परमार्थसल्लक्षणत्वात् । तदेतत् सत्यं यथाभूतं विद्याविषयम्, अविद्याविषयत्वाच्चाऽनृतमितरत्** । अर्थात् अपरा विद्या (वेद-वेदाङ्ग विद्या) का विषय है अनित्य स्वर्गादि कर्मफल, जो अपेक्षाकृत अर्धसत्य है, पूर्ण सत्य नहीं । उसे हम 'आपेक्षिक' सत्य कह सकते हैं, जो पुण्य-क्षय होने के बाद नष्ट होता है । परा विद्या (ब्रह्मविद्या) का विषय है ब्रह्मपद अर्थात् मोक्ष, जो परमार्थ सत्स्वरूप होने के कारण निरपेक्ष सत्य है और वही यथार्थ सत्य है, क्योंकि वह परा विद्या (यथार्थ ज्ञान) का विषय नित्य अविनश्वर सत्य है, उसका कभी नाश नहीं होता । इससे भिन्न अनित्य स्वर्गादि कर्मफल नश्वर होने के कारण सत्य नहीं, अपितु अनृत (मिथ्या) है । इसीकी भिन्न व्याख्या करते हुए **उमचिगि शंकरशास्त्री** कहते हैं—]

तदेतत् सत्यम्, न त्वसत्यमित्यर्थः । और यह सच है, असत्य नहीं' यही इसका अर्थ है । आपकी दृष्टि में द्वितीय खण्ड के आदिम मन्त्र में प्रतिपादित **कर्माणि** का अर्थ यज्ञादि (पशुकर्म) नहीं करना चाहिए अपितु पतिकर्म लिङ्गधारणादि करना चाहिए, जो परा विद्या का विषय है, अपरा विद्या का नहीं । परा विद्या का अर्थ भी **आचार्य शंकर** की दृष्टि में वेद के उत्तरभाग उपनिषदादि में प्रतिपादित ब्रह्मविद्या है, जब कि वीरशैवदर्शन की दृष्टि से उसका अर्थ प्रणवसहित पञ्चाक्षरी महामंत्रविद्या है, जिससे नित्य शिवलोक (मोक्ष) की प्राप्ति होती है । परा विद्या (प्रणव सहित पञ्चाक्षरी विद्या) का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए (लिङ्ग और अङ्ग के) सामरस्य का निरन्तर अनुशीलन, सतत अभ्यास (मंत्रजप) और मन्त्रार्थ में दृढता रखने के कारण वीरशैवभक्त शिवभाव की अनुभूति करते हैं ।

जैसा कि आगे चलकर इसी उपनिषद् के **यथा नद्यः स्यन्दमानाः** (३.२.८) इत्यादि मंत्र में प्रतिपादित है । इसका अर्थ यह है कि "जिस प्रकार अपना नाम और रूप छोडकर महानदियां बहती हुई समुद्र में विलीन होती हैं, उसी प्रकार लिङ्गाङ्गसामरस्यवेत्ता जीव अपने

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि

इति च श्रुत्यन्तरात् परशिवब्रह्मांशा एव जीवाः पुरुषाः, अंशवाचकत्वात् पादशब्दस्य, **अंशो नानाव्यपदेशाद्** इति सूत्राच्च ।

जीवब्रह्मस्वरूपैक्यं न क्वचित् सूत्रितं पुनः ।
अंशो नानेति सूत्रे तु जीवस्य ब्रह्मणोंऽशता ।।

भिन्नाऽभिन्नत्वमग्नेस्तु विस्फुलिङ्गवदीरितम् ।
न ह्यग्नेर्विस्फुलिङ्गस्य स्वरूपैक्यं प्रदर्श्यते ।
जीवस्य ब्रह्मणो येन स्वरूपैक्यं पुनर्भवेत् ।।

इति नीलकण्ठशिवाचार्योक्तेः । **विश्वा भूतानि** इति बहुवचनं जीवानां बहुत्वात् । मन्त्रे सूत्रे चैकवचनं जात्यभिप्रायम् । एवमन्यत्रापि बोध्यम् ।

सत्यज्ञानात्मकोऽनन्तो विभुरात्मा महेश्वरः ।
तस्यैवांऽशो जीवलोको हृदये प्राणिनां स्थितः ।।

नाम और रूप को छोडकर परात्पर दिव्य परम पुरुष परम शिव को प्राप्त करते हैं ।'' जिस प्रकार आग की चिनगारी और आग इन दोनों में अंश और अंशी के धर्मों की दृष्टि से भेद और अभेद दोनों की पारमार्थिक (वास्तविक) सत्ता है, उसी प्रकार यथाक्रम 'लिङ्ग' और 'अङ्ग' शब्द से संकेतित शिव और जीव दोनों में 'अंशाशीभाव' (अर्थात् अंशी और अंश के असाधारण और साधारण धर्मों) के अनुसार भेद-अभेद दोनों की यथार्थ परकता है यही इस मन्त्र का तात्पर्य है । श्रुतिवचन जीवात्मा को परब्रह्मस्वरूप परमशिव का अंश कहते हैं । **मायां तु प्रकृतिं विद्यात्** (श्वे. ४.९) इत्यादि मन्त्र के अनुसार माया को प्रकृति और माया से युक्त को महेश्वर समझना चाहिए । उसी के अवयवस्वरूप जीवों से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । **पादोऽस्य विश्वा भूतानि** इत्यादि पुरुषसूक्त के मंत्रानुसार सम्पूर्ण जीव इस परम पुरुष (शिव) के अंश हैं । यहां **'पाद'** शब्द का अर्थ अंश है, इसमें यह सूत्र प्रमाण है— **अंशो नानाव्यपदेशात्** (अंश को भिन्न भिन्न नामों से समझा जाता है)

क्रियासार में **नीलकण्ठ शिवाचार्य** कहते हैं— ''जीव और ब्रह्म दोनों की एकरूपता किसी सूत्र में प्रतिपादित नहीं है । **'अंशो नानाव्यपदेशात्'** इस सूत्र में जीव को ब्रह्म का अंश कहा गया है । इन दोनों में परस्पर भेद और अभेद आग और उसकी चिनगारी के समान प्रतिपादित है । आग और उसकी चिनगारी दोनों की एकरूपता कहीं प्रदर्शित नहीं की गयी है, उसी प्रकार जीव और शिव की एकरूपता नहीं हो सकती । (अंशाशिभाव से दोनों की 'सरूपता' हो सकती है, **'सरूपा विस्फुलिङ्गाः'** इसका तात्पर्य

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विस्फुलिङ्गा यथा वह्नेर्जायन्ते काष्ठयोगतः ।
अनादिवासनायुक्ताः क्षेत्रज्ञा इति ते स्मृताः ।।

इति शिवगीतायाम्—

शिवांशा ब्रह्मविष्णवाद्या अंशी देवः शिवः स्मृतः ।

इति, अमृतस्य लिङ्गस्य पुत्रा लिङ्गांशभूताः, विस्फुलिङ्गसमूहरूपदावाग्निज्वालावदनेककोट्यन्तरजीवशब्दितांशरूपत्वेन आविर्भूतशक्तेरपगतकोरकभावात् कुसुमादेव गन्धोपलब्धेर्वायुसम्पर्काद् विस्तृतावयववात् पुष्पगन्धवदंशा निस्सरन्ति, तद्वदिति **क्रियासारे** नीलकण्ठशिवाचार्योक्तेः, अग्नेर्विस्फुलिङ्गानिव स्वतादात्म्यापन्नान् चित्कणान् सृजत्यवति, संहरति, तिरयते, अनुगृह्णातीति **मरितोण्टदार्योक्तेः** । एतेन जीवैकत्वब्रह्मत्वजीवाऽलीकत्वजीवप्रतिबिम्बादिकत्ववादो निरस्तः, अत्र दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोः 'सहस्रशः', 'स्वरूपाः',

---

यही है।) **'विश्वा भूतानि'** इस मंत्र में बहुवचन का प्रयोग जीवों की बहुलता के कारण किया गया है । मन्त्र में 'पाद' शब्द का तथा सूत्र में 'अंश' शब्द का एक वचन का प्रयोग जाति की दृष्टि से किया गया है । इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए ।

'शिवगीता' कहती है— **सत्यज्ञानात्मक** इत्यादि । 'अस्ति' इस प्रकार जिसकी सत्ता का हमें केवल ज्ञान होता है और जिसकी सत्ता का अन्त नहीं होना, ऐसा महैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा परम शिव है, जिसका अंशस्वरूप जीवात्मा सभी देहधारी प्राणियों के हृदय में विराजमान है । जिस प्रकार इन्धन के सम्बन्ध से आग की चिनगारियां आग से बाहर निकलती हैं, उसी प्रकार अनादिवासनासम्पन्न उन जीवों को 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं । अन्य वचनानुसार महादेव को अंशी और ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं को उसका अंश कहा गया है । जीव अमृत (मृत्यु से मुक्त) शिवलिङ्ग के पुत्र और उसी के अंश स्वरूप हैं । क्रियासार में **नीलकण्ठ शिवाचार्य** कहते हैं— चिनगारियों के समूह के रूप में अवस्थित जंगल की आग की ज्वालाओं के समान करोड़ों अंश जीव नाम से शिव से प्रकट होने वाली विमर्शशक्ति से उसी प्रकार बाहर निकलते हैं, जिस प्रकार अपने कली के रूप को छोड़कर मिलने वाले सुगन्धी फूल से वायु के सम्पर्क से फूल की गन्ध कण-कण में फैलती है । **मरितोण्टदार्य** कहते हैं— "परम शिव आग की चिनगारियों के समान स्वयं से तादात्म्य स्थापित करने वाले चित्कणों (चैतन्यस्वरूप जीवों) की सृष्टि करता है, उसकी रक्षा करता है, उसका संहार करता है, उनका तिरोधान करता है, और उन पर अनुग्रह करता है ।" इस प्रतिपादन से जीवैकत्व (जीव की एकता) 'ब्रह्मत्व' (अद्वैतभाव), 'जीवालीकत्व' (जीव को मिथ्या मानना) जीव प्रतिबिम्बत्ववाद (जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानना) आदि अनेक वादों का खण्डन हो जाता है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

'विस्फुलिङ्गाः', 'विविधा भावाः' इति बहुवचननिर्देशात्, तथा **नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्। एको बहूनां यो विदधाति कामान्** इति श्रुत्यन्तरे जीवबहुत्वप्रतिपादनाच्च न जीवैकत्वं सम्भवति। शिवजीवयोरत्राऽग्निविस्फुलिङ्गसादृश्यप्रतिपादनान्न जीवालीकत्वं सम्भवति, अन्यथा विस्फुलिङ्गानां मिथ्यात्वापत्तेः। नह्यंशिनः सत्यत्वमंशस्य मिथ्यात्वं केनचिदभ्युपगम्यते। नहि जीव एव सर्वदा परब्रह्म भवितुमर्हति, अत्रांऽशांशिभावप्रतिपादनादंशांशिनोर्भेदस्याऽपि सत्त्वात्,

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥ (३.१.१)

इति वक्ष्यमाणमन्त्रे तयोर्भेदस्यापि स्फुटं प्रतीयमानत्वात्। नहि जीवो ब्रह्मणः प्रतिबिम्बो भवति, अत्र जीवब्रह्मणोरंशांशिभावनिर्देशात्। नहि बिम्बप्रतिबिम्बयोः सत्याऽसत्ययो-रंशांशिभावः संगच्छते। नह्येकत्र तयोः स्थितिः संभवति। **गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे, गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनाद्** इति श्रुतिसूत्राभ्यां तयोरेकत्र स्थितेरभ्युपगमात्। नह्येकस्यैव

इस मन्त्र में दृष्टान्तस्थल में **'सहस्रशः सरूपा विस्फुलिङ्गाः'** इस प्रकार और दार्ष्टान्तिक (उपमेय) स्थल में **विविधा भावाः** इस प्रकार बहुवचन का निर्देश है। उसी प्रकार **नित्यो नित्यानाम्** इत्यादि अन्य वेद मन्त्र में 'जीव-बहुत्व' (जीवात्माओं की अनेकता) का सिद्धान्त प्रतिपादित है, अतः 'जीवैकत्व' (जीवात्मा को एक मानना) संभव नहीं है। 'अग्नि-विस्फुलिंग' दृष्टान्त द्वारा 'जीवालीकत्व' वाद का निराकरण होता है, शिव और जीव दोनों सत्य हैं, जीव मिथ्या नहीं है, अन्यथा अग्निकणों को भी मिथ्या मानना पड़ेगा। अग्निकण आग के ही अंश हैं। कोई अंशी को सत्य और अंश को मिथ्या नहीं मानता। जीव सर्वदा परमात्मा नहीं हो सकता, क्योंकि यहां अंशांशिभाव का प्रतिपादन है और अंश और अंशी दोनों में भेद अवश्य रहता है। **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** इत्यादि अग्रिम मन्त्र में दो पक्षियों के दृष्टान्त द्वारा जीवात्मा और परमात्मा के भेद को स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है। 'जीव-प्रतिबिम्बत्व' वाद का भी निराकरण इसी से होता है। जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं है, वह उसका अंश है। यहां अंशाशिभाव है, जिसमें अंश और अंशी दोनों सत्य रहते हैं। 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' में बिम्ब सत्य रहता है, और प्रतिबिम्ब असत्य। दोनों में बिम्बप्रतिबिम्बभाव मानने पर दोनों की स्थिति एकत्र संभव नहीं होती, क्योंकि बिम्ब अन्यत्र रहता है और प्रतिबिम्ब अन्यत्र दर्पणादि में रहता है। जब कि **'गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे'** और **'गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्'** इस श्रुतिवचन और सूत्र से शिव और जीव की एकत्र स्थिति का ज्ञान होता है। ब्रह्म एक है, वह देह आदि उपाधि के भेद से पृथक् पृथक् प्रतीत होता है, इस प्रकार कहकर जीव और शिव की एकता नहीं प्रतिपादित की जा सकती, क्योंकि प्रस्तुत मन्त्र में 'अग्नि- विस्फुलिङ्ग' के सादृश्य द्वारा केवल यह प्रतिपादित

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मणो देहाद्युपाधिनिमित्तौ प्रभवाप्ययौ वक्तुं शक्येते, अत्राऽग्निविस्फुलिङ्गसादृश्येन जीवानां वस्तुतो बहिर्निर्गमनस्यैवोक्तत्वात् । किञ्च, एकस्यैव देहाद्युपाधिमात्रेण नहि **एष ह्येव साधु कर्म कारयति** इत्यादिश्रुतिविधीयमानप्रेर्यप्रेरकभावादिः संभवति । नह्येकस्यैव देवदत्तस्य गृहाद्युपाधिमात्रेण प्रेर्यप्रेरकभावनियम्यनियामकभावादिः सिद्ध्यति । नह्येकस्माद् देवदत्ताद् गृहाद्युपाधिमात्रेण स्वस्य भयादिकं दृष्टम्, लोके श्रूयते च भयं वाय्वादीनाम्— **भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्य** इति । न चोक्तदृष्टान्तेन जीवब्रह्मणोर्भेदो न सिद्ध्यति विभक्तदेशावच्छिन्नत्वेन विस्फुलिङ्गेष्ववयवत्वव्यवहारेऽपि स्वतः पुनरग्न्यात्मत्वमे--वोष्णप्रकाशत्वाविशेषादिति वाच्यम्, उष्णप्रकाशत्वाविशेषेऽप्यसाधारणधर्मविशेषात्,

---

किया गया है कि 'शिवांशस्वरूप जीव शिव से बाहर निकलते हैं ।' एक को ही देहादि की उपाधि के भेद से भिन्न-भिन्न भूमिका का मानने पर **'एष ह्येव साधु कर्म कारयति'** (शिव ही जीव को सत्कर्म के लिए प्रेरित करता है) इस श्रुति-वचन द्वारा उपदिष्ट दोनों में प्रेर्यप्रेरकभाव संभव नहीं है, एक ही देवदत्त अलग-अलग घरों में रहने से घर की उपाधिभेद से प्रेरक और प्रेरित अथवा नियामक और नियंत्रित नहीं हो सकता । न तो अकेले देवदत्त में प्रेर्य-प्रेरक-भाव संभव होगा और न नियम्य-नियामक-भाव । एक ही देवदत्त द्वारा केवल भिन्न भिन्न घरों में रहने से उससे किसी को भय नहीं लगता । जबकि श्रुतियां यह प्रतिपादित करती हैं— **भीषाऽमाद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः** । परमात्मा के भय से हवा बहती है और सूर्य का उदय होता है ।

शांकर मत— इस दृष्टान्त से जीव और ब्रह्म दोनों को भिन्न भिन्न नहीं सिद्ध किया जा सकता, यद्यपि अलग स्थान पर रहने के कारण आग की चिनगारियों को अवयव (अंश) के रूप में भिन्न–भिन्न माना जा सकता है, तथापि वे अग्निस्वरूप ही हैं, क्योंकि गरमी, प्रकाश, आदि जो विशेषताएं आग की हैं, वे ही चिनगारियों की भी हैं ।

निराकरण— इस प्रकार का विचार भी समुचित नहीं है । क्योंकि यद्यपि आग और उसकी चिनगारी दोनों में गरमी, प्रकाश आदि साधारण धर्म हैं, तथापि आग में विशिष्ट असाधारण धर्म भी हैं, जो चिनगारियों में नहीं हो सकते । चिनगारी रसोई नहीं बना सकती, गीली लकड़ी नहीं जला सकती, जो आग के ही विशिष्ट असाधारण धर्म हैं । उसी प्रकार परम शिव सर्वज्ञ है, जब कि जीव अल्पज्ञ । दोनों को एक मानने पर परम शिव को भी अल्पज्ञ मानना होगा, जबकि वह सर्वज्ञ है, अल्पज्ञ नहीं । अंशस्वरूप जीव और अंशीस्वरूप शिव दोनों में कुछ अंशों में भेद और कुछ अंशों में अभेद है यही यथार्थ सत्य है ।

शांकर मत— वस्तुतः परब्रह्मस्वरूप परमात्मा निरवयव (अवयवहीन) है, उसका मुख्य अंश जीव है । इस प्रकार दोनों में अंशांशिभाव को स्वीकार करने पर दोनों में परस्पर भेद-अभेद की यथार्थता सिद्ध हो सकती है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विस्फुलिङ्गनिष्ठविस्फुलिङ्गत्वपाकासाधनत्वार्द्रकाष्ठादाहकत्वादिविशेषाद् भेदः सिद्ध्यति, अन्यथा किञ्चिज्ज्ञत्वादयोऽपि ब्रह्मणि संभवेयुः। तस्मादंशांशिनोर्जीवब्रह्मणोर्भेदाभेदयोः पारमार्थिकत्वमत्र विहितम्। न च निरवयवस्य ब्रह्मणो मुख्यांशो जीवो भवति, येनांऽशांशिभावेन भेदाऽभेदयोः पारमार्थिकत्वं सिद्ध्येदिति वाच्यम्, प्राकृतावयवाभावेऽप्यप्राकृतावयवसद्भावात्, तस्य शक्तेरघटितघटनापटीयस्त्वात्, **यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः, स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः,**

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

इत्यादिषु निगमागमेषु तस्य नित्याङ्गसद्भावस्य वर्णनात्। ननु जीवस्येश्वरांशत्वाभ्युपगमे तदीयसंसारदुःखेनेश्वरस्यापि दुःखित्वं स्यात्, यथा हस्तपाद्यवयवगतदुःखेनांऽशिनो देवदत्तस्य दुःखित्वमिति चेन्न; शुद्धशिवांशात्मनः स्थूलादिमलावृतत्वेऽप्यंशिनः शिवस्य

निराकरण— इस प्रकार का विचार रखना भी ठीक नहीं है, यद्यपि परमात्मा जो निरवयव है, उसके हस्त-पादादि प्राकृत अवयव भले ही न हों, किन्तु अप्राकृत अवयव उसमें अवश्य विद्यमान हैं, क्योंकि उसकी विमर्शशक्ति अघटित-घटना-पटीयसी है। वह उन घटनाओं का सृजन कर सकती है, जो पहिले कभी न घटी हों। '**यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः**', '**स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः**' '**सर्वज्ञता तृप्तिरनात्मबोधः**' इत्यादि निगम और आगम-ग्रन्थों के वचनों में उसमें नित्य विद्यमान सर्वज्ञता आदि अंगों का वर्णन उपलब्ध है।

शांकर मत— जीव को ईश्वर का अंश मानने पर जिस प्रकार जीव संसार में पड़कर दुखी होता है, उसी प्रकार ईश्वर को भी उसे मानना पड़ेगा। जिस प्रकार देवदत्त के हाथ पैर इत्यादि अवयवों में दुःख उभरने पर उसकी अनुभूति देहधारी देवदत्त को होती है, उसी प्रकार अंशस्वरूप जीव के दुःख की अनुभूति अंशी ईश्वर को भी होने लगेगी।

निराकरण— यह सम्भव नहीं है। क्योंकि दुःख का कारण अज्ञानस्वरूप मल का आवरण शुद्ध शिव के अंशस्वरूप जीव में रहता है, जिससे वह दुःखी रहता है। परन्तु अंशी शिव सर्वज्ञ है, उसमें अज्ञान-मल का लवलेश भी नहीं है। दुःख उस अज्ञान का परिणाम है, जिसे हम 'मल' कहते हैं। सर्वज्ञ शिव में अज्ञान नहीं रहता, अल्पज्ञ जीव में वह रहता है, अतः सर्वज्ञ शिव दुखी नहीं होता, अल्पज्ञ जीव होता है। यही बात '**तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति**' (३.१.१) इत्यादि मन्त्र द्वारा आगे समझायी गयी है। और साथ ही हम अज्ञानस्वरूप त्रिविध मल से आवृत जीव का शिव के अंश के रूप में शिव से अभेद स्थापित नहीं करते, अपितु जिस जीव का अन्तःकरण त्रिविध दीक्षा द्वारा निर्मल होता है, जिसके अन्तःकरण का त्रिविध मल धुल जाता है, उस शुद्ध निर्मल

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तदभावात्, दुःखादेर्मलकार्यत्वान्नेश्वरस्य दुःखित्वम्। **तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योऽभिचाकशीति** इत्यत्रैव वक्ष्यमाणत्वात्। किञ्च, नहि वयं मलत्रयावृतस्य जीवस्य शिवांशभावेनाऽभेदं प्रतिपादयामः, किन्तु दीक्षात्रयविगलितमलत्रयस्य शुद्धस्याऽऽत्मनः शिवांशभावेनाऽभेदं प्रतिपादयामः। तदुक्त**मनुभवसूत्रे**—

आत्माऽयं केवलः शुद्धः शिवस्यांऽशः सदाऽमलः।
नित्यो निरञ्जनः शान्तस्तस्मादात्मा स्वयं शिवः॥ इति।

अयमेव शुद्धात्माऽङ्गशब्देन व्यवह्रियते। सिद्धान्तशास्त्रे **अं शिवं गच्छति** इति निर्वचनात्, **चिद्वत्तच्छक्तिसंकोचान्मलावृतः संसारी** इति शक्तिसूत्रस्थितेः, **प्रकाशादिवन्नैवं पर** इति ब्रह्मसूत्रस्थितेश्च न जीवसंसारदुःखेनेश्वरस्य दुःखित्वम्, अंशात्मनाऽपि शुद्धस्याऽमलत्वेन सांसारिकप्राकृतगुणाभावे(वः) किमु वक्तव्यमंशिनः परमशुद्धस्य परशिवब्रह्मणस्तदभाव इति। परमते जीवानां कल्पितत्वेन नाऽक्षरब्रह्मसादृश्यम्, अपरमते जीवानां घटादिवज्जन्यत्वेन नाऽक्षरसादृश्यम्। तस्मात् परापरव्याख्यानमेतन्मन्त्रतात्पर्य-विरुद्धमेवेति सुधीभिरवलोकनीयम्॥१॥

शिवांशस्वरूप जीव का शिव से अभेद स्थापित करते हैं। जैसा कि **अनुभवसूत्र** में **'आत्माऽयं केवलं शुद्धः'** इत्यादि सूत्र द्वारा यह प्रतिपादित है कि 'यतः यह मलत्रय से मुक्त निर्मल शुद्ध जीवात्मा शिव का अंश है, अतः यह नित्य निरंजन शांत स्वयं परमात्मस्वरूप परम शिव ही है।' इसी शुद्ध जीवात्मा को अङ्ग कहते हैं। **अं = शिवं गच्छति' इति अङ्गः**। (जो 'अ' अर्थात् शिव को प्राप्त करता है, वह जीवात्मा 'अंग' कहलाता है।) यही 'अंग' शब्द का निर्वचन है। शक्तिसूत्र कहता है— **चिद्वत् तच्छक्ति-संकोचाद् मलावृतः संसारी**। चिति परमात्मा की विकसित विमर्श-शक्ति है और चित्त उसकी संकुचित-शक्ति। जीव के उस संकुचित शक्तिसम्पन्न चित्त में जब त्रिविध मल (अज्ञान) रहता है अर्थात् जब जीवात्मा का चित्त मलावृत रहता है, तब वह संसरणशील संसार में जन्म-मरण चक्र के बन्धन पड़कर संसारी कहलाता है। **'ब्रह्मसूत्र'** कहता है— **'प्रकाशादिवन्नैवं परः'** जिस प्रकार प्रकाशस्वरूप शिव है, उस प्रकार जीव नहीं होता। अतः जीव के सांसारिक के दुःखों से ईश्वर दुःखी नहीं होता। जब अंशस्वरूप जीवात्मा भी मलत्रय से मुक्त होकर शुद्ध और निर्मल हो जाता है, सांसारिक प्राकृत गुणों से मुक्त रहता है, तब अंशी के रूप में अवस्थित परम शुद्ध (अत्यन्त निर्मल) परब्रह्मस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा में प्राकृत गुण कैसे रह सकते हैं?

परमत में जो जीवों को कल्पित मानते हैं, अर्थात् आभासमात्र मानते हैं, वे अक्षर-ब्रह्मस्वरूप परमात्मा से सादृश्य नहीं स्थापित कर सकते। इसी प्रकार जो जीवों की उत्पत्ति घटादि के समान मानते हैं, उस **अपर मत** में भी जीव की तुलना अक्षरब्रह्म से नहीं की जा सकती। इस प्रकार पर और अपर मत में विहित इस मन्त्र की व्याख्या इस मन्त्र के वास्तविक तात्पर्य के विरुद्ध है, इसका सुधी जन विचार करें॥१॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

संक्षेपेणोक्तपरविद्याघटकमक्षरशब्दवाच्यं परशिवब्रह्मस्वरूपमेव विशदयति—

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याऽभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ।।२।।

दिव्य इति। **हि** यस्मात्, **दिव्यः** = दिवि स्वतन्त्रस्वप्रकाशताशक्तौ तिष्ठतीति दिव्यः। **वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्** (श्वे. ३.८) इति श्रुतेः स्वशक्तिस्वस्थतादशायाम् **अस्मि, प्रकाशे, नन्दामि** इति स्वस्वरूपानुभवशक्तिविशिष्ट इत्यर्थः, अन्यथा जडत्वापत्तिर्दुर्बारा स्यात्। **अमूर्तः** = अपरिच्छिन्नपरिमाणवान्। **पुरुषः** = पुरुषपदवाच्यः। **सबाह्याभ्यन्तरः** = यद् बाह्यं स्थूलमाभ्यन्तरं च शरीरं तेन

अवतरण भाष्य— अग्रिम मन्त्र में परा विद्या के घटक 'अक्षर' शब्द से संकेतित परमशिव स्वरूप परब्रह्म का स्वरूप विशद रूप से विवेचित है—

मन्त्रार्थ– **स्वस्वरूप-स्वप्रकाश-शक्तिसम्पन्न, अपरिच्छिन्न, 'पुरुष'पदवाच्य, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए बाह्य इष्टलिंगादि और आंतर रूप में परिच्छिन्न, जन्मरहित, पञ्चप्राणशून्य, संकल्प-विकल्पात्मक मन से रहित अत एव सदा निर्मल, 'परात्पर' अक्षर ब्रह्म से भी परे परम शिव विराजमान है ।।२।।**

व्याख्या— **'दिव्य'** इति। **हि परतः अक्षरात् अपि परः** = जिससे समस्त जीवों की सृष्टि होती है, उस चित्शक्तिस्वरूप अक्षर ब्रह्म से भी परे परम शिव रहता है। उसका स्वरूप कैसा है? यह 'दिव्य' आदि उसके विशेषणों से जाना जा सकता है। **हि** = क्योंकि, **दिव्यः** = वह दिव्य है, जैसा कि 'दिव्य' शब्द का निर्वचन है— **दिवि तिष्ठतीति दिव्यः**। यहाँ 'दिव्' शब्द का अर्थ है 'स्वतन्त्र स्वप्रकाश शक्ति, उसमें जो रहता है, उसे 'दिव्य' कहते हैं। श्रुति कहती है— **'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक- स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्'** (श्वेताश्व. उ. ३.८)। परम-पुरुष स्वप्रकाश-शक्ति में उसी प्रकार निश्चल एवं निस्पन्द रहता है, जिस प्रकार वृक्ष। उसी 'पुरुष' पदवाच्य परम शिव से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है। वह दिव्य पुरुष अपनी स्वतन्त्र शक्ति में अवस्थित रहकर यह अनुभव करता है— 'मैं स्वकीय शक्ति से स्वस्थ स्थिति में हूँ और स्वप्रकाश में रममाण हूँ। इस प्रकार परम पुरुष को स्वस्वरूप अनुभवशक्तिसम्पन्न न मानने पर अनिवार्य रूप से उस पर 'जडता' का दोष लगेगा। **अमूर्तः**= उसका परिमाण असीम है, अपरिच्छिन्न है, उसे नापा नहीं जा सकता। **पुरुषः** = उसे 'पुरुष' भी कहते हैं। **स- बाह्याभ्यन्तरः** = उसका बाह्य रूप इष्टलिंग आदि है और आभ्यन्तर स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है। वह दोनों स्वरूपों में अविनाभाव सम्बन्ध से रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि अणुस्वरूप में हृदयाकाश में रहने पर भी वह भक्तों पर अनुग्रह (कृपा) करने के लिए **'घृतकाठिन्य'** न्याय से इष्टलिङ्ग आदि के रूप में परिच्छिन्न

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सहाऽविनाभावेन संबन्धेन वर्तमानः । भक्तानुग्रहार्थं घृतकाठिन्यन्यायेन विराडाद्यपरपर्यायेष्टादि-लिङ्गरूपेण परिच्छिन्नपरिमाणवानपीत्यर्थः । **अणोरणीयान्महतो महीयान्** (कठवल्ली उ. २.२०) इति, **द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चाऽमूर्तं च** (बृ. २.३.१) इति च श्रुतेः, **उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया** (सि. शि. ६.३६) इति रेणुक-भगवत्पादाचार्योक्तेश्च । **अजः** = जन्मरहितः । अजपदेन **जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति** इति यास्कोक्तानां सर्वभावविकाराणां जनिमूलत्वात् तन्निषेधेन सर्वे भावविकारा निषेधिता भवन्ति । **अप्राणो हि** = प्राणशून्य एव । **अमनाः**= सङ्कल्पविकल्पात्मकमनःशून्यः । अत एव **शुभ्रः** = सदा निर्मलः । न कदाऽप्या-त्मनोंऽशस्येव मलावृतत्वमस्येत्यर्थः । **परतः** = परस्मात्, स्वविलक्षणजडरूपचित्ताऽ-परपर्यायप्रधानाविद्यामायाशब्दितकार्यापेक्षया परं चिच्छक्त्याख्यमक्षरं विद्याप्रज्ञादिशब्दितम्, उपादानकारणत्वात् । तस्मादक्षरादपि **परः**

आकार भी ग्रहण करता है, जिसके 'विराट्' आदि अपर पर्याय भी हैं । श्रुति कहती है— '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**' (कठवल्ली उ.२.२०) वह 'अणु से भी छोट्रा और 'महान्' से भी बड़ा है । वृहदारण्यक उपनिषद् कहती है— '**द्वे वावं ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चाऽमूर्तं च**' (बृ.२.३.१) । परब्रह्मस्वरूप परम शिव के दो रूप हैं— वह मूर्त (साकार) भी है और अमूर्त (निराकार) भी । श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं— '**उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया**' (सि. शि. ६.३६) परम शिव ने भक्तों को उपासना करने के लिए अपने आभ्यन्तर स्वरूप को अपनी माया से बाह्य इष्टलिंगादि रूप में सीमित, परिच्छिन्न कर दिया है । **अजः** = वह जन्म रहित है । आचार्य **यास्क** कहते हैं— 'जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति । जो जन्म लेता है, उसकी सत्ता होती है, विकास होता है, विकार, अपक्षय (ह्रास) और विनाश होता है । अर्थात् वृद्धि से लेकर विनाश तक के सभी भाव-विकार जन्ममूलक हैं । 'अजः' के द्वारा उसका निषेध करने से अजन्मा परम-शिव में इनका प्रश्न ही नहीं है । **अप्राणः** = वह प्राणशून्य है । पञ्च-प्राण देहधारी जीव का देह संचालन करते हैं, जो 'अमूर्त' (विदेह) है, उसके लिए पञ्च प्राण कोई मायने नहीं रखते । **अमनाः** = अत एव संकल्प-विकल्पात्मक मन से भी शून्य है । अत एव **शुभ्रः** = वह सदा निर्मल (मलों से मुक्त) है । जिस प्रकार परम शिव के अंशस्वरूप जीव आणव, कार्मिक और मायीय इन तीन अज्ञानस्वरूप मलों से घिरे रहते हैं, उस प्रकार परम शिव अज्ञान से आवृत नहीं रहता । क्योंकि वह 'सर्वज्ञ' है, 'अल्पज्ञ' नहीं । जीव 'अल्पज्ञ' होता है, शिव नहीं ।

परतः अक्षरात् परः = 'चित्त' चितिशक्ति का ही अपने से विलक्षण जड रूप और उसी का कार्य है । उसे प्रधान, अविद्या या माया शब्द से भी अभिहित किया जाता है । उससे परे चित्शक्ति नामक अक्षरब्रह्म है, जो समस्त संसार का उपादान कारण है । उसे

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शिवः, तदधिष्ठानत्वात्। ततो न कोऽपि पर इत्यर्थः।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।।
(श्वे. ६.६) इति।

क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः।।

न त्वचेतनजडस्वभावप्रधानमायादेरक्षरत्वं संभवति, किन्त्वजडपरशिवस्वभावरूपाया एव प्रज्ञाशक्तेरक्षरत्वम्।

पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च
(श्वे. ६.७)

प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी (श्वे. ४.१७) इति श्रुतेश्च न भ्रमितव्यम्, हरस्यैवाऽक्षरत्वममृतत्वमुक्तम्। **'अमृताक्षरं हरः'** इति श्रुत्यन्तरे, न तु त्वदभिमतचिच्छक्ताविति, हरस्वभावात् चिच्छक्तेः, तस्याऽप्यक्षरत्वात्। अत एवोक्तं **'क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या'**

विद्या, प्रज्ञा आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है। उस चित्शक्तिस्वरूप अक्षर ब्रह्म से परे परम शिव है, जो उसका अधिष्ठान है। उससे परे कोई भी नहीं है। उस परम शिव के विषय में **'तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्'** इत्यादि मन्त्र (श्वेताश्व. उ. ६.७) द्वारा श्रुति कहती है— "हम उस परमशिव को जानते हैं, जो ईश्वरों का महेश्वर और इन्द्रादि देवताओं का परम देवता प्रजापति आदि के समान रक्षकों का भी उत्कृष्ट रक्षक, सभी से परे ब्रह्माण्डाधिपति और स्तुतियोग्य है।" उसको जानकर ही उसका अंशस्वरूप जीवात्मा शाश्वत सुख प्राप्त कर सकता है। जो क्षरणशील है वह अविद्या और जो अमृत (मृत्युरहित = अविनाशी) है वह विद्या है। विद्या और अविद्या दोनों का जो स्वामी है वह उनसे भिन्न है- **क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः।** अचेतन, जड़स्वभाव प्रधान (प्रकृति) माया आदि 'अक्षर' नहीं हो सकती। किन्तु अजड़, परशिवस्वभावरूपा प्रज्ञाशक्ति 'चित्' ही अक्षर हो सकती है। श्वेताश्वतर उपनिषद् **पराऽस्य शक्तिर्विविधैव** इत्यादि (६.८) मन्त्रभाग द्वारा यह प्रतिपादित करती है कि 'परम शिव के समान उससे अभिन्न परा शक्ति भी सत्य-ज्ञान-आनन्दमयी है। नानाविधा वह स्वयम् इच्छारूपिणी है अन्तरंग में वह ज्ञानमयी है, तो बहिरंग में बल एवं क्रिया से सम्पन्न है। **प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी** जिस समय कुछ नहीं था, उस समय केवल परम शिव था। वही सूर्य का भी प्रकाशक है और उसी महाप्रकाश पुञ्जस्वरूप परम शिव के आदिवाक्य से विमर्श नामक प्राक्तन प्रज्ञा-शक्ति समस्त चराचर जगत् की सृष्टि के पूर्व ही प्रादुर्भुत हुई। (श्वेताश्वतर उ. ४.१८)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति विद्याशब्दितच्छिक्तेरक्षरत्वम्। तत्परत्वं च '**विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः**' इत्यनेनोक्तम्। तस्मादत्रापि परस्मादक्षराच्चिच्छक्तिरूपादपि परत्वं परशिवस्य निष्प्रत्यूहम्।

[**आचार्य शंकर** की व्याख्या इससे भिन्न है। इस मन्त्र के अवतरण में वह कहते हैं— "**नाम-रूप-बीज-भूताद् अव्याकृतात् स्वविकारापेक्षया पराद् अक्षरात् परं यत् सर्वोपाधिभेदवर्जितम् अक्षरस्यैव स्वरूपम् आकाशस्येव सर्वमूर्तिविवर्जितं 'नेति नेति' इत्यादिविशेषणम्**। **अक्षरात् परतः परः** की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं— "**अक्षराद् नाम-रूप-बीजोपाधिलक्षित-स्वरूपात् सर्वकार्यकरणबीजत्वेन उपलक्ष्यमाणत्वात् परं तदुपाधिलक्षणम् अव्याकृताख्यम् अक्षरं सर्वविकारेभ्यः परतोऽक्षरात् परो निरुपाधिकः पुरुष इत्यर्थः**।"

सांख्य दर्शन की 'अव्यक्त प्रकृति' अथवा वेदान्त दर्शन की 'माया' मुण्डकोपनिषद् का 'अव्याकृत' 'पर अक्षर' है। वेदान्त दर्शन का 'पर ब्रह्म' अथवा सांख्य दर्शन का 'परम पुरुष' उससे विलक्षण है। जब वह अव्यक्त प्रकृति अथवा माया के सम्पर्क में आता है, तब चराचर जगत् का जन्म होता है। नाम-रूप आदि का बीजभूत वही 'अव्याकृत' अथवा 'अव्यक्त प्रकृति' 'पर अक्षर' है। उसी के सम्पर्क से परम पुरुष अथवा 'परब्रह्म' के साथ नाम-रूप आदि की उपाधियां जुड़ती हैं और वह 'सोपाधिक' हो जाता है। वस्तुतः वह निरुपाधिक है। किसी वस्तु की उत्पत्ति ही उसकी जरा-मृत्यु-क्षरण-अपक्षय-भय-अस्थिरता आदि विकारों का कारण होती हैं। निरुपाधिक 'पर ब्रह्म' अथवा 'परम पुरुष' इन सभी विकारों से परे होने के कारण अव्याकृत अक्षर ब्रह्म से भी परमोत्कृष्ट हैं। यही इसका आशय है।

उमचिगि शंकर शास्त्री इसकी भिन्न व्याख्या इस प्रकार करते हैं— "**परतः परस्मात्, स्वविलक्षणजडस्वरूपचित्ताऽपरपर्याय-प्रधानाऽविद्या-मायाशब्दित-कार्यापेक्षया परं चिच्छत्त्याख्यमक्षरं विद्या-प्रज्ञाशब्दितम्, उपादानकारणत्वात्। तस्मादक्षरादपि परः, शिवरुद्राधिष्ठानत्वात्। ततो न कोऽपि पर इत्यर्थः**।" जिसका भावार्थ ऊपर स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार वीरशैवदर्शन की दृष्टि में 'अव्यक्त प्रकृति' अथवा 'माया' जगत् का उपादान कारण नहीं है, अपि तु चित् शक्ति उपादान कारण है और उसी को 'विद्या', 'प्रज्ञा' आदि भी कहते हैं। वही मुण्डकोपनिषद् का पर अक्षर है। उससे भी परे परमोत्कृष्ट परम शिव है। आगे वह कहते हैं—]

केवल परम शिव ही अक्षर (क्षरणरहित) और 'अमृत' (मृत्यु आदि विकारों से रहित है, चित्शक्ति 'अक्षर' और 'अमृत' नहीं हो सकती। श्रुति कहती है— '**अमृताक्षरं हरः**'। चित्शक्ति के विषय में ऐसा कोई प्रमाण नहीं है इस प्रकार का भ्रम भी नहीं पालना चाहिए। क्योंकि जो शिव का स्वभाव है, वही चित्शक्ति का भी है। अविद्या क्षर (क्षरणशील, ह्रासोन्मुख) होती है विद्या अथवा चित्शक्ति 'अमृत' है, इस आशय से श्रुति कहती है— '**क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या**'। अविद्या (माया) और चित्शक्ति अथवा विद्या से सम्पन्न

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परमते चिच्छक्तिस्वरूपमात्रस्य ब्रह्मत्वमस्मन्मते तद्विशिष्टस्य ब्रह्मत्वमिति विशेष: । तदुक्तं केनोपनिषच्छाङ्करभाष्ये— **चिच्छक्तिस्वरूपमात्र: प्रत्ययैरेव प्रत्ययेष्ववशिष्टतया लक्ष्यते । नान्य(द्)द्वारमात्मनो विज्ञानाय** इति ।

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।
तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा ।। इति,
(सि. शि. २०.३८)

स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवाऽमला ।

इति च सिद्धान्तशिखामणि-कूर्मपुराणादिषूक्तत्वात् चिच्छक्तिविशिष्टं ब्रह्मेति निर्णीयते । अत एवोक्तं शिवाधिक्यरत्नावलिकारैरपि—

भाष्ये शङ्करनिर्मिते निगदिता ब्रह्मेति चिद्या परा
सा शक्तिर्भवति प्रभोर्मुररिपु(पो)र्ब्रह्मेति निर्धारितम् ।

परम शिव ही होता है, जैसा कि श्रुतिवचन है— **'विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्य:'** । उस चित्शक्तिस्वरूप परम अक्षर से भी परमोत्कृष्ट परम शिव है । परमशिव में जन्म-मरणादि का कोई विकार न होने से वह 'निष्प्रत्यूह' अविकारी है । 'परमत' (शांकर मत) से 'अस्मन्मत' (वीरशैव मत) में यही विशेषता है कि जहां शांकर मत ब्रह्म को चिन्मात्रस्वरूप मानता है, वहीं हमारे वीरशैव मत में चित्शक्ति- विशिष्ट परम शिव परब्रह्म है । केनोपनिषद् के भाष्य में आचार्य शंकर कहते हैं— **''चित्शक्तिस्वरूपमात्र: प्रत्ययैरेव प्रत्ययेषु अवशिष्टतया लक्ष्यते । नान्य(द्)द्वार- मात्मनो विज्ञानाय ।''** अर्थात् पर ब्रह्म परमात्मा केवल चित्शक्ति के रूप में प्रत्ययों (अनुभवों) से प्रत्ययों में अवशिष्ट रहता है । परब्रह्म-परमात्मा का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्मानुभूति (स्वप्रत्यय) के अतिरिक्त अन्य कोई द्वार नहीं है । वीरशैव दर्शन का ध्रुव मत है कि चित्शक्तिविशिष्ट परम शिव ही परब्रह्म है, केवल चित्स्वरूप नहीं । 'सिद्धान्तशिखामणि' के अनुसार जिस प्रकार ''चन्द्र में शाश्वत रूप से विद्यमान उसकी प्रकाशशक्ति ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) जगत् के समस्त पदार्थों को आलोकित करती है, उसी प्रकार विमर्शस्वरूपिणी चित्शक्ति स्वयंप्रकाश परमशिवस्वरूप परब्रह्म में अविनाभावसम्बन्ध से शाश्वत रूप में रहती हुई समस्त जगत् के पदार्थों का प्रकाशन करती हैं ।(सि. शि. २०.३८) । 'कूर्मपुराण' के अनुसार ''जिस प्रकार सूर्य में उसकी निर्मल प्रभा शाश्वत रूप से रहती है, उसी प्रकार स्वयंप्रकाश परम शिव में उसकी स्वाभाविक विमर्शशक्ति स्थायी रूप से रहती है ।''

'शिवाधिक्यरत्नावलि'कार कहते हैं— ''शांकर भाष्य में जिस परा चित्शक्ति को ब्रह्म कहा गया है, श्रीभाष्य में उसीको परा वैष्णवी शक्ति के रूप में परब्रह्म निर्धारित किया

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

श्रीभाष्ये स च शक्तिरङ्गजरिपोः श्रीकण्ठभाष्ये पर-
ब्रह्मत्वं परशक्तिमत्त्वमुदितं त्रय्यन्तसूत्रादिभिः ।।इति ।। २।।

ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्ध्वलिङ्गाय नम इति श्रुतिप्रतिपाद्यं षष्ठं प्रणवमयचिच्छक्तिविशिष्टं शुद्धात्माभिन्नमहालिङ्गमुक्तम् । इदानीं पञ्चाक्षरमय-शान्त्यतीताद्यपरपर्यायपरादिपञ्चशक्तिविशिष्टं लिङ्गपञ्चकं साङ्गोपाङ्गस्थलपञ्चकं चाह—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।। ३।।

एतस्मादिति। अत्र क्रमानुकूलो न पाठक्रमः, **'गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठाः'** (मु. ३.२.६) इति वक्ष्यमाणमन्त्रेण प्राणादीनां भौतिकत्वावगमाद् भूतोत्पत्त्यनन्तरं प्राणादीनामुत्पत्तिर्वक्तव्या । तथा हि— **एतस्मात् =** 'य'मयपराशक्तिविशिष्ट-प्रसादलिङ्गपर-

---

है । श्रीकण्ठभाष्य में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता इस प्रस्थानत्रयी के प्रमाण उपस्थित करते हुए चित्-शक्ति को परम शिव की शक्ति स्वीकार करते हुए चित्शक्ति-विशिष्ट परम शिव को परब्रह्म सिद्ध किया गया है'' ।।२।।

अवतरण भाष्य— पूर्व मन्त्र में उस षष्ठ महालिङ्ग का निरूपण किया गया है, जो प्रणवमय चित्शक्ति से विशिष्ट और शुद्ध जीवात्मा से अभिन्न है । **महानारायणोपनिषद्** जिसे **'ऊर्ध्वाय नमः', 'ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः'** इस प्रकार वन्दना करती है । अब पञ्चाक्षरमय उस लिङ्गपञ्चक और साङ्गोपाङ्ग स्थलपञ्चक का निरूपण किया जा रहा है, जो शान्त्यतीता अथवा परा आदि पांच शक्तियों से सम्पन्न है—

मन्त्रार्थ– **वह महालिङ्ग पञ्चब्रह्मतनु है, जिससे आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, प्राण, मन और सभी इन्द्रियों का आविर्भाव होता है ।। ३।।**

व्याख्या– एतस्माज्जायत इत्यादि । इस मन्त्र में **'एतस्माज्जायते प्राणः'** इत्यादि द्वारा **'प्राण'** से लेकर **'पृथिवी'** तक का पाठक्रम उत्पत्तिक्रम के अनुसार नहीं है । यतः इसी उपनिषद् में **'गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठाः'** (३.२.७) इस मन्त्र द्वारा यह प्रतिपादित है कि ''प्राण आदि पन्द्रह कलाएं (देह के प्रारम्भिक तत्त्व) अपने अपने कारणों (आश्रयों) में अवस्थित होती हैं ।'' इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राण आदि भौतिक हैं और पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर ही प्राण, मन और सभी इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । अतः प्रस्तुत व्याख्या मन्त्रक्रमानुसार न होकर उत्पत्तिक्रम के अनुसार की गयी है ।

महालिङ्ग पञ्चब्रह्मतनु है एवं **'नमः शिवाय'** इस पञ्चाक्षर-मन्त्र से अभिन्न है । उसके पांच मुख हैं— ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात । **'नमः शिवाय'** इस

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पर्यायेशानब्रह्मरूपादुक्तादक्षरात् प्रणवमयचिच्छक्तिविशिष्टात्, **खं** = सदाशिवाऽपरपर्याय-शरणाङ्गं चिद्व्यापनशक्तिविशिष्टमाकाशं शब्दैकगुणकम्, **जायते** = निर्गच्छति, **'ईशानादाकाशम्'** इति श्रुतेः । एतस्मात् = 'व'मयाऽऽदिशक्तिविशिष्टचरलिङ्गाऽपरपर्याय-तत्पुरुषब्रह्मरूपात्, वायुः = चित्स्पन्दनशक्तिविशिष्टप्राणलिङ्ग्यभिधानेश्वराङ्गं स्पर्शैकगुणकम्, **जायते** = आविर्भवति, **'तत्पुरुषाद् वायुः'** इति श्रुतेः । **एतस्मात्** = 'शि'-मयेच्छाशक्तिविशिष्ट-शिवलिङ्गापरपर्यायाऽघोरब्रह्मरूपात्, **ज्योतिः** = चिदुज्ज्वलनशक्तिविशिष्टप्रसादाभिधं रुद्राङ्गं तेजो रूपैकगुणकम्, **जायते**, **'अघोराद् वह्निः'** इति श्रुतेः । **एतस्मात्** = 'म'-

---

मन्त्र के पांच अक्षर व्युत्क्रम से ईशान आदि शिव की परा आदि शक्तियों की ओर संकेत करते हैं । दूसरे शब्दों में ईशान आदि लिङ्गपञ्चक की परा आदि पांच शक्तियों व्युत्क्रम से पञ्चाक्षर मन्त्र के पांच अक्षरों से अभिन्न हैं । इस प्रकार पञ्चशक्तिविशिष्ट लिङ्ग-पञ्चक से आकाशादि पञ्चभूतों की उत्पत्ति होती है तथा इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तिप्रधान परशिव- ब्रह्म से प्राण, मन, और सभी इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । भाष्यकार ने **'एतस्मात्'** सर्वनाम से इसी पञ्चब्रह्मतनु महालिङ्ग की ओर संकेत करते हुए मंत्रव्याख्या इस प्रकार की है—

१. **एतस्मात् खं जायते** = उसी अक्षर ब्रह्म से आकाश की सृष्टि होती है । **'नमः शिवाय'** इस पञ्चाक्षर मंत्र का अन्तिम अक्षर 'य' पराशक्ति से अभिन्न है । उस 'य' कार में प्रणव भी समाविष्ट है, जो चित्शक्ति से अभिन्न है । इस प्रकार परा चित्शक्ति से विशिष्ट ईशान नामक अक्षर ब्रह्म को प्रसादलिङ्ग भी कहते हैं । उस ब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम आकाश का आविर्भाव होता है । इसमें श्रुतिवचन प्रमाण है— **'ईशानादाकाशम्'**। उस आकाश का एकमात्र गुण है शब्द । वह आकाश 'चित्' की व्यापनशक्ति से विशिष्ट 'सदाशिव' अथवा 'शरण' नामक अङ्गस्थल से अभिन्न है ।

२. **एतस्माद् वायुः जायते**— उसी अक्षरब्रह्म से वायु का आविर्भाव होता है । पञ्चाक्षर मन्त्र का 'व' कार आदिशक्ति से अभिन्न है । उस आदिशक्ति से विशिष्ट चरलिङ्ग अथवा तत्पुरुष नामक अक्षरब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम वायु का प्रादुर्भाव होता है, जिसका एकमात्र गुण स्पर्श है और जो चित् की स्पन्दनशक्ति से विशिष्ट ईश्वर का प्राणलिङ्गी नामक अङ्गस्थल है । इसमें यह श्रुति-वचन प्रमाण है— **'तत्पुरुषाद् वायुः'**।

३. **एतस्माद् ज्योतिर्जायते**— उसी अक्षरब्रह्म से अग्नि का आविर्भाव होता है । पञ्चाक्षर मन्त्र का 'शि'कार इच्छाशक्ति से अभिन्न है । उस इच्छाशक्ति से विशिष्ट 'शिवलिङ्ग' अथवा 'अघोर' नामक अक्षरब्रह्म से उस तेज (ज्योति) की उत्पत्ति होती है, जिसका एकमात्र गुण रूप है और जो 'चित्' की उज्ज्वल शक्ति से विशिष्ट रुद्रदेवता का प्रसाद नामक अङ्गस्थल है । श्रुति कहती है— **'अघोराद् वह्निः'**।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मयज्ञानशक्तिविशिष्टगुरुलिङ्गाभिधानवामदेवब्रह्मरूपात्, **आपः** = चिदाप्यायनशक्तिविशिष्ट-महेशाभिधविष्ण्वङ्गं जलं रसैकगुणकं जायते, '**वामदेवादुदकम्**' इति श्रुतेः। **एतस्मात्** 'न'-मयक्रियाशक्तिविशिष्टाऽऽचारलिङ्गाभिधानसद्योजातब्रह्मरूपात्, **विश्वस्य** = जगतः, **धारिणी** = चिद्धृतिशक्तिविशिष्टात्, **पृथिवी** भक्ताभिधब्रह्माङ्गं गन्धैकगुणकम्, **जायते**, '**सद्योजातात् पृथिवी**' इति श्रुतेः । '**पञ्चाक्षरं पञ्चभूतजनकं पञ्चकलामयं व्यापठ्यते**' (त्रिपुरातापिनी. १.) इति च श्रुतेः । अत्र '**विश्वस्य धारिणी**' इति धारणशक्तिबोधकविशेषणपदमितरभूतशक्त्युप-लक्षणमिति मन्तव्यम्, '**आकाश आत्मा**' (तै. १.७.१) इत्यादि श्रुतेः, ब्रह्मणः सकाशादाकाशादेस्तदभिमानिसदाशिवादेरुत्पत्तेरवगमात्, '**य आत्मानमन्तरो यमयति**' इत्यादिश्रुतेस्तन्नियम्यत्वावगमाच्च । किञ्च, अथर्वशिखायां '**ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्** ।

---

४. **एतस्माद् आपः जायन्ते** = उसी अक्षरब्रह्म से जल की सृष्टि होती है । पञ्चाक्षर मन्त्र का 'म' कार ज्ञानशक्ति से अभिन्न है । उस ज्ञानशक्ति से विशिष्ट गुरुलिङ्ग अथवा वामदेव नामक अक्षर ब्रह्म से उस जल की सृष्टि होती है, जिसका एकमात्र गुण रस है । वह 'चित्' की आप्यायन-शक्ति से विशिष्ट विष्णु देवता का महेश नामक अङ्गस्थल है । इसमें यह श्रुति वचन प्रमाण है— '**वामदेवादुदकम्**'।

५. **एतस्माद् विश्वस्य धारिणी पृथिवी जायते** = इसी अक्षरब्रह्म से जगत् को धारण करने वाले पृथ्वी की सृष्टि होती है । पञ्चाक्षर मन्त्र का प्रथम अक्षर 'न' कार क्रिया-शक्ति से अभिन्न है । उस क्रियाशक्ति से विशिष्ट 'आचार लिङ्ग' अथवा 'सद्योजात' नामक अक्षर ब्रह्म से उस धरती की सृष्टि होती है, जिसका एकमात्र गुण गन्ध है और जो चित् की धारणशक्ति से विशिष्ट ब्रह्मदेवता का भक्त नामक अङ्गस्थल है । इसमें यह श्रुतिवचन प्रमाण है— '**सद्योजातात् पृथिवी**'।

इस प्रकार पञ्चाक्षर मन्त्र पृथिवी आदि पञ्चभूतों का जनक और परम शिव की पांच चित्कलाओं से अभिन्न है । इसमें **त्रिपुरतापिनी उपनिषद्** का यह मंत्र प्रमाण है— '**पञ्चाक्षरं पञ्चभूतजनकं पञ्चकलामयं व्यापठ्यते**' (त्रिपुर.१) । '**विश्वस्य धारिणी**' यह पृथिवी की विशेषण पृथिवी की 'धारणा-शक्ति' का बोधक है, जो परम शिव की चित्-शक्ति की अन्यतम कला है । साथ ही वह आकाश आदि अन्य भूतों की शक्तियों का उपलक्षण, द्योतक भी है । इसमें श्रुतिवचन प्रमाण है— '**आकाश आत्मा**' (तै. १.७.१) । साथ ही अक्षरब्रह्म के आकाश आदि और उनके अभिमानी देवता सदाशिव आदि के आविर्भाव का भी ज्ञान होता है । '**य आत्मानमन्तरो यमयति**' इत्यादि श्रुतियों से यह अवगत होता है कि अक्षरब्रह्म ही उनका नियामक है ।

अथर्वशिखा उपनिषद् कहती है— सभी 'ईशान का ध्यान करें । वही अत्यन्त ध्यानयोग है । सर्व की उत्पत्ति उसी से होती है । ब्रह्मदेव, विष्णु, रुद्र और इन्द्र, पञ्चभूतों

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते । सर्वाणि चेन्द्रियाणि सह भूतैर्न कारणं कारणानां ध्याता कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये' (अथर्वशिखा ३) इति चतुर्मुखादीनां भूतैः सहोत्पत्तिश्रवणात् कारणब्रह्मणां तदभावश्रवणाच्च । **एतस्मात्** = क्रियाशक्तिप्रधानपरशिवब्रह्मणः, **प्राणः** = शरीरान्तःसञ्चारी पञ्चवृत्त्यात्मकवायुः क्रियाशक्तिप्रधानः, **एतस्मात्** = इच्छाशक्तिप्रधानात् परशिवब्रह्मणः, **मनः** = सङ्कल्पाविकल्पादिलक्षणमन्तःकरणमिच्छाशक्तिप्रधानं जायते । **एतस्मात्** = ज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिप्रधानात् परशिवब्रह्मणः, **सर्वेन्द्रियाणि** = ज्ञानशक्तिप्रधानानि ज्ञानेन्द्रियाणि, क्रियाशक्तिप्रधानानि

के साथ सभी इन्द्रिय (मन, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय) उसी से उत्पन्न होते हैं । यतः कारणों के कारण की उत्पत्ति नहीं होती, अतः उससे उत्पन्न ब्रह्मादि देवता हमारे लिए ध्येय नहीं है, अपितु कारणों के भी कारण सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न सभी के ईश्वर आकाश के मध्य अवस्थित एकमात्र परम शिव ध्येय हैं। **ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्। सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते प्रसूयन्ते, सर्वाणि चेन्द्रियाणि सह भूतैर्न कारणं कारणानां ध्याता कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये** (अथर्वशिखा-३)। इस श्रुतिवचन से यह ज्ञात होता है कि 'पञ्चभूतों के साथ चतुर्मुख ब्रह्मदेव आदि की उत्पत्ति हुई है, प्राण, मन और इन्द्रियों की उत्पत्ति भूतों के साथ नहीं हुई है। इनकी उत्पत्ति साक्षात् परमशिव से पृथक् हुई है। (अत एव मन्त्र के पूर्वार्द्ध की व्याख्या इस प्रकार है)

६. **एतस्मात् प्राणो जायते**= उसी अक्षरब्रह्म से प्राण की उत्पत्ति होती है। तब परमशिवस्वरूप अक्षरब्रह्म क्रियाशक्ति प्रधान होता है, तब उससे शरीर के अन्दर सञ्चार करनेवाले पञ्चवृत्तिस्वरूप क्रियाशक्तिप्रधान पञ्चप्राणस्वरूप प्राणवायु की उत्पत्ति होती है।

[उसकी पञ्चवृत्तियों का स्वरूप इस प्रकार है—

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः ॥

हृदय, गुदा, नाभिमण्डल, कण्ठदेश और समस्त शरीर में यथाक्रम प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन पञ्च प्राणों के रूप में परशिव ब्रह्म से उत्पन्न प्राणवायु का सञ्चार शरीर के अभ्यन्तर अपनी क्रियाशीलता का परिचय देता है।]

७. **एतस्माद् मनो जायते** = उसी अक्षरब्रह्म से मन की सृष्टि होती है। जब परशिव अक्षरब्रह्म इच्छाशक्ति-प्रधान होता हैं तब उससे इच्छाशक्ति-प्रधान मन की उत्पत्ति होती है। सभी इन्द्रिय बाह्यकरण है और मन अन्तःकरण, संकल्प-विकल्प आदि करना उसका स्वरूप है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कर्मेन्द्रियाणि च जायन्ते। परशिवब्रह्ममहालिङ्गमेकमेवोपास्योपासकलीलयाङ्गलिङ्ग-पञ्चकरूपेणाऽङ्गपञ्चकरूपेण चाऽवभासते। श्रूयते च नारायणोपनिषदि— **स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतम्** (नारा. ७९) इति। स एवैष पूर्वोक्तं कारणरूपं **पुरि** चिच्छक्तिवपुषि **शयनात् पुरुष**संज्ञकं महालिङ्गमीशानादिपञ्चकारणब्रह्मरूपेण पञ्चधा भवति। किञ्च, कार्यरूपसदाशिवादिपञ्चाङ्गस्थलरूपेण पञ्चात्मा भवति। पञ्च आत्मानो अङ्गानि यस्य। ईशानादिपञ्चलिङ्गरूपस्य स पञ्चात्मेत्यर्थः, **'शिव एव स्वयं लिङ्गमात्मैवाऽङ्गस्थलं भवेत्'** इत्यनुभवसूत्रोक्तेः। उक्तं च सूतसंहितायां ज्ञानयोगखण्डे—

---

८. **एतस्मात् सर्वेन्द्रियाणि जायन्ते** = उसी अक्षरब्रह्म से सभी इन्द्रिय उत्पन्न होते हैं। जब परम शिवस्वरूप अक्षरब्रह्म ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिप्रधान होता है, तब उससे ज्ञानशक्ति-प्रधान ज्ञानेन्द्रिय और क्रियाशक्तिप्रधान कर्मेन्द्रियों की सृष्टि होती है[१]।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परशिव-परब्रह्म-स्वरूप महालिङ्ग एक ही है। यह अपनी लीला से उपास्य भी हैं और उपासक भी। उपास्यकोटि में वह लिङ्गपञ्चक के रूप में और उपासककोटि में वह अङ्गपञ्चक के रूप में भासमान होता है।

'नारायणोपनिषद्' का मन्त्र है— **'स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतम्'**। ("वही एकमात्र पुरुष परमशिव है, जिसने पांच प्रकार से पांच रूपों में प्रकट होकर इस सम्पूर्ण चर-अचर जगत् को अपने में समाविष्ट किया है।") (नारा. ७९) इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार है— "वही सम्पूर्ण जगत् का एकमात्र कारण है। **पुरुषः**— **'पुरि शयनात् पुरुषः'**। 'पुर्' का अर्थ शरीर होता है। यतः वह चित्शक्तिस्वरूप शरीर में शयन करता है, अतः उसे 'पुरुष' कहते हैं। **पञ्चधा** = ईशान आदि पांच कारणब्रह्म के रूप में प्रकट होता है। **पञ्चात्मा** = उसके सदाशिव आदि पांच कार्यरूप हैं, जो पांच अङ्गस्थल हैं। अत एव पांच अङ्गस्थलों के रूप में वह पञ्चात्मा भी है। **पञ्च आत्मानोऽङ्गानि यस्य स पञ्चात्मा** यही इस शब्द का समास-विग्रह है। ईशान आदि पांच लिङ्गों के रूप में भी वह पञ्चात्मा है। **'अनुभवसूत्र'** का वचन इसमें प्रमाण है—

---

१. चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा ये पांच ज्ञानशक्तिप्रधान ज्ञानेन्द्रियां हैं, जिनसे यथाक्रम रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श इन विषयों का ज्ञान होता है। वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा) और उपस्थ ये पांच क्रियाशक्तिप्रधान कर्मेन्द्रियां हैं, जिनसे क्रमशः वचन (बोलना), आदान (ग्रहण), गमन (आवागमन), मलोत्सर्ग और प्रजोत्पादन ये पांच क्रियाएं निष्पन्न होती हैं। ग्यारहवां मन इच्छाशक्तिप्रधान आन्तरिक इन्द्रिय है। उसकी सत्ता रहने पर ही ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपना अपना काम करने में समर्थ होती हैं।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एक एव शिवः साक्षात् सत्यज्ञानादिलक्षणः ।
विकाररहितः शुद्धः स्वशक्त्या पञ्चधा स्थितः ।। इति।

उक्तं च योगशिखोपनिषदि—

एकस्तम्भे नवद्वारे त्रिस्थूणे पञ्चदैवते ।
ईदृशे तु शरीरे तु मतिमान् नोपलक्षयेत् ।। इति।
(योगशिखा ७२)

उक्तं च सूतसंहितायाम् —

कार्यं ब्रह्मा महीभागे कार्यं विष्णुर्जलांशके ।
वह्निभागे तथा रुद्रो वाय्वंशे चेश्वरः स्थितः ।।
आकाशांशे शरीरे तु साक्षादेव सदाशिवः ।। इति।
ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।

इत्यनुभवसूत्रेऽपि सदाशिवादीनामङ्गत्वोपदेशात् । उक्तं च श्वेताश्वतरोपनिषदि—

मायां तु प्रकृतिं विद्याद् मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।।(श्वे. ४.९)

'शिव एव स्वयं लिङ्गमात्मैवाऽङ्गस्थलं भवेत्— 'परम शिव स्वयं ही पञ्च-लिङ्ग-स्वरूप है और पांच अङ्गस्थलों से अभिन्न आत्मस्वरूप हैं । **सूतसंहिता के ज्ञानखण्ड** में यह प्रतिपादन किया है कि— ''सत्य-ज्ञान आदि स्वरूपशाली निर्विकार परमशिव एक ही हैं, जो अपनी चित्शक्ति से स्वयं को पांच रूपों में प्रकाशित करते हैं ।''

योगशिखा उपनिषद् कहती है— ''एक स्तम्भ पर टिके हुए नौ द्वारवाले तीन स्थूणाओं से युक्त हमारे शरीर में विद्यमान परम शिव दृष्टिगोचर नहीं होता''। **'सूतसंहिता'** स्पष्टतया पञ्च भूतों के अधिष्ठाता देवताओं का विवरण इस प्रकार देती है— ''पंचभूत परम शिव का शरीर है । उनमें अन्यतम धरती में उसके अधिष्ठाता के रूप में परमशिव के कार्यस्वरूप ब्रह्मदेव विराजमान रहते हैं । उसी प्रकार जल में उसके अधिष्ठाता विष्णु, अग्नि में उसके अधिष्ठाता रुद्र और वायु में उसके अधिष्ठाता ईश्वर रहते हैं । जो परम शिव के ही कार्य हैं । आकाशशरीर में साक्षात् सदाशिव वास करते हैं । इस प्रकार उक्त पांच देवता परमशिव के पांच अङ्गस्थल हैं । **अनुभवसूत्र** भी **'ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः'** इस वचन के द्वारा उक्त पांच देवताओं को परम शिव का अङ्गस्थल ही कहता है । **श्वेताश्वतर उपनिषद्** कहती है— ''माया को परमशिव की प्रकृति और महेश्वर परमशिव को मायावी अर्थात् उस माया से सम्पन्न समझना चाहिए जिसके अंशों से यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् भरा हुआ है ।'' (श्वेता. ३.४.९)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरग्नेराप अद्भ्यः पृथिवी (तै. ब्रह्मवल्ली १.) इत्यत्र स्वातन्त्र्येणैव वियदाद्यभिमानि-सदाशिवादिदेवतानां स्वस्वोत्तरभूतजनकत्वस्य श्रूयमाणत्वात् कथं तेषामीशानादिब्रह्मजन्यत्वमिति चेदुच्यते— नहीदं वाक्यं भूत-भूताभिमानिदेवतानां स्वोत्तरभूतभौतिकोत्पादने स्वातन्त्र्यं विधत्ते, किन्तु तदधिष्ठातुः परमेश्वरस्यैवेशानादिरूपस्य, **'यः पृथिव्यां तिष्ठन्'** इत्यादिश्रुतेः। **पृथिव्याम्** = तदभिमानिदेवतायामिति बोद्धव्यम्, आकाशादेर्जडत्वात्। जीवात्मरूप-तदभिमानिदेवतानां तत्परशिवनियम्यत्वात्। तदुक्तं भगवता बादरायणेन— **'तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः'** (ब्र. सू. २.३-१३) इति। तथा च **'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'** इति श्रुतेरयमर्थः— ''चिच्छक्तिविशिष्टोर्ध्वलिङ्गात्मन ईशानरूपाद् ब्रह्मण आकाश आकाशाङ्गसदाशिवः **सम्भूत** आविर्भूतः। **आकाशात्** = आकाशाङ्गसदाशिवानुप्रविष्टात्

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि **'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी'** (तैत्ति. ब्रह्मवल्ली १) इस श्रुतिवचन के अनुसार ''परमशिव से आकाश और उसके अभिमानी देवता सदाशिव उत्पन्न हुए, जो स्वतन्त्र रूप में अपने उत्तरोत्तर वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के तथा यथाक्रम उनके अभिमानी देवता ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मदेव के जनक हैं। जब कि पञ्चब्रह्मशरीर परम शिव के पांच मुख— ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पंचभूतों की उत्पत्ति प्रतिपादित है। ऐसा कैसे संभव है?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि उपर्युक्त श्रुति स्वतन्त्ररूप से पञ्चभूत और उनके अभिमानी देवताओं को उत्तरवर्ती भूतों और उनके अभिमानी देवताओं की सृष्टि का विधान नहीं कर रही है, अपितु उनके अधिष्ठाता ईशान आदि पांच ब्रह्मस्वरूपों में अवतीर्ण परम शिव द्वारा ही सृष्टि का विधान कर रही है। इसमें **'यः पृथिव्यां तिष्ठन्'** यह श्रुतिवचन प्रमाण है। इस मन्त्र के 'पृथिवी' शब्द का अर्थ पृथ्वी की अभिमानी देवता समझना चाहिए। क्योंकि आकाश आदि भूत जड हैं, चेतन नहीं। उनके अभिमानी देवता जीवात्मा के रूप में उन पञ्च भूतों में विराजमान रहते हैं, जिनका नियामक परम शिव है। जैसा कि भगवान् बादरायण ब्रह्मसूत्र में कहते हैं— **''तदभिध्यानादेव। तल्लिङ्गात् सः''** (अ.२.पा.३.सू.१३)। अतः **''तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः''** इत्यादि श्रुति का यह अर्थ है— **तस्माद् आकाशः सम्भूतः** = चित्शक्तिविशिष्ट ऊर्ध्वालिङ्गस्वरूप ईशान ब्रह्म से आकाश और अङ्गस्थलस्वरूप उसके अभिमानी देवता सदाशिव का आविर्भाव हुआ। **आकाशाद् वायुः** = आकाश के अभिमानी देवता अङ्गस्थलस्वरूप विद्यमान सदाशिव में अनुप्रविष्ट तत्पुरुष ब्रह्म से वायु और उसके अभिमानी देवता अङ्गस्थल ईश्वर

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्पुरुषब्रह्मणः, **वायुः** = वाय्वङ्गेश्वरः सम्भूतः। **वायोः** = वाय्वङ्गेश्वरानुप्रविष्टाद् अघोरब्रह्मणः, **अग्निः** = अग्न्यङ्गरुद्रः सम्भूतः । **अग्नेः** = अग्न्यङ्गरुद्रानुप्रविष्टाद् वामदेवाख्यब्रह्मणः, **आपः** = जलाङ्गविष्णुः सम्भूतः । **अद्भ्यः** = जलाङ्गविष्णवनुप्रविष्टात् सद्योजातब्रह्मणः, **पृथिवी** = भूम्यङ्गचतुर्मुखः सम्भूत इति । तदुक्तं **शैवे**—

महेश्वरान्महाशक्तेश्चेशानाख्यः खगात्मकः ।
सम्भूतः पुरुषस्तस्मात् पवनाख्यो महाबलः ।।
तस्मादघोरः सम्भूतः ज्वलनः सर्वभक्षकः ।
जलात्मको वामदेवस्तस्माज्जातः कृपानिधिः ।
तस्माद् भूम्यात्मकः सद्योजातमूर्तिः शुभप्रदः ।। इति।

सर्वान्तर्यामिरूपेण सर्वचराचरविश्वोत्पादनसामर्थ्यं परशिवब्रह्मणः सर्वाधिष्ठातुरेव, नाऽन्यस्य कस्यचित् सदाशिवादेराकाशाद्यभिमानिनः परतन्त्रस्य । उक्तं च **स्कान्दे**—

सदाशिवः शब्दमूर्तिः स्पर्शमूर्तिर्महेश्वरः ।
रुद्रस्तेजोमयः साक्षाद् रसमूर्तिर्जनार्दनः ।।

की सृष्टि हुई । **वायोरग्निः** = वायु के अभिमानी देवता अङ्गस्थलस्वरूप ईश्वर में अनुप्रविष्ट अघोर ब्रह्म से अग्नि और उसके अभिमानी देवता अङ्गस्थलस्वरूप रुद्र प्रकट हुआ । **अग्नेरापः** = अग्नि के अभिमानी देवता अङ्गस्थल रुद्र में अनुप्रविष्ट वामदेव ब्रह्म से जल और उसके अभिमानी देवता अङ्गस्थलस्वरूप विष्णु प्रकट हुआ । **अद्भ्यः पृथिवी** = जल के अभिमानी देवता अङ्गस्थलस्वरूप विष्णु में अनुप्रविष्ट सद्योजात ब्रह्म से पृथिवी और उसके अभिमानी देवता चतुर्मुख ब्रह्मदेव अवतीर्ण हुआ । इसमें शिवपुराण के '**महेश्वरान्महाशक्तेः**' इत्यादि वचन प्रमाण हैं, जिनका आशय इस प्रकार है— ''महेश्वर परमशिव और उसकी महाशक्ति से आकाशस्वरूप ईशान ब्रह्म, उससे पवनस्वरूप तत्पुरुष, तत्पुरुष से अग्निस्वरूप सर्वभक्षक ज्वलनशील अघोर ब्रह्म, अघोर ब्रह्म से जलस्वरूप दयालु वामदेव और वामदेव से भूमिस्वरूप सद्योजात ब्रह्म अवतीर्ण हुए''।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि परशिव ब्रह्म ही सबके अन्तर्यामी हैं और एकमात्र उन्हीं में समस्त चर-अचर विश्व की उत्पत्ति की शक्ति निहित है, वे ही सब के अधिष्ठाता है । अन्य किसी आकाश आदि पञ्च भूतों के अभिमानी सदाशिव आदि देवता का वह सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि वे परतन्त्र हैं । जैसा कि '**स्कन्दपुराण**' में उल्लिखित है— 'सदाशिवः' इत्यादि । ''सदाशिव शब्द की मूर्ति, महेश्वर स्पर्श की मूर्ति, रुद्र तेज की मूर्ति, जनार्दन (विष्णु) रस की मूर्ति और चतुर्मुख ब्रह्मदेव गन्ध की मूर्ति हैं । उक्त सदाशिव आदि अङ्गदेवता, जो शब्द आदि विषयस्वरूप हैं, ईशान आदि पांच परब्रह्म परमशिव के स्वरूपों में अवस्थित

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

गन्धमूर्तिश्चतुर्वक्त्र इत्येते पञ्च मूर्तयः ।
सदाशिवादयो ह्येते पञ्चब्रह्मपदे स्थिताः ।
तेषां सृष्ट्यादयो लोकास्तदन्तर्यामिरूपतः ।। इति।

नन्वाकाशादिशब्दानाम् आकाशाद्यभिमानिदेवताधिष्ठातुरीशानादिब्रह्मणि लक्षणा-वृत्तिस्वीकारे गौरवदोषः स्यादिति चेन्न,

सेऽयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ।। (छां. ६.३.२)

इति श्रुतेरेकस्यैवाऽधिष्ठानब्रह्मणो नामरूपविभागाय सर्ववस्त्वनुप्रवेशेन आकाशादितदभिमानिदेवतावाचकशब्दवृत्तिर्मुख्यैव । यथा आत्मन ब्राह्मणादिशरीरप्रविष्टस्य ब्राह्मणादिशब्दवृत्तिर्मुख्येत्यङ्गीकारात् । तदुक्तं भगवता **बादरायणेन— 'चराचरव्यपाश्रयस्तु स्याद् व्यपदेशोऽभाक्तस्तद्भावभावित्वात्'** (ब्र. सू. २.३.९.१५) इत्यस्मिन् सूत्रे

हैं और उनके द्वारा की गयी आकाश आदि की सृष्टि वस्तुतः उनके अन्तर में विद्यमान परशिव परब्रह्म के पांच ईशान आदि ब्रह्मद्वारा ही होती है ।

प्रश्न— इस श्रुति का 'परम शिव परमात्मा से आकाश आदि की उत्पत्ति हुई', इत्यादि वाच्य अर्थ है । 'आकाश आदि के अभिमानी सदाशिव आदि अङ्ग देवता और उनके अधिष्ठाता ईशानादि परम शिव के पञ्चब्रह्मस्वरूप' यह उसका लक्ष्यार्थ होगा । (वाच्यार्थ की असंगति न होने की स्थिति में) उक्त अर्थ की निष्पत्ति में लक्षणा वृत्ति को स्वीकार करना पड़ेगा, जिसमें गौरव दोष होगा ।

उत्तर— यह उसका लक्ष्यार्थ न होकर वाच्यार्थ है । इस विषय में **छान्दोग्य उपनिषद्** का उक्त मंत्र प्रमाण है—

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ।। (छां. उ. ६.३.२)

इस वेदमन्त्र के अनुसार "एक ही अधिष्ठाता ब्रह्म सभी वस्तुओं में प्रवेश करता है और उन्हें भिन्न भिन्न नाम तथा रूप देता है । अतः आकाश आदि शब्द आकाश आदि तथा उनके अभिमानी देवता अर्थ के वाचक होने के कारण यह मुख्य अभिधा शब्दवृत्ति ही है, लक्षणा नहीं । इसका प्रमाण ब्रह्मसूत्र है। सूत्रकार भगवान् बादरायण कहते हैं— परमात्मा ब्राह्मण आदि सभी वर्णों के शरीर में जब प्रवेश करते हैं, तब ब्राह्मण आदि शब्द का मुख्य अर्थ परमात्मा ही होगा । उसका अर्थबोध अभिधा वृत्ति द्वारा होगा । वे कहते हैं— **'चराचरव्यपाश्रयस्तु स्याद् व्यपदेशोऽभाक्तस्तद्भावभावितत्वात्** (ब्र. सू. २.३. ९.१५)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

चराचरवाचिशब्दो ब्रह्मण्यभाक्त इत्युपदिष्टम् । तथैव **विशेषार्थप्रकाशिकायाम्**– **'आचारः स्यात् पृथ्वी गुरुरापः । शिव उदीर्यते तेजः । चर एव स्याद् वायुः प्रसाद आकाश इत्युदाह्रियते''** इति । **अनुभवसूत्रे**ऽप्यस्याः श्रुतेः—

आत्मन आकाशसम्भूतिराकाशाद् वायुसम्भवः ।
वायोरग्निसमुत्पत्तिरग्नेराप उदाहृताः ।।

अद्भ्यस्तु पृथ्वीसम्भूतिर्लक्षणैक्यप्रभावतः ।
ऐक्यस्थलादिभक्तान्तस्थलसम्भूतिरीरिता ।।

इत्याकाशाद्यभिमानिसदाशिवादिदेवतारूपाङ्गस्थलसृष्टिपरकत्वेनैव व्याख्याततत्वात्, **'तेषां सृष्ट्यादयो नोक्ताः'** इति पूर्वोक्तपुराणवाक्येनापीशानादिपञ्चब्रह्मणां सृष्टेर्नोक्तत्वात् तेषां कारणत्वं सदाशिवादीनां कार्यत्वमवगन्तव्यम् । उक्तं चाऽनुभवसूत्रे सदाशिवाद्यपरपर्याय-शरणादीनामाकाशाद्यङ्गत्वं **'व्योमाङ्गं शरणस्थलम्'** इत्यादिना **'भक्तं भूम्यङ्गमिष्यते'** इत्यन्तेन । कार्यत्वादेव सदाशिवादीनामेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रश्नवाक्यमुपपद्यते । **कार्यत्वं**

इस सूत्र में वे स्पष्ट कहते हैं— 'चराचरवाची समस्त शब्द ब्रह्म परमात्मा अर्थ के ही वाचक हैं । यह लाक्षणिक प्रयोग नहीं है । उसी प्रकार **विशेषार्थ- प्रकाशिका** में कहा गया है— **आचारः स्यात् पृथ्वी, गुरुरापः, शिव उदीर्यते तेजः, चर एव स्याद् वायुः, प्रसाद आकाश इत्युदाह्रियते** । आचारलिङ्ग पृथ्वी है, गुरुलिङ्ग जल है, तेजलिङ्ग शिव है, वायु जंगम (चर) लिङ्ग है और प्रसादलिङ्ग आकाश है ।'

अनुभवसूत्र में भी **'तस्माद् वा एतस्माद्'** इत्यादि श्रुति की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—

आत्मन आकाशसम्भूतिराकाशाद् वायुसम्भवः ।
वायोरग्निसमुत्पत्तिरग्नेराप उदाहृताः ।।
अद्भ्यस्तु पृथ्वीसम्भूतिर्लक्षणैक्यप्रभावतः ।
ऐक्यस्थलादिभक्तान्तस्थलसम्भूतिरीरिता ।।

इस श्रुति का तात्पर्य यह है कि परम शिव परमात्मा से आकाश आदि तथा उनके अभिमानी सदाशिव आदि देवतारूप अङ्गस्थलों की सृष्टि हुई है । ऐक्यस्थल से लेकर भक्तस्थल तक की सृष्टि इस श्रुति द्वारा वर्णित है । **'तेषां सृष्ट्यादयो नोक्ताः'** इस पूर्वोक्त पुराण वाक्य द्वारा भी यतः ईशान आदि पञ्च ब्रह्मों की सृष्टि का प्रतिपादन नहीं किया गया है, अतः उन्हें कारणब्रह्म और सदाशिव आदि को उनका कार्य समझना चाहिए । अनुभव- सूत्र में **व्योमाङ्गं शरणस्थलम्** से लेकर **'भक्तं**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नाम न वियदादिवदुत्पत्तिमत्त्वम्, किन्तु जडत्वमशुद्धत्वम् । तच्च अज्ञानादि-मलावृतत्वम् । अत एव पुरुषतत्त्वं शुद्धाशुद्धतत्त्वेषु परिगणितं **वृद्धजाबालोपनिषदि— 'माया कालो नियतिः कलाऽविद्या रागः पुरुष इति शुद्धाशुद्धानि सप्त'** इति ।

भूम्यङ्गमिष्यते' तक शरण आदि स्थलों को आकाश आदि का अङ्गस्थल कहा गया है । सदाशिव आदि उसके अपर पर्याय है ।[1]

सदाशिव आदि अभिमानी देवता ईशान आदि पांचब्रह्मस्वरूप परमशिव (महालिङ्ग) के कार्य होने के कारण ही प्रारम्भ में **'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'** (मु. १.१.३) यह शौनक द्वारा किया गया प्रश्न सुसंगत बैठता है । इसका (कार्यत्व का) तात्पर्य यह नहीं है कि जिस प्रकार ईशान आदि से आकाश आदि की उत्पत्ति होती है, उस प्रकार सदाशिव आदि की उत्पत्ति होती है । इसका तात्पर्य यह है कि उनमें जड़ता (अशुद्धि) आ जाती है, वे अज्ञान आदि मल से घिर जाते हैं । इसीलिए **'पुरुषतत्त्व'**[2] की

---

१. ॐ (प्रणवस्वरूप) अक्षरब्रह्म का सृष्टिक्रम इस प्रकार है—

क्रम	मंत्राक्षर	पञ्चब्रह्म	लिंगपञ्चक	कला या शक्ति	पञ्चभूत	विषय	देवता	शक्ति	अंगस्थल
१	य	ईशान	प्रसाद	परा (शान्त्य-तीत)	आकाश	शब्द	सदाशिव	व्यापिनी	शरण
२	वा	तत्पुरुष	चर(जंगम)	आदि(शान्ति)	वायु	स्पर्श	ईश्वर	स्पन्दन	प्राणलिंगी
३	शि	अघोर	शिव(इष्ट)	इच्छा(विद्या)	अग्नि	तेज	रुद्र	ज्वलन	प्रसादी
४.	मः	वामदेव	गुरु	ज्ञान(प्रतिष्ठा)	जल	रस	विष्णु	आप्या-यन	माहेश्वर
५	न	सद्योजात	आचार	क्रिया(निवृत्ति)	पृथ्वी	गन्ध	ब्रह्मा	धृति	भक्त
६	ॐ	परब्रह्म	महालिंग	शान्त्यतीतोत्तर (चित्)		निर्विषय		चित् शक्ति	ऐक्य

२. **पुरुषतत्त्व**—परमशिव के छत्तीस तत्त्वों में इसका बारहवा स्थान है । जिस प्रकार इन्धन के संयोग से अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार परमशिव अपनी इच्छास्वरूपा विमर्श-शक्ति के अधीन हो अपने को विभक्त करता है, और **माया** शक्ति में प्रवेश करता है । वही परम शिव का अंश जीव **'पुरुष'** कहलाता है । (कला, विद्या, राग, काल और नियति ये उसके **पांच कंचुक** हैं, जिनसे बंधा हुआ जीव (पुरुष) संसार में संसरणशील होने के कारण **संसारी** कहलाता है । प्रकाश के संकोच से परम शिव से पार्थक्य करते हुए देह में आत्मबुद्धि स्थापित करता है, **आणव मल** (अज्ञान) से घिरता है । जब वह शुभ-अशुभ वासनाओं से दूषित होता है, तब **कॉर्म मल** से आवृत होता है । शिवांशस्वरूप जीव 'अन्योन्याभाव'-लक्षण **मायीय मल** से आवृत होता है । ये त्रिविध **मल** त्रिविध **पाश** हैं । इनसे आबद्ध **संसारी जीव पशु** होता है । माया से पुरुष पर्यन्त सात तत्त्व शुद्ध-अशुद्ध तत्त्व हैं । (द्रष्टव्य-सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य (१९८९ ई., पृ. २११) ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तथैवाऽन्यत्र—

कायो जडो हि जीवः स्याज्जडाऽजडसमाह्वयः ।
अजडः परमेशानस्तयोरैक्यं जडं विना ।।

प्रतिशरीरं भिन्नोऽपि जीवात्मैकशरीरावच्छेदेनैकोऽप्याधारादिस्थानेषु पृथिव्याद्यभिमानरूपाऽशुद्धिग्रन्थिप्रभावेण चतुर्मुखादिनाम्ना व्यवह्रियते । चितिसङ्कोच-चित्ताऽपरपर्याय-पृथिव्यादित्रयोविंशतितत्त्वगर्भ-मूलकारणप्रकृत्यात्मकस्थूलदेहरूपकार्मिकं सूक्ष्मदेहरूप-मायीयकारणदेहात्मकाऽऽणावाशुद्धिरूपाऽज्ञानमलावरणस्याऽपगमे तु शुद्धात्मा साक्षाच्छिव एव भवति,

आत्माऽयं केवलः शुद्धः शिवस्यांऽशः सदाऽमलः ।
नित्यो निरञ्जनः शान्तस्तस्मादात्मा स्वयं शिवः ।।

गणना शुद्ध-अशुद्ध उभयस्वरूप सात तत्त्वों में की गयी है, जैसा कि **'वृद्धजाबालोपनिषद्'** में कहा है— 'माया, काल, नियति, कला, अविद्या, राग और पुरुष इस प्रकार सात शुद्धाशुद्ध तत्त्व हैं ।'

उसी प्रकार **अन्यत्र** कहा गया है — **'कायो जडः'** इत्यादि । ''शरीर जड़ होता है, जीव जड़-अजड़ दोनों होता है । परमेश्वर अजड (चेतन) होता है । जीव और परमेश्वर की एकता जड (अचेतन) शरीर को छोड़कर ही होती है ।'' जीवात्मा परमात्मा का अंश है । वह परमात्मा से अभिन्न, एक है । परन्तु जब वह भिन्न-भिन्न शरीर का आश्रय लेता है, तब वह भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है । जब पञ्चब्रह्मस्वरूप परम शिव पृथिवी आदि पांच भूतों का आश्रय लेते हैं, तब उनमें यह अभिमान जागता है कि ''मैं पृथ्वी का स्वामी हूँ, धृति(धैर्य)शक्ति से उसे धारण करता हूँ, क्रियाशक्ति से समस्त सृष्टि करता हूँ'' इत्यादि । यह अभिमान ही वह अशुद्धि ग्रन्थि है, जिसके प्रभाव से उसके सद्योजात आदि पांच ब्रह्मस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्मदेव आदि नामों को धारण करते हैं । देहाभिमान के कारण जीवात्मा परमात्मा से एकता स्थापित नहीं कर सकता । चित्शक्ति का संकोच ही देहाभिमान का कारण होता है, जिसका अपर पर्याय है चित्त । पृथ्वी आदि तेईस तत्त्व उसका शरीर है । देहाभिमान से जीवात्मा कार्मिक, मायीय और आणव त्रिविध अशुद्ध अज्ञान मल से आवृत होता है । जब त्रिविध मल का आवरण हट जाता है, तब निर्मल, शुद्ध जीवात्मा साक्षात् शिव ही होता है ।

'अनुभवसूत्र' कहता है— ''यह जीवात्मा केवल शुद्ध सदा निर्मल शुद्ध शिव का अंश है अतः नित्य, निरंजन शान्त स्वयं शिव ही है ।'' अस्तु, प्रसंगवश विषयान्तर से विराम लेते हुए प्रकृत विषय का हम अनुसरण करें । इसका निष्कर्ष यह है कि ब्रह्मदेव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः । अलमप्रासङ्गिकेन । प्रकृतमनुसरामः । वस्तुतः स्थूलतादिदेहतद्गत-पृथिव्याद्यभिमानरूपाऽशुद्धिविशिष्टत्वादेव शुद्धशिवांशात्मनः कार्यत्वमिति ध्येयम् । तस्मान्न जीवनित्यत्वाऽनित्यत्वबोधकश्रुत्योर्विरोधः, अशुद्ध्यात्मकबन्धदशायां जन्यत्वस्य शुद्ध्यात्मकमुक्तिदशायां नित्यत्वस्याभ्युपगमात् । **'यतः प्रसूता जगतः प्रसूती तोयेन जीवान् विससर्ज'** (महानारायण १.४), **'प्रजापतिः प्रजा असृजत'**, **यतो वा इमानि भूतानि**

आदि देव परम शिव के कार्य तभी होते हैं, जब वे स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर में पृथिवी आदि देहाभिमान करते हैं और यह देहाभिमान ही अशुद्ध अज्ञान मल का आवरण है । यह अज्ञानावरण ही विशुद्ध परमशिव के सद्योजात आदि ब्रह्मस्वरूपों का कार्य है ।[1]

अतः जो श्रुतियां जीव को नित्य कहती हैं, और जो श्रुतियां उसको अनित्य कहती हैं, उनमें परस्पर विरोध नहीं है । अशुद्धिस्वरूप बन्धन की स्थिति में उसकी 'उत्पत्ति' की संगति बैठती है और विशुद्धिस्वरूप मुक्ति की स्थिति में उसकी नित्यता् का ज्ञान होता है । **'यतः प्रसूता जगतः प्रसूती तोयेन जीवान् विससर्ज'** (महानारा. १.४),

---

१. स्वस्वरूप (आत्मस्वरूप) को विस्मृत कर देह को ही अपना स्वरूप समझना **देहाभिमान** है । परमशिव के तीन देह हैं— स्थूल, सूक्ष्म और कारण । अतः उसका **देहाभिमान** भी तीन प्रकार का होता है, कार्मिक, मायीय और आणव । वीरशैवदर्शन में चित्शक्ति का संकोच **बंधन** और उसका विकास **मोक्ष** होता है । परशिव जब स्वयं पूज्य और पूजक के रूप में लीला करना चाहता है, तब उसकी इच्छा, ज्ञान तथा क्रियाशक्तियां संकुचित होती हैं और आणव, मायीय और कार्ममल कहलाती हैं । यतः ये त्रिविध संकुचित शक्तियां बन्धन में डालती हैं, अतः **पाश** भी कहलाती हैं । दूसरे शब्दों में परशिव की इच्छाशक्ति के संकोच को 'आणव मल' कहते हैं, जिससे वह स्वयं को अपूर्ण समझता है । परशिव की ज्ञानशक्ति का संकोच 'मायीय मल (अज्ञान) है, जिससे घिरा शिवांशस्वरूप वह अपने को उससे भिन्न समझ कर शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि आदि में अपनी सत्ता का अनुभव करता है । परशिव की क्रियाशक्ति का संकोच 'कार्ममल' (अज्ञान) है, जिससे घिरा वह स्वयं को अपूर्ण समझता है । परशिव की ज्ञानशक्ति का संकोच 'मायीय मल' अज्ञान है, जिससे घिरा वह शुभाशुभ कर्म करते हुए उसके फल का भाजन होता है । महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, मन, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच तन्मात्रा और पांच महाभूत ये तेईस तत्त्व परम शिव का स्थूल शरीर है । जब परम शिव स्वस्वरूप को भूलकर पृथ्वी आदि को स्व-स्वरूप समझता है, तब उसका यह देहाभिमान उसके चतुर्मुख आदि विभिन्न नाम-रूपों को जन्म देता है । जब यह अज्ञान-मल हटता जाता है, तब वह साक्षात् शिवस्वरूप रहता है । परम शिव का त्रिविध मल से घिरा रहना ही उसका कार्यत्व है, केवल जन्म लेना कार्यत्व नहीं है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जायन्ते' इत्यादिश्रुतिभ्यः सचेतनस्य जगत उत्पत्तिराम्नायते । **'ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशाऽनीशौ'** (श्वे. १.८), **'न जीवो म्रियते'** इत्यादिश्रुतिभ्य उत्पत्तिर्नाशश्च प्रतिषिद्ध्यते । तस्मादस्य मन्त्रस्य न विवर्तवादे तात्पर्यम्, किन्तु परिणामवादे तात्पर्यम्, चिच्छक्तिविशिष्टस्य ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणत्वात् । ब्रह्मणो मायाप्रतिबिम्बतरूपेण कारणत्वे स्वेन रूपेण कारणत्वाभावे **एतस्माजयते** इत्यस्य मन्त्रस्य स्वेन रूपेण ब्रह्मणः कारणत्वप्रतिपादकस्य विरोधात् न परव्याख्यानं मन्त्रानुकूलम् । किञ्च, ब्रह्मैव यद्यन्त्यकार्यपर्यन्तेन तेन तेनाऽऽकारेण

'प्रजापतिः प्रजा असृजत्', 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतियां सचेतन विश्व की उत्पत्ति प्रतिपादित करती हैं। **ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशाऽनीशौ** (श्वेता. उ. १.८), **'न जीवो म्रियते'** इत्यादि श्रुतियों से जीवात्मा के जन्म-मरण दोनों का निषेध किया जाता है । अतः इस मन्त्र का तात्पर्य **परिणामवाद** के अनुसार समझना चाहिए **विवर्तवाद** के अनुसार नहीं ।

विवर्तवाद और परिणामवाद

[**आचार्य शङ्कर** के अनुसार पञ्चभूत, प्राण, मन और सभी इन्द्रिय अक्षरब्रह्म के विवर्त हैं । **वाचारम्भरणं विकारो नामधेयम्** (छा. उ. ६.१.४), **अनृतम्** इत्यादि श्रुति- वचनों के अनुसार पञ्चभूतों से लेकर पृथ्वी तक समस्त पदार्थ अविद्या के विषय हैं । उनका नाम और रूप वाणी का विलास है, वास्तविक नहीं । वह अनृत मिथ्या है । क्योंकि उत्पत्ति के पूर्व उनकी सत्ता नहीं होती और अनंतर वे उसी विशुद्ध अक्षरब्रह्म में समा जाते हैं । एकमात्र अक्षरब्रह्म शाश्वत सत्य है । **एतस्माज्जायते प्राणः** (२.१.३) इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं— **'कथं ते न सन्ति प्राणादय इत्युच्यते। यस्मादेतस्मादेव पुरुषान्नामरूपबीजोपाधिलक्षिताज्जायत उत्पद्यतेऽविद्याविषयविकारभूतो नामधेयोऽनृतात्मकः प्राणः । 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' (छा. उ. ६.१.४) 'अनृतम्' इति श्रुत्यन्तरात् । ....एवं मनः सर्वाणि चेन्द्रियाणि विषयाश्चैतस्मादेव जायन्ते । ....यथा च प्रागुत्पत्तेः परमार्थतोऽसन्तस्तथा प्रलीनाश्चेति द्रष्टव्याः । यथा करणानि मनश्चेन्द्रियाणि तथा शरीरविषयकारणानि भूतानि ।**

यह व्याख्या **विवर्तवाद** के अनुसार है । **वेदान्तदर्शन** कारणमात्र को सत्य और कार्यमात्र को असत्य मानता है । जिसप्रकार रज्जु में सर्प की, सींप में चांदी की, मरु-मरीचिका में जल की और खम्भे में चोर की भ्रमात्मक मिथ्या-कल्पना की जाती है, उसी प्रकार अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म में समस्त प्रपञ्च की भ्रमात्मक मिथ्याकल्पना की जाती है । अतः समस्त प्रपञ्च ब्रह्म का **विवर्त** है । **सांख्यदर्शन** के अनुसार यह समस्त दृश्य

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

न विवर्तते इत्युच्येत, तदा आकाशादीनां शशशृङ्गवत् तुच्छत्वमेव स्यात्, स्याच्च प्रागसद्रूपप्रपञ्चस्य रज्जुसर्पवद् विवर्तत्वाङ्गीकारेऽसतः शशशृङ्गादेरपि विवर्तत्वम् । तदङ्गीकारे

प्रपञ्च त्रिगुणात्मिका प्रकृति की परिणति, परिणाम है । प्रकृति नित्य है, अतः प्रपञ्च भी नित्य है । **अद्वैत वेदान्त दर्शन** के अनुसार समस्त प्रपञ्च तमःप्रधान माया का **परिणाम** है । यतः माया मिथ्या है अतः प्रपञ्च भी मिथ्या है । यतः प्रपञ्च माया का परिणाम है, अतः वह ब्रह्म का विवर्त है । '**संक्षेपशारीरिक**'कार सर्वज्ञात्म मुनि कहते हैं—

> **विवर्तवादस्य हि पूर्वभूमिर्वेदान्तवादे परिणामवादः ।**
> **व्यवस्थितेऽस्मिन् परिणामवादे स्वयं समायाति विवर्तवादः ।।**
>
> (संक्षेपशा. २.६१)

वीरशैवदर्शन शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन है, जिसके अनुसार यह व्याख्या समीचीन नहीं है । वह सृष्टिप्रक्रिया के लिए **अविकृत परिणामवाद** को स्वीकार करता है । उसके अनुसार परशिव की शक्ति के विकास से सृष्टि और उसके संकोच से प्रलय होता है । परम शिव की शक्ति उससे उसी प्रकार अभिन्न रहती है, जिस प्रकार चन्द्र से चन्द्रिका । शक्ति के संकोच अथवा विकास से परशिव में किसी प्रकार विकृति नहीं आती । यतः समस्त जगत् परमशक्ति के विकास का परिणाम है, अतः वह विकसित-शक्ति-विशिष्ट परशिव का परिणाम है । अविकारी परम शिव द्वारा सृष्टि एवं संहार होता है अतः इसे अविकृत परिणामवाद कहते हैं ।

वीरशैवदर्शन शिव से पृथ्वी तक छत्तीस तत्त्वों का विकासक्रम निरूपित करता है । इनमें परम शिव आद्य तत्त्व है । उसे जगत् की सृष्टि की जो इच्छा शक्ति जाग्रत् होती है, उस इच्छाशक्ति को **विमर्शशक्ति** कहते हैं । उस इच्छाशक्तिरूपा विमर्शशक्ति के दो भाग हैं— आन्तर ज्ञानशक्ति और बाह्य क्रियाशक्ति । इसप्रकार प्रकाशस्वरूप परम शिव की इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपा विमर्शशक्ति परम शिव से अभिन्न मानने के कारण वीरशैवदर्शन को **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन** कहते हैं । परम शिव के शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति और पुरुष ये बारह तत्त्व त्रिगुणातीत हैं । तेरहवां तत्त्व प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । परम शिव की कार्योन्मुख इच्छाशक्ति मायाशक्ति में प्रवेश कर सत्त्व, रज और तमोगुण की साम्यावस्थास्वरूपिणी प्रकृति बन जाती है, और सुख-दुःख-मोहात्मक त्रिगुणात्मक प्रपञ्च की सृष्टि करती है । महत्तत्त्व से पृथ्वी तक तेईस तत्त्वों का मूल कारण यही प्रकृतितत्त्व है, प्रकृतिरूप में अवस्थित चित्शक्तिविशिष्ट परमशिवस्वरूप अक्षरब्रह्म से पञ्चभूत, प्राण, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय प्रादुर्भूत हुए हैं । उक्त सत्रह तत्त्व उसी अविकारी चित्शक्तिविशिष्ट परमशिवस्वरूप अक्षर- ब्रह्म का परिणाम है यही इस मंत्र का तात्पर्य है ।]

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आकाशादिसत्यशशशृङ्गादितुच्छयोर्महद् वैलक्षण्यं न स्यात् । किञ्च, अधिष्ठानस्याऽन्यथाभानस्य विवर्तत्वे चराचरप्रपञ्चातिरिक्तत्वेन ब्रह्मणोऽसत्त्वप्रसङ्गः । तत्त्वे **'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः'** इत्यादिश्रुतिविरोधः, कार्यकारणभावबोधकाऽनेकश्रुतिविरोधश्च । किञ्च, अन्यथात्वं भिन्नत्वमिति चेत्, तस्याऽनुयोगित्वप्रतियोगित्वयोर्वक्तव्यत्वात्, ब्रह्मरूपाधिष्ठानप्रतियोगिकभेदस्यैवाऽप्रसिद्धेः,

---

परशिवब्रह्म की उभयकारणता

इसी अविकृत परिणामवाद को स्वीकार कर अक्षर-ब्रह्म का सृष्टि-क्रम सुसंगत बैठता है । सूक्ष्म चिदचिद्रूपशक्तिविशिष्ट परशिव सृष्टि में कारण है, और स्थूल चिदचिद्रूप शक्तिविशिष्ट प्रपञ्च उसका कार्य है । शिव से पृथिवी तक छत्तीस तत्त्व परम शिव का ही विलास है । ऊर्णनाभिदृष्टान्त से यह सिद्ध है कि अक्षरब्रह्मस्वरूप परमशिव अभिन्न रूप से समस्त प्रपञ्च का निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी ।

[**अद्वैत-वेदान्त-दर्शन** की दृष्टि से दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् माया के कारण ब्रह्म में भासमान ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है ।] **वीरशैवदर्शन** इसे स्वीकार नहीं करता । ऐसा मानने पर ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जगत् का कारण होगा, स्वयं ब्रह्म नहीं । जब कि **एतस्माद् जायते** इत्यादि मन्त्र ब्रह्म को साक्षात् जगत् के कारण के रूप में निरूपित करता है, जो प्रतिबिम्बवाद का विरोधी है । अतः वेदान्तदर्शनसम्मत व्याख्या मन्त्रानुसारिणी नहीं है ।

आकाश से लेकर कर्मेन्द्रिय तक प्रत्येक को उस उस आकार में साक्षात् ब्रह्म का विवर्त माने, तो जिस प्रकार शश शृंग की सत्ता काल्पनिक होती है, उसी प्रकार आकाशादि समस्त प्रपञ्च को काल्पनिक मानना पड़ेगा । इस असत् प्रपञ्च को ब्रह्म के विवर्त रूप में मान्यता देने पर शश शृंग को भी 'विवर्त' मानना पड़ेगा । [**अद्वैत वेदान्तदर्शन** केवल कारणस्वरूप ब्रह्म को सत्य मानता है । कार्यस्वरूप प्रपञ्च को नहीं, जब कि **वीरशैव-दर्शन** जगत् को भी सत्य मानता है । इस दृष्टि से विचार करने पर] आकाश से लेकर पृथ्वी तक के पदार्थ जो सत्य है, और शशशृंग जो असत्य है, दोनों में कोई अन्तर तथा वैलक्षण्व नहीं होगा । जगत् का अधिष्ठान ब्रह्म है । उस अधिष्ठान का ही अन्यथा भान प्रातिभासिक विवर्त (जगत्) मानने पर चर-अचर प्रपञ्च के अतिरिक्त ब्रह्म की सत्ता ही मिट जायगी । जब कि **विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः** आदि श्रुतिवचन, जो विश्वाधिक परमात्मा को विश्व का निमित्तकारण कहते हैं, उसका तथा कार्य-कारण-ज्ञापक अन्य श्रुतियों का विरोध होगा । यदि अन्यथाभाव का अर्थ ब्रह्मभिन्न करें, तो अनुयोगित्व और प्रतियोगित्व दोनों को भिन्न-भिन्न कहना पड़ेगा । जिसका अभाव होता है, वह प्रतियोगी होता है । ब्रह्मरूप अधिष्ठान जगत् के प्रतियोगी के रूप में अप्रसिद्ध हैं । वेदान्तमत में आकाशादि प्रपञ्च ही अभावकोटि में है, अतः वह ब्रह्म का अनुयोगी नहीं हो सकता । निर्धर्मक, धर्मनिरपेक्ष ब्रह्म का कोई

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तन्मते आकाशादिप्रपञ्चस्यैवाऽभावादनु-योगित्वासिद्धेः, ब्रह्मणो निर्धर्मकत्वात् प्रतियोगित्वासिद्धेरन्यथात्वस्याऽप्रसिद्धौ तद्भानस्याऽप्य-प्रसिद्धेः। किञ्च, निर्विशेषं ब्रह्म कथं तत्तदाकारेण विवर्तते? इत्यत्र दृष्टान्ताभावात्। रज्जुसर्पादिवत् किञ्चिद्विशेषाङ्गीकारे निर्विशेषत्वभङ्गप्रसङ्गः। यदि तत्तत्कार्याऽकार्य-विवर्तनानुकूलविलणसामर्थ्यं ब्रह्मणि, तदाऽस्मन्मतप्रवेशः। न चाऽत एव वस्तुतः प्रपञ्चस्योत्पत्तेरेवाभाव इति वाच्यम्, **'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'**, **'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'** इत्यादिश्रुतेरप्रामाण्यापत्तेः। न च वेदप्रामाण्यसिद्ध्यर्थ-मचेतनमायाया जगत्कारणत्वं मायाप्रतिबिम्बितेश्वरस्य वा जगत्कारणत्वं वाच्यम्, अचेतनामायायाश्चेतनजीवेश्वरकारणत्वासम्भवात्, नीरूपस्य ब्रह्मणः प्रतिबिम्बासम्भवस्य दर्शितत्वान्न माया-प्रतिबिम्बितरूपेण ब्रह्मकारणत्वपरकव्याख्यानं युक्तम् ॥३॥

प्रतियोगी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में उससे भिन्न अप्रसिद्ध होने के कारण उसका भान भी नहीं होगा। यदि ब्रह्म निर्विकल्पक (विशेषणरहित) है, तो आकाशादि आकार के रूप में उसकी प्रातिभासिक सत्ता कैसी होगी? इसमें कोई दृष्टान्त नहीं है। रज्जु-सर्प आदि दृष्टान्त मानने पर ब्रह्म की विशेषण- युक्तता का भङ्ग होगा। यदि ब्रह्म में इस प्रकार की शक्ति को स्वीकार करें, जो समस्त प्रपञ्च की रचना करने न करने का विलक्षण सामर्थ्य रखती हो, ऐसी स्थिति में आपका मत हमारे जैसा होगा। आप यह भी नहीं कह सकते कि 'इसीलिए प्रपञ्च की उत्पत्ति नहीं होती, वह ब्रह्म में मात्र प्रतिभासित होता है।' फिर **'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'**, **'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'** इत्यादि श्रुतियों को अप्रमाण मानना होगा। (वेदान्तमत में अचेतन माया का जगत् का कारण है)। केवल वेद को प्रमाण सिद्ध करने के लिए अचेतन माया को जगत् का कारण अथवा उसमें प्रतिबिम्बित ईश्वर को जगत् का कारण नहीं कहना चाहिए। क्योंकि माया अचेतन है, जीव और ईश्वर चेतन है, अचेतन माया चेतन ईश्वर (शिव) और जीव का कारण नहीं हो सकती। (उस बिम्ब का प्रतिबिम्ब दर्पण पर पड़ता है, जिसका कोई रूप-आकार हो।) रूपहीन आकृतिहीन ब्रह्म का कोई प्रतिबिम्ब हो नहीं सकता यह पूर्व में प्रदर्शित है। अतः ब्रह्म को माया के कारण प्रतिबिम्ब के रूप में भासमान जगत् का कारण मानते हुए इस प्रकार की व्याख्या युक्तियुक्त नहीं है[१] ॥३॥

---

१. **आत्मत्वमीश्वरत्वं च ब्रह्मण्येकत्र कल्पितम्।**
बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितम्॥
(सि. शि. ५.३७)

जिस प्रकार एक सूर्य में बिम्ब और प्रतिबिम्ब कल्पित हैं, उसी प्रकार एक परब्रह्म में जीवज्व और ईश्वरत्व कल्पित है। इस स्थल में बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव युक्तिसंगत है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

षट्स्थलपरशिवब्रह्मणश्चराचरविश्वकारणत्वेन विश्वाधिकत्वमुक्तम्। इदानीं तस्य तन्तूत्पन्नपटस्य तन्त्वात्मकत्वम्, समुद्रोत्पन्नफेनतरङ्गादेः समुद्रात्मकत्वमिव स्वात्मशक्तिविकासेन विम्बात्मकत्वमाह—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ।।४।।

अग्निर्मूर्धा इति। **अग्निः** = अग्नित्वेन रूपितो द्युलोकः, **'असौ वाव लोको गौतमाग्निः'** इति श्रुतेः,

यस्याऽग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।

अवतरण भाष्य— षट्स्थलस्वरूप परमशिवं अक्षरब्रह्म चराचर विश्व का कारण होने के कारण विश्वोत्कृष्ट, विश्वाधिक है। इस प्रकार का प्रतिपादन पूर्व मन्त्र में किया गया है। अब अग्रिम मंत्र में यह निरूपित किया जा रहा है कि "परम शिव अपनी ही शक्ति को विकसित कर उसी प्रकार विश्वरूप बनता है, जिस प्रकार धागों से बना कपड़ा धागों का ही स्वरूप होता है। अथवा जिस प्रकार समुद्र से उत्पन्न बुलबुले अथवा लहरें समुद्र का ही रूप होती हैं, उसी प्रकार विश्व का कारण परमशिव विश्वस्वरूप होता है।

मन्त्रार्थ– **समस्त विश्व परम शिव का शरीर है। द्युलोक उसका मस्तक, चन्द्र और सूर्य दो नेत्र, पूर्व आदि दिशाएं उसके कर्ण, वेद उसकी वैखरी वाणी, महावायु उसके विश्व-शरीर में अन्तःसंचार करने वाला प्राणवायु, चराचर विश्व उसका हृदय, पृथ्वी उसके दोनों पाद और स्वयं वह सर्वान्तर्याभी समस्त विश्व में उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार पांचभौतिक स्थूल शरीर में उसी का अंशस्वरूप जीवात्मा ।।४।।**

व्याख्या — यह सम्पूर्ण मंत्र रूपकमय है, जिसमें परम शिव का विराट् विश्वस्वरूप वर्णित है। **अग्निर्मूर्धा** इत्यादि। इस मन्त्र के तृतीयचरणस्थित **अस्य** पद का सम्बन्ध सर्वत्र है। **अग्निः अस्य मूर्धा** = इस परशिवस्वरूप अक्षरब्रह्म का मस्तक अग्निस्वरूप द्युलोक (स्वर्ग) है। जैसा कि **'छान्दोग्योपनिषद्'** का वचन है— **असौ वाव लोको गौतमाग्निः**। स्मृति कहती है—

यस्याऽग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।
सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रं तस्मै लोकात्मने नमः ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रं तस्मै लोकात्मने नमः ।।

इति स्मृतेश्च । अस्येति तृतीयपादस्थस्य पदस्य सर्वत्राऽनुषङ्गः कर्तव्यः । तथा च **अस्यैव** परशिवब्रह्मणः, **मूर्धा** = शिरः, **चक्षुषी** = नेत्रे, **चन्द्रसूर्यौ,**

वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।।

इति स्कान्दोक्तेः । **दिशः** = प्राच्यादिरूपाः, **श्रोत्रे** = कर्णौ, **विवृताः** = वर्णाध्वादि-स्थूलरूपेण **विवृतिं** विकृतिं गताः, **वेदाः** = ऋगादयः, **वाक्** = वैखरी वाक् । उक्तं चाऽभियुक्तैः—

'ततः शब्दात्मकत्वेन विवृताऽर्थमयी भवेत्' इति,

उस चतुर्दश-भुवन-स्वरूप परम शिव को नमस्कार है, जिसका मुख अग्नि, मस्तक द्युलोक, आकाश नाभि, पृथ्वी चरण, सूर्य नेत्र और दिशाएं श्रोत्र (कान) हैं ।

चन्द्रसूर्यौ अस्य चक्षुषी = चन्द्र और सूर्य उस परशिव ब्रह्म की आखें हैं, जिससे वह समस्त विश्व का दर्शन करता है, उसे आल्हादित और प्रकाशित करता है । **स्कन्द-पुराण** का वचन इसमें प्रमाण हैं—

वन्दे सूर्य-शशाङ्क-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।।

मैं विष्णु के आराध्य कल्याणकारी (शङ्कर) परम शिव की वन्दना करता हूँ, जो **त्रिनेत्र** सूर्य, चन्द्र, और अग्नि नेत्रों से सम्पन्न है । और जो भक्तजनों के आश्रयदाता हैं ।

दिशोऽस्य श्रोत्रे = पूर्व आदि दसों दिशाएं उस परम शिव के दोनों कान हैं, जिससे वह समस्त विश्व की बाते सुनता है । [सम्पूर्ण आकाश को दस भागों में बांटकर उसे दस दिशाओं का नाम दिया गया है । आकाश का गुण है 'शब्द', **शब्द- गुणकमाकाशम्** । अतः इस रूपक की संगति बैठती है ।]

विवृता वेदा अस्य वाक् = वर्णाध्व आदि स्थूल रूप से प्रसृत ऋग्वेद आदि वेद और शिक्षा-कल्प आदि छः अङ्ग उस परम शिव की वैखरी वाणी है । इसमें अभियुक्त-वचन प्रमाण है—

ततः शब्दात्मकत्वेन विवृताऽर्थमयी भवेत्

पश्चात् शब्द (वेद वाङ्मय) के रूप में रूपान्तरित होनेवाली परम शिव की वैखरी वाणी कल्याणमय अर्थप्रद होती है । वैखरी वाणी के विषय में यह श्लोक द्रष्टव्य है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना ।। इति च।

नन्वस्य ब्रह्मणः प्राणस्यैवाऽभावात् कथमस्य वाचः प्राणव्यापारनिबन्धनत्वमित्यत आह— **वायुः प्राण** इति । अस्य **वायुः** महावायुरेव । **प्राणः** = विश्वमयशरीरान्तःसञ्चारी वायुः । अस्य **विश्वं** चराचरात्मकं सर्वं **हृदयं** प्रणवमयचिच्छक्त्यात्मकम्, **हृदयं मूलविद्या** इत्यागमोक्तेः,

हृदयं तद् विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ।

इति श्रुतेः,

वृक्षस्थं पत्रपुष्पादि वटबीजस्थितं यथा ।
तथा हृदयबीजस्थं विश्वमेतच्चराचरम् ।।

(सि. शि. २०.४१)

स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना ।।

परा (सूक्ष्मा), पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार विधाओं में विभक्त वाणी में अन्यतम वैखरी वाणी वायु का कण्ठ आदि स्थानों में आघात होने पर स्वर-व्यंजन वर्णों का आकार लेती है और उसके प्रयोगकर्ताओं के प्राण-संचालन का माध्यम होती है ।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि परमपुरुष को **अप्राण** कहा गया है । परम शिव में जब प्राण का ही अभाव है, तब उसकी वैखरी वाणी वेद वाणी किस प्रकार प्राणसंचालन करती है? उसका समाधान इस प्रकार किया गया है— **वायुः प्राणः। वायुरस्य प्राणः** = पञ्च महाभूतों में अन्यतम महावायु उस परम शिव का महाप्राण है, जो उसके विश्वस्वरूप शरीर के गर्भ में संचरण करता है । **विश्वम् अस्य हृदयम्**— स्थावर-जंगम-स्वरूप समस्त सचेतन विश्व इस परम शिव का हृदय है । वह हृदय-स्थल प्रणवमय चित्शक्तिस्वरूप है । इसमें अनेक वचन प्रमाण हैं । जिसमें आगम वचन है— **हृदयं मूलविद्या** अर्थात् परमशिव का हृदयस्थल ओंकारमयी मूलविद्या, मूलमन्त्र ओंकार है । श्रुति कहती है—

हृदयं तद् विजार्नायाद् विश्वस्याऽऽयतनं महत्

उस चित्शक्तिस्वरूप प्रणव को परम शिव का हृदयस्थल समझना चाहिए, जो सम्पूर्ण विश्व का विशाल आयतन (घर) है । समस्त विश्व चेतन शक्ति में निहित है, वह चैतन्य शक्ति से ओत प्रोत है । **श्रीरेणुकभगवत्पाद** कहते हैं—

वृक्षस्थं पत्र-पुष्पादि वटबीजस्थितं यथा ।
तथा हृदयबीजस्थं विश्वमेतच्चराचरम् ।।

(सि. शि. २०.४१)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति **रेणुकभगवत्पादोक्तेश्च** । **चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः** (प्रत्यभिज्ञाहृदय. सू. १) इति **शक्तिसूत्रस्थितेः** । सदाशिवादि-भूम्यन्तचराचरविश्वोत्पादनस्वतन्त्रचिच्छक्त्यामस्यां हृदयाख्यायां परशिवाभिन्नायां प्रसरन्त्यां सर्वस्य विश्वस्य प्रसरणस्य निवृत्तप्रसरायां च निमेषस्य **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति** (तै. १), **सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते, आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति** (छां. १. ९. १) इत्यादिश्रुतिसिद्धत्वादुपादानोपादेययोरभिन्नत्वाद् विश्वमेवाऽस्य हृदयमित्युक्तम् । एतदन्यस्य मायाप्रकृत्यादेश्चित्प्रकाशभिन्नत्वाज्जडत्वान्न सदाशिवाद्य-जडकारणत्वम्, न वा स्वातन्त्र्येण जडप्रपञ्चकारणत्वम्, किन्तु स्वप्रतिस्फुरितचिच्छक्ति-रूपेणैव । **पृथिवी** = भूमिः ।

(विश्वस्वरूप शिवयोगी का स्वरूप निरूपण करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि) जिस प्रकार वटवृक्ष में रहने वाले पत्र-पुष्प-फल-शाखा आदि वट-बीज में अन्तर्निहित रहते हैं, उसी प्रकार परम शिव के प्रणवमय चित्शक्तिविशिष्ट हृदयबीज में सम्पूर्ण चराचर विश्व अन्तर्निहित रहता है ।

'प्रत्यभिज्ञाहृदय' शक्तिप्रतिपादक प्रथम सूत्र स्पष्ट कहता है— **चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः** । (स्वतन्त्र चित्शक्ति विश्व की सिद्धि का कारण है ।) इन अनेक वचनों के प्रमाणों से यह सिद्ध है कि सदाशिव से भूमिपर्यन्त सम्पूर्ण छत्तीस तत्त्वों का यह चराचर विश्व है, उसके उत्पादन में प्रणवस्वरूपा चित्शक्ति समर्थ है, जिसको हृदय-स्थल भी कहते हैं । वह परशिव से अभिन्न है । उसका जब प्रसार (उन्मेष) होता है, तब विश्व का प्रसार (उन्मेष) होता है । उसका प्रसार जब रुक जाता है, तब विश्व का निमेष होता है ।

यह बात **'तैत्तिरीयोपनिषद्** और **छान्दोग्योपनिषद्'** के मन्त्रों से प्रमाणित है । इसमें प्रथम मन्त्र इस प्रकार है— **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति** । (तै. भृ. १) (चित्शक्तिस्वरूप जिस परम शिव से सम्पूर्ण पंचभूत और पांचभौतिक देहधारी जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं, प्रयाण करते हैं और उसी में विलीन होते हैं ।) दूसरा मन्त्र इस प्रकार है— **सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते । आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति** (छा. उ. १.९.१) । (चित्शक्ति ऊर्ध्वलिंगस्वरूप ईशान ब्रह्म से उत्पन्न) आकाशांग सदाशिव से ही समस्त पंचभूत और पांचभौतिक देहधारी उत्पन्न होते हैं और उसी में विलय प्राप्त करते हैं । इसप्रकार श्रुति वचनों से यह प्रमाणित है कि चित्शक्ति विश्व का उपादानकारण है और विश्व उपादेय है । यतः उपादान और उपादेय दोनों अभिन्न है, अतः चित्शक्ति से अभिन्न चराचर विश्व ही परम शिव का हृदयस्थल है । चित्शक्ति से भिन्न माया-प्रकृति आदि चित्प्रकाश से भिन्न और जड़ है । वह सदाशिव आदि चेतन का कारण नहीं हो सकती । साथ ही स्वतन्त्र रूप से जड़ प्रपञ्च का कारण नहीं हो सकती, किन्तु स्वयं में प्रतिस्फुटित चित्शक्ति के रूप में ही समस्त प्रपञ्च का कारण होती है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पद्भ्याम् = पादौ। **'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'** इति तृतीया। **एष उक्तः** परशिवो विश्वात्मको हि विश्वरूप एवेत्यर्थः। **सर्वभूतान्तरात्मा** = सर्वेषां भूतानां जीवानामन्तरात्मापि भवति, तत्तत्प्राणिप्रेरकत्वेन सर्वहृदयान्तर्वर्तीश्वरोऽपि भवतीत्यर्थः।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। (श्वे. ६.११)

इति श्रुतेः,

यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः। (बृ. ३.७.१४.)

इति च श्रुतेः। उक्तं च कृष्णगीतायाम्—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। इति।
(गीता १८.६१)

पृथिवी अस्य पद्भ्याम् — धरती परमशिव के दोनों चरण हैं। **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** इस सूत्र में 'पद्भ्याम्' में तृतीया विभक्ति हुई है। इस प्रकार परम शिव विश्वात्मा और विश्वस्वरूप ही है यही इसका तात्पर्यार्थ है।

सर्वभूतान्तरात्मा = सभी पाञ्चभौतिक शरीरधारी प्राणियों का अन्तरात्मा (जीवात्मा) भी वही है। उन उन प्राणियों का प्रेरक होकर सभी के हृदयस्थल में वास करते हुए उनका स्वामी भी वही है। जैसा कि श्रुतिवचन है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ (श्वे.उ.६.११)

एकमात्र परमशिव ही प्रकाशस्वरूप 'देव' होकर सभी प्राणियों में गुप्त रूप से रहता है। सर्वव्यापक होने पर भी सभी प्राणियों के अन्तःकरण में वास करता है। वह सभी प्राणियों के पुण्य-पाप का साक्षी है। परम शिव सभी व्यक्तियों में अधिष्ठानस्वरूप विद्यमान है। वही कर्मफल का **साक्षी चेता** (सभी को चेतना प्रदान करनेवाला) कैवल्य (मोक्ष) के आनन्दानुभव में लीन और प्रलयकाल में शक्तिसंकोच के कारण निर्गुण भी है।

यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः (बृ.३.७.१४)

"जो सम्पूर्ण प्राणियों में रहकर उन्हें नियन्त्रित करता है, वह परमशिव-परमात्मा अमर और अन्तर्यामी है।" भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (१८.६१)

"अर्जुन! परमेश्वर यन्त्र पर आरूढ समस्त प्राणियों को माया द्वारा (चित्शक्ति- द्वारा) संचालित करते हुए सभी प्राणियों के हृदयस्थल में अवस्थित है।"

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उक्तं च **रेणुकभगवत्पादाचार्यैः**—

सर्वेषां प्रेरकत्वेन शम्भुरन्तस्थितः सदा ।

(सि. शि. १८-२७) इति ॥४॥

उक्तादक्षरपरशिवब्रह्मण एव स्थूलप्रपञ्चलीलायां द्युलोकादिपञ्चाग्न्युत्पत्त्यनन्तरं प्रजोत्पत्तिमाह—

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् ।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां
बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः ।।५।।

तस्मात् इति । **तस्मात्** = परशिवब्रह्मणोऽक्षरात्, **यस्य** = द्युलोकाग्नेः, **सूर्यः** = **समिधः** = काष्ठरूपः, **सोऽग्निः** = अग्नित्वेन रूपितो द्युलोकः, जात इति शेषः । **सोमात्** = द्युलोकाग्न्युत्पन्नात् चन्द्रात्, **पर्जन्यो** = मेघाख्यो द्वितीयाग्निः, सम्भूत इति शेषः ।

श्री रेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

सर्वेषां प्रेरकत्वेन शम्भुरन्तःस्थितः सदा ।

(सि. शि. १८.२७)

परम शिव परमात्मा सभी के अन्तःकरण में प्रेरक होकर वास करते हैं ॥४॥

अवतरण-भाष्य— उसी अक्षर परशिव ब्रह्म से ही द्युलोक (स्वर्ग), पर्जन्य (मेघ), पृथिवी, पुरुष और स्त्री इन पांच स्वरूपों में पांच अग्नियों का प्रादुर्भाव उस परम शिव की स्थूल-प्रपञ्च-लीला की अवधि में हुआ है, जिसके पश्चात् नानाविध प्रजा की सृष्टि हुई है । इसी अर्थ को यह मन्त्र सूचित कर रहा है—

मन्त्रार्थ– **उसी परम शिव से अग्नि उत्पन्न हुआ, जिसकी समिधाएं सूर्य हैं । चन्द्र से पर्जन्य और (पर्जन्य से) पृथिवी पर वनस्पतियां उत्पन्न हुई । पुरुष स्त्री में जब वीर्यसिञ्चन करता है, तब नानाविध प्रजा उस परम शिव से उत्पन्न होती है। ।।५।।**

तस्मात् इत्यादि । **तस्माद् अग्निः सम्प्रसूतः** = उस अक्षर परशिव ब्रह्म से द्युलोक स्वरूप अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ । **यस्य समिधः सूर्यो जातः** = द्युलोक (स्वर्ग) के रूप में अवतीर्ण जिस अग्नि की काष्ठसामग्री के रूप में सूर्य स्वयं उत्पन्न हुआ । **सोमात् पर्जन्यः सम्प्रसूतः** = द्युलोकस्वरूप अग्नि से उत्पन्न चन्द्र से मेघ नामक पर्जन्य के रूप में द्वितीय अग्नि ने जन्म लिया । **पृथिव्याम् ओषधयः सम्प्रसूताः** = उस पर्जन्य से वृष्टि द्वारा पृथिवी-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पर्जन्यात् **पृथिव्याम्** = भूम्याख्यतृतीयाग्नौ, **ओषधयः** = व्रीहियवादिरूपाः, वृष्टिद्वारा समुत्पद्यन्त इति शेषः । 'ओषधिभ्यश्चाऽन्नरूपेण चतुर्थाग्निरूपं पुरुषं प्राप्ताभ्यो रेतो जायते' इत्यध्याहृत्य **पुमान्** = चतुर्थाग्निरूपः पुरुषः, **रेतः** = शुक्रम्, **योषितायाम्** = पञ्चमाग्निरूपायां स्त्रियाम्, **सिञ्चति** = प्रक्षिपतीति योजयितव्यम् । एवं क्रमेण **बह्वीः** = बह्व्यः, **प्रजाः** = मनुष्यादयः प्राणिवर्गाः, **पुरुषादुक्तादक्षराद्** ब्रह्मणः **सम्प्रसृताः** = सम्यगाविर्भवन्तीत्यर्थः ॥५॥

तस्माद् ऋचः साम यजूंषि दीक्षा
यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः
सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ।।६।।

किञ्च, **तस्मात्** = परशिवब्रह्मणः शक्तिविशिष्टात् (**ऋचः साम यजूंषि** =) ऋग्यजुःसामवेदाश्च **दीक्षाः** = अप्राकृताः प्राकृताश्च ज्ञानदानमलक्षपणधर्मिण्यश्चाऽप्राकृताः क्रियाज्ञानशक्त्यात्मकाः । तदुक्तं स्पन्दप्रीपिकायाम्—

स्वरूप तृतीय अग्नि में व्रीहि (चावल) यव (जौ) आदि नाना वनस्पतियां उत्पन्न हुई । **पुमान् योषितायां रेतः सिञ्चति** = उन वनस्पतियों से अन्न बनता है और वह अन्न जब पुरुष रूप में अवतीर्ण चतुर्थ अग्नि को प्राप्त होता है, उससे रेतस् (वीर्य) उत्पन्न होता है । इस अर्थ का अध्याहार करते हुए यह मन्त्र भाग है । पुरुष चतुर्थ अग्नि के रूप में और योषिता (स्त्री) पञ्चम अग्नि के रूप में अवतीर्ण है । वह पुरुष (जब) स्त्री में वीर्यसिञ्चन करता है, (तब) **पुरुषाद् बह्वीः प्रजाः सम्प्रसूताः** = उस अक्षरब्रह्म (परमशिव) से नानाविध मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष आदि नानाविध स्थावर- जंगम प्राणी जन्म लेते हैं, अच्छी तरह प्रकट होते हैं ॥५॥

मन्त्रार्थ **– चित्शक्तिविशिष्ट उसी परशिव ब्रह्म से ऋचाएं, साम, यजु, दीक्षा, सभी यज्ञ, क्रतु, संवत्सर और वे लोक आविर्भूत हुए, जहां साम्व सदाशिव पावन करते हैं, और जहां सूर्य तपता है ।।६।।**

व्याख्या– तस्मात् इत्यादि । **तस्मात्** = उस शक्तिविशिष्ट परशिव ब्रह्म से, **ऋचः** = छन्दोबद्ध ऋचाएं (ऋग्वेद), **साम** = मन्त्रगीतप्रधान सामवेद, **यजूंषि (च)** = और गद्यमन्त्रबद्ध यजुर्वेद (**सम्प्रसूतानि** = प्रादुर्भुत हुए।) 'वेदत्रयी' अथवा 'त्रेता के अन्तर्गत यज्ञानुष्ठान में होता ऋग्वैदिक मन्त्रों द्वारा स्तुतिपाठ करता है, उद्गाता सामगान करता है और अध्वर्यु यजुर्वेदमन्त्रपाठ करता है । उस वेदत्रयी का अवतार चित्शक्तिविशिष्ट परशिव स्वरूप अक्षर ब्रह्म ही हुआ। **तस्माद् दीक्षाः सम्प्रसूताः** = उसी चित्शक्तिविशिष्ट परशिव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ददाति ज्ञानसद्भावं क्षपयत्यखिलं .मलम्।
बोधाऽनुवेधाद् दीक्षोक्ता दानक्षपणधर्मिणी।। इति।

तथैव रेणुकभगवत्पादाचार्यैरप्युक्तम् —

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः।। इति।

(सि. सि. ६.११-१२)

न (च) भ्रमितव्यमप्राकृतदीक्षायास्तान्त्रिकत्वमिति, दीक्षाशब्दितानां विभूतिलिङ्गधारणादीनां **'भूत्यै न प्रमदितव्यम्'**, **'लिङ्गाङ्गशोभा मोक्षमार्गैकनिष्ठाः'**, **'अमृतस्य देवधारणो भूयासम्'** इत्यादिप्रत्यक्षश्रुत्यैव विधानाद् दीक्षाशब्दितवीरशैवनियमानां वैदिकत्वं सिद्धम्।

ब्रह्म से दीक्षाओं का आविर्भाव हुआ। वे दीक्षाएं द्विविध हैं— अप्राकृत और प्राकृत। सभी अप्राकृत दीक्षाएं क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिस्वरूपा हैं। ज्ञान का दान और मल (अज्ञान) का क्षपण उनका धर्म है। जैसा कि **'स्पन्दकारिका'** में कहा है—

ददाति ज्ञानसद्भावं क्षपयत्यखिलं मलम्।
बोधानुवेधाद् दीक्षोक्ता दानक्षपणधर्मिणी।।

[**'दीक्षा'** शब्द दो धातुओं से निष्पन्न है— दानार्थक 'दा' धातु से और अवखण्डनार्थक 'दो' धातु से। तदनुसार पूर्वोक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—] यतः जो ज्ञानदान करती है, जो सम्पूर्ण अज्ञानस्वरूप मल का क्षय करती है, अतः बोध का अन्तःप्रवेश होने के कारण उसे **'दीक्षा'** कहते हैं, जिसका धर्म ज्ञानदान और अज्ञानमल को दूर करना हो।

उसीप्रकार **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** भी कहते हैं—

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः।।

(सि. शि. ६.११-१२)

यतः जो शिवज्ञान प्रदान करती है और अज्ञानस्वरूप पाश के बन्धन का विनाश करती है, अतः विचक्षण लोग उसे **'दीक्षा'** कहते हैं।

इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि अप्राकृत दीक्षामात्र तान्त्रिक दीक्षा होती है। प्रत्यक्ष श्रुति ने ही विभूति, लिङ्गधारण आदि को 'दीक्षा' शब्द से अभिहित किया है। **'भूत्यै न प्रमदितव्यम्'**, **'लिङ्गाङ्गशोभा मोक्षमार्गैकनिष्ठा'**, **'अमृतस्य देवधारणो भूयासम्'** इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण हैं। अतः 'दीक्षा' शब्द से अभिहित वीरशैवों के धार्मिक

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पशुपतिसंस्कारसाहित्यतद्राहित्यप्रयुक्तत्वादप्राकृतत्वप्राकृतत्वयोर्वीरशैवानां शिवसंस्काररूपदीक्षैव । तदुक्तं **रेणुकभगवत्पादाचार्येण—**

विशुद्धाः प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषा स्मृताः ।
शिवसंस्कारिणः शुद्धा इतरे प्राकृता मताः ।।
(सि. शि. १०.३४)

ज्ञानदानमलक्षपणदीक्षारूपशिवसंस्कारसंपन्नानां पूर्वकाण्डीय-पाशाश्रयपशु-कर्मानुष्ठाने प्रयोजनाभावात्, पूर्वाश्रयनिरसनस्थलविरोधाच्च । **यज्ञाश्चाऽग्निहोत्रादयो यूपरहिताः सर्वे क्रतवश्च** । सयूपा विश्वजिदादयः शिवार्चादयः शिवयज्ञाश्च, प्राकृताऽप्राकृतानुष्ठेयाश्च ।

किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः किं तपोभिश्च दुश्चरैः ।
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य स सिद्धः सर्वकर्मसु ।।
(सि. शि. १५.३५)

नियमों का वैदिक होना सिद्ध है । अप्राकृत और प्राकृत दीक्षा में अन्तर यह है कि अप्राकृत दीक्षाएं **'पशुपति' संस्कार** के साथ होती हैं और प्राकृत दीक्षाएं उनसे रहित होती हैं । अतः वीरशैवों के लिए शिव-संस्काररूप दीक्षा का ही विधान है । **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** कहते हैं—

विशुद्धाः प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषाः स्मृताः ।
शिवसंस्कारिणः शुद्धा इतरे प्राकृता मताः ।।
(सि. शि. १०.३४)

दो प्रकार के मनुष्य होते हैं— विशुद्ध और प्राकृत । शिव संस्कारसम्पन्न मनुष्यों को विशुद्ध और उनसे विहीन मनुष्यों को प्राकृत कहते हैं । इस प्रकार यह प्रमाणित है कि जो ज्ञानदानस्वरूप और अज्ञानमलखण्डनस्वरूप शिवसंस्कार से सम्पन्न होते हैं, उनके लिए पूर्व काण्ड में निरूपित पाशबन्धन में डालने वाले यज्ञमायादि पशुकर्मानुष्ठान का कोई प्रयोजन नहीं है । अन्यथा **पूर्वाश्रय-निरसन-स्थल** का विरोध होगा ।

तस्मात् सर्वे यज्ञाः क्रतवश्च सम्प्रसूताः— उसी चित्शक्तिविशिष्ट परशिव ब्रह्म से यूपरहित अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यूपसहित विश्वजित् आदि क्रतु और वीरशैवों के लिए अनुष्ठेय शिवपूजा आदि शिवयज्ञ, जिसमें कुछ प्राकृत, कुछ अप्राकृत अनुष्ठानयोग्य हैं, उनका प्रादुर्भाव हुआ । **श्रीरेणुकभगवापादाचार्य** कहते हैं—

किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः किं तपोभिश्च दुश्चरैः ।
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य स सिद्धः सर्वकर्मसु ।।
(सि. शि. १५-३५)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति **रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेर्न**ह्यनुष्ठेयानि पशुकर्माणि वीरशैवैः। **दक्षिणाश्च** संजाता इति शेषः। **संवत्सरादयः** कलाः। **यजमानश्च** तत्तत्कर्मफलभूता लोकाश्चोत्पन्ना भवन्तीत्यर्थः। के ते लोका इत्यत आह— **यत्र** इति। **यत्र** = लोके, **सोमः** = साम्बः, **पवते** = प्रकाशते, यत्र लोकेषु सूर्यस्तपतीति शेषः। इत्येतत् सर्वं तस्मादेव ब्रह्मणो जातमित्यर्थः ॥६॥

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणाऽपानौ व्रीहियवौ तपश्च
श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

अग्निहोत्र आदि यज्ञों से क्या लाभ है? अथवा अत्यन्त कठिन तपस्या करने से क्या लाभ है? जो लिङ्गपूजा में रति (अनुराग) रखता है, वह सभी कामों में सिद्धि (सफलता) प्राप्त करता है। अतः वीरशैवों को यज्ञ-क्रतु आदि पशुकर्मों का अनुष्ठान नहीं करना चाहिए।

तस्मात् दक्षिणाश्च संवत्सरश्च सम्प्रसूताः = उस चित्शक्तिविशिष्ट परशिव ब्रह्म से ही एकमात्र गोधन से लेकर सर्वस्व तक की यज्ञ-क्रतुओं में देय दक्षिणा तथा यज्ञ-सम्पादनयोग्य संवत्सर आदि काल-विभाग का जन्म हुआ। 'ऋचाओं' से लेकर 'संवत्सर' तक सभी कर्म साधन हैं।

तस्मात् यजमानश्च सम्प्रसूतः = उसी परशिव ब्रह्म से यज्ञ-क्रतु-शिवयज्ञादि के सम्पादक यजमान का जन्म हुआ, जो अष्टमूर्ति सदाशिव की प्रत्यक्ष मूर्तियों में अन्यतम है। कविकुलगुरु कालिदास कहते हैं— **या च होत्री**।

तस्मात् लोकाः सम्प्रसूताः = उसी चित्शक्तिविशिष्ट परशिव ब्रह्म से उन उन शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप लोक उत्पन्न हुए। वे लोक कौन हैं? इस प्रश्न का समाधान चतुर्थ चरण में हैं— **सोमो यत्र पवते यत्र च सूर्यः**— जिस लोक में **उमा**, चित्शक्ति के साथ परम शिव प्रकाशित होते हैं, और जिन लोकों में सूर्य; (**तपति** = तपते हैं) इस प्रकार अध्याहार करना चाहिए।

इस प्रकार उसी चित्शक्तिविशिष्ट परशिव ब्रह्म से 'ऋचाओं' से लेकर 'संवत्सर' तक सभी कर्म के साधन, कर्ता यजमान और कर्मफलस्वरूप शिवलोक, आदित्यलोक आदि का जन्म हुआ ॥६॥

***मन्त्रार्थ*– उसी अक्षर ब्रह्म से, चित्-शक्ति-विशिष्ट परमशिव से ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता नाना रूपों में प्रकट हुए। उसी प्रकार उसी से साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण-अपान, ब्रीहि-यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अन्य वस्तुजात प्रकट हुए ॥७॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तस्माच्चेति। किञ्च, **तस्माच्च** = तस्मादेवाऽक्षरात्, **देवाः** पृथिव्याद्यभिमानिनो ब्रह्मविष्ण्वादयोऽङ्गशब्दिताः, **'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते'** (अथर्वशिखा) इति, **'विष्णुरित्था परमस्य विद्वान्'** (ऋग्वेद ७.५.२९), **'सोमः पवते'** (ऋग्वेद ७.४.६) इति श्रुत्यन्तरात्। **बहुधा** = नानाविधाः, **सम्प्रसूताः** = सञ्जाताः। **साध्याः** = साध्यनामका देवविशेषाः। तस्मात् सम्प्रसूता इति सर्वप्रथमाबहुवचनान्तपदैः सम्बन्धः कर्तव्यः। मनुष्या ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णाः। तदुक्तं **क्रियासारे** चतुर्विंशोपदेशे—

अथ तस्य महेशस्य घनलिङ्गस्वरूपिणः।
स्थूलप्रपञ्चनिर्माणलीलायां तेषु वै पुनः॥
आचारादिषु लिङ्गेषु क्रियाशक्तेः कलाऽभवत्।
अन्यपर्यायरूपा च निवृत्तिरथ तद्वशात्॥
अहङ्कारादिभूम्यन्तं त्रयोविंशतितत्त्वकम्।
तन्मूलकारणीभूता भूयुः सत्त्वादयो गुणाः॥

व्याख्या – तस्माच्च इत्यादि। **तस्मात् च** = और उसी परशिवस्वरूप अक्षरब्रह्म से, **देवाः** = पृथिवी आदि के अभिमानी 'अङ्ग' शब्द से अभिहित ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता, **बहुधा** = नाना रूपों में, **सम्प्रसूताः** = उत्पन्न हुए। इसमें अनेक श्रुतिवचन प्रमाण हैं— **ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते** (अथर्वशिखा उ. ३) (उस अक्षरब्रह्म- स्वरूप परम शिव से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, आदि देव प्रकट होते हैं।) **विष्णुरित्था परमस्य विद्वान्** (ऋ. ७.५.२९) (इस प्रकार विष्णु जो शिवतत्त्ववेत्ता हैं, वे उसी से प्रकट हुए) **सोमः पवते** (ऋ. ७.५.२९) (साम्ब सदाशिव इस शिवलोक को पावन करते हैं।)

साध्याः = साध्य नामक देवविशेष, **तस्मात् सम्प्रसूताः** = उसी से उत्पन्न हुए। **तस्मात् सम्प्रसूताः** इसका अन्वय सभी प्रथमा बहुवचनान्त पदों के साथ करना चाहिए। **मनुष्याः (तस्मात् सम्प्रसूताः)**= ब्राह्मण आदि चार वर्ण उसी से प्रकट हुए। जैसा कि क्रियासार में **'अथ तस्य महेशस्य'** से प्रारम्भ कर **'ब्राह्मणादयः'** तक छः श्लोकों में निरूपित है। उनका अर्थ इस प्रकार है— घनलिङ्ग (महालिङ्ग) के रूप में अवस्थित (प्रणव- मय) परम शिव जब स्थूल प्रपञ्च का निर्माण करने लगे, उस लीला के अवसर पर आचार आदि लिङ्गों में अर्थात् आचार, गुरु, शिव, चर, और प्रसाद इन पांच लिङ्गों में यथाक्रम शान्त्यतीतोत्तरा चित्शक्ति की क्रिया (निवृत्ति), ज्ञान (प्रतिष्ठा), इच्छा (विद्या), आदि (शान्ति) और परा (शान्त्यतीता) कलाएँ अवतीर्ण हुईं। उनके कारण अहंकार से लेकर पृथ्वी तक तेईस तत्त्व और उनके मूल कारण त्रिगुणात्मिका प्रकृति के सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण उत्पन्न हुए। तदनन्तर मायातत्त्व ने जन्म लिया। अनन्तर सत्त्व, रज और तमोगुण

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तदात्मिकायाः प्रकृतेरन्या चेयं ततः पुनः।
मायातत्त्वं समुत्पन्नमथ सत्त्वादिषु त्रिषु ।।
सम्प्रविष्टं तु चैतन्यं तदैवं च निगद्यते।
रुद्रो विष्णुरजश्चेति सद्भिः सूक्ष्मार्थदर्शिभिः ।।
क्रमेण वह्निः सूर्यश्च सोमश्चैतेषु वै पुनः।
अन्तर्गताश्च चत्वारो वर्णाश्च ब्राह्मणादयः ।। इति।

(क्रिया. २४.१४८-१५३)

पशवः = गवादयो ग्राम्याः, आरण्याश्च मृगादयः, **वयांसि** = पक्षिणः, **प्राणाऽपानौ** = प्राणिनां जीवनहेतुभूतौ, उपलक्षणमेतदितरप्राणवृत्तीनामपि। **व्रीहियवौ** = व्रीहियवशब्देन धान्यमात्रोपलक्षणं कृतमिति बोध्यम्। **तपः** = वीरशैवाभिमतं

में जिस चैतन्य का प्रवेश हुआ, उसे सूक्ष्म तत्त्ववेत्ता यथाक्रम ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। उन्हीं से यथाक्रम चन्द्र, सूर्य और अग्नि प्रकट हुए। इन्हीं के अन्तर्गत ब्राह्मण आदि चारों वर्णों ने जन्म लिया[१]।''

तस्मात् पशवः सम्प्रसूताः— उसी परम शिव से गौ आदि ग्रामीण पालतू और हिरण आदि जंगली पशुओं का जन्म हुआ। **तस्माद् वयांसि सम्प्रसूतानि**— उसी परम शिव से पक्षी उत्पन्न हुए। **तस्मात् प्राणाऽपानौ सम्प्रसूतौ**— उसी परम शिव से प्राणियों के जीवनभूत पञ्च प्राण उत्पन्न हुए। इस मन्त्र में प्राण-अपान शब्द दूसरी प्राणशक्तियों का उपलक्षण है। इस प्रकार उसी परम शिव से प्राण-अपान के साथ ही व्यान-उदान और समान वायु भी उत्पन्न हुए।

तस्मात् व्रीहियवौ सम्प्रसूतौ = उस परम शिव से चावल-जव आदि समस्त धान्य उत्पन्न हुए। यहां व्रीहि और यव शब्द धान्यमात्र का उपलक्षण है, ऐसा समझना चाहिए। **तस्मात् तपः सम्प्रसूतम्** = उस परम शिव से वीरशैवों को अभिमत शिवपूजा के लिए सामग्री एकत्र करने से शरीरशोषणरूप अथवा कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि तप उत्पन्न हुआ।

---

१. 'सिद्धान्तशिखोपनिषद्' के ग्यारहवें मन्त्र में वर्णोत्पत्ति इस प्रकार निरूपित है—

सद्योजातात् ब्राह्मणाः सम्बभूवुः वामदेवात् क्षत्रिया विशश्च।
अधोरात् शूद्रास्तत्पुरुणात् शिवस्य पञ्चात्मकस्य गणा ईशानतः स्युः ।।११।।

मन्त्रार्थः पञ्चब्रह्मस्वरूप परमशिव के सद्योजात-मुख (गुरुलिङ्ग) से ब्राह्मणों का, वामदेव-मुख (गुरुलिङ्ग) से क्षत्रियों का, अघोर-मुख (शिवलिङ्ग) से वैश्यों का, तत्पुरुष-मुख (चरलिङ्ग) से शूद्रों का और ईशान मुख (प्रसादलिङ्ग) से शिवगणों का प्रादुर्भाव हुआ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शिवपूजार्थं सामग्रीसंपादने शरीरसंशोषणरूम्, प्रसिद्धं कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूपं वा। **श्रद्धा** = आस्तिक्यबुद्धिः, **सत्यम्** = यथार्थभाषणम्, **ब्रह्मचर्यम्** = अष्टविधमैथुनत्यागरूपम्, **विधिः** = नित्यनैमित्तिकादिः, चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थकः। इत्येतत् सर्वं तस्मादेव सम्प्रसूतमित्यर्थः ॥७॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्
सप्ताऽर्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥८॥

सप्तेति। किञ्च, **सप्त प्राणाः** = द्वे श्रोत्रे, द्वे चक्षुषी, द्वे घ्राणे, एका वाग् इति शिरसि स्थितानि सप्तेन्द्रियाणि। **प्रभवन्ति** = तस्मादेवाऽक्षरात् समुत्पद्यन्ते। **सप्ताऽर्चिषः** = उक्तेन्द्रियव्यापाराः सप्त, तस्मादेवाऽक्षरात् प्रभवन्तीति सर्वत्रानुषङ्गः। सप्त समिधः = सप्त विषयाः, स्वविषयैरेव समिध्यन्त हि सप्त प्राणाः। **सप्त**

तस्मात् श्रद्धा, सत्यम्, ब्रह्मचर्यम्, विधिः च सम्प्रसूताः — उसी परम शिव से आस्तिक्य-बुद्धि, यथार्थ-भाषण, अष्टविध मैथुन का त्यागरूप ब्रह्मचर्य और नित्य-नैमित्तिक आदि धार्मिक विधान उत्पन्न हुए। **'विधिश्च'** में प्रयुक्त **'चकार'** उसका समुच्चय सूचित कर रहा है, जिसका मन्त्र में उल्लेख नहीं है। तात्पर्य यह है कि सभी सृष्टि उसी परम शिव से ही हुई है ॥७॥

***मन्त्रार्थ*– उसी चित्शक्तिविशिष्ट परम शिव से सात प्राण, सात ज्वालाएं, सात समिधाएं, सात होम और सात लोक उत्पन्न होते हैं, जिनमें उक्त सात प्राण गुहा में सुप्तावस्था में सात सात संख्या में अवस्थित रहते हैं ॥८॥**

व्याख्या : सप्त प्राणा इत्यादि। किंच = और भी, **सप्त प्राणाः** = सात प्राण-दो कान, दो आखें, दो नाक, और एक वागिन्द्रिय इस प्रकार शिरोभाग में अवस्थित सात इन्द्रिय, **तस्मात् प्रभवन्ति** = उसी (परमशिव-स्वरूप) अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। **सप्त अर्चिषः** = प्राणमय आग की सात लपटें अर्थात् उन इन्द्रियों के सात कार्य- कलाप **तस्मात् प्रभवन्ति** (उसी से उत्पन्न होते हैं) इस का सर्वत्र सम्बन्ध है। **सप्त समिधः** = (समिध्यन्त इति समिधः)— सात समिधाएं उन इन्द्रियों के सात विषय (दो कानों के दो शब्द, दो आखों के दो रूप, दो नाकों के दो गन्ध और एक रसना का एक गन्ध) उसी अक्षरब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। उन्हें 'समिधाएं इसलिए कहा जाता है, कि इन्हीं विषयों से उक्त इन्द्रिय प्रज्वलित होते हैं, विषयवासनाएं भड़कती हैं। **सप्त होमास्तस्मात् प्रभवन्ति** = सात होम उसी अक्षर

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

होमाः = तद्विषयकोपासनानि, **सप्त इमे लोकाः** = इन्द्रियगोलकरूपाः सप्तसंख्याकाः, **येषु** सप्त लोकेषु गोलकेषु सञ्चरन्ति, **प्राणाः** = उक्तसप्तेन्द्रियाणि । कीदृशाः प्राणाः? **गुहाशयाः** = गुहायां हृदये शेरत इति गुहाशयाः, **निहिताः सप्त सप्त** = प्रतिप्राणिशरीरं सप्त सप्तसंख्याकाः स्थापिताः, सर्वेश्वरेणेति शेषः । यद्वा — **सप्त प्राणाः** = पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, मनो बुद्धिश्चेति सप्त प्राणाः प्रभवन्ति । सप्ताऽर्चिषः = गार्हपत्यादयः सप्तार्चिषः काली-कराल्यादिसप्तजिह्वाविशिष्टगार्हपत्याद्यग्नय इत्यर्थः । समिदाद्युपकरणानि सप्तकालीकराल्यादिसप्तजिह्वा इमे परिदृश्यमानाः सप्त लोकाः । सप्तपदमुपलक्षणम् । चतुर्दशभुवनानीत्यर्थः । प्रभवन्ति **येषु** चतुर्दशभुवनेषु **प्राणाः** गुहाशया उक्तसप्तप्राणा अपि ईश्वरेण **निहिताः** सन्तः **सञ्चरन्ति** । सप्त सप्तेति वीप्सा पुरुषभेदाभिप्रायेण ॥८॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽ-
स्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।

ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। यहाँ '**होम**' का तात्पर्य है— 'उन विषयों से अर्चना' (जैसा कि '**शिवमानसपूजास्तोत्र**' में कहा गया है— '**पूजा ते विषयोपभोगरचना ।**' **सप्त इमे लोकास्तस्मात् प्रभवन्ति** = ये सात लोक उसी से उत्पन्न होते हैं। यहां 'लोक' का अर्थ है वे बाहरी गोलक (स्थान), जिनमें वे इन्द्रिय रहते हैं।

येषु प्राणाश्चरन्ति = जिनमें ये प्राण विचरण करते हैं। अर्थात् जिन बाह्य इन्द्रिय गोलकों में वे इन्द्रिय विचरण करते हैं। **कीदृशाः प्राणाः?** वे प्राण कैसे हैं? **गुहाशया निहिताः सप्त सप्त — गुहायां शेरत इति गुहाशयाः**, वे हृदयरूपी गुफा में सुप्तावस्था में रहते हैं जो सर्वेश्वर द्वारा प्रत्येक प्राणी के शरीर में सात सात की संख्या में स्थापित किये गए हैं।

अथवा **सप्त प्राणाः** — पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि, **सप्तार्चिषः** = काली, कराली आदि सात जिह्वाओं से सम्पन्न गार्हपत्य आदि सात अग्नि, **सप्त समिधः** = समिधा आदि सात उपकरण, **सप्त होमाः** = सात होम, **इमे सप्त लोकाः** = और ये प्रत्यक्ष-गोचर चतुर्दश भुवन, यहां सप्त पद उपलक्षण है। **तस्मात् प्रभवन्ति** = उसी परमशिवस्वरूप अक्षरब्रह्म से प्रादुर्भूत होते हैं। **येषु प्राणा गुहाशयाः सप्त सप्त निहिताः सञ्चरन्ति** = जिन चौदह भुवनों में पूर्वोक्त सातों प्राण (इन्द्रिय) हृदयरूपी गुफा में सुप्तावस्था में ईश्वर द्वारा स्थापित होकर प्रत्येक प्राणी के भेद से सात-सात की संख्या में सञ्चरण करते हैं ॥८॥

***मन्त्रार्थ*– इसी परम-शिव-स्वरूप अक्षर-ब्रह्म में सभी समुद्र और पर्वत उत्पन्न होते हैं। नानाविध नदियां इसी परमशिव से (उत्पन्न होकर) प्रवाहित**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ।।९।।

अत इति। किञ्च, **अतः** = अस्मात् परमेश्वरात्, **समुद्राः** = क्षाराद्याः सप्त सागराः, **प्रभवन्ति**, इति पूर्वमन्त्रात् क्रियानुषङ्गः । **सर्वे** = निखिलाः, **गिरयः** = पर्वताश्च प्रभवन्ति । **तस्मात्** प्रकृतादक्षरात् परमेश्वरात्, **सर्वरूपाः** = अनेकरूपाः, **सिन्धवः** = नद्यः, **स्यन्दन्ते** = स्रवन्ति । **अतश्च** = अस्मादेवाऽक्षराद् ब्रह्मण एव, **सर्वाः** = समस्ताः, **ओषधयः** = व्रीहियवादिरूपाः, जाता इति शेषः । **रसश्च** = मधुरादिषड्विधोऽपि रसः, तस्मादेव जात इत्यर्थः । **एषः** = अक्षरः परशिवः, **हि** = यस्मात् कारणात्, **येन** = यैः,

---

होती हैं । इसी से सभी धान्य, वनस्पतियां और षड्विध रस उत्पन्न होते हैं । अतः वह परमशिव पृथिवी आदि भूतों के अभिमानी ब्रह्मदेव और देवताओं के साथ उनका अन्तरात्मा होकर रहता है ।।९।।

व्याख्या : अतः समुद्रा इत्यादि । **अतः** = उसी परम शिव से, **समुद्राः** = लवण आदि सभी समुद्र[१], **प्रभवन्ति** इस पूर्व मन्त्र की क्रिया का सर्वत्र अन्वय करना चाहिए । उत्पन्न होते हैं । और **सर्वे** = सभी, **गिरयः**[२] = पहाड़ (**प्रभवन्ति** = उत्पन्न होते हैं ।) उसी अक्षर ब्रह्म (परम शिव) से, **सर्वाः** = विविध रूपवाली, सिन्धवः[३] = नदियां, स्यन्दन्ते = बहती हैं । **अतश्च** = और उसी अक्षर ब्रह्म से, **सर्वाः** = समस्त, **ओषधयः** = चावल, जौ आदि धान्य (**जाताः** = उत्पन्न होते हैं ।) **रसश्च** = और मधुर आदि (मधुर, आम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त) षड्विध रस भी उसी से उत्पन्न होते हैं । **एषः** = यह अक्षर परशिव,

---

१. **समुद्र**— १. **लवणसमुद्र** (जम्बूद्वीप के चारों ओर), २. **इक्षुसमुद्र** (लक्षद्वीप के चारों ओर), ३. **सुरासमुद्र** (शाल्मली द्वीप के चारों ओर), ४. **सर्पिसमुद्र** (कुशद्वीप के चारों ओर), ५. **दधिसमुद्र** (क्रौंचद्वीप के चारों ओर), ६. **क्षीरसमुद्र** (शाकद्वीप के चारों ओर), ७. **शुद्धोदक समुद्र** (पुष्करद्वीप के चारों ओर)।

२. **गिरयः**— पहाड़ । महाभारत, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, भविष्यपुराण, कूर्मपुराण, आदि । ब्रह्मपुराण, गरुडपुराण, अग्निपुराण और विष्णुपुराण के अनुसार **सात कुलपर्वत हैं**— महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्याचल और पारियात्र । **महाभारत** के अनुसार हिमालय, कैलास, गन्धमादन, अर्बुद आदि अन्य मुख्य पर्वत हैं । पश्चिम और पूर्वीघाट के बीच में नीलगिरि है । इसके अतिरिक्त भारत में छोटी-छोटी बहुत पहाड़ियां हैं । पुराणों में सुमेरु, केसर, परिस्तरण, जठर, देवकूट, पवन, पारियात्र, कैलास, करवीर, शृंग, मकर आदि पर्वतों का भी उल्लेख हैं ।

३. **सिन्धवः** = नदियां । गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी मुख्य सात नदियां हैं । विष्णुपत्नी धरती माता को 'समुद्रवसना' और 'पर्वत-स्तनमण्डला' कहकर उससे पादस्पर्श के लिए क्षमायाचना की जाती है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वचनव्यत्ययश्छान्दसः । **भूतैः** = पृथिव्यादिभूताभिमानिब्रह्मादिदेवैः सह सामानाधिकरण्येन, **तिष्ठते** = तिष्ठति, तदधिष्ठानतया तदुपासनार्थं ब्रह्मादिस्थानेषु आधारादिषु तिष्ठति, तस्मात् तेषामन्तरात्मा भवति, अन्तर्यामितया अन्तरात्मेति संज्ञां लभते । तदुक्तं **रेणुकभगवत्पादाचार्यैः**—

अन्तः षट्चक्ररूढानि पङ्कजानि विभावयेत् ।
ब्रह्मादिस्थानभूतानि भ्रूमध्यान्तानि मूलतः ।।
भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु सहस्रदलमम्बुजम् ।
भावयेत् तत्र विमलं चन्द्रबिम्बं तदन्तरे ।।
सूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् तत् कैलासपदं विदुः ।
तत्रस्थं भावयेच्छम्भुं सर्वकारणकारणम् ।। इति।

(सि. शि. १२.५-७)

हि = यतः, **येन** = यैः वचन का व्यतिक्रम वैदिक है । **यैः, भूतैः** = जिन पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि पञ्चभूतों के अभिमानी यथाक्रम ब्रह्मदेव, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन पञ्चदेवताओं के साथ सामानाधिकरण्य से रहता है[1]। अर्थात् उनके अधिष्ठाता के रूप में उनकी उपासना के लिए ब्रह्मलोक आदि आधारस्थानों में रहता है । इसीलिए उनमें अन्तर्यामी के रूप में उनका 'अन्तरात्मा' कहलाता है । जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

अन्तः षट्चक्ररूढानि पङ्कजानि विभाजयेत् ।
ब्रह्मादिस्थानभूतानि भ्रूमध्यान्तानि मूलतः ॥
भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु सहस्रदलमम्बुजम् ।
भावयेत् तत्र विमलं चन्द्रबिम्बं तदन्तरे ॥
सूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् तत् कैलासपदं विदुः ।
तत्रस्थं भावयेत् शम्भुं सर्वकारणकारणम् ॥

(सि. शि. १२.२५-२७)

---

१. 'सूतसंहिता' में कहा है—

कार्यं ब्रह्मा महीभागे कार्यं विष्णुर्जलांशके ।
वह्निभागे तथा रुद्रो वाय्वंशे चेश्वरः स्थितः ।
आकाशांशे शरीरे तु साक्षाद् देवः सदाशिवः ॥

पञ्चभूत परमशिव परमात्मा का प्रत्यक्ष शरीर है । उसके पृथ्वीमय अवयव में ब्रह्मदेव, जलमय अवयव में विष्णु, तेजोमय अग्निस्वरूप अवयव में रुद्र, वायुमय अवयव में ईश्वर और आकाशमय (चित्स्वरूप) शरीरावयव में साक्षात् सदाशिव वास करते हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एषः = शिवः, सर्वभूतान्तरात्मापि न जीवदुःखेन दुःखी भवति ।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।।

(कठ. ६.१२)

[जीव और शिव के आश्रयस्थल सूक्ष्मशरीर के मध्य में मूलाधार से लेकर भ्रूमध्य-पर्यन्त षट्चक्रों में अवस्थित छः कमलों का ध्यान करना चाहिए, जो ब्रह्मदेव आदि देवों के आश्रय स्थान हैं[1] । भ्रूमध्य के ऊपर वर्तमान ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदल कमल रहता है । उसके बीच में निर्मल चन्द्रमण्डल का ध्यान करना चाहिए । उसके बीच में केशाग्र केसमान सूक्ष्म रन्ध्र है, उसे कैलास-स्थान समझना चाहिए । और उसके बीच सभी कारणों के आदिकारण परमशिव का ध्यान करना चाहिए ।]

यह परमशिव इस प्रकार सब प्राणियों में अन्तर्यामी के रूप में विद्यमान होने पर भी जीव के दुःख से दुःखी नहीं होता । जैसा कि **'कठोपनिषत्'** का वचन है—

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥

(क. उ. ६.१२)

जिस प्रकार सूर्य सभी प्राणियों का नेत्रस्थानीय होने पर भी बाहरी नेत्ररोगों से लिप्त नहीं रहता, उसी प्रकार सभी प्राणियों के अन्तर में विद्यमान एकमात्र परमेश्वर भी बाहरी दुनिया के दुखों से लिप्त नहीं रहता ।

---

१. गुरूपदिष्ट ध्यान इस प्रकार किया जा सकता है—

क्रम	देवता	स्थान	चक्र	कमलदल	अंगस्थल
१	ब्रह्मदेव	गुद	मूलाधार	चतुर्दल	भक्तस्थल
२	विष्णु	लिङ्ग	स्वाधिष्ठान	षड्दल	माहेश्वरस्थल
३	रुद्र	नाभि	मणिपूर	दशदल	प्रसादीस्थल
४	ईश्वर	हृदय	अनाहत	द्वादशदल	प्राणलिङ्गीस्थल
५	सदाशिव	कण्ठ	विशुद्धि	षोडशदल	शरणस्थल
६	परमशिव	भ्रूमध्य	आज्ञा	द्विदल	ऐक्यस्थल

अनुभवसूत्र का वचन इसमें प्रमाण है —

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
साक्षात् परशिवश्चेति क्रमशः षट्स्थलात्मकाः ॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति श्रुतेः। तस्मादत्राऽन्तरात्मन्शब्दस्य न सूक्ष्मदेहपरकत्वेन कृतं परव्याख्यानं युक्तम्, सन्दर्भविरोधात्। अन्यत्र महानारायणोपनिषदि वृषभेन्द्रपण्डितशिवाचार्यैरपि शिवपरत्वेन व्याख्यानाच्च ॥९॥

'शुद्धतत्त्वानुसन्धानाद् वाऽपशुशक्तिः' (शिवसूत्र १.१६) इति शिवसूत्रोक्तप्रकारेण स्वस्त्यपशुपतिशक्तिप्राप्त्यर्थं मृत्सिन्धुतन्त्वाद्युपादानकत्वाद् घटतरङ्गपटादीनां तदभिन्नत्वमिव शिवतत्त्वोपादानकत्वात् सर्वस्य जगतः शिवाभिन्नत्वानुसन्धानमाह—

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ! ॥१०॥

॥ इति द्वितीयमुण्डके प्रथम खण्डः ॥२.१॥

[आचार्य शंकरसम्मत व्याख्या इस प्रकार है— **येन रसेन भूतैः पञ्चभिः स्थूलैः परिवेष्टितस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा लिङ्गं सूक्ष्मं शरीरम्,** अर्थात् पञ्च स्थूल भूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) द्वारा परिवेष्टित लिंगस्वरूप सूक्ष्मशरीर विद्यमान है।]

यह परसम्मत व्याख्या युक्तियुक्त नहीं है। 'अन्तरात्मा' का अर्थ 'सूक्ष्म शरीर' नहीं करना चाहिए। प्रस्तुत प्रकरण से इसका विरोध है। अन्यत्र **महानारायणोपनिषद्** में **वृषभेन्द्र पण्डित शिवाचार्य** इसकी व्याख्या शिवपरक ही करते हैं, सूक्ष्मशरीरपरक नहीं ॥९॥

अवतरण-भाष्य— 'शुद्धसत्त्वानुसन्धानाद् वाऽपशुशक्तिः' (शि. सू. १.१६) इस **शिवसूत्र** में प्रतिपादित रीति के अनुसार कल्याणकारिणी **अपशुशक्ति** की प्राप्ति करने के लिए **शुद्धतत्त्व** का अनुसन्धान आवश्यक है। जैसे मृण्मय घट का उपादानकारण मिट्टी घट से अभिन्न होती है, तरङ्ग की उपादानकारण सिन्धु (समुद्र या नदी) तरङ्ग से अभिन्न होती है, पट (कपड़ा) का उपादानकारण तन्तु (धागा) पट से अभिन्न होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण चराचर विश्व का उपादान-कारण शिवतत्त्व शिव से अभिन्न होता है इसी तथ्य को श्रुतिमाता इस प्रकार सूचित कर रही है—

***मन्त्रार्थ*– यह अक्षर-पुरुष से आविर्भूत स्थूल-सूक्ष्म-कारणस्वरूप पृथ्वी से मायापर्यन्त समस्त विश्व परम-पुरुष का ही रूप है। वह 'कर्म' (इष्टलिङ्ग), 'तप' (प्राणलिङ्ग) और 'ब्रह्म' (भावलिङ्ग) है। त्रिविध रूप होने पर भी 'परामृत' पुरुषस्वरूप परम शिव महालिङ्ग ही है। सौम्य ! इस परशिव लिङ्ग का गुफा में जो साक्षात्कार करता है, वह अधिकारी शुद्धात्मा अविद्या की ग्रन्थि जड़ माया का आवरण दूर फेंक देता है ॥१०॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पुरुष एवेदमिति। इदमक्षरात् पुरुषादुत्पन्नं विश्वं स्थूलसूक्ष्मकारणरूपं धरादिमायान्तं सर्वं जगत्, **पुरुष एव** = परमकारणपरमात्मरूपं लिङ्गमेव,

यस्मिन् समस्तवस्तूनि कल्लोला इव वारिधौ।
सम्भूय विलयं यान्ति तद्रूपं परमात्मनः॥

(सि. शि. १८.३२) इति,

पीठिका परमा शक्तिर्लिङ्गं साक्षात् परः शिवः।
शिवशक्तिसमायोगं विश्वं लिङ्गं तदुच्यते॥

(सि. शि. ११.३२)

इति च रेणुकभगवत्पादोक्तेः,

'न वज्रचक्राङ्कसरोरुहाङ्कं लिङ्गाङ्कितं पश्य जगद् भगाङ्कम्',

व्याख्या : 'पुरुष एवेदं विश्वमि'ति। इदम् = यह अक्षरपुरुष से उत्पन्न, **विश्वम्** = स्थूल-सूक्ष्म-कारणस्वरूप धरती से लेकर मायातत्त्व तक सम्पूर्ण जगत्, **पुरुष एव** = परम-कारण परमात्मा के रूप में विद्यमान महालिङ्ग ही है। इसमें अनेक वचन प्रमाण हैं—

यस्मिन् समस्तवस्तूनि कल्लोला इव वारिधौ।
सम्भूय विलयं यान्ति तद् रूपं परमात्मनः॥

(सि. शि. १८.३२)

जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठकर उसी में समा जाती हैं, उसी प्रकार जहां भूमि से लेकर सम्पूर्ण वस्तुए उत्पन्न होकर समा जाती है, उसी को परमात्मा का वास्तविक स्वरूप समझना चाहिए।

पीठिका परमा शक्तिर्लिङ्गं साक्षात् परः शिवः।
शिवशक्तिसमायोगं विश्वं लिङ्गं तदुच्यते॥[1]

(सि. शि. ११.३२)

"सर्वोत्कृष्ट क्रिया शक्ति उसकी पीठिका और साक्षात् परम शिव महालिङ्ग है। शिव एवं शक्ति का समायोग जिसमें होता है ऐसा सम्पूर्ण विश्व लिङ्गस्वरूप, लिङ्ग से अभिन्न ही है।" इस प्रकार **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** वर्णन करते हैं।

---

१. "क्रियाशक्त्यात्मकं पीठं ज्ञानशक्त्यात्मनः प्रभोः" इस शिवागम के वचनानुसार ज्ञानशक्ति-स्वरूप परमशिव (महालिङ्ग) का पीठ क्रियाशक्तिस्वरूप होता है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

'ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्विश्वं चित्क्रियालिङ्गरूपकम् ।'

इति पुराणोक्तेश्च,

ये ये पदार्था लिङ्गाङ्कास्ते ते शर्वविभूतयः ।
अर्था भगाङ्किता ये ये ते ते गौर्या विभूतयः ।।

(लैङ्गोत्तरभाग. अ. १२, श्लो. ३१)

इति लैङ्गोत्तरपुराणोक्तेश्च सर्वं **विश्वं पुरुष एव, पुरि** स्थूलादिशरीरे इष्टलिङ्गरूपेण **शयनात् पुरुष**संज्ञकं परशिवलिङ्गमेव । नहि विश्वं नाम परमात्मनो परशिवलिङ्गादत्यन्त-भिन्नमस्ति, अतो यत् पृष्टं **'कस्मिन्नु भगवो ! विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'** इति तदुत्तरितम् ।

" यह समस्त जगत् शिवस्वरूप है, विष्णुस्वरूप नहीं, क्योंकि यह वज्र, चक्र, कमल आदि से चिह्नित न होकर लिङ्ग और उसकी पीठिका भग से अङ्कित है" इस अर्थ का यह पुराणवचन द्रष्टव्य है— **'न वज्रचक्राङ्गसरोरुहाङ्कं लिङ्गाङ्कितं पश्य जगद् भगाङ्कम्"** ।

अन्य पुराणवचन इस प्रकार है—

ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्विश्वं चित्क्रियालिङ्गरूपकम् ।।

अर्थात् "पञ्च ज्ञानेन्द्रियों और पञ्च कर्मेन्द्रियों से विशिष्ट यह चराचर विश्व ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिविशिष्ट महालिङ्ग का ही स्वरूप है ।"

लिङ्गपुराण स्पष्ट प्रतिपादित करता है कि "जो जो पदार्थ लिङ्ग से चिह्नित हैं, वे सब शिव की और जो जो पदार्थ योनि से चिह्नित हैं, वे सब गौरी (शक्ति) की विभूतियाँ हैं"।

ये ये पदार्था लिङ्गाङ्कास्ते ते शर्वविभूतयः ।
अर्था भगाङ्किता ये ये ते ते गौर्या विभूतयः ।।

(लैङ्गोत्तरपु. १२.३१)

इन सभी प्रमाणवचनों के आधार पर यह सिद्ध है कि सम्पूर्ण चराचर विश्व पुरुष-स्वरूप ही है । **'पुरि शेत इति पुरुषः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार "वह स्थूल-सूक्ष्म-कारणस्वरूप त्रिविध शरीरों में इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग इन त्रिविध स्वरूपों में विद्यमान **पुरुष** नामक परशिव का महालिङ्ग ही है"।

चराचर जगत् परशिवलिङ्गस्वरूप परमात्मा से अत्यन्त भिन्न कोई दूसरी वस्तु नही है । अतः यह जो प्रश्न किया गया है कि **'कस्मिन्नु भगवो! विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'** (मु. उ. १.१.३) इसका समाधान हो जाता है । इसी एकमात्र परम कारणस्वरूप

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अस्मिन्नेव परमकारणे परशिवलिङ्गे विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति, सर्वस्य कार्यस्य विज्ञातपरमकारणभिन्नत्वात्। तथैव **श्रीशम्भुभट्टारकेणाप्युक्तम्**—

एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्वभावाः ।
एको भावस्तत्त्वतो येन दृष्टः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन दृष्टाः ।। इति।

कृष्णगीतायामपि—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमक्षयमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तद् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।

(गीता १८.२०) इति।

ननु स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन त्रिविधप्रपञ्चस्य त्रिविधकारणत्वावश्यम्भावात्, स्थूलादेः विराडाद्यपरपर्यायकेष्टादेः कारणत्वात्, कार्यस्य कारणरूपतापत्तावपि कार्यस्य त्रिविधकारणाभिन्नत्वे

परशिवलिङ्ग का विशिष्ट ज्ञान होने पर सभी वस्तुजात का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि सभी कार्य ज्ञात परम आदिकारण से भिन्न नहीं हैं। अत एव शम्भु भट्टारक भी कहते हैं—

एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्वभावाः ।
एको भावस्तत्त्वतो येन दृष्टः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन दृष्टाः ॥

"एक शाश्वत सत्य सभी विद्यमान वस्तुओं में अपनी सत्ता जताता है,सभी विद्यमान वस्तुएं उसी एकमात्र शाश्वत सत्य के स्वरूप की ही होती हैं। अतः जो परमार्थ रूप से उस अद्वितीय शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करता है, वह सभी विद्यमान वस्तुओं के यथार्थस्वरूप को जान लेता है।"

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमक्षयमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तद् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

"नानाविध सभी पाञ्चभौतिक प्राणियों में जिस एक ज्ञान के द्वारा अविनश्वर एकमात्र शाश्वत सत्य का साक्षात्कार होता है, जो शाश्वत सत्य नानाविध वस्तुओं में भी विभाजित नहीं रहता, उस शाश्वत सत्य के ज्ञान को सात्विक ज्ञान समझना चाहिए।"

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्थूल, सूक्ष्म, आदि भेद से प्रपञ्च तीन प्रकार का है, अतः उसके त्रिविध कारण अवश्यम्भावी हैं, विराट् आदि अपर पर्यायोंवाले इष्टलिङ्ग आदि उनके तीन कारण हैं। ऐसी स्थिति में यद्यपि कार्यकारण का रूपान्तरण होता है, तथापि जगत्स्वरूप एक कार्य को अपने तीन मूल कारणों से अभिन्न मानने पर का कम

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कथमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं भवतीत्याशङ्कायामाह— **कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्** इति। कर्मपदेन कर्मविग्रहमिष्टलिङ्गं स्थूलप्रपञ्चकारणं लक्ष्यते, **कर्मविग्रह कामारे कलयामि कराम्बुजे** इति नीलकण्ठशिवाचार्योक्तेः,

गुरोर्विज्ञानयोगेन क्रिया यत्र विलीयते।
तत्क्रियालिङ्गमाख्यातं सर्वैरागमपारगैः ।।

(सि. शि. १५.३०)

इति रेणुकभगवत्पादोक्तेः,

शिष्यपाणितले दत्ता या दीक्षा सा क्रियोच्यते इत्यनुभवसूत्रोक्तेः। **तपः** उपासनज्ञानविषयं प्राणलिङ्गं सूक्ष्मप्रपञ्चकारणम्। **ब्रह्म** = भावलिङ्गं भावग्राह्यं स्थूलसूक्ष्मकारणजडमायाकारणम्।

से कम हमें उस एक वस्तु के लिए तो त्रिविध लिङ्ग का ज्ञान आवश्यक होगा। फिर एक वस्तु का ज्ञान होने पर सभी वस्तुओं का ज्ञान कैसे संभव है?

इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया गया है—

कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। कर्म— यहां 'कर्म' पद का अर्थ सामान्य कर्म न होकर **कर्म-विग्रह इष्टलिङ्ग** यह लक्ष्यार्थ है। जो स्थूल प्रपञ्च का कारण है। श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य का वचन इसमें प्रमाण है—

कर्मविग्रह[1]! कामारे! कलयामि कराम्बुजे।

("हे कर्मविग्रह शिव! मैं अपने करकमल पर तुम्हारा पूजन-अर्चन करता हूँ।।")

श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

गुरोर्विज्ञानयोगेन क्रिया यत्र विलीयते।
तत् क्रियालिङ्गमाख्यातं सर्वैरागमपारगैः ।।

(सि. शि. १५.३०)

"ज्ञानगुरु के विशिष्ट ज्ञान के सम्बन्ध से जिस लिङ्ग में क्रिया विलय प्राप्त करती है, उसे वीरशैवागम के विद्वान् **क्रियालिङ्ग** = इष्टलिङ्ग कहते हैं और 'क्रियार्थं लिङ्गं क्रियालिङ्गम् इष्टलिङ्गम्' इस प्रकार निर्वचन करते हैं। 'अनुभवसूत्र' के अनुसार 'क्रियालिङ्ग' पद में स्थित 'क्रिया' शब्द का अर्थ 'विशिष्ट दीक्षा' है—

शिष्यपाणितले दत्ता या दीक्षा सा क्रियोच्यते।

---

१. कर्मार्थं विग्रहो यस्य तत् कर्मविग्रहम् (इष्टलिङ्गम्), तत्सम्बुद्धौ इति बहुव्रीहिसमासः।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

क्रिया यथा लयं प्राप्ता तथा भावोऽपि लीयते ।
यत्र तद्देशिकैरुक्तं भावलिङ्गमिति स्फुटम् ।।

(सि. शि. १५.३७)

इति **रेणुकभगवत्पादोक्तेः** । एतत्कारणरूपलिङ्गत्रयमपि परामृतं पुरुषरूपपरशिवलिङ्गमेव उपासनार्थमेव त्रिविधत्वात्, केवलं स्थूलसूक्ष्मकारणरूपोपाधिभेदेनैव भेदात्, क्रियाशक्ति-

---

"ज्ञानगुरु द्वारा शिष्य के हाथ में निहित विशिष्ट दीक्षा 'क्रिया' अथवा क्रियादीक्षा कहलाती है"।

तपः = यहां '**तप**' का अर्थ तपस्या न होकर उपासना-ज्ञान का विषय **प्राणलिङ्ग**[1] है, जो सूक्ष्म प्रपञ्च का कारण है ।

ब्रह्म = यहां भावलिङ्ग को 'ब्रह्म' पद से सम्बोधित किया गया है, जो एकमात्र भाव द्वारा (उसके अस्तित्व द्वारा) ग्राह्य होता है और स्थूल और सूक्ष्म प्रपञ्च की कारण- स्वरूपा जो जड माया, उसका कारण होता है । **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** कहते हैं—

क्रिया यथा लयं प्राप्ता तथा भावोऽपि लीयते ।
यत्र तद् देशिकैरुक्तं भावलिङ्गमिति स्फुटम् ।।

(सि. शि. १५-३०)

"जिस प्रकार (क्रियालिङ्ग इष्टलिङ्ग में) क्रिया विलीन होती है, उसी प्रकार भाव भी (लिङ्ग में विलीन होता है । और वह) जिस लिङ्ग में विलय प्राप्त करता है, उसे श्रीगुरु स्पष्ट रूप से भावलिङ्ग कहते हैं"।

---

१. '**सिद्धान्तशिखामणि**' में **प्राणलिङ्ग** का स्वरूप-निरूपण इस प्रकार है—

प्राणाऽपानसमाधानात् कन्दमध्याद् यदुत्थितम् ।
प्राणलिङ्गं तदाख्यातं प्राणाऽपाननिरोधिभिः ।। (सि. शि. १२.६)

श्रीगुरु के उपदेश से योगमार्ग का अनुसरणपूर्वक मूलाधार का निरोध करते हुए प्राण वायु का अपान वायु के साथ सङ्घटन करने के कारण नाभिकन्द के मध्य जो ज्योतिःपुञ्ज आविर्भूत होता है, उसे प्राणापान निरोध करनेवाले शिवयोगी 'प्राणलिङ्ग' कहते हैं । आगे वे कहते हैं—

प्राणो यत्र लयं याति भास्करे तुहिनं यथा ।
तत्प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः ।। (सि. शि. १२.७)

"जिस प्रकार सूर्य के किरणों में कोहरा समा जाता है, उसी प्रकार जिस में प्राण विलीन होते हैं, उस लिङ्ग को 'प्राणलिङ्ग' कहते हैं, उसका धारण करनेवाला तत्स्वरूप होता है और 'प्राणलिङ्गी' कहलाता है"।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रधानत्वात्, स्थूलप्रपञ्चकारणत्वात्, दृक्कलाग्राह्यत्वात् कर्मलिङ्गं स्थूलमिदमेवेष्टलिङ्गं बाह्यमिति यावत्।

तत्र स्थूलप्रपञ्चार्पणानन्तरं तत्तादात्म्यभावनाभ्यासदार्ढ्यानन्तरं **तपः** पदेनोक्तम् उपासना-विषयं प्राणलिङ्गं सूक्ष्मप्रपञ्चकारणं सूक्ष्ममाभ्यन्तरं मनोग्राह्यमवलम्ब्य तत्र सूक्ष्मप्रपञ्चं समर्प्य तदभेदचिन्तनदार्ढ्यानन्तरं ब्रह्मपदेनोक्तं भावलिङ्गं भावग्राह्यं सबाह्याभ्यन्तरं कारणशरीररूपमाया-

---

परामृतम्— स्थूल, सूक्ष्म और कारण त्रिविध प्रपञ्च के त्रिविध कारणस्वरूप त्रिविध लिङ्ग भी एकमात्र पुरुषस्वरूप परम शिव ही है। केवल स्थूल, सूक्ष्म और कारणस्वरूप जिन उपाधियों के कारण ही वह त्रिविध है, वस्तुतः वह एक ही **महालिङ्ग**[1] है।

लिङ्गाङ्ग-सामरस्य-प्रक्रिया से अविद्या-ग्रन्थि का मोचन

एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति।

इस मन्त्रार्धाली द्वारा यह निरूपित किया गया है कि उस 'कर्म' पद से अभिहित कर्मलिङ्ग में स्थूल प्रपञ्च का समर्पण करना चाहिए, जो क्रियाशक्तिप्रधान होने से स्थूल-प्रपञ्च का कारण दृष्टिद्वारा प्रत्यक्ष किया जा सकता है। उस बाह्यदृष्टि कलाद्वारा प्रत्यक्ष-गोचर क्रियादीक्षा द्वारा शिष्य के करकमल में समर्पित इष्टलिङ्ग में स्थूल प्रपञ्च को समर्पित करने के बाद उसमें अपनी तादात्म्य-भावना को दृढ़ करना चाहिए। पश्चात् **तप** शब्द द्वारा संकेतित उस **प्राणलिङ्ग** का चिन्तन करना चाहिए, जो उपासना का विषय है और सूक्ष्म प्रपञ्च का कारण है और मन के द्वारा उसका ग्रहण किया जा सकता है। उस प्राणलिङ्ग में सूक्ष्म प्रपञ्च का समर्पण और उसके साथ अपनी अभेदबुद्धि को दृढ करना चाहिए। पश्चात् उस **भावलिङ्ग** का चिन्तन करना चाहिए, जो एकमात्र **'भाव'** (अपने अस्तित्व) द्वारा ग्राह्य है और कारणशरीरस्वरूप जड माया का कारण है। वह भीतर-बाहर सर्वत्र विद्यमान है। उस भावलिङ्ग में कारणशरीररूपिणी जडस्वरूपा माया का समर्पण करते हुए स्वकीय जीवांश के साथ अभेदानुसन्धान करना चाहिए। फलतः शिव का साक्षात्कार होने पर त्रिविध मल का स्वकीय कारण ऊर्ध्व माया में विलय होता है। कारण-शरीर- स्वरूप आणव-मल

---

१. एतदर्थ **चन्द्रज्ञानागम** का यह पद्य द्रष्टव्य है—

इष्टं स्थूलतनोः प्रोक्तं प्राणं सूक्ष्मतनोः स्मृतम्।
भावाख्यं कारणस्यैव तनुत्रयगतं त्रयम्॥ (चन्द्रज्ञाना. ३.४५)

"परम शिव स्वरूप महालिङ्ग के तीन शरीर हैं—स्थूल-प्रपञ्च, सूक्ष्म-प्रपञ्च और कारण जड़ मायातत्त्व। त्रिविध शरीर में अवस्थित जीव का कल्याण करने के लिए यह यथाक्रम इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग तीन स्वरूपों में प्रकट होता है। उनकी उपासना से जीव जन्म-मरण-चक्र से छुटकारा पाता है"।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कारणमवलम्ब्य तत्र मायारूपकारणशरीरमपि समर्प्य तत्र स्वात्माभेदानुसन्धानदार्ढ्यसमुदित-शिवसाक्षात्कारे **नाहं विश्वात्मकः शिव** इत्यज्ञानबन्धमाणवं मलं कारणशरीररूपं स्थूलसूक्ष्मात्मककार्मिकमायीयमलकारणरूपं स्वकारणे ऊर्ध्वमायायां विलीनं भवतीत्याह—**एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरति** इति। एतत् सर्वात्मकपरशिवरूपमूर्ध्वलिङ्गम्, **गुहायां** सर्वप्राणिनाम् आधारदिहृत्त्रये। हृत्त्रयं चोपदिष्टं भगवता रेणुकाचार्येण—

आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम्।
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं लिङ्गयोगी विभावयेत्।। इति।

(सि. शि. ६.४०)

वस्तुतः वह अज्ञान का बन्धन है, 'जिससे जीव स्वयं को विश्वस्वरूप शिव से भिन्न समझता है— **'नाऽहं विश्वात्मकः शिवः'**। शिव का साक्षात्कार होने पर अज्ञान का आणव मल हट जाता है। उसी प्रकार उसके स्थूल शरीर का कारणरूप कार्मिक मल (कर्तृत्वादि अभिमान) और सूक्ष्मशरीर का कारण मायीय मल का भी अपने कारण के रूप में विद्यमान ऊर्ध्व माया में विलय होता है। माया के कारण ही त्रिविध शरीर और इनमें त्रिविध मल विद्यमान रहते हैं। सामरस्य-प्रक्रिया से इस अविद्या-ग्रन्थि का मोचन होता है। इसी को मन्त्र का उक्त उत्तरार्ध सूचित कर रहा है।

गुहायाम्— सभी प्राणियों के शरीर में **तीन गुफाएं** हैं, जो हृदयस्थल ही हैं— १. मूलाधार (गुदा), २. हृदय और ३. नाभिस्थल। **निहितम्**— इनमें वह परम शिव लिङ्गरूप से अवस्थित रहता है। इन तीन हृदयस्थलों का उपदेश **भगवान् श्रीरेणुकाचार्य** इस प्रकार करते हैं—

आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम्।
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं लिङ्गं योगी विभावयेत्॥

(सि. शि. ६.४०)

"शिवयोग की साधना करनेवाले का यह कर्तव्य है कि वह मूलाधार में सुवर्ण के समान कान्ति के, हृदय में मूंगे के समान कान्ति के और भ्रूमध्य में स्फटिक की कान्ति के लिङ्ग का सतत चिन्तन करे"।

एतत् = सर्वात्मक परशिवस्वरूप ऊर्ध्वलिङ्ग को, **यो वेद** = शुद्ध अन्तःकरण का जो अधिकारी **नदी-समुद्रन्याय** से अपने साथ सामरस्य स्थापित करके जानता है, **हे सोम्य !** = हे प्रियदर्शन !, **सः** = वह जीवात्मा, **इह** = इस जन्म में, **अविद्याग्रन्थिम्** =

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

निहितं = लिङ्गरूपेण स्थितम्, **यः** = अधिकारी शुद्धात्मा, **वेद** = स्वसामरस्येन नदीसमुद्रन्यायेन जानाति, **सोम्य !** = हे प्रियदर्शन ! स **इह** जन्मनि अविद्याग्रन्थिम्— **नाहं विश्वात्मकः शिव** इत्यन्योन्याभावबुद्धिं ग्रन्थिवद्दुर्मोचाम्, **विकिरति** = जडमायां निरस्यति । **'कृ विक्षेपे'** इति धातुः । उक्तं च भगवता बादरायणेन लैङ्गोत्तरभागे विंशतितमेऽध्याये—

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं तु कारणम् ।
धारयन्तो नराः स्थूलं कारणं सम्प्रयान्ति हि ।
कुर्यात् त्रिपुटिसन्धानं शिवसायुज्यकारणम् ।।९१।।

वक्ष्ये त्रिपुटिसन्धानलक्षणं शिवयोगिनाम् ।
स्थूललिङ्गस्य देहस्य सूक्ष्मस्य मनसस्तथा ।।९२।।

कारणस्याऽऽत्मनो नित्यं कुर्यादैक्यमतन्द्रितः ।
[1]देहेन धारयेल्लिङ्गं ध्यायेच्चित्तेन शङ्करम् ।।९३।।

स्वात्मना भावयेत् पूर्णमैक्यभावेन सर्वतः ।
एतत्त्रिपुटिसन्धानलक्षणं परिकीर्तितम् ।।९४।।

अविद्या (अज्ञान) की गांठ को, जो छुडाये नहीं छूटती । परम शिव विश्वस्वरूप में अवस्थित है, यह भावबुद्धि है । यतः जीव परशिव का ही अंश है और विश्व से अभिन्न विश्वात्मक विश्वरूप, विश्वात्मक शिवस्वरूप ही है.। उससे स्वयं को भिन्न रखते हुए **'नाहं विश्वात्मकः शिवः'** इस प्रकार दृढ अज्ञानग्रन्थि-स्वरूप जडमाया को **विकिरति** = (विक्षिपति) = काट डालता है । **'विकिरति'** क्रियापद विक्षेपार्थक 'कृ' धातु से निष्पन्न है । (**'कृ विक्षेपे'**) ।

जैसा कि भगवान् **बादरायण** ने **'लिङ्गपुराण'** में प्रतिपादन किया है— "लिङ्ग तीन प्रकार के हैं— स्थूल, सूक्ष्म और कारण लिङ्ग । मानव जीव स्थूल (इष्ट) लिङ्ग को धारण करते हुए कारणलिङ्ग (भावलिङ्ग) की ओर सम्यक् रूप से प्रयाण करते हैं । इसके लिए त्रिपुटी-सन्धान करना चाहिए, जो शिवसायुज्य का कारण होता है । एतदर्थ शिवयोगियों द्वारा निरूपित और अनुभूत त्रिपुटीसन्धान का लक्षण निरूपित कर रहा हूँ । स्थूलशरीर का इष्टलिंग के साथ, सूक्ष्मशरीर का मन के साथ और कारणशरीर (माया) का आत्मा के साथ बिना प्रमाद के नित्य एकता स्थापित करनी चाहिए । सर्वतः एकनिष्ठ होकर शरीर से इष्टलिङ्ग का धारण, मन से प्राणलिङ्ग का ध्यान और एकात्मभाव से पूर्ण महालिङ्ग की भावना करना ही त्रिपुटीसन्धान का स्वरूप कहलाता है । (इसके लिए **कीटभ्रमरन्याय** समझना आवश्यक है ।) जिस प्रकार कीट भौंरे के साथ भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हुए

---

१. लिङ्गेन –पा. ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम्।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चयम्।।९५।।
अनेन वर्त्मना गच्छन् स जीवन्नेव शङ्करः।। इति।

सूत्रितं च— **उपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगाद्** इति। **अनुभवसूत्रेऽप्युक्तम्—**

भावलिङ्गं परं तत्त्वं प्राणलिङ्गं तु सूक्ष्मकम्।
इष्टलिङ्गं भवेत् स्थूलमेतल्लिङ्गत्रयं स्मृतम्।। इति।

रेणुकभगवत्पादाचार्यैरप्युक्तम्—

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।। इति।
(सि. शि. ६.४९)

निश्चित रूप से भौरा बन जाता है, उसी प्रकार मानव जीव 'शिवयोग' (लिङ्गाङ्ग सामरस्य) द्वारा निश्चित ही शिव बन जाता है। इस मार्ग से चलने- वाला पथिक अपने जीवितावस्था में ही जीवन्मुक्त, शिवस्वरूप हो जाता है।'' (लिङ्ग पु. उत्तर भाग अ. २०. श्लो. ९१-९६)

'ब्रह्मसूत्र' का यह सूत्र भी प्रमाण है— **'उपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात्'**, (उपासना की त्रिविधता से त्रिविध लिङ्ग के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए शिवयोग, लिङ्गाङ्गसामरस्य द्वारा जीव शिवस्वरूप होता है।) **अनुभवसूत्र** का वचन है—

भावलिङ्गं परं तत्त्वं प्राणलिङ्गं तु सूक्ष्मकम्।
इष्टलिङ्गं भवेत् स्थूलमेतद् लिङ्गत्रयं स्मृतम्।।

''भावलिङ्ग परम-तत्त्वस्वरूप महालिङ्ग है, सूक्ष्म लिङ्ग प्राणलिङ्ग है और इष्टलिङ्ग स्थूललिङ्ग है। इस प्रकार त्रिविध लिङ्ग का स्मरण किया जाता है।'' **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** भी कहते हैं—

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
(सि. शि. ६.४९)

(लिङ्ग तीन प्रकार के हैं— स्थूल, सूक्ष्म और परात्पर।) यद्यपि इस मन्त्र में 'परामृत' शब्द से संकेतित महालिङ्गस्वरूप परशिव ब्रह्म अपरिच्छिन्न (सीमाहीन), अद्वितीय-एक और एक निश्चित स्थान पर प्रतिष्ठित न होने के कारण उसकी उपासना करना सम्भव नहीं है, तथापि भक्त जीव का कल्याण करने के लिए, उसके ध्यान-पूजन के लिए अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति अथवा माया शक्ति द्वारा घृतकाठिन्य न्याय से अपने असीम स्वरूप को

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यद्यपि परामृतशब्दवाच्यमहालिङ्गस्य परशिवब्रह्मणोऽपरिच्छिन्नत्वादेकत्वात् स्थानशून्यत्वान्नोपास्यत्वम्, तथापि भक्तध्यानपूजार्थं स्वस्वातन्त्र्यापरपर्यायमायाशक्त्या घृतकाठिन्यन्यायेन परिच्छिन्नत्वात् स्थानभेदेन लिङ्गत्रयरूपत्वादुपास्यत्वान्न **'कर्म तपो ब्रह्म'** शब्दवैयर्थ्यम्। **परव्याख्याने**[१] वैयर्थ्यं दुर्वारम्, विश्वपरकत्वेन व्यांख्यानात्, कार्यात्मकविश्वस्य पुरुषादुत्पन्नस्य पूर्वमन्त्रप्राप्तस्यात्रेदम्पदनिर्दिष्टस्य **'पुरुष एव'** इति पुरुषाभिन्नत्वप्रतिपादनमनेनाऽभिमतमिति स्पष्टं ज्ञायमानत्वात् ॥१०॥

॥ इति द्वितीयमुण्डक-प्रथमखण्ड-वीरशैवभाष्यं हर-गुरु-चरचरणार्पितं भूयात् ॥



सीमित करने के कारण स्थानभेद से तीन लिङ्गों के रूप में उसकी उपासना करना सम्भव है। अत: इस मन्त्र में **कर्म तपो ब्रह्म** इस प्रकार का प्रयोग व्यर्थ नहीं है। **परसम्मत**[१] व्याख्या में ये तीनों पद अनिवार्य रूप से व्यर्थ हैं। क्योंकि इस व्याख्या में इसका अर्थ विश्वपरक किया गया है। विश्व पुरुषका कार्य स्वरूप है, जो पुरुष से उत्पन्न हुआ है। **'पुरुष एवेदं विश्वम्'** इस प्रकार पुरुष के साथ विश्व का अभेद स्थापन परव्याख्यान में अभीष्ट है यह इससे स्पष्ट ज्ञात होता है ॥१०॥

॥ इस प्रकार मुण्डकोपनिषद् (द्वितीय मुण्डक-प्रथम खण्ड) और उसका वीर-शैवभाष्य उसकी हिन्दी व्याख्या 'भावार्थदीपिका' के साथ शिव, गुरु और जङ्गम के चरणों में समर्पित है ॥



---

१. **शाङ्करभाष्यम्**—"किं पुनरिदं विश्वमित्युच्यते — कर्माऽग्निहोत्रादिलक्षणम्। तपो ज्ञानं तत्कृतं फलमन्यदेतावद्धीदं सर्वम्। तच्चैतद् ब्रह्मणः कार्यम्। तस्मात् सर्व ब्रह्म परामृतं परममृतम्"।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अथ द्वितीयमुण्डके द्वितीय: खण्ड:

परशिवमहालिङ्गादुत्पन्नं विश्वं परशिवमयमेवेति शिवजगन्मयस्थलोक्तरीत्या तत्र विश्वाभिन्नत्वानुसन्धानरूप उपाय उक्त: । इदानीं तत्सृष्टस्थूलादिपदार्थत्रयात्मकस्य विश्वस्य तस्मिन् स्थूलेष्टादिलिङ्गरूपे ब्रह्मण्यर्पणानन्तरं तद्विश्वमर्पितं प्रसादरूपेणैव ज्ञात्वाऽनुभोक्तव्यम्, नाऽन्यथेत्यनुशास्त्ययं मन्त्र: —

आवि: सन्निहितं गुहाचरं नाम
महत्पदम् अत्रैतत् समर्पितम् ।
एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं
परं विज्ञानाद् यद् वरिष्ठं प्रजानाम् ।।१।।

अवतरण भाष्य— परशिवस्वरूप महालिङ्ग से उत्पन्न विश्व परशिवात्मक ही है । इसलिए शिवात्मक और विश्वात्मक स्थलों में वर्णित रीति से परशिव में विश्व की अभिन्नता किस प्रकार स्थापित करनी चाहिए? इसके अनुसन्धान का उपाय पूर्व में वर्णित किया गया है । अब अग्रिम मन्त्र यह आदेश दे रहा है कि प्रथम परम शिव की स्थूल-सूक्ष्म और कारण सृष्टि को यथाक्रम इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्गस्वरूप परब्रह्म परमशिव को समर्पित करना चाहिए और उस के उपरान्त उस समर्पित चराचर विश्व का उपभोग परमशिव का प्रसाद समझकर ही करना चाहिए, अन्यथा नहीं ।

मन्त्रार्थ– **सर्व प्राणियों की हृदयरूपी गुफाओं में अवस्थित वह अक्षर-ब्रह्म-स्वरूप परम शिव ही चराचर विश्व का विश्रामस्थान होने के महत् पद है, जो भक्तों पर कृपा करने के लिए गुरु, चर और इष्टलिङ्ग के रूप में प्रकट हुआ है और जिसे बाह्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है । भक्तद्वारा विविध पूजोपचार ग्रहण करने के लिए निकटवर्ती त्रिविध लिङ्गों के रूप में अवतीर्ण महालिङ्ग को स्थूल आदि त्रिविध द्रव्य आत्मशुद्धि के लिए समर्पित किया जाता है । समर्पित द्रव्यों में प्रथम है पृथ्वी से पुरुषतत्त्व तक स्थूल, जो जाग्रतावस्था का विषय हैं, द्वितीय केवल मनद्वारा स्वप्नावस्था में ग्राह्य प्रविविक्त सूक्ष्म है, और तृतीय सुप्तावस्था में बाह्येन्द्रिय और मन की निमेषस्थिति में मायामय आनन्दरूप है । शिष्यों! आप इस त्रिविध लिङ्गों से अभिन्न महालिङ्ग को वास्तविक स्वरूप समझिये । उसकी उपासना स्थूल सूक्ष्म के अभिमानी विश्व आदि जीव करते हैं, क्योंकि वे सामान्य जीव से भिन्न होते हैं और ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओं में वरिष्ठ हैं ।।१।।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आविर् इति । **गुहाचरम्** = गुहासु सर्वप्राणिनां हृदयरूपासु चरतीति गुहाचरम् = हृदयगुहास्थितम्, **नाम** = प्रसिद्धं पूर्वोक्तमक्षरमेव, **महत्** = महालिङ्गरूपं **पदम्** = स्थलम् ।

परं परस्थं गहनादनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहासु ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये ।।

इति परमार्थसारोक्तेर्हृदयदर्पणे प्रकाशमानत्वाद् हृदयगुहाचरमित्युक्तम् । उक्तं च परमार्थसारे—

राहुरदृश्योऽपि यथा शशिबिम्बस्थः प्रकाशते तद्वत् ।
सर्वगतोऽप्ययमात्मा विषयाश्रयणेन धीमुकुरे ।।

इति चराचरात्मकविश्वविश्रान्तिस्थानभूतत्वात् परशिवमहालिङ्गमेव महत्पदमित्युक्तम् ।

आद्यन्तशून्यममलं परिपूर्णमेकं सूक्ष्मं परात्परमनामयमप्रमेयम् ।
भावैकगम्यमजडं शिवतत्त्वमाहुश्चिच्छक्तिसंस्फुरणरूपमहात्मलिङ्गम् ।।

व्याख्या : आविः इत्यादि । **गुहाचरं नाम** (गुहासु चरतीति गुहाचरम्) = सभी प्राणियों की हृदयरूपी गुफा में सञ्चरण करने के कारण 'गुहाचर' नाम से प्रसिद्ध, **महत् पदम्** = पूर्वोक्त अक्षर ब्रह्म ही महालिङ्गस्वरूप स्थल है ।

परं परस्थं गहनादनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहासु ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये ।।

परमार्थसार की इस उक्ति के अनुसार हृदय-दर्पण में प्रकाशित होने से महालिङ्ग को हृदयगुहाचर कहा गया है । जैसा कि परमार्थसार में वर्णित है—

राहुरदृश्योऽपि यथा शशिबिम्बस्थः प्रकाशते तद्वत् ।
सर्वगतोऽप्यममात्मा विषयाश्रयणेन धीमुकुरे ।।

जिस प्रकार राहु अदृश्य होने पर भी चन्द्रबिम्व में रहकर प्रकाशित होता है, उसी प्रकार परम शिव सर्वान्तर्याभी होने पर भी विषय का आश्रय लेकर बुद्धिदर्पण में प्रकाशित होता है।

परशिवस्वरूप महालिङ्ग को 'महत्पद' इसलिए कहते हैं कि वह समस्त स्थावर-जङ्गमस्वरूप विश्व का विश्रामस्थल है । **अनुभवसूत्र** का श्लोक इसमें प्रमाण है—

आद्यन्तशून्यममलं परिपूर्णमेकं सूक्ष्मं परात्परमनामयमप्रमेयम् ।
मायैकगम्यमजडं शिवतत्त्वमाहुश्चिच्छक्तिसंस्फुरणरूपमहात्मलिङ्गम् ।।

आदि-अन्तरहित, निर्मल, सम्पूर्ण, अद्वितीय, सूक्ष्म, परात्पर, अनामय (निर्दुष्ट), अप्रमेय, एकमात्र मायाद्वारा बोध्य, अजड (चैतन्यशील) शिवतत्त्व को चित्शक्ति के संस्फुरण के रूप में प्रकाशमान परमात्मस्वरूप महालिङ्ग कहते हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः। **आविः** = गुरुचरेष्टरूपेण प्रादुर्भूतं बाह्येन्द्रियग्राह्यं सदित्यर्थः। **प्रकाशे प्रादुराविः स्याद्** इत्यमरोक्तेः, **त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुष** इति श्रुत्यन्तरात्,

एक एव शिवः साक्षात् सर्वानुग्रहकारकः।
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः।।

(सि. शि. ९.५९)

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेः

त्रिपादिति त्रयः पादा यस्य स स्यात् त्रिपाच्छिवः।
गुरुर्लिङ्गं जङ्गमश्च तेषां पादत्रयं त्रिपात्।।

आविः = वह महालिङ्ग गुरु, चर और इष्टलिङ्ग त्रिविध स्वरूप में प्रकट हुआ है, जो बाह्य पञ्च ज्ञानेन्द्रियों और पञ्च कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष किया जा सकता है। **'आविः'** निपात प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त है। जैसा कि कोषकार अमरसिंह कहते हैं— **'प्रकाशे प्रादुराविः स्यात्'** (प्रकाश अर्थ में दो अव्यय हैं— 'प्रादुः' और 'आविः')। (महालिङ्ग के त्रिविध स्वरूप में आविर्भाव के विषय में अनेक प्रमाण हैं।) श्रुति कहती है— **त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः** (पुरुष-सूक्त)। (वह परमपुरुष ऊर्ध्वलिङ्ग त्रिपाद प्रकट हुआ है।) श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

एक एव शिवः साक्षात् सर्वानुग्रहकारकः।
गुरु-जङ्गम-लिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः।।

(सि. शि. ९.५९)

यद्यपि परमशिवस्वरूप महालिङ्ग एक ही है, तथापि सभी पर अनुग्रह करने के लिए वह गुरु, जङ्गम और इष्टलिङ्ग त्रिविध स्वरूप में प्रकट होकर सभी को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है।

श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य श्रुतिसम्मत 'त्रिपात्' शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

त्रिपादिति त्रयः पादा यस्य स स्यात् त्रिपात् शिवः।
गुरुर्लिङ्गं जङ्गमश्च तेषां पादत्रयं त्रिपात्।।

त्रयः पादा यस्य स त्रिपात् इस समास विग्रह के अनुसार जिसके तीन पाद होते हैं, उस परम शिव को **त्रिपात्** कहते हैं। यतः गुरु, लिङ्ग और जङ्गम ये तीन लिङ्ग उसके तीन पाद हैं, अत एव वह त्रिपात् है।

श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य ने त्रिविध लिङ्ग स्वरूप परम शिव का गुरुस्वरूप इस प्रकार निरूपित किया है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति श्रीनीलकण्ठशिवाचार्योक्तेः,

अप्रत्यक्षो महादेवः सर्वेषामात्ममायया ।
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण वर्तते भक्तिसिद्धये ।।

(सि. शि. ९.५३)

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तिः । उक्तं च वीरागमे—

ललाटलोचनं चान्द्रीं कलामपि च दोर्द्वयम् ।
अन्तर्निधाय वर्तेऽहं गुरुरूपो महेश्वरि ! ।।
सर्वलोकोपकाराय यो देवः परमेश्वरः ।
चरत्यतिथिरूपेण नमस्ते जङ्गमात्मने ।। इति।

अप्रत्यक्षो महादेवः सर्वेषामात्ममायया ।
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण वर्तते भक्तिसिद्धये ।।

(सि. शि. ९.५३)

यद्यपि परमशिवस्वरूप महालिङ्ग अप्रत्यक्ष है, तथापि वह जीवों की भक्ति को सफल बनाने के लिए अपनी माया के द्वारा श्रीगुरु के रूप में प्रत्यक्ष होता है ।

'वीरागम' में परम शिव पार्वती से कहते हैं—

ललाटलोचनं चान्द्रीं कलामपि च दोर्द्वयम् ।
अन्तर्निधाय वर्तेऽहं गुरुरूपो महेश्वरि ! ।।

हे पार्वती ! मैं त्रिनेत्र चन्द्रशेखर चतुर्भुज शिवस्वरूप होने पर भी अपने ललाट- स्थित अग्निस्वरूप तृतीय नेत्र, चन्द्रकला और अपनी दो भुजाओं को भीतर छिपाकर श्रीगुरु के रूप में प्रकट होता हूँ ।

चर (जङ्गम) स्वरूप परम शिव का वर्णन इस प्रकार है—

सर्वलोकोपकाराय यो देवः परमेश्वरः ।
चरत्यतिथिरूपेण नमस्ते जङ्गमात्मने ।।

प्रकाश स्वरूप जो परम शिव सभी लोकों का उपकार करने के लिए अतिथि के रूप में सर्वत्र विचरण करते हैं, उस जङ्गमस्वरूप परम शिव को प्रणाम है ।

सन्निहितम् — भक्तों द्वारा विहित विभूति (भस्म), अभ्युक्षण, आवाहन आदि छत्तीस प्रकार के पूजा-उपचार को स्वीकार करने के लिए वह इष्टलिङ्ग के रूप में निकट रहता

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सन्निहितं भक्तकर्तृकषट्त्रिंशद्विभूत्यभ्युक्षणाऽऽह्वानाद्यर्चनोपचारग्रहणार्थमन्तिकस्थम्, **'तदिहान्तिके च'** इत्यत्रैव वक्ष्यमाणत्वात्, **तद्वन्तिके** इति **ईशावास्यश्रुत्यन्तराच्च**। अत्राऽऽह्वानं कराब्जपीठेऽङ्गगतसज्जकस्थलिङ्गमानीयोपवेशनम्।नातो —

ससंस्कारेषु लिङ्गेषु सदा सन्निहितः शिवः।
तत्राऽऽह्वानं न कर्तव्यं प्रतिपत्तिविरोधकम्॥

(सि. शि. १०.४६)

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेर्विरोधः। **अत्र** = परशिवमहालिङ्गे इष्टादिरूपे, **एतत्** = वक्ष्यमाणमात्मभोग्यस्थूलादिद्रव्यत्रयं मलरूपम्, **समर्पितम्** = विश्वाद्यात्मना प्रविलापितं स्वशुद्ध्यर्थम्। तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्येण—

आत्मयोगाय नियतं यद् यद् द्रव्यं समाहितम्।
तत् तत् समर्प्य देवाय भुञ्जीताऽऽत्मविशुद्धये॥ इति।

(सि. शि. ११.११)

है। इसमें इसी उपनिषद् का अग्रिम वचन भी प्रमाण है— **'तदिहान्तिके च'** (३.१.७)। **'ईशावास्योपनिषद्'** कहती है— **'तद्वदन्तिके'** (ईशा. ५)। दोनों वचनों का अर्थ है— वह परशिवस्वरूप महालिङ्ग इष्टलिङ्ग के रूप में पास ही वक्षस्थल पर रहता है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में भक्त द्वारा विहित छत्तीस पूजोपचारों के अन्तर्गत **आवाहन** शब्द का अर्थ है वक्षस्थलवर्ती 'सज्जक' (लाकेट) में विराजमान इष्टलिङ्ग को लाकर करकमल के पीठ पर स्थापित करना, देवता का इष्टलिङ्ग में आवाहन नहीं। अत एव—

ससंस्कारेषु लिङ्गेषु सदा सन्निहितः शिवः।
तत्राऽऽह्वानं न कर्तव्यं प्रतिपत्तिविरोधकम्॥

(सि. शि. १०.४६)

इस श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य की उक्ति के साथ कोई विरोध नहीं है। इस कारिका का अर्थ इस प्रकार है— 'यतः श्रीगुरुद्वारा जिनका संस्कार किया जाता है उन लिङ्गों में सदाशिव सदा विराजमान रहते हैं, अतः पुनश्च उन इष्टलिङ्गों में शिव का आवाहन नहीं करना चाहिए। अन्यथा पूर्व में विहित आवाहन का उसके साथ विरोध होगा।

अत्र एतत् समर्पितम्— विश्व आदि नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले जीवों द्वारा इष्ट आदि त्रिविध स्वरूप में अवस्थित परशिवस्वरूप महालिङ्ग को स्वयम् उपभोगयोग्य वक्ष्यमाण स्थूल आदि द्रव्य समर्पित किये जाते हैं, जिसका फल आत्मशुद्धि होता है। जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

उक्तं चाऽनुभवसूत्रे—

आत्मोपभोगजातानि द्रव्याणि त्रिविधानि हि।
स्थूलाख्यं प्रविविक्ताख्यमानन्दाख्यमिति त्रिधा।।

स्थूलद्रव्यं भवेद् रूपं प्रविविक्तं रुचिर्भवेत्।
आनन्दस्तु भवेत् तृप्तिरेवमेव पृथक् क्रमात्।।

बहिरङ्गार्पणे रूपमन्तरङ्गार्पणे रुचिः।
आत्मसङ्गमयं साक्षाद् आनन्दार्पणमुच्यते।।

आत्माङ्गार्पणमेवाऽत्र तृप्तिरित्यभिधीयते।
रूपद्रव्यार्पको विश्व इष्टलिङ्गे स्वभावतः।।

रुचिद्रव्यार्पकः साक्षात् प्राणलिङ्गे तु तैजसः।
भावलिङ्गे सदा प्राज्ञ आनन्दार्पक उच्यते।। इति।

एतत्किमित्यत आह— **एजदिति। यदेजत्** = कम्पमानं बहिरन्तःकरणग्राह्यं जाग्रद्विषयं स्थूलं धरादिपुरुषतत्त्वान्तम्। **प्राणत्** = उन्मिषन्मनोमात्रजन्यज्ञानविषयं स्वाप्रिकं प्रविविक्तं सूक्ष्मं पञ्चकञ्चुकम्। **निमिषच्च** = बाह्येन्द्रियमनोनिमेषवच्च सौषुप्तं मायामय-मानन्दरूपम्।

आत्मभोगाय नियतं यद् यद् द्रव्यं समाहितम्।
तत् तत् समर्प्य देवाय भुञ्जीताऽऽत्मविशुद्धये।।

(सि. शि. ११.११)

अपने उपभोग के लिए जो जो पदार्थ सम्पादित किये गये हों, उनको प्रथम परमशिव को समर्पित करना चाहिए और उसके पश्चात् उसको प्रसादस्वरूप ग्रहण करना चाहिए, जिससे चित्त शुद्ध होता है।

अनुभव सूत्र में भी कहा है— स्वकीय उपभोग के लिए उत्पन्न द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं, स्थूल, सूक्ष्म और आनन्द। स्थूल द्रव्य 'रूप' होता है, अर्थात् वह साकार होता है। प्रविविक्त द्रव्य 'रुचि' होता है। आनन्द द्रव्य 'तृप्ति' होता है। वाह्येन्द्रिय में रूप का समर्पण होता है। अन्तःकरण में रुचि समर्पित की जाती है। स्वयं को साक्षात् समर्पित करना 'आनन्दार्पण' कहलाता है, इसी को **तृप्ति** भी कहते हैं। जो जीव इष्टलिङ्ग को रूपद्रव्य समर्पित करता है, वह 'विश्व', जो साक्षात् प्राणलिङ्ग को रुचिद्रव्य समर्पित करता है, वह तैजस और जो भावलिङ्ग के साथ सशरीर भावनामय सम्बन्ध से स्थापित कर अपने आनन्द को समर्पित करता है, वह प्राज्ञ जीव होता है।

उस परमशिव का त्रिविध स्वरूप क्या है? **एजत् प्राणत् निमिषच्च** यही उसका उत्तर है। **एजत्** = कम्पनशील बाह्य अन्तःकरण द्वारा ग्राह्य जाग्रत् अवस्था का स्थूल धरती

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः, स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः, यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम्। (माण्डूक्य, ३.४.५) इति श्रुत्यन्तरात्। **"ज्ञानं जाग्रत्, स्वप्नो विकल्पाः, अविवेको मायासौषुप्तम्"** (शिवसू. १.८-१०) इति शिवसूत्रस्थितेः,

अक्षैर्योऽर्थग्रहः पुंसां तज्जाग्रदिति कथ्यते।
यत् तैर्विनाऽर्थस्मरणं मनसा स्वप्नसंज्ञितम्।
यत्राऽर्थस्मरणे न स्तस्तत् सौषुप्तमुदाहृतम्॥

से पुरुष तत्त्व तक विषय। **प्राणत्** = उन्मेषस्वरूप केवल मानस ज्ञान का विषय स्वप्नावस्था का प्रविविक्त सूक्ष्म **पञ्चकञ्चुक**[1] पदार्थ। **निमिषच्च** = सुषुप्ति अवस्था का मायामय आनन्दस्वरूप जब बाह्येन्द्रिय और मन का निमेष होता है। इसमें 'माण्डूकोपनिषद्' के मन्त्र प्रमाण हैं— **जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः** (जो जाग्रदवस्था में रहकर स्थूल विषय का ग्रहण करता है, वह **बहिःप्रज्ञ** होता है। **स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः**। (स्वप्नावस्था में प्रविविक्त सूक्ष्म विषय की अनुभूति करनेवाला 'अन्तःप्रज्ञ' कहलाता है।) जहां सुषुप्ति अवस्था में अवस्थित जीव कुछ भी कामना नहीं करता और न स्वप्न देखता है, वह **सुषुप्त** कहलाता है। **"यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते, न कञ्चन स्वप्नं पश्यति, तत् सुषुप्तम्"** (माण्डूक्य ३.४.५) इसमें 'शिवसूत्र' के सूत्र भी प्रमाण हैं— **"ज्ञानं जाग्रत्, स्वप्नो विकल्पाः, अविवेको मायासौषुप्तम्"** (शि. सू. १.८-१०) ज्ञान जाग्रदवस्था है, संकल्प-विकल्प स्वप्नावस्था है और विवेकशून्यता मायामय सुषुप्ति अवस्था है।

'स्पन्द-प्रदीपिका' कहती है—

अक्षैर्योऽर्थग्रहः पुंसां तज्जाग्रदिति कथ्यते।
यत् तैर्विनाऽर्थस्मरणं मनसा स्वप्नसंज्ञितम्।
यत्राऽर्थस्मरणे न स्तस्तत् सौषुप्तमुदाहृतम्॥

प्राणियों द्वारा इन्द्रियजन्य विषयग्रहण **जाग्रदवस्था** कहलाती है। बिना इन्द्रियों की सहायता के केवल मन द्वारा पदार्थग्रहण **स्वप्न** कहलाता है। जहां पदार्थ और उनका स्मरण दोनों नहीं होता, उसे **सुषुप्ति** अवस्था कहते हैं।

---

१. **सूक्ष्मं पञ्चकञ्चुकम्**— (१) कलातत्त्व (किञ्चित्कर्तृत्व), (२) विद्यातत्त्व (किञ्चिद्ज्ञत्व), (३) रागतत्त्व (विषयासक्ति), (४) कालतत्त्व (भूत-भविष्यद्-वर्तमान), (५) नियतितत्त्व (नियमहेतुभूत)। यतः उक्त पांच तत्त्व पुरुष (जीव) के स्वरूप के आवरणहेतु हैं, अतः इन्हें 'पञ्चकञ्चुक' कहते हैं। जो उन्मेषस्वरूप केवल मानस-ज्ञान-जन्य स्वप्नावस्था के प्रविविक्त तत्त्व हैं।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति स्पन्दप्रदीपिकोक्तेः । अत्र 'च'कारः समुच्चयार्थकः । यदेतत् स्थूलसूक्ष्मपरमावरणलक्षणं पृथिव्यादिमायातत्त्वान्तं तण्डुलस्य तुषकम्बुक-किंशारुकमिवाऽऽच्छादकं स्थूलसूक्ष्मकारणत्रय-मलत्रय-कोशत्रय-शब्दितं दीक्षात्रयपरिशुद्धम्, अत एव यत्र महालिङ्गे इष्टादिरूपे चतुरस्रदीर्घवर्तुलस्थूलद्वित्रिपात्रेषु तत्तदाकारपरिमाणवतो गोक्षीरमिव बृहत्पात्रस्थक्षीरे समर्पितं तदेतद् महालिङ्गमेकमेव जानथ = भोक्तृभोग्यभोगात्मकत्वेनाऽवगच्छत, शिष्या यूयम्, अन्यथा मललेपः स्यादेव युष्माकम् ।

त्रिषु धामसु यद् भोग्यं भोक्ता भोगश्च यो भवेत् ।
त्रिविधं प्रति यो वेद स भुञ्जानो न लिप्यते ।।

निमिषच्च में 'च'कार समुच्चयार्थवाचक है ।

यदेतत् (यत्र समर्पितम्) = जो स्थूल, सूक्ष्म और परमावरणस्वरूप पृथ्वी से मायातत्त्व तक समस्त जगत् उसी प्रकार जीव के मूल स्वरूप को आच्छादित करता है, जिस प्रकार चावल के दाने को उसके ऊपर का छिलका । उस आवरण को अनेक शब्दों से सम्बोधित किया जाता है—

स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीर, त्रिविधकोश[१], आणव-कार्म-मायीय मल आदि । वह जीव तीन प्रकार की—वेधादीक्षा, क्रियादीक्षा और मन्त्रदीक्षा द्वारा शुद्ध होता है और इष्टलिङ्ग-प्राणलिङ्ग-भावलिङ्ग संज्ञक त्रिविध लिङ्ग स्वरूप महालिङ्ग में उसी प्रकार समर्पित, विलीन-एकरूप होता है, जिस प्रकार चौकोर-लम्बे-गोल-चौड़े-दो तीन बर्तनों में उसी बर्तन का आकार लेनेवाला गाय का दूध बड़े बर्तन में रखे हुए दूध में मिलाने पर एकरूप हो जाता है ।

एतद् जानथ = उस महालिङ्ग को वही एक ही समझे, भिन्न भिन्न नहीं । वही भोक्ता है भोग्य है, और उपभोगस्वरूप भी । शिष्यों ! इसे आप अच्छी तरह समझें । अन्यथा अज्ञान का मललेप आपको अशुद्ध करेगा ।

अनुभवसूत्र का वचन है—

त्रिषु धामसु यद् भोग्यं भोक्ता भोगश्च यो भवेत् ।
त्रिविधं प्रति यो वेद स भुञ्जानी न लिप्यते ।।

जो जीव त्रिभुवन में भोग्य, भोक्ता और उपभोगस्वरूप होता है, तीनों को जो एकरूप समझता है, वह संसार का भोग करते हुए भी उससे लिप्त नहीं होता, वह जीवन्मुक्त होता

---

१. **कोशत्रयम्**— इसकी विशद व्याख्या **हिरणमये परे कोशे** (२.२.९) इत्यादि संस्कृत मन्त्र व्याख्यान के अवसर पर हिन्दी व्याख्या में की गयी है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यनुभवसूत्रोक्तेर्जाग्रदादिविषयं यत् स्थूलसूक्ष्मपररूपमलत्रयं तदिष्टादिलिङ्गरूपे महालिङ्गे समर्प्य नाऽहं स्थूलादिः, किन्त्विष्टादिमहालिङ्गमेवेति स्वसामरस्येनैव ध्यातव्यमवगन्तव्यम्, अन्यथा बन्धनिवृत्तिर्न स्यादित्याशयः। तथा च श्रुतिः—

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत् प्रकाशते।
तद् ब्रह्माऽहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।। इति।

(कैवल्यो. १.१७)

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिसर्वावस्थासु सर्वदा।
लिङ्गार्पितोपभोगेन निर्लेपोऽयं न संशयः।।

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः। तत् पुनः कथम्भूतमित्यत्राऽऽह-**सदसद्वरेण्यमिति**। **सदसद्भिः** = स्थूल-सूक्ष्माभिमानिभिर्विश्वादिजीवैः, **वरेण्यमुपास्यम्**। कुतः? **विज्ञानात्** = जीवात्, **यो विज्ञाने**

है। जाग्रत् अवस्था, स्वप्नावस्था और सुषुप्ति अवस्था के विषयस्वरूप जो स्थूल, सूक्ष्म और परम आवरण, माया-स्वरूप तीन मल हैं, उन्हें यथाक्रम इष्टलिङ्ग-प्राणलिङ्ग-भावलिङ्गस्वरूप महालिङ्ग में समर्पित, विलीन करते हुए अपने देहाभिमान का परित्याग करना चाहिए और यह समझना चाहिए– मैं स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरस्वरूप नहीं हूँ, अपितु इष्ट-प्राण-भावलिङ्गस्वरूप अद्वितीय महालिङ्ग ही हूँ। इस प्रकार जीव को स्वयं का, स्वस्वरूपका सामरस्य, लिङ्गाङ्गसामरस्यप्रक्रिया द्वारा ध्यान करना चाहिए। अपने मूल, शिवस्वरूप को समझना चाहिए। अन्यथा उसे जन्म-मरण-चक्रस्वरूप पाश- बन्धन से छुटकारा नहीं मिल सकता, यही इसका आशय है। जैसा कि श्रुतिवचन है—

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत् प्रकाशते।
तद् 'ब्रह्माऽहमि'ति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते॥

(कैवल्यो. १.१७)

जाग्रत् अवस्था स्वप्नावस्था-और निद्रावस्था में स्थावर-जङ्गमस्वरूप जो जगत् प्रकाशित होता है, उसको जो जीव **अहं ब्रह्म**, मैं शिवस्वरूप ही हूँ, इस रूप में स्वस्वरूप को शिवस्वरूप से अभिन्न समझता है, वह जीव समस्त बन्धनों से छुटकारा पाता है।

अनुभवसूत्र का कथन है—

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्यादि-सर्वावस्थासु सर्वदा।
लिङ्गार्पितोपभोगेन निर्लेपोऽयं न संशयः॥

जो जीव जाग्रत्-स्वप्न-निद्रा सभी अवस्थाओं में सदा सर्वदा महालिङ्ग को सर्वस्व-समर्पण बुद्धि से उसका प्रसाद ग्रहण करता है, वह निर्लिप्त रहता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तिष्ठन् (बृहदारण्यक ३.८.२१) इति श्रुतेर्विज्ञानशब्दस्य जीवपरत्वात्। **परमधिकम्**, भिन्नमित्यर्थः, वस्तुतो जीवाऽभिन्नत्वे उपास्योपासकभावाऽसम्भवात्। अत एवोक्तं भगवता बादरायणेन— **अधिकं तु भेदनिर्देशात्** (ब्र. सू. २.२.२२) इति। पुनस्तदेव प्रजानां ब्रह्मविष्ण्वादिजीवानां वरिष्ठम्, गुरुबोधितपरविद्यार्थानुसन्धानसाधनसाध्यत्वेन वरतमम्, फलरूपत्वात्, स्वेतराङ्गोपाङ्गसहित-लिङ्गस्थलानां स्वस्मिन् सामरस्यात्, तस्यैव सर्वैरभ्यर्थनीयत्वाच्च तदेव महालिङ्गं वरिष्ठं नान्यदित्यर्थः। **परव्याख्याने**[1] सन्निहितगुहाचरशब्दयोरर्थान्तराभावात् पौनरुक्त्यं दुर्वारम् ॥१॥

वह महालिङ्ग किस प्रकार का है? इस प्रश्न का समाधान इन विशेषणों से किया गाया है— **सदसद्वरेण्यम्**— सत्-असत् स्थूल-सूक्ष्म शरीरों के अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ जीव उसकी उपासना करते हैं। इसमें क्या हेतु है? **विज्ञानात् परम्**— क्योंकि वह अंशस्वरूप जीवात्मा से भिन्न है। यहां पर 'विज्ञान' शब्द का अर्थ 'जीव' परक है। जैसा कि श्रुति कहती है— **यो विज्ञाने तिष्ठन्** (बृहदा. ३.८.२१) महालिङ्ग को जीव से अभिन्न मानने पर उन दोनों में उपास्य-उपासकभाव स्थापित नहीं हो सकता। इसीलिए 'पर' शब्द का अर्थ यहां पर **अधिक**, भिन्न किया गया है। जैसा कि भगवान् बादरायण कहते हैं— **अधिकं तु भेदनिर्देशात्** (ब्र. सू. २.२.२२), (भेद निर्देश के कारण उसे अधिक कहते हैं।) **प्रजानां वरिष्ठम्**— वह महालिङ्ग ब्रह्मा-विष्णु आदि जीवों में वरिष्ठ-अग्रगण्य हैं, क्योंकि श्रीगुरु द्वारा उपदिष्ट परा विद्या (पंचाक्षर महामन्त्र) के अर्थानुसन्धानस्वरूप साधन का साध्य है और फलस्वरूप होने के कारण वरणीय फल है। अपने से भिन्न अङ्गोपाङ्गसहित लिङ्गस्थल उसी महालिङ्ग में समरस-विलीन होते हैं। वही सभी के लिए अभ्यर्थनीय है, अत एव वही एकमात्र महालिङ्ग वरिष्ठ है, अन्य नहीं। **पर (आचार्यशंकरसम्मत) व्याख्या**[1] में 'सन्निहित' और 'गुहाचर' शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ न होने के कारण अर्थपुनरुक्ति अनिवार्य है ॥१॥

---

१. **परव्याख्याने**—

अत्र शाङ्करभाष्यम्—

"(आविः=प्रकाशं) **सन्निहितं** 'वागाद्युपाधिभि'**र्ज्वलति भ्राजति**' इति श्रुत्यन्तराच्छब्दादीनुपलभमानवदवभासते। दर्शन-श्रवण-मनन-विज्ञानाद्युपाधिधर्मैराविर्भूतं संल्लक्ष्यते हृदि सर्वप्राणिनाम्। यदेतदाविर्ब्रह्म **संनिहितं सम्यक् स्थितं** हृदि तद् **गुहाचरं** नाम। गुहायां चरतीति दर्शन-श्रवणादि-प्रकारैर्गुहाचरमिति प्रख्यातम्।"

अत्र आनन्दगिरिः— संनिहितमिति। सर्वेषां प्राणिनां हृदये स्थितं वागाद्युपाधिभिः शब्दादीन्युपलभमानवद् ब्रह्मैव जीवभावमापन्नमवभासते।

—(मुण्डकोपनिषद्-आनन्दाश्रम (सन् १९३५), पृ. २६-२७)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यदर्चिमद् यदणुभ्योऽणु च
यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मन।
तदेतत् सत्यं तदमृतं तद् वेद्धव्यं सोम्य ! विद्धि ।। २।।

किञ्च, यत् परशिवब्रह्म, **अर्चिमत्** = सर्वप्रकाशकम् , **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** इति वक्ष्यमाणत्वात्। **यत्** = परशिवब्रह्म, **अणुभ्यः** = सूक्ष्मेभ्यः, अणु = सूक्ष्मम्, **तस्याः शिखाया मध्ये तु परमात्मा व्यवस्थित** इति श्रुतेः। चकाराद् यत् स्थूलेभ्यः पृथिव्यादिभ्यः स्थूलम्, **अणोरणीयान् महतो महीयान्** इति श्रुतेः। **यस्मिन् लोकाः** = भूरादयः, **लोकिनश्च** = लोकनिवासिनो मनुष्यादयश्च। चकारः समुच्चयार्थकः। **निहिताः** = स्थिताः।

अवतरण— उसी परमशिव महालिङ्गस्वरूप अक्षब्रह्म की विशेषताओं को निरूपित करती हुई वेदवाणी उस की दृष्टि, मन और भाव द्वारा जीव को स्वस्वरूप में स्थिर होने का उपदेश दे रही है—

***मन्त्रार्थ*— जो सब का प्रकाशक है, जो सूक्ष्म से सूक्ष्मतम और स्थूल से स्थूलतम है, जिसमें भूः आदि समस्त लोक और लोकवासी प्राणी अवस्थित हैं, वह परशिव अक्षरब्रह्म ही प्राणलिङ्ग और प्रसादलिङ्गस्वरूप महालिङ्ग है। वही त्रिकालाबाध्य सत्य, सद्रूप भावलिङ्ग है। वही अमृत इष्टलिङ्ग है। उसी परशिव महालिङ्ग की भावना करनी चाहिए। सोम्य ! तुम उसी की उपासना करो ।।२।।**

व्याख्या : किञ्चेति। किञ्च = और भी, **यत् अर्चिमत्** = जो सबका प्रकाशक है, जैसा कि यही उपनिषद् आगे चलकर कहती है— **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**, उसी परशिव-महालिङ्ग के प्रकाशपुञ्ज से यह दृश्यमान समस्त ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता है।

यद् अणुभ्योऽणु च— जो परशिव ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है। श्रुति कहती है— **तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः**। (उस अणु-परिमाण अग्निशिखा के मध्य परमात्मा विराजमान है।) 'च'कार से यह अर्थ ध्वनित होता है कि जो पृथिवी आदि स्थूल द्रव्यों से भी स्थूल तम है। श्रुति कहती है— **अणोरणीयान् महतो महीयान्**। जो अणु (सूक्ष्म) से भी अणीयान् (सूक्ष्मतम) है।

यस्मिन् लोका लोकिनश्च निहिताः— जिस परशिव ब्रह्म में भूः भुवः, सुवः, मह, जन, तप और सत्यलोक और उन लोकों के वासी मनुष्यादि प्राणी अवस्थित हैं। यहां 'च'कार समुच्चयार्थक है। **तदेतद् अक्षरब्रह्म** = वह वही परशिव महालिङ्ग **'अक्षर'**, क्षरणधर्मरहित **बृहत्** विशाल और **बृंहण** (विस्तार) शील ब्रह्म है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तदेतदक्षरं ब्रह्म = परशिवमहालिङ्गम्, सः = तन्महालिङ्गमेव प्राणप्रेरकत्वात् **प्राणः** = प्राणलिङ्गमित्यर्थः, **प्राणस्य प्राणम्** इति श्रुत्यन्तरात्। **तदु** तदेव **वाक्** = वाक्प्रेरकत्वात् वाक्, प्रसादलिङ्गमित्यर्थः, **श्रोत्रवाचोर्न भेदोऽस्ति** इत्यनुभवसूत्रोक्तेः श्रोत्राङ्गप्रसादलिङ्गस्यैव वागङ्गत्वात्। **तदु** = तदेव, **मनः** = मनःप्रेरकत्वाद् महालिङ्गम्, मनोऽङ्गत्वान्महालिङ्गस्य, **"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः, चक्षुषश्चक्षुः"** (केन. १.२) इति श्रुत्यन्तरात्। **तत्** = महालिङ्गम्। **एतत्** = बाह्यान्तःकरणाङ्गं प्रसादादिलिङ्गरूपम्। **सत्यम्** = त्रिकालाबाध्यं सद्रूपं भावलिङ्गम्। **तत्** = तदेव, **अमृतम्** = आनन्दरूपमिष्टलिङ्गम्,

---

सः प्राणः = वह महालिङ्ग ही प्राणप्रेरक होने के कारण प्राणस्वरूप प्राणलिङ्ग है। जैसा कि अन्य श्रुतिवचन है— **"प्राणस्य प्राणम्, उत चक्षुषश्चक्षुः, उत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्, मनसो यो मनो विदुः"** (बृहदा. उ. ४.४.१८)।

तदु वाक्— वही परशिवस्वरूप अक्षरब्रह्म परा-पश्यन्ती-मध्यसा-वैखरी-चतुर्विध वाणी का प्रेरक होने के कारण वाणीस्वरूप प्रसादलिङ्ग है। जैसा कि अनुभव- सूत्र का वचन है— **श्रोत्रवाचोर्न भेदोऽस्ति**। वही श्रोत्रेन्द्रिय का भी अधिष्ठाता अङ्गस्थल है और वागिन्द्रिय का भी। अतः दोनों में कोई भेद नहीं है। यतः दोनों का अधिष्ठाता प्रसादलिङ्गस्वरूप एक ही अङ्गस्थल है।

तदु मनः— मन का प्रेरक होने के कारण वह मनःस्वरूप महालिङ्ग है। जैसा कि अन्य श्रुतिवचन है—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः, चक्षुषश्चक्षुः ।।
(केन. उ. १.२)

वही श्रोत्रेन्द्रिय का अधिष्ठाता श्रोत्रलिङ्ग मन का अधिष्ठाता मनोलिङ्ग, वाणी का अधिष्ठाता वाग्लिङ्ग, प्राण का अधिष्ठाता प्राणलिङ्ग और नेत्रेन्द्रिय का अधिष्ठाता नेत्रलिङ्गस्वरूप महालिङ्ग है।

स प्राणस्तदु वाङ्मनः— इसका आशय यह है कि पञ्च प्राणों, पञ्च ज्ञानेन्द्रियों, पञ्च कर्मेन्द्रियों, और अन्तःकरण के अधिष्ठाता अभिमानी लिङ्ग अङ्गस्थल की कोटि में प्रविष्ट हैं, लिङ्गाङ्गसामरस्यप्रक्रियाद्वारा उनका यथाक्रम महालिङ्ग में विलय होता है। इस प्रकार परमार्थ में सब कुछ महालिङ्गस्वरूप, उससे अभिन्न है।

तदेतत् सत्यम्— वह महालिङ्ग ही बाह्येन्द्रिय अन्तःकरण का अङ्ग, प्रसाद आदि लिङ्गस्वरूप और **सत्य** त्रिकालाबाध्य सद्रूप भावलिङ्ग है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सद्रूपं भावलिङ्गं स्याच्चिद्रूपं प्राणलिङ्गकम् ।
आनन्दरूपमाचार्यैरिष्टलिङ्गमुदाहृतम् ।।

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः । तदक्षरं परशिवमहालिङ्गं **वेद्धव्यम्** = दृङ्मनोभावैर्भावयितव्यम् । बहिर्लक्ष्येष्टलिङ्गे दृष्टिस्थैर्यम्, अन्तर्लक्ष्यप्राणलिङ्गे भावलिङ्गे च मनोभावस्थैर्यं च कर्तव्यमित्यर्थः । **सोम्य !** = हे प्रियदर्शन, **विद्धि** = इत्थमुपासनं कुरु ।।२।।

अन्तर्लक्ष्यवेधनक्रममेवाऽऽह—

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्दधीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाऽक्षरं सोम्य ! विद्धि ।।३।।

तदमृतम्— वह महालिङ्ग ही आनन्दस्वरूप इष्टलिङ्ग है । **अनुभवसूत्र** के अनुसार भावलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और इष्टलिङ्ग यथाक्रम सद्रूप, चिद्रूप और आनन्दरूप हैं । जैसा कि वचन है—

सद्रूपं भावलिङ्गं स्याच्चिद्रूपं प्राणलिङ्गकम् ।
आनन्दरूपमाचार्यैरिष्टलिङ्गमुदाहृतम् ।।

तद् वेद्धव्यम्— दृष्टि-मन और भाव से उसी अक्षर परशिव महालिङ्ग की भावना करनी चाहिए तथा अन्तर्लक्ष्य इष्टलिङ्ग में दृष्टि को स्थिर करना चाहिए तथा अन्तर्लक्ष्य प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग में मन को स्थिर करना चाहिए, यही इसका आशय है ।

सोम्य ! विद्धि = प्रियदर्शन ! जीव ! तुम इसीप्रकार लक्ष्यवेध, उपासना करो ।।२।।

अवतरण-भाष्य— अग्रिम मन्त्र में अतिशयोक्ति अलंकार के द्वारा अन्तर्लक्ष्य का वेधनक्रम वर्णित है—

मन्त्रार्थ— उपनिषत्-प्रसिद्ध महायुध (प्रणव) धनुष्य को ग्रहण कर उस पर उपासना से तीक्ष्ण उस (परमात्मस्वरूप) वाण का अनुसन्धान करना चाहिए । परमात्मस्वरूप शरसन्धान के पूर्व उसे (चित्शक्तिस्वरूप) भाव-हस्त से अपनी ओर आकृष्ट करना चाहिए । सौम्य ! उस अक्षर ब्रह्म को ही तुम अपना लक्ष्य समझो ।।३।।

व्याख्या : धनुर्गृहीत्या इत्यादि । औपनिषदं महास्त्रं धनुः गृहीत्वा— उपनिषदों में प्रसिद्ध 'नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरमन्त्रस्वरूप कल्पवृक्ष के बीजस्वरूप महत्वपूर्ण अस्त्र

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

धनुर् इति । **धनुश्चापम्, औपनिषदम्** = उपनिषत्सु प्रसिद्धं प्रणवरूपं पञ्चाक्षरकल्पद्रुमबीजम्, तस्याऽकारादिपञ्चावयवघटितत्वात् । **महास्त्रम्** = महायुधं **गृहीत्वा** = गुरुमुखादादाय, तस्मिन् **उपासानिशितम्** = शिवदीक्षासंस्कारसंस्कृतमत एव त्रिपुट्यनुसन्धानलक्षणलिङ्गाङ्गसामरस्यध्यानेन निशितं मलत्रयविभक्तं शुद्धं परमात्मरूपम्, **नाऽरुद्रो रुद्रमर्चयेत्, शिवो भूत्वा शिवं यजेद्** इत्यादिश्रुतेः, लिङ्गधारणात्मकशिवदीक्षा-संस्काराभावे शिवार्चन-शिवोपासनादावधिकाराभावात्,

नाऽशिवस्य शिवोपास्तिर्घटते जन्मकोटिभिः ।

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः । **सन्दधीत** = सन्धानं कुर्यात् । किं कृत्वा सन्धानं कुर्यादित्यत्राऽऽह— **आयम्य तद्भावगतेन चेतसा** इति । तस्य भावः 'शिवोऽहमस्मी'ति शिवसत्ताविषयकः पराहन्तामयः स्वरूपानुभवः । तं **गतेन** समाविष्टेन, **चेतसा** = चित्तेन, पराहन्तामय-चिच्छक्त्यात्मकभावहस्तेनेत्यर्थः । **आयम्य** = आकृष्य, हस्तस्य धनुराकर्षणहेतुत्वस्य प्रसिद्धत्वात्, प्रवृत्तिमार्गे प्रणवयहृदयस्यैव भावादिचित्तान्तंहस्तषट्करूपत्वात्, निवृत्तिमार्गे चित्तादिहस्तपञ्चकस्य भावहस्तरूपत्वात्, तस्य परशिवमहालिङ्गरूपत्वात्, हस्ताभावे

प्रणवस्वरूप धनुष्य को गुरु-मुख से ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि प्रणव (ओङ्कार) अकार आदि पांच अवयवों से घटित है । उसके पांच अवयव हैं— अकार, उकार, मकार, नाद और बिन्दु । उसके पश्चात्—

हि (तस्मिन्) उपासानिशितं शरं सन्दधीत— उस प्रणवस्वरूप धनुष्य पर शिवदीक्षासंस्कार से सुसंस्कृत अत एव त्रिपुटी-अनुसन्धानस्वरूप लिङ्गाङ्गसामरस्य-ध्यान द्वारा तीक्ष्ण किये गये आणव-कार्म-मायीय त्रिविध मल से मुक्त निर्मल-शुद्ध परमात्मा परम-शिवस्वरूप बाण का सन्धान करना चाहिए । इसमें अनेक श्रुतिवचन प्रमाण है'— **नाऽरुद्रो रुद्रमर्चयेत्** (बिना शिवस्वरूप हुए शिवोपासना नहीं करनी चाहिए ।) **शिवो भूत्वा शिवं यजेत्** (शिवस्वरूप होकर ही शिवमन्त्र-जप-याग करना चाहिए ।) बिना लिङ्गधारणस्वरूप शिवदीक्षासंस्कार के वीरशैव को शिवपूजा-शिवमन्त्र जप आदि का अधिकार ही नहीं रहता । अनुभवसूत्र कहता है—

नाऽशिवस्य शिवोपास्तिर्घटते जन्मकोटिभिः

बिना शिवस्वरूप हुए करोड़ों जन्म लेने पर भी शिवोपासना सम्भव नहीं है ।

किस प्रकार शरसन्धान करना चाहिए? इस प्रश्न का समाधान वेदमाता इस प्रकार कर रही है— **आयम्य तद्भावगतेन चेतसा** — शिवभावप्रवण चित्त से उस प्रणवस्वरूप धनुष्य को अपनी ओर खीचना चाहिए । जीव शिवस्वरूप है । वह स्वयं को शिवस्वरूप में नहीं पहचानता । **'शिवोऽहम्'** (मैं शिव हूँ, उससे भिन्न नहीं) इस प्रकार का अनुभव जब जीव करता है, तब स्वयं में शिव के अस्तित्व को विषय बनाकर **पराहन्ता** (शिव

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

बाह्यधनुराकर्षणस्याऽनुपपन्नत्वात् तस्य हस्तेनेव अन्त:प्रणवमयहृदयधनुराकर्षण-मप्यन्तर्हस्तकरणकं वक्तव्यम्, अतस्तत्प्रदर्शनार्थमुक्तम्— **तद्भावगतेन चेतसा** इति। प्रसिद्धश्चायमाशयो [1]**वीरशैवीयषट्स्थलसिद्धान्ते।** **सोम्य!** = हे प्रियदर्शन शिष्य! **तदेवाऽक्षरं** = परशिवलिङ्गमेव **लक्ष्यं विद्धि** = जानीहि। पृथिव्याद्यङ्गो भक्तादि: श्रद्धादिभक्त्या

में अहन्ता) स्वरूप 'स्व' के स्वरूप की अनुभूति उसके चित्त में होती है। इस प्रकार पराहन्तात्मय चित्शक्तिस्वरूप भावनामय हाथ द्वारा प्रणवस्वरूप धनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहिए। क्योंकि धनुष्य को अपनी ओर खींचने का सामर्थ्य हाथ में है यह प्रसिद्ध है। [द्विविध प्रकार की उपासना होती है— सृष्टिक्रम से और संहारक्रम से। सृष्टिक्रम से उपासना का मार्गप्रवृत्ति मार्ग और संहारक्रम से उपासना का मार्ग निवृत्तिमार्ग कहलाता है। अंगस्थल का आश्रय लेकर वासनामयी शक्ति से सृष्टि होती है, जिसे प्रवृत्ति कहते हैं। सृष्टिक्रम के उपासक इसी प्रवृत्तिमार्ग को अपनाते हैं। वासनारहित शक्ति से संहार होता है, जो लिंगस्थल का आश्रय लेकर होती है। इसे 'निवृत्ति' अथवा 'भक्ति' कहते हैं। संहारक्रम के उपासक इसी निवृत्तिमार्ग को अपनाते हैं। दोनों के लिए प्रणवोपासना का विधान है।] प्रवृत्तिमार्ग में प्रणवस्वरूप हृदय को, (जिसे यहां धनुष्य कहा गया है), अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए भाव से चित्त तक छ: हाथों की आवश्यकता होती है[2]। निवृत्ति मार्ग में चित्त आदि पांच हाथों को केवल एक भावरूप हाथ अपनी ओर आकृष्ट करता है और वह भावस्वरूप हस्त होता है— परशिवस्वरूप महालिङ्ग। जिस प्रकार बिना हाथ क. सहारा लिये बाहरी धनुष्य को खींचना सम्भव नहीं होता. उसी प्रकार आन्तरिक प्रणवस्वरूप हृदय धनुष्य को आकृष्ट करने के लिए आन्तरिक हस्तेन्द्रिय का प्रतिपादन आवश्यक है। अत: यहां उसे सूचित करने के लिए **'तद्भावगतेन चेतसा' (आयम्य)** इस तृतीय चरण का उपन्यास है। यह आशय **वीरशैवीय षट्स्थल सिद्धान्त** में प्रसिद्ध है।

---

१. **'वीरशैवीयषट्स्थलसिद्धान्ते'**
इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—

क्रम	भूताभिमान	अंगस्थल	भक्तिमौर्वी	हस्त	लिंग (मुख)
१.	पृथिवी	भक्त	श्रद्धा (निवृत्ति)	सुचित्त	आचार
२.	जल	माहेश्वर	निष्ठा (प्रतिष्ठा)	सुबुद्धि	गुरु
३.	तेज	प्रसादी	अवधान (विद्या)	निरहंकार	शिव
४.	वायु	प्राणलिङ्गी	अनुभव (शान्ति)	सुमन	जङ्गम
५.	आकाश	शरण	आनन्द (शान्त्यतीता)	सुज्ञान	प्रसाद
६.		ऐक्यस्थल	समरस (शान्त्यतीतोत्तरा)	सद्भाव	महालिङ्ग

२. **भाष्ये—** प्रवृत्तिमार्गे प्रणवमयहृदयस्यैव भावादिचित्तान्तहस्तषट्करूपत्वात्, निवृत्तिमार्गे चित्तादिहस्तपञ्चकस्य भावरूपत्वात्।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मौर्व्या चित्तादिहस्तेन स्वपदार्थजातमाचारादिलिङ्गमुखेषु समर्प्य तत ऐक्यस्थलापन्नः सन् समरसभक्त्या भावहस्तेन शरत्वेन रूपितस्य शुद्धात्मनोऽप्यर्पणमभिहितमनेनेति बोध्यम् ।।३।।

उक्तधनुरादिकमेवाह—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ।।४।।

'प्रणवो धनुर् इति । **'प्रणवो धनुः'** इति प्रणव एव धनुरिष्वासनम्, **ओमित्यात्मानं युञ्जीत** इति श्रुतेः, 'चिच्छक्तियुक्तस्य महालिङ्गस्य समरसभक्त्या सद्भावहस्तेन तृप्तिपदार्थं धृत्वा प्रणवमन्त्रमनुस्मरन् मनोमुखे समर्प्य तत्प्रसादतृप्तः सन् परिणामी भवति' इति **स्वप्रभानन्दशिवाचार्योक्तेश्च** प्रणवमन्त्रार्थानुस्मरणस्य शररूपात्मसमर्पणे-हेतुत्वात् प्रणवस्य

सोम्य ! तदेवाऽक्षरं लक्ष्यं विद्धि— हे प्रियदर्शन ! शिष्य ! तुम उसी 'अक्षर' (क्षरणधर्मरहित) परशिवलिङ्ग को अपना लक्ष्य समझो ।

यह मन्त्र विशुद्ध जीवात्मा को यह उपदेश दे रहा है कि तुम लिङ्गाङ्गसामरस्य प्रक्रिया द्वारा स्वयं को परमशिव को अर्पित कर दो । पृथिवी आदि का अभिमानी भक्तस्थल आदि का उपासक भक्त आदि श्रद्धा आदि भक्तिस्वरूप प्रत्यंचा द्वारा चित्त आदि हाथ से अपने पदार्थों को आचार आदि लिङ्गस्वरूप मुखों में समर्पित करते हुए अनन्तर ऐक्यस्थल का साधक बन कर भावस्वरूप हाथ द्वारा (परम शिवस्वरूप महालिंग की भावना द्वारा) प्रणवस्वरूप धनुष्य को खींचकर त्रिविध मल मुक्त निर्मल शुद्ध जीवात्मा स्वरूप बाण द्वारा लक्ष्यभेदन करे । अर्थात् परम शिवस्वरूप महालिङ्ग में विलीन हो जाय ।।३।।

अवतरण— पूर्व मन्त्र में अतिशयोक्ति द्वारा जिन धनुष्य आदि की ओर संकेत किया गया है? वे कौन कौन हैं? इस प्रश्न का समाधान रूपक अलंकार द्वारा इस मन्त्र में है ।

***मन्त्रार्थ*— वह धनुष्य प्रणव (ओङ्कार) है । वह बाण आत्मा है और उसका लक्ष्य परमात्मा (ब्रह्म) कहा जाता है । उसका वेधन प्रमादरहित होकर करना चाहिए । जिस प्रकार बाण वेधन के समय लक्ष्याकार हो जाता है, उसी प्रकार जीव को लक्ष्यप्राप्ति के समय ब्रह्ममय (परमात्मस्वरूप) होना चाहिए ।।४।।**

व्याख्या : प्रणवो धनुर् इत्यादि । **प्रणवो धनुः** — प्रणव (ओङ्कार) ही वह धनुष्य बाण का आसन है । श्रुति कहती है— **ओमित्यात्मानं युञ्जीत** ॐ इस प्रकार स्वयं को प्रणव से युक्त करना चाहिए । इस विषय में स्वप्रभानन्द शिवाचार्य कहते हैं—'चित्-शक्तिसम्पन्न परमशिवस्वरूप महालिङ्ग की समरसभक्ति पूर्वक सद्भावरूपी हाथ से 'तृप्ति' पदार्थ को पकड़ कर प्रणव मन्त्र का स्मरण (जप) करते हुए उसे मनःस्वरूप मुख में समर्पित

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

धनुष्ट्वेन रूपणम् । **शरो हि** = इषुरेव, **आत्मा** = शुद्धात्मा, आत्मरूपशरस्य अशुद्धिरूपमलसद्भावे लक्ष्यरूपमहालिङ्गवेधनात्मकसमावेशासम्भवात्, दीक्षात्रयविगलित-मलत्रयवत्त्व-रूपशुद्धि(द्धे)रात्मनो महालिङ्गप्रवेशोपयोगित्वात् । ब्रह्म परशिवमहालिङ्गं **तल्लक्ष्यम्**, तस्य शरत्वेन रूपितस्याऽऽत्मनो लक्ष्यं शरव्यं तद्रूपमुच्यते षट्स्थलतत्त्वज्ञानिभिः । **अप्रमत्तेन** = प्रमादशून्येन, **प्रमादश्च** बाह्यनश्वरविषयविषयकश्रद्धा-निष्ठा-अवधान-अनुभव- आनन्द-समरसमोहरूपः, तद्रहितेन अन्तराधारादिगताऽऽचारादिलिङ्गश्रद्धादिभक्ति-ज्ञानयुक्तेनेत्यर्थः, **श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि** इति श्रुतेः, **प्रमादोऽनवधानता** इत्यमरवाक्यात्, अप्रमत्तशब्दस्य सावधानत्वभक्तिवाचकस्याऽपीतरभक्त्युपलक्षकत्वात् । **वेद्धव्यम्** = उक्तब्रह्म-महालिङ्गं लक्ष्यम् ।

कर उसका प्रसाद ग्रहण करने से तृप्त होते हुए परिणामी (सफल) होता है । यतः प्रणव (ओङ्कार) मन्त्र का अर्थानुसन्धान बाणस्वरूप जीवात्मा के समर्पण का हेतु है, अतः प्रणव को धनुष्य रूप से आरोपित किया गया है ।

शरो हि आत्मा — बाण ही वह विशुद्ध-निर्मल जीवात्मा है । क्योंकि जीवात्मा यदि अशुद्धि मल से लिप्त हो, तो उसके द्वारा लक्ष्यस्वरूप महालिङ्ग का बेधनस्वरूप समावेश करना सम्भव नहीं है । मन्त्रदीक्षा, क्रियादीक्षा और वेधादीक्षा-त्रिविध दीक्षा- स्वरूप जलधारा द्वारा जब आणव-कार्म-मायीय त्रिविध मल का प्रक्षालन होता है, तब वह शुद्धि निर्मल जीवात्मा का महालिङ्ग में प्रवेश (विलय) करने के लिए उपादेय उपयुक्त होती है ।

ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते — परब्रह्म परमशिवस्वरूप महालिङ्ग उस शुद्ध जीवात्मा-स्वरूप बाण का लक्ष्य कहा जाता है । षट्स्थल के तत्त्वज्ञानी शुद्ध जीवात्मास्वरूप बाण का लक्ष्य कहा जाता है । षट्स्थल के तत्त्वज्ञानी शुद्ध जीवात्मा को बाण के रूप में और परब्रह्म परमात्मा को उसके लक्ष्य के रूप में आरोपित करते हैं ।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यम्— प्रमादरहित होकर उस लक्ष्य का वेधन करना चाहिए । हमारा प्रमाद यही होता है कि हम परब्रह्म परमात्मा से हटकर बाह्य विनश्वर विषयों में श्रद्धा, निष्ठा, अवधान, अनुभव, आनन्द और समरसता स्थापित करते हैं । यही मोह हमारा प्रमाद है । अतः इस मोह से हमें बचना चाहिए । हमारे शरीर में विराजमान गुद, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य में यथाक्रम चतुर्दल मूलाधारचक, षड्दल स्वाधिष्ठानचक्र, दशदल मणिपूरचक्र, द्वादशदल अनाहत चक्र, षोडश दल विशुद्धि- चक्र और द्विदल आज्ञाचक ये षट् चक्र होते हैं । इनमें क्रमशः आचारलिङ्ग, गुरुलिङ्ग, शिवलिङ्ग, चरलिङ्ग, प्रसादलिङ्ग और महालिङ्ग अवस्थित होते हैं । उनमें यथाक्रम श्रद्धा, निष्ठा, अवधान, अनुभव, आनन्द और समरसता स्थापित करनी चाहिए, नश्वर विषयों में नहीं । इस प्रकार अप्रमत्त-प्रमादरहित होकर हम लक्ष्यवेध कर सकते हैं । परम शिव से मिल सकते हैं । अन्यथा विषयों के मोह में पड़कर जन्म-मरम-चक्र से हमारा छुटकारा सम्भव नहीं है। श्रुति कहती है— **श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि,** 'जीव ! तुम श्रद्धा-भक्ति के सम्बन्ध से परमात्मा का

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तद्वेधनानन्तरं **शरवत् तन्मयो भवेत्** शरस्य लक्ष्यप्रवेशानन्तरं लक्ष्यत्वेनैव यथा प्रतीयमानत्वम्[१] तथा शुद्धात्मनोऽपि महालिङ्गप्रवेशानन्तरं महालिङ्गत्वेनैव प्रतीयमानत्वं भवतीत्यर्थः, **शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य** इति श्रुतेः ।

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति सर्वदा ।।

इति स्मृतेश्च,

भ्रमद्भ्रमरचिन्तायां कीटोऽपि भ्रमरायते ।
शिवचिन्तासमाक्रान्तः शिवरूपी भवेद् ध्रुवम् ।।

इति वीरागमवचनाच्च ।

साक्षात्कार कर सकते हो'। 'अमरकोष' के अनुसार 'प्रमाद' शब्द का अर्थ है— अनवधानता = सावधानी न बरतना— **प्रमादोऽनवधानता** । प्रस्तुत सन्दर्भ में 'अप्रमत्त' शब्द का वाच्य अर्थ यद्यपि अवधानभक्ति है, तथापि वह शब्द श्रद्धा आदि अन्य पञ्चविधा भक्ति का भी उपलक्षक है । उस षड्विध भक्ति द्वारा अक्षरब्रह्म परशिवस्वरूप महालिङ्ग को लक्ष्य बनाकर उसका वेध करना चाहिए, विशुद्ध जीवात्मा को उसमें समाविष्ट, प्रविष्ट होना चाहिए ।

शरवत् तन्मयो भवेत् — जिस प्रकार बाण लक्ष्यवेध करने के पश्चात् लक्ष्याकार हो जाता है, उसी प्रकार महालिङ्ग में प्रवेश करने के उपरान्त विशुद्ध जीवात्मा को महालिङ्ग में विलीन होकर तदाकार होना चाहिए ।

इसमें श्रुति-स्मृति-आगमवचन प्रमाण हैं । श्रुति कहती है— **शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य** 'सभी कुछ छोड़कर परमशिव (मङ्गल) कारी एकमात्र शिवस्वरूप महालिङ्ग का ध्यान करना चाहिए ।' स्मृति कहती है—

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति सर्वदा ।।

वीरागम का वचन है—

भ्रमद्भ्रमरचिन्तायां कीटोऽपि भ्रमरायते ।
शिवचिन्तासमाक्रान्तः शिवरूपी भवेद् ध्रुवम्[१] ।।

---

१. **कीटभ्रमरन्याय** के सन्दर्भ में श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य का यह उपदेश द्रष्टव्य है—

नैरन्तर्येण सम्पन्ने भावे ध्यातुं शिवं प्रति ।
तद्भावो जायते यद्वत् क्रिमेः कीटस्य दर्शनात् ।। (सि. शि. १६.२२)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

गुरुमुखात् स्थूलपञ्चाक्षरबीजप्रणवश्रवणं **धनुर्ग्रहणम्**, गुरूपदेशानुसारेण तदर्थानुसन्धानं धनुषि **शरसन्धानम्**, अनुसन्धानाभ्यासो **धनुरायमनम्**, चित्तस्य शिवभावाकारपरिणामो **हस्तः**, श्रद्धादिभक्तिर्ज्या, अङ्गस्य महालिङ्गे सामरस्यात्मकसमाधिः **लक्ष्यवेधः**। तन्मयत्वं च पुनः स्थूलाद्यङ्गाभिमानानुदयेन भक्ताद्यङ्गानां महालिङ्गैक्यम्। यद्यप्यायमनकरणं हस्तादिकं कण्ठतो नोक्तम्, तथापि हस्तादेरभावे आयमनस्याऽनुपपन्नत्वात्, तस्याऽवश्यं वक्तव्यत्वात् **तद्भावगतेन चेतसा** इति, **अप्रमत्तेन** इति च तृतीयान्तपदेनाऽभिप्रेतमिति मन्तव्यम् ॥४॥

(स्मृति और आगम दोनोंके वचनों में **कीटभ्रमरन्याय** में यह निरूपित किया गया है कि जिस प्रकार कीट भ्रमणशील भ्रमर का चिन्तन करते हुए स्वयं भ्रमरस्वरूप हो जाता है, उसी प्रकार मानव जीव परमशिव का चिन्तन करते हुए शिवयोग अर्थात् लिङ्गाङ्ग-सामरस्य द्वारा शिवस्वरूप हो जाता है।)

[पूर्व मन्त्र में **धनुर्गृहीत्वा शरं सन्दधीत। तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं विद्धि** यह कहा गया है। यह मन्त्र उसी अर्थ को और स्पष्ट कर रहा है। भाष्यकार कहते हैं—]

पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित '**धनुर्गृहीत्वा**' में धनुष्य के ग्रहण का अर्थ है 'गुरुमुख से स्थूल पञ्चाक्षर मन्त्र '**नमः शिवाय**' के बीजस्वरूप प्रणव (ओङ्कार) मन्त्र का श्रवण करना। उसी प्रकार '**शरं सन्दधीत**' से संकेतित '**शरसन्धान**' का अर्थ है 'उस प्रणव मन्त्र के अर्थ का अनुसन्धान करना।' '**धनुः आयम्य**' द्वारा संकेतित उस धनुष्य को आकृष्ट करने का अर्थ है 'वारंवार उस मन्त्र का अभ्यास करना।' [धनुष्य की प्रत्यञ्चा को हाथ से खींचा जाता है। पूर्व मन्त्र में '**तद्भावगतेन चेतसा**' के द्वारा उसी हाथ की ओर संकेत किया गया है।] वह हाथ है चित्त की शिवभावस्वरूप में परिणति। (इस मन्त्र में अनुल्लिखित वह) प्रत्यञ्चा है श्रद्धा आदि षड्विधा भक्ति। '**अक्षरं लक्ष्यं विद्धि**' से संकेतित '**लक्ष्य- वेध**' का अर्थ है (भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिङ्गी और शरण) अङ्गों की महालिङ्ग के साथ समरसता रूप समाधि। ('**शरवत् तन्मयो भवेत्**' में संकेतित) '**तन्मयता**' का अर्थ है ('पृथिवी' आदि) स्थूल, कला आदि सूक्ष्म (पंच कंचुक) और परमावरण (माया) का अभिमान न करते हुए (उनसे स्वयं का अभेद स्थापित न करते हुए) भक्त से शरण तक अङ्गों की महालिङ्ग के साथ एकता स्थापित करना, स्वयं महालिङ्गाकार हो जाना। यद्यपि '**धनुर्गृहीत्वा**' इत्यादि मन्त्र में '**आयमन**' (आकर्षण) के करण (इन्द्रिय) हस्त आदि का कण्ठघोष नहीं किया गया है, तथापि बिना हस्त आदि से धनुष्य का आयमन (आकर्षण) सम्भव नहीं है, उसका निरूपण अत्यन्त आवश्यक है, अतः पूर्वमन्त्र में '**अप्रमत्तेन**' इन तृतीयान्त पदों का अभिधान अभीष्ट है यह समझना चाहिए ॥४॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अक्षरपरशिवमहालिङ्गसमावेशमेवाह—

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चाऽन्तरिक्ष-
मोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथाऽऽत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथाऽमृतस्यैष सेतुः ।।५।।

यस्मिन् इति । **यस्मिन्** = परशिवमहालिङ्गे, **द्यौः** = स्वप्रकाशताशक्तिः, **पृथिवी अन्तरिक्षं च, ओतं** = समर्पितम् । चकारेणाऽनुक्तं जलादिभूतग्रहणम्, चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थकत्वात्, परशिवमहालिङ्गस्यैवाऽऽधारादिस्थानभेदेनाऽऽचारादिलिङ्गरूपत्वात्, महालिङ्गे स्वप्रकाशताशक्तेः । आचारलिङ्गादिरूपे महालिङ्गे पृथिव्यादेश्च समर्पणं प्रसिद्धं वीरशैवशास्त्रे । **तदुक्तमनुभवसूत्रे—**

आचारायाऽर्पिता पृथ्वी गुरोरापः समर्पिताः ।
शिवाय चाऽर्पितं तेजश्चराय मरुदर्पितः ।।

अवतरण— उस अक्षर परशिवस्वरूप महालिङ्ग में जीवात्मा के समावेश का निरूपण पुनश्च कर रहे हैं ।

***मन्त्रार्थ*— जिस परशिवस्वरूप महालिङ्ग में पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष और अन्य भूत तथा सभी प्राणवाचक बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियों के साथ मन समर्पित है, उसी सभी भूत-भौतिक आदि पदार्थों के अधिष्ठान परम-शिव-स्वरूप एकमात्र अक्षर-ब्रह्म का साक्षात्कार करो । उससे भिन्न पूर्वकाण्डोक्त वैदिक भाग का परित्याग करो, क्योंकि वही महामन्त्र मोक्ष का सेतु, अर्थात् उसकी प्राप्ति का उपाय है ।।५।।**

व्याख्या : यस्मिन् इत्यादि । **यस्मिन् द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं च ओतम्**— जिस परशिवस्वरूप महालिङ्ग में 'द्यौ' = स्वप्रकाशता शक्ति, पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा समुच्चय अर्थ के वाचक 'च' कार से ज्ञात अन्य जल, तेज, वायु और आकाश समर्पित हैं । यतः परशिव महालिङ्ग ही मूलाधार चक्र आदि स्थानभेद से आचार आदि लिङ्गस्वरूप है । महालिङ्ग में उसकी स्वप्रकाशता-शक्ति का विलय होता है और उसके आचारादि- लिङ्गस्वरूपों में पृथिवी आदि पञ्चतत्वों का विलय होता है । यह वीरशैवशास्त्र में प्रसिद्ध है । जैसा कि अनुभवसूत्र की कारिकाएं हैं—

आचारायाऽऽर्पिता पृथ्वी गुरोरापः समर्पिताः ।
शिवाय चाऽर्पितं तेजश्चराय मरुदर्पितः ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्रसादायाऽर्पितं व्योम जीवात्मा महतेऽर्पितः ।। इति।

सह प्राणैश्च सर्वैः = बाह्यान्तःकरणैः सहितं **मनश्च** यस्मिन् षट्स्थलपरब्रह्मणि महालिङ्गे, **ओतम्** = समर्पितम् । उक्तं च **रेणुकभगवत्पादाचार्यैः**—

करणैः सहितं प्राणं मनस्याधाय संयमी ।
योजयेत् स शिवः साक्षाद् यत्र नास्ति जगद्भ्रमः ।। इति।

(सि. शि. १७. २२)

तमेव = सर्वभूतभौतिकाद्यधिष्ठानम्, **एकम्** = अद्वितीयम्, **एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थौ** इति श्रुतेः । **आत्मानम्** = परशिवम्, **'प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः** (माण्डूक्य. ७) इति श्रुतेः । **द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्** (ब्र. १.३.१) इति सूत्रेण बादरायणेन परशिवब्रह्मण्येवात्मशब्दप्रयोगस्य

प्रसादायाऽर्पितं व्योम जीवात्मा महतेऽर्पितः ।।

आचारलिङ्ग को पृथ्वी का, गुरुलिङ्ग को जल का, शिवलिङ्ग को तेज का, चर- लिङ्ग को वायु का, प्रसादलिङ्ग को आकाश का और महालिङ्ग को जीवात्मा का नैवेद्य (भोग) समर्पित किया जाता है । अर्थात् पृथ्वी आदि का विलय आचारादि लिङ्गों में तथा जीवात्मा का विलय महालिङ्ग में होता है ।

यस्मिन् सर्वैः प्राणैश्च सह मन ओतम्— जिस षट्स्थलस्वरूप परब्रह्म महालिङ्ग में प्राण और 'प्राण' नाम से संबोधित बाह्य कर्मेन्द्रियों (वाक्, हाथ, पैर, गुद और लिङ्ग) तथा आन्तरिक ज्ञानेन्द्रियों (चक्षु-कर्ण-नासिका-रसना और त्वचा) के साथ संकल्प- विंकल्प स्वरूप अन्तः करण का भी विलय होता है । जैसा कि श्री रेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

करणैः सहितं प्राणं मनस्याधाय संयमी ।
योजयेत् स शिवः साक्षाद् यत्र नास्ति जगद्भ्रमः ।।

(सि. शि. १७.२२)

जो जितेन्द्रिय जीव पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियों के साथ पञ्चप्राण को मन में स्थापित कर शिवयोग करता है, लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप इस शिवयोग से वह जीव साक्षात् शिवस्वरूप होता है, उसे जगत् का भ्रम नहीं होता, वह जगत् को स्वतन्त्र नहीं समझता, अपितु शिवस्वरूप ही समझता है ।

तमेव एकम् आत्मानं जानथ— उसी सभी भूत और भौतिक पदार्थों के अधिष्ठान एक अद्वितीय परशिव का साक्षात्कार करो । इसमें श्रुतिप्रमाण है— **एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थौ** (एक अद्वितीय रुद्र, शिव ही वहां अवस्थित थे । दूसरे के लिए स्थान नहीं था ।) यहां 'आत्मा' शब्द का प्रयोग परशिव अर्थ में किया गया है । इसमें 'माण्डूक्य-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

दर्शितत्वात्, जीवस्य द्युपृथिव्यन्तरिक्षमनःप्राणाद्यधिष्ठानत्वाऽसम्भवात् । **जानथ** = परविद्यया स्वसामरस्येनाऽवगच्छत । हे दीक्षिताः = शिष्याः, यूयम् **अन्याः** = षट्स्थलब्रह्मपरभिन्नाः, **वाचः** = पशुधर्मपरवाचः, पूर्वकाण्डवेदभागानित्यर्थः ।

जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा ।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ।।

(सि. शि. ९.२३)

इति रेणुकभगवत्पादोक्तेः । विमुञ्चथ = परित्यजत । कुतः? **अमृतस्यैष सेतुः** । यत **एषः** = षट्स्थलपरापरविद्यारूपो महामनुः, स्वश्रवणमनननिदिध्यासनद्वारा, **अमृतस्य** =

कारिका' प्रमाण है— **प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते । स आत्मा स विज्ञेयः** । (मा. ७) 'ब्रह्मसूत्र' का यह सूत्र भी इसमें प्रमाण है— **द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्** । इन दोनों वचनों का आशय यही है कि 'जिसमें समस्त प्रपञ्च चराचर जगत्का उपशमन, विलय होता है, उसे चतुर्थ अद्वैत शिवतत्त्व माना जाता है । उसी को आत्मा समझना चाहिए । वह परशिव द्युलोक, भूलोक, आदि का आयतन है, जिसे 'स्व' शब्द से संकेतित किया गया है । आत्मस्वरूप होने से उसे 'स्व' कहते हैं ।' इस प्रकार 'माण्डूक्यकारिका' और 'ब्रह्मसूत्र' दोनों परशिव ब्रह्म को 'आत्मा' कहते हैं । जीव द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, मन, पञ्च प्राण, बाह्येन्द्रिय, (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय) अन्तःकरण आदि का अधिष्ठान नही हो सकता, परमशिव परमात्मा ही सबका अधिष्ठाता हो सकता है । परा विद्या, पंचाक्षर महामन्त्र महाविद्या द्वारा लिङ्गाङ्गसामरस्य प्रक्रिया से उसी परमशिवस्वरूप महालिङ्ग का साक्षात्कार करो ।

अन्या वाचो विमुञ्चथ— दीक्षित शिष्यों ! तुमलोग षट्स्थलस्वरूप परब्रह्म परशिव से भिन्न पशुधर्म का प्रतिपादन करनेवाले पूर्वकाण्डोक्त वेदभाग को छोड़ दो । उसका अनुष्ठान मत करो । जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा ।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ।।

(सि. शि. ९.२३)

वीरशैवों के लिए पञ्चाक्षर मन्त्रजप, उसका वार वार अभ्यास और अर्थानुसन्धान, प्रणव-मन्त्रजप, उसका वारंवार अनुसन्धान और अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदि अभ्यास का विधान किया गया है । उनके लिए वेदाध्ययन आदि वर्जित है ।

अमृतस्यैष सेतुः — इसका कारण यह है कि षट्स्थलस्वरूप महालिङ्ग का निरूपण करनेवाला परविद्यास्वरूप पञ्चाक्षर महामन्त्र श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा 'अमृत' = मृत्यु-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मोक्षस्य, **सेतुः** = सेतुरिव संसारमहासागरपारगमनरूपस्य मोक्षस्य प्राप्तेरुपायस्तत इत्यर्थः, **यया तदक्षरमधिगम्यत** इति पूर्वमेवोक्तत्वात्, **पञ्चार्थयोगसंपन्नो दुःखान्तं लभते सुधीः** (लैङ्ग. ८७.४८) इति पुराणोक्तेः ॥५॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥६॥

अरा इव इति। **अरा इव रथनाभौ** – रथस्य नाभौ = मध्यवर्तिकाष्ठविशेषे **अराः** = तिर्यक्प्रसारितकाष्ठविशेषा इव, **यत्र** = हृदये, **नाड्यः संहताः** = संलग्नाः,

---

धर्मरहित) मोक्ष का सेतु है। जिस प्रकार सेतु महासागर के सन्तरण का साधन होता है, उसी प्रकार संसाररूपी महासागर के पार जाने का वही एकमात्र उपाय है, और 'मोक्ष' का अर्थ ही है संसाररूपी महासागर को पार करना। जैसा कि पहले ही श्रुति यह प्रतिज्ञा करती है— **यया तदक्षरमधिगम्यते**। 'लिङ्गपुराण' भी इसे प्रमाणित करता है—

पञ्चार्थयोगसम्पन्नो दुःखान्तं लभते सुधीः ।
(लैंग. ८७.४८)

पञ्चार्थयोग[1]सम्पन्न तत्त्वज्ञानी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सभी त्रिविध दुःखों से छुटकारा प्राप्त करता है।

मन्त्रार्थ— **जिस प्रकार रथचक्र के नाभिप्रदेश में आडे-तिरछे आरें (लकड़ियां) होती है, उसी प्रकार जिस हृदयस्थल में नाड़ियां एकत्र होती हैं, उस हृदयस्थल में वह परमशिव-परमात्मा नानाविध रूपों में प्रकट होकर विचरण करता है। शिष्यों! तुम लोग प्रणव के रूप में उस परम शिव का ध्यान करो। मोहान्धकार के पार अवस्थित परमशिव के साथ समरसता के लिए 'ओम्' इस प्रकार ध्यान करो। आपका कल्याण हो ॥६॥**

व्याख्या : अरा इव इत्यादि। **रथनाभौ संहता अरा इव**— जिस रथचक्र के वर्तुलाकार नाभिस्थल में आड़ी-तिरछी फैली हुई लकड़ियां (एकत्र जुड़ी हुई होती हैं उसी

---

१. **पञ्चार्थ-योग**—उपासक-कोटि में रहनेवाले भक्त, माहेश्वर, प्रसादी और प्राणलिङ्गी शरण-कोटि में विद्यमान अङ्गस्थलापन्न भक्तों का यथाक्रम अपनी-अपनी उपास्य कोटि में स्थित आचार, गुरु, शिव, जङ्गम और प्रसाद लिङ्गों के साथ सामरस्य स्थापित करने के लिए क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्च महाभूतों में विलीन होना **पञ्चार्थयोग** कहलाता है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्राऽन्त:किञ्चिद्हृदयमध्ये, **स एषः** = उक्त: परमात्मा शिव:, **चरते** = चरति । भक्तध्यानाद्यर्थं प्राणलिङ्गरूपेण वर्तते । कीदृशः सः? **बहुधा जायमानो** ब्रह्मविष्ण्वादिभक्तानुग्रहार्थम् अप्राकृत (सोमधार्यादि) पञ्चविंशतिलीलाविग्रहरूपै:, **बहुधा** = बहुरूपै:, **जायमानः** = आविर्भूयमान: । तम् **आत्मानं** = परशिवम्, **ओमित्येवम्** = सर्वोपादानप्रणवमयचिच्छक्ति-विशिष्टमित्येवमेव, **ध्यायथ** = चिन्तयत । हे शिष्या: ! यूयं स्वसामरस्येन भावयतेत्यर्थ: । कस्मै प्रयोजनायेत्यत आह— **पाराय तमसः परस्ताद्** इति । **तमसः** = मोहमयमायातत्त्वात्, **परस्तात्** = उपरि शुद्धाध्वनि वर्तमानाय, **पाराय** = **पारावारे परार्वाची तीरे** इत्यमरवाक्यात् पारशब्दस्य प्राप्यस्थानवाचकत्वात्। पयसामर्णव इव भक्ताद्यङ्गानां प्राप्यस्थानभूताय फलरूपपरशिवमहालिङ्गसामरस्यायेत्यर्थ: । 'ओमित्येवमात्मानं ध्यायथ' इति पूर्वेणान्वय: । एवं तद्ध्यानाऽभ्यासप्रवृत्तेभ्यो **वः** युष्मभ्यं **स्वस्ति** भवत्वित्याचार्य आशास्ते ।।६।।

प्रकार) **यत्र नाड्यः संहृताः**— जिस हृदयस्थल में नाडियां संलग्न होती है, **तत्र अन्तः य एष चरते**— उस हृदय-स्थल में जो पूर्ववर्णित परमशिव-परमात्मा विचरण करता है, अर्थात् भक्त को ध्यान आदि करने के लिए प्राणलिङ्ग के रूप में रहता है ।

वह किस प्रकार है इसका समाधान करने के लिए आगे विशेषण है— **बहुधा जायमानः** = जो ब्रह्मा, विष्णु आदि भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अप्राकृत सोमधारी आदि पचीस लीलावतार लेकर नानारूपों में प्रकट हुए हैं ।

(तम्) आत्मानम् ओमित्येवं ध्यायथ— वह परमशिव परमात्मा 'ओम्' इस प्रकार सबका उपादान चित्शक्तिविशिष्ट प्रणवस्वरूप है, शिष्यों ! तुमलोग अपनी समरसभावना से इस प्रकार उसका ध्यान करो ।

किस प्रयोजन के लिए उसका ध्यान करना चाहिए? उसका समाधान है— **पाराय तमसः परस्तात्** (तमस: परस्तात पाराय) = मोहमय मायातत्त्व से ऊपर शुद्ध मार्ग में अवस्थित '**पारावारे परार्वाची तीरे**' इस अमरकोष के वचनानुसार यत: 'पार' शब्द प्राप्यस्थान अर्थ का वाचक है, अत: जिस प्रकार सभी जलधाराएं समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार भक्त आदि अङ्गस्थलापन्न जीवों के गन्तव्य अन्तिम स्थान स्वरूप जो परमशिव महालिङ्ग उसके साथ सामरस्यप्राप्ति के लिए **ओमित्येवमात्मानं ध्यायथ** इस प्रकार पूर्व से अन्वय स्थापित करते हुए इसका अर्थ होगा 'ॐ' इस रूप में परमशिव-परमात्मा का ध्यान करो ।

वः स्वस्ति— इस प्रकार उस परमशिव का ध्यान और प्रणवजप के अभ्यास में तत्पर आप सभी शिष्यों का कल्याण हो, इस प्रकार आचार्य शुभाभिशंसन कर रहे हैं ।।६।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तनुत्रयगताऽनादिमलत्रयमसौ गुरुः ।
दीक्षात्रयेण निर्दग्ध्वा लिङ्गत्रयमुपादिशत् ।।

इत्युक्तप्रकारेण लिङ्गत्रयमुपदिशति गुरुः—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ।।
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ।।७।।

अवतरण भाष्य :

तनुत्रयगताऽनादिमलत्रयमसौ गुरुः ।
दीक्षात्रयेण निर्दग्ध्वा लिङ्गत्रयमुपादिशत् ।।

इस वचन के अनुसार श्रीगुरु (पृथ्वी से पुरुषतत्त्व तक) स्थूल शरीर कला-विद्या-राग-काल-नियति इन पञ्च-कञ्चुकों पञ्चतत्त्वों से आवृत सूक्ष्मशरीर और परमावरण-जड मायास्वरूप कारणशरीर इन तीन प्रकार के शरीर में यथाक्रम अवस्थित शुभाशुभ कर्मजन्य कार्मिक, किञ्चित्कर्तृत्वादि अभिमानजन्य आणव और मायीय त्रिविध मल (अज्ञान) को यथाक्रम क्रियादीक्षा, वेधादीक्षा और मन्त्रदीक्षा त्रिविध दीक्षास्वरूप अग्निज्वालाओं से भस्मसात् कर जीवात्मा को क्रमशः इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग का सदुपदेश देते हैं—

***मन्त्रार्थ*— जो परम शिव सम्पूर्ण चराचर विश्व का वेत्ता है, जिस परशिव महालिङ्ग की सम्पूर्ण महिमा (विभूतिस्वरूप ऐश्वर्य) अखण्ड भूमण्डल में प्रत्यक्ष है, उस 'सर्वज्ञ' परम शिव को श्रीगुरु आन्तरिक हृदयाकाश में वेधादीक्षा द्वारा प्रतिष्ठित करते हैं, अतः तुम भावलिङ्गस्वरूप हो । शुद्ध मन द्वारा ग्राह्य होने के कारण मनोमय हो । प्राण एवं शरीर का सञ्चालन करने के कारण तुम उसके नायक भी हो । अतः प्राणलिङ्गस्वरूप भी हो । श्रीगुरु उस हृदयस्वरूप प्राणलिङ्ग को सूक्ष्म-शरीर के मध्य अवस्थित हृदय में मन्त्रदीक्षा द्वारा प्रतिष्ठापित कर उसे ही पुनश्च अन्नमय पिण्ड (स्थूल शरीर) में क्रियादीक्षा द्वारा प्रतिष्ठित करता है । इस प्रकार त्रिविध शरीर में अवस्थापित वह त्रिविध लिङ्ग वस्तुतः एक अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप अमृत अविनश्वर महालिङ्ग है । लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप विशिष्ट ज्ञान द्वारा वीरशैव लोग उसका साक्षात्कार करते हैं ।।७।।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यः सर्वज्ञ इति । **यः सर्वज्ञः सर्वविद्** इत्यस्योक्तोऽर्थः । **यस्य** परशिवमहालिङ्गस्य **भुवि** = भूलोके, **एष महिमा** = विभूतिः, भक्तानुग्रहार्थं गुरु-लिङ्ग-जङ्गमरूपेण इन्द्रिय-गोचरत्वरूपा, **सः** = गुरुलिङ्गजङ्गमरूपमहत्त्वान्वितः सर्वज्ञपदवाच्यः, **एषः** = परशिवः, **दिव्ये** = द्योतनवति, **ब्रह्मपुरे** = ब्रह्मण आवासस्थाने योगाङ्गापरनामके कारणाङ्गे वर्तमाने, **व्योम्नि** अन्तर्हृदयाकाशे, **प्रतिष्ठितः** = स्थापितो मया आचार्येण वेधादीक्षया । तदुक्तम**नुभवसूत्रे**—

''योगाङ्गे भावलिङ्गं तु वेधादीक्षाबलेन वै'' इति।

तस्माद् हे शिष्य ! न त्वं कारणशरीररूपाज्ञानमलात्मकोऽसि, किन्तु **'तत्त्वमसि'**, तदधिष्ठानभूतभावलिङ्गमेवासीत्यर्थः । पुनरप्याचार्यः सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे च तच्छिवलिङ्गप्रतिष्ठापनमुपदिशति शिष्येभ्यः । यः कारणशरीरगतचिदाकाशे प्रतिष्ठितः, स एव **मनोमयः** = शुद्धमनोग्राह्यत्वाद् मनोमयः । किञ्च, **प्राणशरीरनेता** = प्राणश्च शरीरं च तस्य (तयोः) नेता प्रभुः, प्राणशरीरव्यापारस्य तदधीनत्वात् तस्य (तयोः) नायक इत्यर्थः । **'अधिभूर्नायको नेता प्रभुः'** इत्यमरः । प्राणशरीरव्यापारस्य तदधीनत्वात् तस्य नायक

व्याख्या : यः सर्वज्ञः इत्यादि । **यः सर्वज्ञः सर्ववित्** इसकी व्याख्या पूर्व में (मं. १.१.९) की जा चुकी है । (जिसका आशय है— जो परम शिव समस्त ब्रह्माण्ड के रहस्य का ज्ञाता है) **भुवि यस्य एष महिमा**— भूलोक में जिस परशिव महालिङ्ग की विभूति (ऐश्वर्य) गुरु, लिङ्ग और जङ्गम त्रिविध लिङ्गरूप से प्रत्यक्ष-इन्द्रियगोचर है ।

हि (स) एष आत्मा दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि प्रतिष्ठितः— गुरु-लिङ्ग-जङ्गम-स्वरूप त्रिविध लिङ्ग की महिमा से मण्डित वह परम शिवस्वरूप परमात्मा (भावलिङ्ग) **'दिव्य'** = द्योतनशील **'ब्रह्मपुर'** अर्थात् ब्रह्म के आवास स्थान **'योगाङ्ग'** नामक अङ्गस्वरूप कारणशरीर के हृदयाकाश में मेरे (श्रीगुरु) द्वारा वेधादीक्षा से प्रतिष्ठापित किया गया है । जैसा कि **'अनुभवसूत्र'** का प्रमाणवचन है—

योगाङ्गे भावलिङ्गं तु वेधादीक्षाबलेन वै ।

(वेधादीक्षा की शक्ति से अङ्गस्वरूप कारणशरीर योगाङ्ग में भावलिङ्ग की स्थापना की जाती है ।) इसलिए हे शिष्य! तुम कारणशरीर नहीं हो, ऐसा समझना तुम्हारा अज्ञानमल है, किन्तु **'तत्त्वमसि'**, अर्थात् तुम उससे अभिन्न उसके अधिष्ठानभूत भावलिङ्ग ही हो ।

पुनश्च आचार्य शिष्य को उसके सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर में परमशिव की लिङ्गप्रतिष्ठा का उपदेश दे रहे हैं— **मनोमयः प्राणशरीरनेता** । जो कारणशरीर के मध्य विराजमान चिदाकाश में प्रतिष्ठित है, **'मनोमय'** अर्थात् शुद्ध मन के द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है । वही **'प्राणशरीरनेता'** भी है, अर्थात् पञ्चप्राण और पाञ्चभौतिक शरीर उसी के अधीन हैं । उनका वह नायक, स्वामी है । **'अमरकोष'** में 'नेता' के पर्यायवाची शब्द इस प्रकार परिगणित हैं— **'अधिभूर्नायको नेता प्रभुः'**। अतः वह उसका नायक भी है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यर्थः । तं प्राणलिङ्गरूपेण हृदयम् = मध्यहृदये सूक्ष्मशरीरस्थिते, **सन्निधाय** = प्रतिष्ठाप्य मनुदीक्षया । ततः **अन्ने** = अन्नपरिणामे स्थूलशरीरे, **प्रतिष्ठितः** = स्थापित इष्टलिङ्गरूपेण क्रियादीक्षाबलेन मया आचार्येणेत्यर्थः ।

मन्त्रदीक्षाबलेनैव भोगाङ्गे प्राणलिङ्गकम् ।
क्रियादीक्षाबलेनायं देशिकस्तस्य चिद्घनम् ।
इष्टलिङ्गं तथा चैव त्यागाङ्गे समयोजयेत् ।।

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः । **यत्** = मया आचार्येण कारणादिशरीरत्रये परशिवब्रह्म-भावादिलिङ्गरूपेण स्थापितं सत्, **विभाति** = प्रकाशते । **आनन्दरूपम्** = सच्चिदानन्दरूपम्, आनन्दरूपमिति पदमितरसद्रूपचिद्रूपोपलक्षणम् । **अमृतम्** = अनश्वरम् । **तत्** = परशिवब्रह्मसच्चिदानन्दरूपम्।

सद्रूपं भावलिङ्गं स्याच्चिद्रूपं प्राणलिङ्गकम् ।
आनन्दरूपमाचार्यैरिष्टलिङ्गमुदाहृतम् ।।

(तं) **हृदयं सन्निधाय अन्ने प्रतिष्ठितः** — सूक्ष्मशरीर के मध्य में अवस्थित हृदय में मन्त्रदीक्षा से उस परम शिव को प्राणलिङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित कर पुनश्च अन्न के परिणामस्वरूप उत्पन्न स्थूलशरीर में इष्टलिङ्ग के रूप में क्रियादीक्षा के बल से उसे श्रीगुरु द्वारा प्रतिष्ठापित किया जाता है । जैसा कि **'अनुभवसूत्र'** का प्रमाणवचन है—

मन्त्रदीक्षाबलेनैव भोगाङ्गे प्राणलिङ्गकम् ।
क्रियादीक्षाबलेनायं देशिकस्तस्य चिद्घनम् ।
इष्टलिङ्गं तथा चैव त्यागाङ्गे समयोजयेत् ॥

मन्त्रदीक्षा के द्वारा 'योगाङ्ग' (सूक्ष्मशरीर) में 'प्राणलिङ्ग' की, क्रियादीक्षा द्वारा अन्नपिण्डस्वरूप स्थूलशरीर 'भोगाङ्ग' में 'इष्टलिङ्ग' की और वेधादीक्षा द्वारा कारणशरीर 'त्यागाङ्ग' में 'भावलिङ्ग' की प्रतिष्ठा की जानी चाहिए ।

यद् विभाति (तत्) आनन्दरूपम् अमृतम्— इस प्रकार मेरे (श्रीगुरु के) द्वारा कारण-शरीर, सूक्ष्म-शरीर और स्थूल-शरीर में जिस परशिव ब्रह्म की भावलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और इष्टलिङ्ग के रूप में प्रतिष्ठा हुई है, वह सर्वत्र प्रकाशमान एकमेव अद्वितीय महालिङ्ग सच्चिदानन्दस्वरूप **'अमृत'** = अविनश्वर है । **'आनन्दरूपम्'** यह पद केवल 'आनन्द-स्वरूप' अर्थ का बोधक न होकर 'सत्'स्वरूप और 'चित्'स्वरूप का उपलक्षण (द्योतक) है । इसमें **अनुभवसूत्र** का वचन प्रमाण है—

सद्रूपं भावलिङ्गं स्याच्चिद्रूपं प्राणलिङ्गकम् ।
आनन्दरूपमाचार्यैरिष्टलिङ्गमुदाहृतम् ॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः । **विज्ञानेन** विशेषेण लिङ्गाङ्गसामरस्यविषयकेण ज्ञानेन अविच्छिन्नतैल-धारावदेकाकारवृत्त्यात्मकेन विशेषज्ञानेन, ध्यानेनेत्यर्थः । **धीराः** = लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञाने रममाणा वीरशैवाः, **परिपश्यन्ति** = स्वसामरस्येन साक्षात्कुर्वन्ति । तस्माद् यूयमपि तल्लिङ्गध्यानधारणादिद्वारा साक्षात्कुरुतेत्याचार्यस्याऽऽशयः ॥७॥

तन्महालिङ्गसाक्षात्कारफलमाह—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥८॥

भिद्यत इति । **परावरे** = परं निष्कलमवरं च सकलम्, तदुभयात्मनि तस्मिन् परशिवमहालिङ्गे षडक्षरमनुरूपपरविद्याबोध्ये,

निष्कलः संविदाकारः सकलो विश्वमूर्तितः ।
उभयात्मा शिवो मन्त्रे षडक्षरमये स्थितः ॥

(सि. शि. ८.२२)

भावलिङ्ग सत्स्वरूप होता है, प्राणलिङ्ग चिद्रूप होता है, आचार्यों ने इष्टलिङ्ग को आनन्दस्वरूप स्वीकार किया है ।

धीरा विज्ञानेन तत् परिपश्यन्ति— विशिष्ट ज्ञान अर्थात् लिङ्गाङ्गसामरस्यविषयक ज्ञान द्वारा जो अविच्छिन्न तैलधारा के समान चित्तस्वरूप विशिष्ट ज्ञान होता है, जिसे ध्यान कह सकते हैं, उस विशिष्ट ज्ञान के द्वारा उसमें तल्लीन, रमे हुए वीरशैव जीव सच्चिदानन्दस्वरूप 'अमृत', अविनश्वर उस परशिव ब्रह्म का स्वकीय सामरस्यप्रक्रिया द्वारा साक्षात्कार करते हैं । इसलिए तुमलोग भी ध्यान-धारण आदि उपायों से उस परमशिव का साक्षात्कार करो । सद्गुरु यही अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे हैं, यही उनका आशय है ॥७॥

अवतरण— उस परमशिव-परमात्मा के साक्षात्कार का फल क्या है?

***मन्त्रार्थ*— निष्कल-सकल परम शिव का साक्षात्कार होने पर उस जीवात्मा का आणव मल हट जाता है, मायीय मल कट जाते हैं और कार्म मल क्षीण होते हैं ॥८॥**

व्याख्या : भिद्यते इत्यादि । **परावरे तस्मिन् दृष्टे सति**— वह परशिवस्वरूप महलिङ्ग पर (निष्कल) भी है और अवर (सकल) भी । वह उभयात्मक है । श्रीरेणुक-भगवत्पादाचार्य कहते हैं—

निष्कलः संविदाकारः सकलो विश्वमूर्तितः ।
उभयात्मा शिवो मन्त्रे षडक्षरमये स्थितः ॥

(सि. शि. ८.२२)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति रेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेः । यद्वा **परम्** = इन्द्रादिदेवपदापेक्षयोत्कृष्टम्, कार्यरूपं ब्रह्मविष्ण्वाद्यङ्गस्थलमवरं निकृष्टम्, यस्मात् कारणरूपाद् आचारादिलिङ्गस्थलादिति परावरम्, तस्मिन् परविद्याबोध्ये षट्स्थलब्रह्मणीत्यर्थः । तस्मिन् परशिवमहालिङ्गे **दृष्टे** = साक्षात्कृते, **'अस्मि, प्रकाशे, नन्दामि'** इति साक्षात्कारे जाते सतीत्यर्थः । **अस्य** = जीवस्य, **हृदयग्रन्थिः** = 'नाहं शिवः' इत्यज्ञानात्मकाणवमलमयः, **भिद्यते** = भिदां नाशमायाति । **सर्वसंशयाः** = मायीयमलमयाः, **छिद्यन्ते** = नाशमायान्ति । **कर्माणि** = कार्मिकमलमयानि प्रारब्धेतराणि, **क्षीयन्ते** = क्षयमायान्ति, न तु शरीरारम्भकाणि, उपभुज्यमानत्वात् । तदुक्तमनुभवसूत्रे —

तस्मिन् दृष्टे परे लिङ्गे निष्कले निरुपाधिके ।
अस्य जीवस्य कर्माणि क्षीयन्ते सकलानि हि ।।

इस शरीर के अनुसार षडक्षरी पराविद्या द्वारा उस उभयात्मक परशिव महालिङ्ग का साक्षात्कार किया जा सकता है, जो संवित् (चित्शक्ति) स्वरूप होने के कारण निष्कल भी है और विश्वाकार होने के कारण सकल भी । अथवा **'परम् अवरं यस्माद् इति परावरम्'** इस समास-विग्रह के अनुसार **'परावर'** शब्द का अर्थ होगा— आचार आदि षट्लिङ्गस्थल ब्रह्मा, विष्णु आदि अङ्गस्थलों के कारण हैं, अंगस्थल उनके कार्य हैं । अतः 'पर' (इन्द्रादि देव) की उपेक्षा उत्कृष्ट होने पर भी कार्यस्वरूप होने के कारण कारणस्वरूप षड्विध आचारादि लिङ्गस्थलों से जो अवर (निकृष्ट) होते हैं वे ब्रह्मा, विष्णु आदि 'अङ्ग-स्थल' 'परावर' कहलाते हैं । इस प्रकार जीव जब षट्स्थल ब्रह्मस्वरूप परशिव-महालिङ्ग का साक्षात्कार करता है । अर्थात् **अस्मि** = मैं परमशिव स्वरूप हूँ, **प्रकाशे नन्दामि** = प्रकाशस्वरूप परम शिव में आनन्दस्वरूप अवस्थित हूँ, यह उस साक्षात्कार का आकार है । जब जीव इस प्रकार परमशिव का साक्षात्कार करता है तब, **अस्य हृदयग्रन्थिः भिद्यते**— उस जीवात्मा के हृदय की गांठ खुल जाती है— **'नाऽहं शिवः'** (मैं शिवस्वरूप नहीं हूँ ।) इस प्रकार अज्ञान जीव में रहता है, जिसे 'आणव मल' कहते हैं । वह हट जाता है । **सर्वसंशयाः छिद्यन्ते**— सभी संशय मिट जाते हैं । जीवात्मा में मायीय मल रहता है वह परमावरणस्वरूप माया के कारण पाञ्चभौतिक शरीर को ही स्वस्वरूप समझता है । परम शिव का साक्षात्कार करने से वह संशय मिट जाते हैं । **कर्माणि च क्षीयन्ते**— उस जीवात्मा के कर्मों का क्षय होता है । कर्म तीन प्रकार के होते हैं प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण । जीवात्मा के इतर संचित और क्रियमाण कर्मो का नाश होता है, जो प्रारब्ध से भिन्न होते हैं, उन प्रारब्ध कर्मों का विनाश नहीं होता, शरीर के साथ जिनका भोग करना प्रारंभ हो चुका हो । इसी मन्त्र का उपबृंहण **अनुभवसूत्र** में इस प्रकार किया गया है—

तस्मिन् दृष्टे परे लिङ्गे निष्कले निरुपाधिके ।
अस्य जीवस्य कर्माणि क्षीयन्ते सकलानि हि ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अविद्याहृदयग्रन्थिर्भिद्यते शतधापि च।
संशया बहुसङ्कल्पाश्छिद्यन्ते च सहस्रधा।। इति।।८।।

उक्तपरशिवमहालिङ्गतत्त्वमेवाह—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः।।९।।

हिरण्मय इति। **हिरण्मये** = ज्वलत्सुवर्णवद्दीप्यमाने, **परे** = सर्वाभ्यन्तरे, मायीयकार्मिकमलकारणे, **कोशे** = कोशवदाच्छादके कारणाङ्गे,

परमावरणं मल इह सूक्ष्मं मायादिकञ्चुकं स्थूलम्।
बाह्यं विग्रहरूपं कोशत्रयवेष्टितो ह्यात्मा।।

अविद्याहृदयग्रन्थिर्भिद्यते शतधाऽपि च।
संशया बहुसङ्कल्पाश्छिद्यन्ते च सहस्रधा।।

तदनुसार इसका आशय यह है कि चित्स्वरूप होने के कारण निष्कल, उपाधि-रहित परशिवलिङ्ग का साक्षात्कार होने पर इस जीवात्मा के सम्पूर्ण कर्मों का विनाश होता है। उसकी हृदयस्थित अविद्याग्रन्थि शतशः छिन्न-विच्छिन्न होती है और मन में उठनेवाले नाना संकल्प-विकल्पों के हजारों खण्ड होते हैं।।८।।

अवतरण— उस परशिव महालिङ्ग का यथार्थस्वरूप निरूपित कर रहे हैं—

***मन्त्रार्थ*— सुवर्ण के समान दीप्तिशाली माया के आवरण-कोष में अज्ञानादि-मलों से मुक्त, निरवयव, निष्कल 'भावलिङ्ग'स्वरूप उस ब्रह्म का वास रहता है, जो सदा शुद्ध निर्मल रहता है। सभी को आलोकित करनेवाले सूर्य-चन्द्र आदि का भी ज्योतिःस्वरूप वही है, उसी से सभी ग्रह-नक्षत्र आलोकित होते हैं। षट् अंगस्थलों के वेत्ता उसी का साक्षात्कार करते हैं।**

व्याख्या : हिरण्मय इत्यादि। **१. हिरण्मये परे कोशे**— आणव मल से आवृत पञ्चकञ्चुकवेष्टित सूक्ष्म शरीर, २. शुभाशुभ कार्मिक मल से आवृत पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर और ३. मायीय मल से आवृत परमावरण (माया)-स्वरूप कारणशरीर — इन तीनों शरीरों को 'कोश' इसलिए कहते हैं कि वे कोष के समान वास्तविक स्वरूप पर आवरण डालते हैं। स्थूल-शरीर के अन्दर सूक्ष्म-शरीर और उसके अन्दर कारण-शरीर रहता है। वह सुवर्ण के समान आलोकित रहता है। अत एव उस अङ्गस्थल को यहां '**कारणाङ्ग**' कहा गया है, परमावरणस्वरूप कारण-शरीर वह '**हिरण्मय कोश**' है, जिसमें ब्रह्म का वास है। इसमें **परमार्थसार** का वचन प्रमाण है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति **परमार्थसारोक्तेः** । **विरजम्** = विगतरजस्कम्, अज्ञानादिमलवर्जितम्, । **निष्कलं** = निरवयवं ब्रह्म, भावलिङ्गम्, **'निष्कलं भावलिङ्गं स्यात्'** इत्यनुभवसूत्रोक्तेः। विगतरजस्कत्वात्, निष्कलत्वात् **तत्** = भावलिङ्गम्, **शुभ्रं** = सदा मलरहितम् । न कदापि नित्यशुद्धस्य परशिवलिङ्गस्य मलपरामृष्टत्वम्, तद्विभक्तस्य तदंशस्याऽऽत्मन एव मलावरणसद्भावात्, **क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरासृष्टः पुरुषविशेष ईश्वर** इति योगसूत्रस्थितेः । **ज्योतिषाम्** = सर्वप्रकाशकानामादित्यादीनामपि, **ज्योतिः** = प्रकाशकम् । **यत् तत्** सर्वावभासकं भावलिङ्गम् । **आत्मविदः** = षडङ्गस्थलाभिज्ञाः, **आत्मैवाऽङ्गस्थलं भवेद्** इत्यनुभव-सूत्रोक्तेः ।

परमावरणं मल इह सूक्ष्मं मायादिकञ्चुकं स्थूलम् ।
बाह्यं विग्रहरूपं कोशत्रयवेष्टितो ह्यात्मा ॥

परब्रह्म परमात्मा तीन कोशों से वेष्टित है— उसका सबसे बाह्य आवरण है— १. पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर, २. उसके अन्तर्गत कला-विद्या-नियतितत्त्वस्वरूप मायादि-पञ्च-कञ्चुक सूक्ष्मशरीर और ३. उसके भीतर परमावरणस्वरूप कारणशरीर रहता है, जिसमें ब्रह्म का वास है ।

विरजम्— सबके भीतर अवस्थित कोश उसका निवास स्थान होने के कारण उसे आणव, कार्म और मायीय मल नहीं लगता । **निष्कलम्**— उसका कोई खण्ड-खण्ड नहीं कर सकता अतः वह निरवयव है । **ब्रह्म**— 'बृहत्' और 'बृंहण'शील वह ब्रह्म परमशिवस्वरूप महालिङ्ग का '**भावलिङ्ग**' ही है, क्योंकि '**निष्कलं भावलिङ्गं स्यात्**' इस अनुभवसूत्र-वचन के अनुसार 'भावलिङ्ग' कलाहीन निष्कल होता है ।

तत् शुभ्रम्— विगतरज, और कलाशून्य होने के कारण वह भावलिङ्ग अत्यन्त शुभ्र, सदा निर्मल है । नित्य शुद्ध परशिवलिङ्ग को किसी प्रकार का कोई भी मल छू नहीं सकता । क्योंकि उससे अलग होनेवाला उसका अंशस्वरूप जीवात्मा ही आणव, कार्म और मायीय त्रिविध मलों के आवरण से घिरा रहता है, नित्य-शुद्ध अखण्ड परमात्मा नहीं । इसमें अन्यतम **'योगसूत्र'** प्रमाण है— **क्लेश-कर्म-विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः** । उसी पुरुष विशेष को **'ईश्वर'** कहते हैं, जिसे किसी प्रकार के दुःख, कर्मफल आदि जरा भी स्पर्श नहीं करते । **ज्योतिषां ज्योतिः**— सभी स्थावर-जङ्गम जगत् को आलोकित करनेवाले सूर्य-चन्द्र आदि तेजःपुञ्जों का भी जो ज्योतिःपुञ्ज है । भावलिङ्ग-स्वरूप परब्रह्म की चित्शक्ति ही सबको आलोकित करती है ।

तद् यदात्मविदो विदुः— आत्मवेत्ता जिसे जानते हैं, वह ब्रह्म भावलिङ्ग ही है । यहां **'आत्मा'** का तात्पर्य है **षडङ्गस्थल** । जैसा कि अनुभवसूत्र का वचन है— **आत्मैवाङ्गस्थलं विदुः**, उसके अभिज्ञ 'आत्मवेत्ता' होते हैं । वे ही उसके स्वरूप को जानते हैं । जैसा कि अभियुक्तोक्ति है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विदुः = जानन्ति, **षडङ्गयोगमार्गेण साध्यो विश्वविदव्यय** इत्यभियुक्तोक्तेः । न त्वितरे वाचनिकज्ञानिनः,

यदि वाचनिकाज्ज्ञानान्मुक्तिः स्याद् भावनां विना ।
शारीरैर्मानसैर्दुःखैर्मुच्येरन् सर्वजन्तवः ।।

इत्यभियुक्तोक्तेः, भक्ताद्यङ्गस्थलानां साधनरूपत्वात्, यमनियमाद्यष्टाङ्गानां भक्ताद्यङ्गस्थलान्तर्गतत्वात्[1], साधनज्ञानाभावे साध्यज्ञानानिष्पत्तेः, सोपानारोहणाभावे सौधारोहणस्याऽसम्भवात् ।।९।।

कथं तल्लिङ्गं ज्योतिषां ज्योतिरित्यत आह—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

षडङ्गयोगमार्गेण साध्यो विश्वविदव्ययः ।

षडङ्गयोग का मार्ग अपनाकर अर्थात् षट्अङ्गस्थलों का संयोग षट्लिङ्गस्थलों से करते हुए विश्ववेत्ता अविनश्वर भावलिङ्ग का साक्षात्कार किया जा सकता है । जिनका ज्ञान केवल कण्ठस्थीकरणतक रहता है, वे उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते । जैसा कि अभियुक्त-वचन इसमें प्रमाण है—

यदि वाचनिकाद् ज्ञानान्मुक्तिः स्याद् भावनां बिना ।
शारीरैर्मानसैर्दुःखैर्मुच्येरन् सर्वजन्तवः ।।

यदि केवल वाचनिक (पठित) ज्ञान से, विना भावना के मुक्ति होती, तो पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक कष्टों से छुटकारा पा जाते ।

भक्त आदि अङ्गस्थल परमशिव-पदप्राप्ति के साधनमात्र है । यम-नियम आदि **अष्टाङ्ग**[1] भक्त आदि अङ्गस्थलों में ही समाविष्ट हैं । बिना साधन को समझे साध्य का ज्ञान सम्भव नहीं है । जिस प्रकार बिना सीढी चढे महल में जाना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार बिना षडङ्गयोग, लिङ्गाङ्गसामरस्य के भावलिङ्ग का साक्षात्कार सम्भव नहीं है ।।९।।

अवतरण— उस भावलिङ्ग को पूर्व मन्त्र में **'ज्योतिषां ज्योतिः'** उस विशेषण से अलंङ्कृत किया गया है । वह उसमें किस प्रकार है, इसका समाधान इस मन्त्र में है ।

---

१. **'यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि'**— द्रष्टव्य योगसूत्र (साधनपाद-सूत्र २९) । तदनुसार १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि इनको **अष्टाङ्गयोग** कहते हैं । वीरशैव दर्शन के अनुसार भक्त आदि अङ्गस्थलों में इनका अन्तर्भाव होता है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तमेव भान्तमनु भाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।१०।।

न तत्र इति । **तत्र** = तस्मिन् सर्वान्तर्वर्तिनि कारणाङ्गावच्छिन्नात्मप्रतिष्ठिते भावलिङ्गे, **सूर्यः** = सर्वप्रकाशकोऽप्यादित्यः, **न भाति** = न तद्भावलिङ्गं प्रकाशयति । **चन्द्रतारकम्** = चन्द्रश्च तारकाश्च तेषां समाहारश्चन्द्रतारकम् । **न भाति** = न प्रकाशयति । **इमाः** अतिज्योतिष्ट्वेन प्रसिद्धाः, **विद्युतः** = सौदामिन्यः, **न भान्ति** = न प्रकाशयन्ति । **अयमस्मद्दृष्टिगोचरोऽग्निः, कुतः** = कथं भासयेत् ? न भासयतीत्यर्थः । **तमेव** = परशिवमेव, **भान्तं** = स्वतःप्रकाशमानम्, **सर्वमपि** सूर्यादिकं जगद् **अनुभाति** = अनुदीप्यते, तस्य स्वतः प्रकाशाभावात् । गच्छन्तमनुगच्छतः पुरुषस्य स्वतो गतिरिव तस्यापि स्वतःप्रकाशः किं न स्यात्? इत्यत आह— **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** इति । **तस्य** = परशिवस्य,

---

***मन्त्रार्थ*— उस भावलिङ्ग को जगत् का प्रकाशक होने पर भी न तो सूर्य प्रकाशित करता है और न चन्द्र आदि अन्य ग्रह और नक्षत्र । बिजली भी इसे प्रकाशित नहीं करती, फिर यह अग्नि उसे किस प्रकार प्रकाशित कर सकता है? सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्र जो समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं, वे स्वतः प्रकाश नहीं है, अपितु स्वतः तेजःपुञ्जस्वरूप अक्षरब्रह्म से प्रकाशित होते हैं । इस प्रकार परम्परया समस्त चराचर विश्व उसी परशिव के तेजःपुञ्ज से प्रकाशित होता है ।।१०।।**

व्याख्या : न तत्र इत्यादि । **तत्र सूर्यो न भाति**— यहां 'भाति' का प्रयोग 'णिच्' के अर्थ में हैं । 'णिच्' प्रत्यय प्रेरणार्थक हैं । अतः 'भाति' का अर्थ 'प्रकाशते' न होकर 'प्रकाशयति' हैं । इस प्रकार इस की व्याख्या होगी— स्थूलशरीरस्वरूप कोश के भीतर अवस्थित सूक्ष्मशरीरकोश के भी भीतर विराजमान परमावरणस्वरूप अङ्गस्थलापत्र कारणशरीर के कोश में प्रतिष्ठित सर्वान्तर्वर्ती भावलिङ्ग में रहने वाला सूर्य सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम स्वरूप जगत् का प्रकाशक होने पर भी भावलिङ्ग स्वरूप उस अक्षर ब्रह्म-परमशिव को प्रकाशित नहीं करता ।

चन्द्रतारकं न भाति— 'चन्द्रश्च तारकाश्च तेषां समाहारः चन्द्रतारकम्' इस प्रकार समाहार द्वन्द्व है । अर्थात् चन्द्र आदि नव ग्रह और अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र भी उस भावलिङ्ग को प्रकाशित नहीं करते ।

इमा विद्युतो न भान्ति— अत्यन्त ज्योतिःपुञ्ज के रूप में विख्यात सौदामिनी भी उसे प्रकाशित नहीं करती ।

अयम् अग्निः कुतः ?— फिर हमारी आखों के सामने रहनेवाली यह आग उसे कैसे प्रकाशित कर सकती है? वह उसे कदापि प्रकाशित नहीं करती ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

भासा = प्रकाशेन, **सर्वमिदं** = सूर्यादिकं जगत्, **विभाति** = दीप्यते, न स्वतः प्रकाशस्तस्येत्यर्थः । तस्मात् स्वप्रकाशशिवान्तर्गतत्वेन भासमानत्वात् सर्वं शिवमयमेव । **नाप्रकाशः प्रकाशते** इति न्यायेन प्रकाशवाचि शिवभिन्नत्वे तस्य तुच्छत्वाद् गगनपुष्पादिवत् तस्य सत्तैव न स्यात् । तदुक्तमभियुक्तैः—

प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात् स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शात् ।
नान्यो विमर्शोऽहमिति स्वरूपादहंस्वरूपोऽस्मि चिदेकरूपः ।। इति।

उक्तश्चैतन्मन्त्रार्थो रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

तमेव भान्तं सर्वम् अनुभाति— परशिव स्वयं प्रकाशमान है, वह अपनी ही प्रकाश शक्ति से प्रकाशित होता है, अनन्तर सूर्य-चन्द्र-अग्नि और अन्य ग्रह-नक्षत्र आदि समस्त जगत् प्रकाशित होता है, क्योंकि वह स्वतःप्रकाश नहीं है । जिस प्रकार सब लोग किसी प्रभावशाली व्यक्ति का अनुसरण करते हैं, वह किसी का अनुसरण नहीं करता, उसकी स्वयं की गति होती है, उसी प्रकार भावलिङ्ग स्वयं प्रकाशमान है, किसी अन्य तेज से प्रकाशमान नहीं है।

सर्वम् इदं तस्य भासा विभाति— परमशिव के प्रकाश से ही सूर्य आदि समस्त जगत् प्रकाशित होता है, वह स्वतःप्रकाश नहीं है, अपितु परम शिव से प्रकाश्य है । यतः सर्व-प्रकाशक शिव के अन्तःस्थित होने से ही वे प्रकाशस्वरूप हैं, अतः समस्त विश्व शिवस्वरूप ही है । **नाऽप्रकाशः प्रकाशते** इस न्याय के अनुसार जो स्वयंप्रकाश नहीं है, वह प्रकाशित नहीं होता । वह स्वयं प्रकाशपुञ्ज के वाचक शिव से भिन्न नहीं हो सकता, ऐसा मानने पर वह तुच्छ-उपेक्षित होगा । जिस प्रकार आकाशपुष्प की कोई सत्ता नहीं होती, उसी प्रकार उसका भी अस्तित्व उसे शिवभिन्न मानने पर नहीं होगा । जैसा कि अभियुक्त का सुभाषित है—

प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात् स च
प्रकाशो न पृथग् विमर्शात् ।
नाऽन्यो विमर्शोऽहमिति स्वरूपादहं-
स्वरूपोऽस्मि चिदेकरूपः ।।

अर्थ— जो प्रकाशित होता है, वह 'प्रकाश' से भिन्न नहीं होता । वह (शिव स्वरूप) 'प्रकाश' (शक्तिस्वरूप) 'विमर्श' से अलग नहीं होता । शक्तिस्वरूप 'विमर्श' भी 'अहम्' इस आकार के 'स्वरूप' से पृथक् नहीं होता और 'अहम् अस्मि' इस प्रकार का स्वरूप चित्स्वरूप (ज्ञान-स्वरूप) होता है ।

इस मन्त्र का उपबृंहण श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य इस प्रकार करते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावकः ।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परात्मनि ।।
(सि. शि. १२.३८)॥१०॥

उक्तपरशिवमहालिङ्गप्रकाशान्तर्गतत्वात् तस्यैव सर्वावभासकत्वात् सर्वं चेतनाचेतनात्मकं जगत् परशिवब्रह्मैव नान्यदित्याह—

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।११।।

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ।।

ब्रह्मैवेदम् इति । **पुरस्तात्** = अग्रे वर्तमानं वस्तुजातम्, **अमृतम्** = अविनाशिरूपम्, **ब्रह्मैव** = परशिवब्रह्मस्वरूपमेव, **पश्चात्** = पृष्ठतो वर्तमानमपि **ब्रह्मैव**, **दक्षिणतश्च** = दक्षिणतो

न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावक: ।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परात्मनि ॥

स्वयंप्रकाशपुञ्ज महालिङ्गस्वरूप परमेश्वर के देदीप्यमान रहने पर उसके सामने सूर्य-चन्द्र-विद्युत्-अग्नि और अन्य ग्रह-नक्षत्र निस्तेज होते हैं, उसके आगे प्रकाशस्वरूप वे टिक नहीं सकते, उस प्रकाशपुञ्ज के सामने पराभूत होते हैं और उस प्रकाशपुञ्ज में उनका तेज समाहित होता है (सि. शि. १२.३८)॥१०॥

अवतरण— यत: सम्पूर्ण चेतन-अचेतन जगत् पूर्ववर्णित परशिवस्वरूप महालिङ्ग के परम प्रकाश में ही अन्तर्निहित और उसी का प्रकाश सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र आदि सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता है, अत: जो कुछ प्रत्यक्ष-गोचर है, परशिव ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं । इसी आशय को अग्रिम मन्त्र निरूपित कर रहा है—

***मन्त्रार्थ*— सामने-पीछे, दायें-बायें, नीचे-ऊपर सर्वत्र फैला हुआ यह सम्पूर्ण दृश्यमान वस्तुजात वरिष्ठ स्वप्रकाश परशिवस्वरूप ब्रह्म ही है ।।११।।**

व्याख्या : इदं पुरस्ताद् अमृतं ब्रह्मैव = आगे अवस्थित प्रत्यक्षगोचर यह सम्पूर्ण पदार्थसमूह, मृत्यु-धर्म-रहित अविनाशी सदाशिवस्वरूप ब्रह्म ही है । **पश्चाद् ब्रह्म** = पीछे अवस्थित जगत् भी ब्रह्म ही है । **दक्षिणतश्च ब्रह्म** = दाहिनी और की दुनिया भी ब्रह्म ही है । **उत्तरेण ब्रह्म** = बायीं ओर का संसार भी ब्रह्म ही है । **अधश्चोर्ध्वं च ब्रह्मैव** = नीचे ऊपर का धरती-आसमान, आकाश-पाताल सभी ब्रह्म ही है । **इदं सर्वत्र प्रसृतं ब्रह्मैव** = यह चारों ओर फैला हुआ ब्रह्म है, जो दिशातीत है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वर्तमानमपि ब्रह्मैव, **उत्तरेण** = उत्तरे वर्तमानमपि ब्रह्मैव, **अधश्चोर्ध्वं च** = अधोदेशे ऊर्ध्वदेशे च ब्रह्मैव, **प्रसृतं** = व्याप्तम्। किं बहुना? **इदं विश्वम्** = दृश्यमानं सर्वं सूर्यादिकं जगत्, **वरिष्ठम्** = सर्वोत्कृष्टम्, **ब्रह्मैव** = स्वप्रकाशपरशिवब्रह्मैव, शिवप्रकाशेनैव प्रकाशमानत्वात्। न सूर्यादिजगतः स्वतः प्रकाशः, सर्वस्याप्यचेतितत्वाभावात्, अप्रकाशितत्त्वे तस्य सत्त्वाभावात्, ''यद्यच्छिवप्रकाशबाह्यं तत्तदवस्तु'' इति नियमात्र भिन्नं परशिवब्रह्मणः किञ्चित्। तस्मात् सर्वं परशिवब्रह्मैवेत्यर्थः ॥११॥

॥ इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डे वीरशैवभाष्यं हरगुरुचरचरणार्पितं भूयात् ॥



बृहत्त्वात् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्।

विशाल और विस्तारशील होने के कारण उसका 'ब्रह्म' नाम सार्थक है। **इदं विश्वं वरिष्ठं ब्रह्मैव,** किं बहुना? सम्पूर्ण प्रत्यक्षगोचर सूर्य-चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्रों का यह सम्पूर्ण विश्व सर्वोत्कृष्ट स्वप्रकाश परशिवस्वरूप ब्रह्म ही है, यतः परम शिव के प्रकाश से ही वह प्रकाशित है। सूर्य आदि ग्रह-नक्षत्र स्वयंप्रकाश नहीं हैं। जो प्रकाशित नहीं होता, उसकी सत्ता (अस्तित्व) नहीं होती। क्योंकि यह नियम है— **यद् यच्छिवप्रकाशबाह्यं तत् तदवस्तु** — जो जो वस्तु शिव की प्रकाशमयी विमर्श-शक्ति से बाहर होती है, वह कोई वस्तु नहीं होती। कोई भी वस्तु परशिव ब्रह्म से अलग नहीं है, अतः समस्त विश्व परशिव ब्रह्म ही है ॥११॥

॥ इस प्रकार मुण्डकोपनिषद् (द्वितीय मुण्डक-द्वितीय खण्ड) की यह हिन्दी वीरशैव सम्प्रदायानुसारिणी व्याख्या परशिव-सद्गुरु-जंगमयोगी के चरणों में समर्पित है ॥



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अथ तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

श्रीगुरूपदिष्टपरविद्याख्यप्रणवसहितपञ्चाक्षरमहामन्त्रार्थानुसन्धानाभ्यासदार्ढ्यसमुदित-लिङ्गाङ्गसामरस्यसाक्षात्कारानन्तरभावि लिङ्गाङ्गयोः पारमार्थिकाऽभेदरूपं सामरस्यमुक्तम्। इदानीं तत्साक्षात्काराभावे तयोर्भेदमपि पारमार्थिकमाह —

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति
अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति ।।१।।

द्वा सुपर्णा इति। द्वा सुपर्णेत्यादौ द्विवचनस्याऽऽकारश्छान्दसः। **द्वा** = **द्वौ**, **सुपर्णा** = पक्षिणौ, कीदृशावित्यत आह– **सयुजा** इति। **सयुजा** = सयुजौ सह सामानाधिकरण्येन युजौ

अवतरण-भाष्य : श्रीगुरु के द्वारा उपदिष्ट, जिसे 'परा विद्या' कहा जाता है उस प्रणव (ओङ्कार)पूर्वक पञ्चाक्षर महामन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का अर्थानुसन्धान, वारं वार जप, उसका अभ्यास आदि द्वारा जो दृढ़ता होती है उससे लिङ्गाङ्गसामरस्य का विशिष्ट ज्ञान होता है और उसके साथ ही अनन्तरवर्ती क्षण में लिङ्गस्थल और अङ्गस्थल दोनों का पारमार्थिक अभेद होता है, जिसका प्रतिपादन अब तक किया गया है। अब उन दोनों का साक्षात्कार न होने पर उनमें जो भेद रहता है, वह भी पारमार्थिक होता है इसका विवेचन अग्रिम मन्त्र में है—

***मन्त्रार्थ*— दो पक्षी (जीव और शिव) संयुक्तरूप से समानधर्मा होने के कारण मित्र के रूप में एक वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर आलिङ्गनबद्ध रहते हैं। उन दोनों में से एक पक्षी (जीव) परिपक्व पिप्पलफल (कर्मफल) का उपभोग करता है। दूसरा पक्षी (शिव) उसका उपभोग न करते हुए साक्षीरूप उसे केवल देखता रहता है ।।१।।**

व्याख्या– द्वा सुपर्णा इत्यादि। इस मन्त्र में **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया** इन द्विवचनान्त पदों में आकार का प्रयोग वैदिक है। लौकिक संस्कृत में इसका रूप होगा **द्वौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ**। **द्वा सुपर्णा** (द्वौ सुपर्णौ) = दो पक्षी जीव और शिव। वे कैसे हैं? **सयुजा** (सयुजौ) = समान-अधिकरण में रहने के कारण एक साथ संयुक्त होकर,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

युक्तौ, वर्तमानावित्यर्थः । **सखाया** = सखायौ, सदृशौ किञ्चिज्ज्ञत्व-किञ्चित्कर्तृत्व-सर्वज्ञत्व-सर्वकर्तृत्व-प्रेर्यत्व-प्रेरकत्व-पूजकत्वपूज्यत्वादिना परस्परभेदेऽपि ज्ञानक्रियात्मचैतन्येन सामान्यधर्मेण तयोर्भेदाभावात् सदृशरूपावित्यर्थः । एवम्भूतौ शिवजीवौ पक्षित्वेन रूपितौ । **समानम्** = एकं **वृक्षं** = वृक्षतुल्यं शरीरम् । **परिषस्वजाते** = आश्रितवन्तौ भवतः । **तयोः** = पक्षिरूपेणोक्तयोः शिवजीवयोर्मध्ये, **अन्यः** = शिवादन्यो जीवः, **स्वादु** = परिपक्वम्, **पिप्पलं** = सुखदुःखात्मकं कर्मफलम् । **अत्ति** = भुङ्क्ते । स्वकर्मानुसारेण देव-तिर्यङ्-मनुष्यादिनानायोनिसञ्जनितः सन् तत्तज्जात्युचितकर्मफलमनुभवतीत्यर्थः । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

चक्रनेमिक्रमेणैव भ्रमन्ति हि शरीरणः ।
जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं कर्म केवलम् ।।

(सि. शि. ५.४९) इति।

सखाया (सखायौ) = मित्र हैं । दोनों में कुछ विशेष धर्म हैं और कुछ समान धर्म । किञ्चिज्ज्ञत्व-किञ्चित्कर्तृत्व आदि जीव के धर्म हैं, सर्वज्ञत्व शिव का धर्म है । जीव का धर्म शिव से प्रेरित होना है और शिव का धर्म जीव को प्रेरित करता है । प्रेर्य-प्रेरकभाव की दृष्टि से दोनों में अन्तर है । उसी प्रकार जीव शिव का पूजक है और शिव जीव द्वारा पूजित है । दोनों में पूज्य-पूजक भाव है । इस प्रकार दोनों में परस्पर भेद होने पर भी कतिपय समान धर्म भी हैं । ज्ञानशक्ति, क्रियाशीलता और आत्मचैतन्य जीव और शिव में समानभाव से है अतः वे दोनों मित्ररूप में रहते हैं । इस प्रकार जीव और शिव दोनों को '**सुपर्णा**' कहकर पक्षी के रूप में आरोपित किया गया है । इस प्रकार वे दोनों—

समानं वृक्षं परिषस्वजाते— एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर आलिंगन-बद्ध रहते हैं । **वृश्च्यते छिद्यते इति वृक्षः** इस निर्वचन के अनुसार जिस प्रकार पेड़ टूटता है, उसी प्रकार शरीर छूटता है, अतः दोनों 'वृक्ष' ही हैं ।

तयोर् अन्यः स्वादु पिप्पलम् अत्ति— उन दोनों पक्षियों–जीव और शिव के बीच में जीव परिपक्व पिप्पल फल अर्थात् सुख-दुःखस्वरूप कर्मफल का उपभोग करता है । जीव अपने अपने कर्म के अनुसार, देवता, पशु, पक्षी-मनुष्य आदि विविध योनियों में उत्पन्न होकर उस उस जाति के अनुरूप कर्मफल का उपभोग करता है यही इसका आशय है । और इस आशय को श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

चक्रनेमिक्रमेणैव भ्रमन्ति हि शरीरिणः ।
जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं कर्म केवलम् ।।

(सि. शि. ५.४९)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अन्यः = जीवादिभिन्नः शिवः प्रेरयिता, **अनश्नन्** = कर्मफलमभुञ्जानः सन्, अभिचाकशीति = पश्यत्येव केवलम् । तदुक्तं **रेणुकभगवत्पादाचार्यैः**—

एतेषां देहिनां साक्षी प्रेरकः परमेश्वरः ।
एतेषां भ्रमतां नित्यं कर्मयन्त्रनियन्त्रणे ।।

(सि. शि. ५.५०) इति।

उक्तं च **सूतसंहितायाम्**—

द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिन् जीवेशाख्यौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः ।।इति।।१।।

शरीरधारी प्राणी रथचक्र के गोल पहिये के क्रम से ही संसार के सुखदुःखमोहात्मक रथचक्र के अनुसार घूमते रहते हैं। इनमें विषमता का कारण मात्र उनका कर्म होता है। वे विविध योनियों में उत्पन्न होकर तदनुसार आयुष्य पाकर स्व-स्वकर्मानुसार सुख दुःख भोगते हैं।

अन्यः, अनश्नन् अभिचाकशीति— जीव से भिन्न शिव उन कर्मफलों का भोक्ता नहीं होता, वह केवल जीवोंके कर्मफलों का साक्षी होता है और उसे केवल देखता रहता है। इस आशय को श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

एतेषां देहिनां साक्षी प्रेरकः परमेश्वरः ।
एतेषां भ्रमतां नित्यं कर्मयन्त्रनियन्त्रणे ।।

(सि. शि. ५.५०)

जीव स्व-स्व कर्मानुसार अपने फल का उपभोग करते हैं। फिर ईश्वर की आवश्यकता क्या है? इसका समाधान इस कारिका में है— "स्व स्व कर्मानुसार संसार में जन्म लेनेवाले प्राणियों को उनके कर्मानुसार प्रेरणा देनेवाला परमेश्वर साक्षी के रूप में रहता है। कर्म जड होते हैं, बिना चेतन के संचालित नहीं होते। अतः संसारचक्र में भ्रमणशील कर्म और उनको चालना देनेवाले शरीररूपी यन्त्र का भी वही शिव ही नियन्त्रण करता है"।

इस मन्त्र का उपबृंहण सूतसंहिता में इस प्रकार किया है—

द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिन् जीवेशाख्यौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः ।।

इस शरीररूपी वृक्ष में जीव और ईश (शिव) नामक सुन्दर पंखों के दो पक्षी रहते हैं। उनमें जीव कर्मफल का उपभोग करता है, महेश्वर (शिव) नहीं। ।।१।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पुनश्च स जीवः **चिद्वत् तच्छक्तिसङ्कोचान्मलावृतः संसारी** इति शक्तिसूत्रोक्तरीत्या घोराऽपारनिस्सारसंसारतापत्रयाऽनलदन्दह्यमानो भूत्वा परशिवसाक्षात्कारानन्तरं परमसुखी भवतीत्याह—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो
अनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं
अस्य महिमानमिति वीतशोकः ।। २।।

समान इति । **अनीशया** = कर्तुमकर्तुमन्यथा वा कर्तुं समर्थात् स्वतन्त्राद् ईशाद् भिन्ना चेतनाविर्भूतजडलोमादिवच्छिवाविर्भूता एकोत्तरत्रिंशत्तमत्वेन परिगणिता भेदबुद्धिरूपा जडा माया भेदबुद्धिरूपा अस्वतन्त्रा अनीशा, तया = **मुह्यमानः** = मोहमाणवमलमज्ञानमाक्रान्तः

अवतरण— शक्तिसूत्र कहता है— **चिद्वत् तच्छक्तिसङ्कोचान्मलावृतः संसारी** । अर्थात् जीव की चित्शक्ति का जब सङ्कोच होता है, तब वह आणव, कार्म और मायीय त्रिविध मलों के आवरण से आच्छादित होकर शरीर धारण करते हुए 'संसारी'-संसार में संसरणशील, ह्रासोन्मुख हो जाता है, अर्थात् पतन का रास्ता अपनाता है । इस शक्ति-सूत्र के अनुसार जीव घोर-अपार-निस्सार संसार के त्रिविध-आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखाग्नि में जलकर परशिव का साक्षात्कार करता है तथा पश्चात् शाश्वत सुख पाता है इसी भाव को अग्रिम मन्त्र अभिव्यक्त कर रहा है—

मन्त्रार्थ— माया के मोह से अज्ञान में पड़ा हुआ जीव कला, विद्या, राग, काल और नियति नामक पञ्च कञ्चुकों से घिरकर वृक्षतुल्य नश्वर शरीर में अपने शुद्ध शिवस्वरूप का गोपन करते हुए देह, मन, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियों के साथ तादात्म्य स्थापित करने के कारण अपने शिवस्वरूप को नहीं पहचानता और शोक करता है । जब वह योगिगम्य परमेश्वर का साक्षात्कार करता है, उसकी महिमा को समझाता है तब उसे शाश्वत दुःख से (शोक से) छुटकारा मिल जाता है ।। २।।

व्याख्या : समान इत्यादि । **अनीशा** (ईशाद् भिन्ना अनीशा,) = कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ । अर्थात् सभी कुछ करने न करने और विपरीत करने में उलट-पुलट करने में यदि कोई समर्थ और स्वतन्त्र है, तो वह है एकमात्र परमेश्वर शिव; अन्य सब परतन्त्र हैं । यहां 'अनीशा' का तात्पर्य उस जड़ माया से है, जो परम शिव से उसी प्रकार आविर्भूत हुई है, जिस प्रकार चेतन प्राणी से जड़ केशराशि । उसका स्वभाव है भेदबुद्धि । वह जड़, परतन्त्र है । परमेश्वर के सृष्टिक्रम में उसका स्थान पचीसवां है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सन् तदपहृतैश्वर्यत्वात् किञ्चित्कर्तृत्व-किञ्चिज्ज्ञत्वादिलक्षणकला-विद्याद्यावृतो तिरोहित-स्वशुद्धशिवरूपः पुरुषः पञ्चविंशतितमतत्त्वेन परिगणितो जीवनामकः, **समाने** = एकरूपे, **वृक्षे** = वृक्षतुल्ये शरीरे शरीरादितादात्म्यापन्नः 'मनुष्योऽहम्, देवदत्तोऽहम्, युवाऽहम्, वृद्धोऽहम्, कृशोऽहम्, स्थूलोऽहम्, क्षुधितोऽहम्, तृषितोऽहम्, सुखितोऽहम्, दुःखितोऽहम् इत्यादिदेहप्राणबुद्धितादात्म्यालम्बनाभिमानात्मप्रत्ययैरावृतोऽपरिच्छिन्नस्वशक्तिमविज्ञाय पङ्कनिमग्नपुरुष इव निमग्नो भवति, अत एव शोचति, एकशृङ्खलाबन्धितकारागृह-प्रविष्टपुरुषादप्यधिकं शोचति = सन्तप्यते, मलत्रयशृङ्खलितत्वात्। मलत्रयं च स्थूलसूक्ष्मकारण-शरीररूपमेव । तदुक्तं परमार्थसारे—

अनीशया मुह्यमानः पुरुषः— उस माया के द्वारा पुरुष मोह (आणव मल-अज्ञान) से आक्रान्त रहता है । **पुरि शेत इति पुरुषः** इस निर्वचन के अनुसार **नवद्वार पुर** (नौ दरवाजोंवाले नगर) शरीर में जीवात्मा सुप्तावस्था में रहता है । वे नौ दरवाजे हैं— दो आंख, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक गुद और एक उपस्थ (लिंग अथवा योनि) । इस नवद्वार पुर (नगर) में सुप्तावस्था में उसके रहने का तात्पर्य यह है कि जीवात्मा जब शरीर, पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियों को ही स्वस्वरूप में देखता है, तब विषयोपभोग में लिप्त रहता है । फलतः वह पांच कञ्चुकों से घिरा रहता है । वे पांच कंचुक हैं— १. कला (किंचित्-कर्तृत्व), २. विद्या (किञ्चिद् ज्ञान), ३. राग (विषयासक्ति), ४. काल और ५. नियति । इन आवरणों से जीवात्मा का शुद्ध शिवस्वरूप छिप जाता है । अतएव उसे '**पुरुष**' कहते हैं । इस जीवात्मा की गणना पच्चीसवे तत्त्व के रूप में की गयी है । वह उस परमशिव से आविर्भूत जड़ माया के मोहपाश में जब पड़ता है, तब 'पुरुष' कहलाता है ।

समाने वृक्षे निमग्नः शोचति— जीव और शिव दोनों एक ही 'वृक्ष' का आश्रय लेते हैं । **वृश्च्यत इति वृक्षः** इस निर्वचन के अनुसार टूटना वृक्ष का धर्म है और यही धर्म है शरीर का । यतः शरीर परमेश्वर की ही रचना है, अतः वह उसके रहस्य को जब समझता है, तब उसमें 'निमग्न' नहीं रहता, जबकि 'पञ्च-कञ्चुक' से आवृत 'पुरुष' संज्ञक जीव शरीर आदि के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और 'मैं मनुष्य हूँ, देवदत्त हूँ, जवान हूँ, बूढा हूँ, दुबला हूँ, मोटा हूँ, भूखा हूँ, प्यासा हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ' आदि सोचता है । वह देह, प्राण और बुद्धि, जो वस्तुतः उसके आलम्बन हैं, उन्हें अपना ही स्वरूप समझता हैं, उनके साथ तादात्म्य स्थापित करता है । उनसे घिरा रहने के कारण जीवात्मा अपनी अपरिमित चित्शक्ति को समझ नहीं पाता । अतः वह उसमें उसी प्रकार फंसता जाता है, जिस प्रकार कोई व्यक्ति दल दल में फंसता जाता है और शोकमग्न होता है । वह एक सीखचें में बंधे हुए जेल के कैदी से भी ज्यादा दुखी रहता है, क्योंकि वह आणव, कार्मिक, और मायीय मल की तीन सींखचों में बंधा रहता है । और वे तीन मल हैं—१. स्थूल, २.सूक्ष्म और ३. कारण शरीर । जैसा कि परमार्थसार में निरूपित है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परमावरणं मलमिह सूक्ष्मं मायादि कञ्चुकं स्थूलम् ।
बाह्यं विग्रहरूपं कोशत्रयवेष्टितो ह्यात्मा ।। इति।

यदा = यस्मिन् काले, **जुष्टं** = सन्तुष्टम्, स्वार्चनार्पणाऽर्पितग्रहण-वाचकमन्त्रजप-तदर्थानुसन्धानादिरूपैः पतिकर्मभिः सम्प्रीतमित्यर्थः । **अन्यम्** = स्वस्मात् पूजकाद् भिन्नम्, **ईशम्** = शिवम्, पूज्यम् । वस्तुतः शिवजीवयोर्भेदाभावे पूज्यपूजकभावासम्भवात् । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा प्रेर्यमात्मानमेव च ।
भेदात् तं पूजयेन्नित्यं न चाऽद्वैतपरो भवेत् ।।

(सि. शि. १०.३०) इति।

अत्रेशपदस्य **शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वर** इति कोशावगतरूढ्या शिवैकपरत्वान्न पराभिमत-वासुदेवपरत्वं युक्तम् । **पश्यति** = साक्षात्करोति । शिवभक्ति-शिवार्चन-शिवमन्त्रजप-तदर्थानुसन्धानादिविजृम्भितशिवप्रसादप्रशमितनिखिलमलपाशाग्निः सन्

परमावरणं मलमिह सूक्ष्मं मायादि कञ्चुकं स्थूलम् ।
बाह्यं विग्रहरूपं कोशत्रयवेष्टितो ह्यात्मा ।।

(इसकी व्याख्या 'हिरण्मये परे कोशे' (२.२९) के मन्त्र में की जा चुकी है ।)

यदा जुष्टम् अन्यम् ईशं पश्यति = 'जिस समय वह 'पुरुष' संज्ञक जीवात्मा '**जुष्ट**' अर्थात् अपने द्वारा पूजन, नैवेद्य समर्पण, प्रसादग्रहण, '**तस्य वाचकः प्रणवः**' इस योगसूत्र के अनुसार ईश्वरवाचक प्रणवमन्त्रजप, उसका अनुसन्धान आदि **पतिकर्मों** से सन्तुष्ट, (प्रसन्न) होकर अपने से भिन्न पूजनीय शिव को देखता है' यह अर्थ करना चाहिए । यहां शिव और जीव में भेद मानना ही उचित है, अन्यथा दोनों का भेद न मानने पर उनमें पूज्य-पूजकभाव सम्बन्ध सम्भव नहीं है । जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य प्रतिपादन करते हैं—

प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा प्रेर्यमात्मानमेव च ।
भेदात् तं पूजयेन्नित्यं न चाऽद्वैतपरो भवेत् ।।

(सि. शि. १०.३०)

(जीवात्मा) परब्रह्मस्वरूप परमशिव को '**प्रेरक**' प्रेरणा देनेवाला और स्वयं को उससे '**प्रेर्य**' (प्रेरणायोग्य, प्रेरित) समझे । इस भेददृष्टि से जीव को शिव की उपासना करनी चाहिए । अद्वैतदृष्टि नहीं रखनी चाहिए ।

कुछ भाष्यकार '**ईश**' शब्द का अर्थ वासुदेव करते हैं, जो ठीक नहीं है । क्योंकि अमरकोश में 'ईश' शब्द का रूढ अर्थ शिव ही है । '**शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः**' इसमें यह प्रमाणवचन द्रष्टव्य है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

'शिवोऽहम्' इति स्वात्मानं शिवमपरोक्षीकरोतीत्यर्थः । किञ्च, **अस्य महिमानम्** = विभूतिम्, सर्वज्ञत्वादिषडङ्गैश्वर्यं हरगुरुचररूपा(पं) वा, **पश्यति** शिवरूपस्य ममैवाऽयं महिमेति साक्षात्करोति । **तदा** = तस्मिन् काले, **वीतशोकः** = अपगताविद्याक्लेशः कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः । यावत्पर्यन्तं 'तत्त्वमसि' इति महावाक्यार्थस्य लिङ्गाङ्गसामरस्यस्य गुरुबोधितपरविद्यार्थाभिन्नस्यैव साक्षात्कारो न भवेत्, तावत्पर्यन्तं शिवजीवयोर्भेद एवेत्याशयः । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

शिवभक्ति = शिवपूजा, शिवपंचाक्षर महामन्त्र जप, उस अर्थ का अनुसन्धान आदि के द्वारा जब शिव की कृपादृष्टि होती है, तब जीव के सम्पूर्ण आणव, कार्मिक और मायीय त्रिविध मलपाश भस्मसात् होते हैं और जीवात्मा **शिवोऽहम्** (मैं शिव स्वरूप हूँ, उससे भिन्न नहीं) इस प्रकार शिव का साक्षात्कार करता है ।

अस्य महिमानं (च) (पश्यति)— और उसकी महिमा का ज्ञान इस प्रकार करता है ।

[वह महिमा दो प्रकार की है— षडङ्ग ऐश्वर्य और उसके त्रिविध स्वरूप । पारमेश्वरागम में षड्विध ऐश्वर्य इस प्रकार निरूपित है—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विधोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥

महेश्वर परमशिव की षड्विधा भक्ति के अनुसार उसका षड्विध ऐश्वर्य अथवा धर्म (अङ्ग) इस प्रकार है—

१. सर्वज्ञता, २. तृप्ति, ३. अनादि बोध, ४. स्वतन्त्रता, ५. कभी लुप्त न होने-वाली अक्षय शक्ति और ६. अनन्त असीमित शक्ति । परम शिव के त्रिविध स्वरूप इस प्रकार हैं— १. इष्ट शिवलिङ्ग, २. गुरु भावलिङ्ग और ३. जङ्गम प्राणलिङ्ग । जैसा कि शिवरहस्य का वचन है—

लिङ्गं स्यादिष्टरूपं तु जङ्गमं प्राणलिङ्गकम् ।
भावलिङ्गं गुरुः प्रोक्तं त्रिविधं त्वेकमुच्यते ॥]

इस प्रकार जब जीवात्मा षड्विध ऐश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर (शिव) के त्रिविध स्वरूप को 'यह मेरी ही महिमा है' इस प्रकार आत्मस्वरूप में देखता है—

(तदा) वीतशोकः (भवति)— उस समय अविद्याजन्य क्लेश से छुटकारा पाकर कृतकृत्य होता है । जब तक **तत्त्वमसि** महावाक्य के अर्थ का, जो सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट पराविद्या (पंचाक्षर महामन्त्र) से अभिन्न है, उस लिङ्गाङ्गसामरस्य का साक्षात्कार नहीं होता, तब तक शिव और जीव में भेद बना रहता है, यही इस मन्त्र का आशय है । जैसा कि श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य कहते हैं—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधतः ।
तदाऽद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित् ।। इति।

(सि. शि. १०.३९)

क्रियाद्वैतं न कर्तव्यं भावाद्वैतं समाचरेद् इत्यागमोक्तेः,

पदार्थकायः पूजायां भक्तो भक्तिप्रभावतः ।
प्रसादकायः पूजान्ते पुनः पूजाक्रियावधि ।।

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः शरीरपातपर्यन्तं ज्ञानिनाऽपि पतिकर्माण्यनुष्ठातव्यान्येव न त्यक्तव्यानि । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

ज्ञानेनाऽऽचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः ।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनम् ।। इति।

(सि. शि. १०.१४)

साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधतः ।
तदाऽद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित् ।।

(सि. शि. १०.३९)

जिस समय ज्ञानपूर्वक परम तत्त्व का साक्षात्कार होता है, तब अद्वैतबोध होता है । जो ज्ञानहीन होता है, उसे अद्वैतबोध नहीं होता, अपितु उसके मन में भेदबुद्धि ही बनी रहती है ।

यह अद्वैतभाव भावनामय होना चाहिए ज्ञानी को देहपात तक भी अपने पतिकर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए, उन्हें छोड़ना नहीं चाहिए । इसमें अनेक वचन प्रमाण हैं । आगम कहता है—

क्रियाद्वैतं न कर्तव्यं भावाऽद्वैतं समाचरेत् ।

कोई क्रिया छोड़नी नहीं चाहिए । अद्वैतभाव को भावना से अपनाना चाहिए, क्रिया से नहीं । **अनुभवसूत्र** कहता है—

पदार्थकायः पूजायां भक्तो भक्तिप्रभावतः ।
प्रसादकायः पूजान्ते पुनः पूजाक्रियावधि ।।

शिवभक्त भक्ति के प्रभाव से पूजा के समय 'पदार्थकाय' रहता है अर्थात् विविधोपचार पूजन करता है, किसी भी उपचार को नहीं छोड़ता । पूजा के पश्चात् और जब तक वह पूजा प्रारंभ नहीं करता तबतक 'प्रसादकाय' रहता है, अर्थात् शिवभावना में मग्न रहता है । श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य कहते हैं—

ज्ञानेनाऽऽचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः ।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनम् ।।

(सि. शि. १०.१४)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि योगी धर्मं न सन्त्यजेत्।
आचारं महतां दृष्ट्वा प्रवर्तन्ते हि लौकिकाः ।।इति।
(सि. शि. १६.६५) ।।२।।

उक्तार्थे विशेषधर्ममाह—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।। ३ ।।

यदेति । यदा = यस्मिन् काले, **पश्यः** = परविद्याजन्यलिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञानयोग्योऽधि-कारी, **रुक्मवर्णम्** = हिरण्यवर्णम्, **नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय**

परमशिव केवल ज्ञान से प्रसन्न नहीं होते, ज्ञान के साथ जो आचारवान् रहता है, उससे प्रसन्न होते हैं । अत: ज्ञानी को भी जबतक देह न छूटे, तबतक सदाचारी रहना चाहिए ।

ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि योगी धर्मं न सन्त्यजेत् ।
आचारं महतां दृष्ट्वा प्रवर्तन्ते हि लौकिका: ।।

शिवयोगी को ज्ञानामृत से संतृप्त होने पर भी अपने धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए । क्योंकि सर्व साधारण लोग बड़ों के आचार को देखकर ही उस राह पर चल पड़ते हैं । ।।२।।

अवतरण— अधिकारी जीवात्मा की विशेषता इस मन्त्र में वर्णित है—

***मन्त्रार्थ*— जिस समय समर्थ परम शिव के साक्षात्कार का अधिकारी सुवर्णवर्ण परमकर्ता जगनियन्ता सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्मा आदि देवों के जनक परम शिव का साक्षात्कार करता है, उस समय स्वस्वरूप में परम शिव का साक्षात्कार करनेवाला वह शिवयोगी समस्त पुण्य-पापक्षयपूर्वक उत्कृष्ट सारूप्य को प्राप्त करता है ।**

व्याख्या : यदा पश्य इत्यादि । यदा = जिस समय, **पश्यः** = परा विद्या (पंचाक्षर महामन्त्र) से उत्पत्तियोग्य लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञान के योग्य अधिकारी, **रुक्म- वर्णम्**— (रुक्मवत् = सुवर्णवत् वर्ण: यस्य सः तम्) = सुवर्ण कान्ति के । **'महानारायणो-पनिषद्'** हिरण्यबाहु, हिरण्यवर्ण हिरण्यरूप और हिरण्यपति नामों से परम शिव की वन्दना करती है । 'हिरण्य' शब्द का अर्थ सुवर्ण होता है । वह मन्त्र इस प्रकार है— **नमो**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

हिरण्यपतये उमापतये पशुपतये नमो नमः (महानारायण. अ. २०) इति श्रुतेः। **कर्तारम्** = परमकर्तारम्, सृष्टिस्थितिसंहारबन्धमोक्षरूपपञ्चकृत्यकर्तॄणामपि परशिवमहालिङ्ग-नियम्यत्वात्, तेषां सृज्यकोटिप्रविष्टत्वात्, **ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते** (अथर्वशिखा १.) इति श्रुतेः, **आत्मन आकाशः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निरग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी** इति श्रुतेश्च, आकाशादेस्तदभिमानिसदाशिवादेरपि परशिवब्रह्मजन्यत्वावगमाच्च न परमकर्तृत्वं चतुर्मुखादीनाम्। **ईशम्** = चराचरजगन्नियन्तारं शिवम्, ईशपदस्य शिव एव प्रसिद्धत्वात्। **पुरुषम्** = सर्वत्र परिपूर्णं शिवम्, **तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्** इति श्रुतेः। **ब्रह्मयोनिम्** = ब्रह्मणां चतुर्मुखादिपञ्चकार्यब्रह्मणां योनिं

हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतये उमापतये पशुपतये नमो नमः (महानारा. अ. २०)।

कर्तारम् = परम कर्ता। सृष्टि-स्थिति-संहार-बन्ध-मोक्षस्वरूप पांच कृत्यों के कर्ता ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-आदि उसी परमशिवस्वरूप महालिङ्ग से नियन्त्रित होते हैं, क्योंकि वे उसी की सृष्टि-कोटि में प्रविष्ट हैं। इसमें अथर्वशिका उपनिषद् का मन्त्र प्रमाण है— **ब्रह्म-विष्णु-रुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते** (अथर्वशिखा-१)। **आत्मन आकाशः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी** इस वेदमन्त्र के अनुसार परमशिव से आकाश और अनन्तर यथाक्रम परस्पर वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा उसके अभिमानी देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और साक्षात् सदाशिव की उत्पत्ति हुई है। [इसमें **सूतसंहिता** का वचन प्रमाण है—

कार्यं ब्रह्मा महीभागे कार्यं विष्णुर्जलांशके।
वह्निभागे तथा रुद्रो वाय्वंशे चेश्वरः स्थितः।
आकाशांशे शरीरे तु साक्षादेव सदाशिवः॥]

अतः ब्रह्मा आदि परम कर्ता नहीं हो सकते। एकमात्र परम शिव परम कर्ता है।

ईशम् = चराचर जगत् का नियामक परम शिव, क्योंकि ईश पद का यही रूढ अर्थ प्रसिद्ध है। **पुरुषम्** = सर्वत्र परिपूर्ण। **रुद्रगायत्री** मन्त्र में परमशिव को '**पुरुष**' पद से संबोधित किया है— **तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।**

ब्रह्मयोनिम् (ब्रह्मणां योनिः ब्रह्मयोनिः, तम्)— ब्रह्मा आदि देवता कार्यब्रह्मकोटि में प्रविष्ट हैं, जिनके जनक परम शिव हैं। [अनुभवसूत्र कारणब्रह्म परम शिव को सम्मिलित कर षट्लिङ्गस्थल देवताओं का प्रतिपादन इस प्रकार करता है—

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
साक्षात् परशिवश्चेति क्रमशः षट्स्थलात्मकाः॥]

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जनकम्, **पश्यते** = पश्यति, स्वसारस्येन साक्षात्करोति। **तदा** = तस्मिन् काले, **निरञ्जनः** = निरस्तमललेपः, **विद्वान्** = स्वात्मशिवज्ञानवान्, **पुण्यपापे समूले विधूय** = निरस्य, **परमम्** = उत्कृष्टम्, **साम्यम्** = सारूप्यम्, यद्वा सायुज्यम्, तेन न **न तत्समश्चाऽभ्यधिकश्च दृश्यते, शिवस्वरूपो भवति शिवस्वरूपो भवति** इति श्वेताश्वतर-वृद्धजाबालश्रुत्योर्विरोधः।

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।।

इत्यादाविवाऽनन्योपमैवाऽभेदः, साम्यमित्यर्थः। **उपैति** = प्राप्नोति, नद्योऽब्धाविव परशिवसमुद्रसमरसो भवतीत्यर्थः। अत्र उपैतीत्यनेनोपास्योपासकयोः प्राप्यप्रापकभावः स्फुटीकृतः। तथा **स्कान्दे** श्रूयते—

यद्यपि भेदापगमे साम्ब ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।

पश्यते— (जिस समय अंगस्थल के रूप में अवस्थित वह) स्वसामरस्य से षट्लिङ्गों के साथ सामरस्य स्थापित करते हुए परम शिव का साक्षात्कार करता है। **तदा** = उस समय, **निरञ्जनः** = आणव, कार्म और मायीय समस्त मलों को छुड़ाते हुए विशुद्ध स्थिति में अवस्थित, **विद्वान्** = स्वस्वरूप में परम शिव का साक्षात्कार करनेवाला शिवयोगी, **पुण्यपापे विधूय** = शुभाशुभ सुकृत-दुष्कृत कर्मों के फलस्वरूप पुण्य और पाप को जड़ से दूर कर, **परमं साम्यम् उपैति** = परमोत्कृष्ट सामरस्य को प्राप्त करता है। जिस प्रकार नदियां समुद्र के जल से मिलकर समरस हो जाती हैं, उसी प्रकार अधिकारी जीव परम-शिव-समुद्र से मिलकर समरस होता है। इससे **न तत्समश्चाऽभ्यधिकश्च दृश्यते** इस श्वेताश्वतर उपनिषद् और **शिवस्वरूपो भवति, शिवस्वरूपो भवति** इस वृद्ध-जाबालोपनिषद् के मन्त्रों का विरोध नहीं होता, क्योंकि यहां साम्य का अर्थ अभेद नहीं है, अपि तु अनन्योपमा है। जैसा कि **उपमेयोपमा** के इस दृष्टान्त में साम्य निरूपित है—

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।।

उपैति इस क्रियापद से दोनों का भेद स्पष्ट है— **जीव** प्रापक (परम शिव का साक्षात्कारकर्ता) और **शिव** प्राप्य (जीव का चरम सोपान) है। स्कन्दपुराण की यह आर्या इस भेदाभेदस्वरूप साम्य का उत्कृष्ट उदाहरण है—

यद्यपि भेदापगमे साम्ब ! तवाऽहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।

(यह स्तुतिपद्य शंकराचार्यविरचित स्तोत्र में भी समाविष्ट हैं। वहाँ 'साम्ब' के स्थान पर 'नाथ' पाठ है।)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्युक्तम्। अत्रेशपदस्य निरुपपदस्य **शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वर** इत्यमरकोशेन शिवे योगरूढत्वात्, **ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति,**

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्याऽन्तो भविष्यति।।

इत्यादिश्रुत्या चेशपदवाच्यत्वस्य मोक्षप्रदत्वस्य च शिवस्यैव प्रतिपादनात्, रुक्मवर्णस्यापि तस्यैव श्रुत्यन्तरे दर्शनाच्च न ईशपदस्य वासुदेवपरकत्वव्याख्यानं युक्तम् ॥३॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन् विद्वान् भवते नाऽतिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावान्
एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।।४।।

(जैसा कि पूर्वमन्त्र में निरूपित है) उपपदरहित 'ईश' पद शिव अर्थ में योगरूढ है— **शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः** (द्र. अमरकोष)। अनेक वेदमन्त्रों में भी वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हैं— **ईशानं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति** (परमशिव का साक्षात्कार कर जीव अमर हो जाते हैं।)

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्याऽन्तो भविष्यति ॥

आकाश को जिस प्रकार चर्मवेष्टित नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार परम शिव को सीमा में नहीं बांधा जा सकता। आकाश के समान ही परम शिव का आदि-अन्त पाना असम्भव है। मानवों का यह प्रयत्न अज्ञानमूलक है। जिस दिन वे परम शिव का साक्षात्कार करेंगे उनके दुःख का अन्त होगा। इस प्रकार परम शिव ही मोक्ष प्रदान कर सकता है। उसी प्रकार परम शिव ही **रुक्मवर्ण** हिरण्यवर्ण हो सकता है, (जैसा कि **नमो हिरण्यबाहवे** इत्यादि मन्त्र में '**हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय**' कहकर परम शिव की ही वन्दना की गयी है।) अतः 'ईश' पद का 'वासुदेव' अर्थपरक व्याख्यान समुचित नहीं है, उसका परम शिव अर्थ करना ही ठीक है ॥३॥

***मन्त्रार्थ*— प्राणलिङ्गस्वरूप जो यह परम शिव पृथिवी आदि पञ्चभूताभिमानी कार्यब्रह्मस्वरूप ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ आधार चक्र आदि षट्चक्रों में आचारादिलिङ्गस्वरूपों में विराजमान है, उस परमशिव का साक्षात्कार करने वाला विद्वान् शिव को स्वस्वरूप में देखने के कारण उनसे अतिरिक्त स्वरूप का प्रतिपादन नहीं करता। उसकी क्रीडा, उसकी रति स्वस्वरूप शिव के साथ होती है।।४।।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्राण इति। किञ्च, **प्राणः** = प्राणलिङ्गरूप ईश्वरः, **स उ प्राणस्य प्राणः** (केन. १.२), **प्राणस्य प्राणमुत** (बृह. ४.४.१८) इति श्रुतेः। **एष हि** = पूर्वोक्त एव, **यः** = परशिवः, **सर्वभूतैः** = सर्वपृथिव्याद्यभिमानिब्रह्मादिभिः सह सामानाधिकरण्येन ब्रह्मादिस्थानेष्वाधारादिषु तदधिष्ठानतया तदुपासनार्थम्, **विभाति** = विविधेनाऽऽचारादि-लिङ्गरूपेण दीप्यते। तं परशिवम्, **विजानन्** = विशेषेण गुरूपदिष्टपरविद्यार्थश्रवणमननादिना जानन्, **विद्वान्** = साक्षात्कुर्वन्, **अतिवादी** = स्वात्मशिवातिरिक्तानतिक्रम्य वदितुं शीलमस्य सोऽतिवादी भवति, स्वात्मानं शिवं पश्यन् शिवादन्यं न पश्यत्येव, अतोऽतिवादी, **न भवते** = न भवति। तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

नाऽन्यत् पश्यति योगीन्द्रो नाऽन्यज्जानाति किञ्चन।
नाऽन्यत् शृणोति सन्दृष्टे चिदानन्दमये शिवे।।

(सि. शि. २०.२७) इति।

व्याख्या : प्राणो ह्येष इत्यादि। प्रस्तुत मन्त्र में परमशिव का साक्षात्कार करने वाले योगी को सभी ब्रह्मज्ञानियों में अग्रगण्य कहा गया है।

हि प्राणो य एषः— यह जो प्राणलिङ्गस्वरूप परमेश्वर है, **स उ प्राणस्य प्राणः** (केन उ. १.२) और **प्राणस्य प्राणमुत** (बृह. ४.४.१८) ये दोनों यथाक्रम केनोपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् के मन्त्र उसका वर्णन करते हैं। **सर्वभूतैः**— पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश इन पञ्चमहाभूतों के अभिमानी कार्यब्रह्मस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु-रुद्र-ईश्वर-सदाशिव इन देवताओं के साथ सामानाधिकरण्य से यथाक्रम मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-चक्रों में आचार-गुरु-शिव-जङ्गम-प्रसादलिङ्ग स्वरूपों में उनकी उपासना के लिए (स्वयं आज्ञाचक्र में महालिङ्गस्वरूप में) **विभाति** = प्रकाशमान रहता है। (**तम्** = उस पर शिव को) **विजानन्** = विशेष रूप से श्रीगुरु द्वारा समझते हुए, **विद्वान्** = लिङ्गाङ्गसामरस्यप्रक्रिया से उसका साक्षात्कार करते हुए, **अतिवादी न भवते** (न भवति)–'अतिवदितुं शीलम् अस्य इति अतिवादी' इस निर्वचन के अनुसार जो स्वयं और स्वस्वरूप शिव से भिन्न का निरूपण करता है, वह **'अतिवादी'** होता है। किन्तु जो स्वस्वरूप में शिव का साक्षात्कार करता है, वह पूर्वोक्त साधक अतिवादी नहीं होता। जैसा कि श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य कहते हैं—

नान्यत् पश्यति योगीन्द्रो नान्यज्जानाति किञ्चन।
नान्यत् शृणोति सन्दृष्टे चिदानन्दमये शिवे।।

(सि. शि. २०.२७)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

किञ्च, **आत्मक्रीडः** = स्वात्मनि शिवे पत्यावेव क्रीडा केलिर्यस्य स आत्मक्रीडः, न बाह्योद्यानकेलिः । किञ्च, **आत्मरतिः** = स्वात्मन्येव पत्यौ शिवे रतिर्यस्य स आत्मरतिः । न बाह्यसत्यां रतिमान्, स्वस्याः सत्याः सत्यन्तराभावाद् बाह्यसतीसङ्गं परित्यज्य स्वचिच्छक्तिसम्मेलनानन्दतुन्दिल इत्यर्थः । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

सतीव रमणे यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन् ।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान् ।।

(सि. शि. १३.५) इति।

शिवज्ञाने समुत्पन्ने परानन्दः प्रकाशते ।
तदासक्तमना योगी नाऽन्यत्र रमते सुधीः ।।

(सि. शि. १३.११) इति।

जब साधक चित्स्वरूप (ज्ञानमय प्रकाशस्वरूप) और दुःखरहित मात्र आनन्द-स्वरूप परमशिव महालिङ्ग का सम्यक् साक्षात्कार करता है, तब वह योगिराज न कुछ दूसरा देखता है, न कुछ दूसरा सुनता है और न कुछ दूसरा जानता है ।

आत्मक्रीड आत्मरतिः = ('आत्मनि क्रीडा यस्य स आत्मक्रीडः', 'आत्मनि रतिः यस्य स आत्मरतिः') वह साधक स्वस्वरूप (शिवस्वरूप पति) के साथ ही क्रीडा करता है । उसे बाह्य उद्यानादि क्रीडाएं रुचती नहीं । उसी प्रकार वह स्वस्वरूप पति शिव के साथ ही रमण करता है । (शिवयोगी) बाह्य सती के साथ नहीं रमण करता । उसकी पतिव्रता स्त्री उसकी अपनी चित्शक्ति होती है, दूसरी कोई स्त्री नहीं होती । अतः अन्य स्त्री का संग छोडकर अपनी चिच्छक्ति के साथ संगम करने से वह आनन्दपरिपुष्ट होता है, यही इसका भाव है । जैसा कि श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य (सि. शि. १३.५) कहते हैं—

सतीव रमणे यस्तु शिवे भक्तिं विभावयन् ।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान् ।।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़कर अन्य के साथ रमण न करते हुए केवल पति के साथ ही रमण करती है, उसी प्रकार जो साधक केवल शिव के प्रति अपनी चित्शक्ति की भावना करते हुए अन्य देवता से विमुख होता है, वह अङ्गस्थलापन्न साधक 'शरण' नाम से जाना जाता है ।

शिवज्ञाने समुत्पन्ने परानन्दः प्रकाशते ।
तदासक्तमना योगी नान्यत्र रमते सुधीः ।।

(सि. शि. १३.११)

परम शिव का यथार्थ साक्षात्कार होने पर जो सर्वोत्कृष्ट आनन्द फैलता है, उसमें अपने मन को लगाने वाला विद्वान् योगी अन्यत्र रमण नहीं करता ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सती चाऽहं पतिर्लिङ्गं हृदि युक्तः स्वयं प्रभुः ।
प्रापञ्चिकसुखं नास्ति शरणस्थलमुत्तमम् ।।

इति स्कान्दे शङ्करसंहितोक्तेः । **एषः** = शरणाभिधानः, **क्रियावान्** = स्वपतिशिवस्वरूपा-भेदानुसन्धानरूपक्रियावान् । अत एवायं शरणस्थलापन्नो **ब्रह्मविदां** = चतुर्विध-परशिव-ब्रह्मज्ञानिनां मध्ये, **वरिष्ठः** = वरतमः, अत्यन्तश्रेष्ठ इत्यर्थः । अस्य प्रारब्धकर्म-लेपाभावात् ।।४।।

लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मक-मोक्षप्राप्तिसाधनान्याह—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।

सती चाहं पतिर्लिङ्गं हृदि युक्तः स्वयं प्रभुः ।
प्रापञ्चिकसुखं नास्ति शरणस्थलमुत्तमम् ।।

इस प्रकार स्कन्दपुराण की शंकरसंहिता में भी निरूपित है, जिसका आशय यह है— मैं साधक सती हूँ । अर्थात् मेरे (साधक के) अन्तस्तल में प्रकाशमान चित्शक्ति के कारण मैं स्वयं को चित्स्वरूप (सतीस्वरूप) समझता हूँ । मेरे पति महालिङ्गस्वरूप परम शिव मेरे अन्तस्तल में विद्यमान हैं । (क्योंकि चित्शक्ति महालिङ्ग से अभिन्न है । अतः साधक कह रहा है कि) संसार का सुख वास्तविक सुख नहीं है अपितु स्वस्वरूप स्वकीय चित्शक्ति से अभिन्न परम शिव के साथ क्रीडा और रति करना ही परमानन्द है । इस प्रकार शरणस्थल सर्वोत्कृष्ट है ।

एषः = वह शरण नामक साधक, **क्रियावान्** = लिङ्गाङ्गसामरस्यक्रिया से स्वयं और शिव के स्वरूप में परस्पर अभेदानुसन्धान करते हुए, **ब्रह्मविदां वरिष्ठः** = परमशिवस्वरूप ब्रह्मज्ञानियों में चार प्रकार के श्रेष्ठ होते हैं । [वे चार ब्रह्मज्ञानी हैं– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी । इनमें आर्त साधक ही शरणस्थलापन्न ब्रह्मज्ञानी है, जो सभी में श्रेष्ठ है,] क्योंकि (सञ्चित और क्रियमाण कर्मों के साथ) प्रारब्ध कर्मफल का उसे स्पर्श नहीं होता ।।४।।

अवतरण— लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप मोक्ष प्राप्ति के साधन क्या है? इसका समाधान इस मन्त्र में प्रस्तुत है—

***मन्त्रार्थ*— काम, क्रोध आदि विकारों से मुक्त साधक शरीर के अन्तस्तल में जिस का अभेद-दृष्टि से साक्षात्कार करते हैं; सत्य, तप, सम्यग् ज्ञान और**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।५।।

सत्येन इति । **क्षीणदोषाः** = कामक्रोधादिदोषवर्जिताः, **यतयः** = जितेन्द्रियाः, शरणस्थलारूढा इत्यर्थः । **शरीरे** = शिवागाररूपे, **अन्तः** = हृदयपुण्डरीकमध्ये, **यम्** = चिदाकाशरूपेण प्रकाशमानं शिवम्, **पश्यन्ति** = स्वाभेदेन साक्षात्कुर्वन्ति । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

शिवागारमिदं प्रोक्तं शरीरं बोधदीपितम् ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं[1] सुमनःपद्मपीठकम् ।।

ब्रह्मचर्य द्वारा ज्योतिःस्वरूप शुद्ध उस परब्रह्मस्वरूप परम शिव को सदा-सर्वदा प्राप्त किया जा सकता है ।।५।।

व्याख्या : सत्येन इत्यादि । **क्षीणदोषाः** = काम-क्रोध आदि विकारों से मुक्त **यतयः** = अपने पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण मन को वश में रखने वाले जितेन्द्रिय शरणस्थलापन्न साधक, **शरीरे** = जो शिवालयस्वरूप है, उस शरीर के **अन्तः** = हृदय कमल के मध्य में, **यम्** = चिदाकाश के रूप में प्रकाशमान जिस शिव का, **पश्यन्ति** = अपनी अभेदबुद्धि द्वारा साक्षात्कार करते हैं ।

जैसा कि श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य प्रतिपादित करते हैं—

शिवागारमिदं प्रोक्तं शरीरं बोधदीपितम् ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं[1] सुमनःपद्मपीठकम् ॥
पराकाशस्वरूपेण प्रकाशः परमेश्वरः ।
हृदाकाशगुहालीनो दृश्यतेऽन्तः शरीरिणाम् ॥
(सि. शि. १२.५४-५५)

शिव से पृथ्वी तक **छत्तीस तत्त्वों से[1]** निर्मित इस शरीर को शिवागार (शिवालय) कहते हैं, जो ज्ञानदीप से प्रकाशित और हृदयकमल के आसन से सुशोभित है । उस

---

१. **षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं शिवागारम्**—१. शिवः, २. शक्तिः, ३. सदाशिवः, ४. ईश्वरः, ५. शुद्धविद्या, ६. माया, ७. कला, ८. विद्या, ९. रागः, १०. कालः, ११. नियतिः, १२. पुरुषः, १३. प्रकृतिः, १४. महान्, १५. अहङ्कारः, १६. मनः, १७. श्रोत्रम्, १८. त्वक्, १९. चक्षुः, २०. जिह्वा, २१. घ्राणम्, २२. वाक्, २३. पाणिः, २४. पादः, २५. पायुः, २६. उपस्थः, २७. शब्दः, २८, स्पर्शः, २९. रूपम्, ३०. रसः, ३१. गन्धः, ३२, आकाशः, ३३, वायुः, ३४. अग्निः, ३५. जलम्, ३६. पृथ्वी चेति षट्त्रिंशद्भिस्तत्त्वैर्घटितमिदं शरीरं शिवागारम् ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

पराकाशस्वरूपेण प्रकाशः परमेश्वरः ।
हृदाकाशगुहालीनो दृश्यतेऽन्तः शरीरिणाम् ।। इति।
(सि. शि. १२.५४-५५)

स एषः = पूर्वोक्तः, ज्योतिर्मयः प्रकाशरूपः, **हि** = प्रसिद्धः, **शुभ्रः** = नित्यनिर्मलः परशिवः । **नित्यमित्यस्य** तृतीयान्तसत्यादि-पदचतुष्टयेनाऽन्वयः । तथाहि— **नित्यं सत्येन** = भूतहितयथार्थवचनेन, **लभ्यः** = प्राप्तव्यः, **नित्यं तपसा** = शिवपूजार्थे सामग्रीसंपादने शरीरसंशोषणरूपेण, **लभ्य** इत्यनुषङ्गः । **नित्यं सम्यग्ज्ञानेन** लभ्यः । तदुक्तं नीलकण्ठशिवाचार्येण—

लिङ्गाङ्गयोः सामरस्यं जीवब्रह्मैक्यलक्षणम् ।
तदपि द्विविधं प्रोक्तं साधनेन समन्वितम् ।।

शिवालय में चित्स्वरूप में विराजित प्रकाशस्वरूप परम शिव हृदयाकाशगुफा में गुप्त रूप से वास करता है, जिसका साक्षात्कार शरीरधारी प्राणी गुरूपदेश से अन्तस्तल में ही करते हैं ।

एषः = पूर्व मन्त्रों में निरूपित यह, **ज्योतिर्मयः** = चित्प्रकाशस्वरूप हिरण्यवर्ण, **शुभ्रः** = आणव-कार्म-मायीय त्रिविध मलमुक्त, नित्य निर्मल, शुद्ध, **हि** = प्रसिद्ध, **आत्मा** = परब्रह्म-परमशिव । **'नित्यम्'** का अन्वय सत्य आदि चार पदों के साथ करना चाहिए । **नित्यं सत्येन लभ्यः** = (उसे) सदा सर्वदा सच बोलने से प्राप्त किया जा सकता है । **नित्यं तपसा लभ्यः**— उसे सदा तप से प्राप्त किया जा सकता है । यहां तप का अर्थ शिवपूजा की सामग्री एकत्रित करने के लिए शरीर को कृश करना है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रताचरण नहीं । **नित्यं सम्यग्ज्ञानेन लभ्यः** = उस परम शिव को सदा सर्वदा सम्यग् ज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है । यहां **सम्यग्ज्ञान** का अर्थ है— साधनपूर्वक लिङ्गाङ्गसामरस्य का ज्ञान । इसका विस्तृत निरूपण क्रियासार में नीलकण्ठ शिवाचार्य इस प्रकार करते हैं—

लिङ्गाङ्गयोः सामरस्यं जीवब्रह्मैक्यलक्षणम् ।

परम शिव स्वेच्छा से जीव और ब्रह्म के रूप में स्वयं को द्विधा विभक्त करता है । उसमें जीव को अङ्ग करते हैं और परब्रह्म शिव को लिङ्ग । जीव और ब्रह्म की एकता को ही लिङ्ग और अङ्ग का सामरस्य कहते हैं ।

तदपि द्विविधं प्रोक्तं साधनेन समन्वितम्, द्वितीयं तद्विनिर्मुक्तम्— वह लिङ्गाङ्गसामरस्य भी दो प्रकार का है— १. साधनसहित और २. साधनरहित ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

द्वितीयं तद्विनिर्मुक्तमाद्यं गुरुकृतं पुरा।
द्वितीयमपि शिष्यस्य गुरुवाक्यस्य पालनात्।।
आद्यं वेधादिदीक्षाभ्यस्त्रिपुण्ड्रस्याऽपि धारणात्।
रुद्राक्षधारणाच्चापि पञ्चाक्षरजपादपि।।
मुख्याल्लिङ्गधृतेश्चापि दहराकाशमण्डले।
बहिर्दहरदेशे च हृदये लिङ्गधारणात्।।

(क्रियासार. ३.१९)

नित्यं ब्रह्मचर्येण = अष्टविधमैथुनत्यागेन लभ्यः ।।५।।

उक्तसाधनेषु सत्यं स्तौति—

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।

आद्यं गुरुकृतं पुरा। द्वितीयमपि शिष्यस्य गुरुवाक्यस्य पालनात्।।— इनमें प्रथम साधनपूर्वक लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञान पूर्वप्राप्त गुरूपदेश से होता है और द्वितीय विना साधन के गुरु की आज्ञापालन से शिष्य को वह समरसता प्राप्त होती है।

आद्यं वेधादिदीक्षाभ्यस्त्रिपुण्ड्रस्यापि धारणात्।
रुद्राक्षधारणाच्चापि पञ्चाक्षरजपादपि ।।
मुख्याल्लिङ्गधृतेश्चापि दहराकाशमण्डले।
बहिर्दहरदेशे च हृदये लिङ्गधारणात् ।।

(क्रियासार, ३.१९)

लिङ्गाङ्गसामरस्य के अनेक साधन हैं— १. गुरुकृत त्रिविध दीक्षा–वेधादीक्षा, क्रियादीक्षा और मन्त्रदीक्षा, २. त्रिपुण्ड्रभस्मधारण, ३. रुद्राक्षधारण, ४. पञ्चाक्षर-मन्त्रजप और मुख्य रूप से ५. लिङ्गधारण। वह लिङ्गधारण भी दो प्रकार का है— हृदयपुण्डरीक के चिदाकाश में चित्प्रकाशस्वरूप भावलिङ्गधारण और शरीर के बाहर वक्षस्थल में इष्टलिङ्गधारण।

नित्यं ब्रह्मचर्येण लभ्यः— वह परमशिव सदा सर्वदा ब्रह्मचर्य-पालन से प्राप्त किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है अष्टविध मैथुन का परित्याग ।।५।।

अवतरण— इन साधनों में सत्य की प्रशंसा इस प्रकार की गयी है—

मन्त्रार्थ— **सत्यवादी असत्यवादी पर विजय प्राप्त करता है, असत्यवादी सत्य वादी पर नहीं। सत्यवादिता से देवयान का मार्ग निरन्तर बढ़ता चला जा**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।६।।

सत्यमेवेति । सत्यमेव = लोके यथार्थभाषणवानेव । **जयते** = जयत्यनृतवादिनम् । **नाऽनृतम्** = अनृतवादी न जयतीति प्रसिद्धम् । शास्त्रेऽपि सत्यस्य प्रकृष्टत्वं प्रसिद्धमित्याह— **सत्येन** इति । **सत्येन** = यथाभूतार्थकथनेन, **देवयानः** = देवयानाख्यः, **पन्थाः** = मार्गः, **विततः** = सातत्येन प्रवृत्तः । **येन** = पथा, **ऋषयः** = तत्त्वदर्शिनः, **आप्तकामाः** = विगततृष्णाः सन्तः, **आक्रमन्ति** = आक्रमन्ते, **हि** = प्रसिद्धम् । आक्रमणस्थानमाह– **यत्र** इति । **यत्र** = यस्मिन्, **सत्यस्य** साधनस्य सम्बधि साध्यम्, **परमम्** = परमप्रयोजनभूतम् । **निधानम्** = भूगतनिधिरिव परशिवब्रह्म वर्तते । तत्स्थानं चिदम्बरशक्तिरूप-महाकैलासस्थानमित्यर्थः ।।६।।

रहा है । जिस मार्ग से तत्त्ववेत्ता मुनि निःस्पृह होकर आक्रमण करते हैं, जहां साधनस्वरूप सत्य के सर्वोत्कृष्ट साधन परम शिव वास करते हैं, वह चिदम्बरस्वरूप महाकैलास है ।।६।।

सत्यमेव जयते (जयति) । सत्य अर्थात् सत्यवादी असत्य अर्थात् असत्यवादी को सदा-सर्वदा पराजित करता है । **न अनृतम्** = असत्य अर्थात् असत्यवादी सत्यवादी पर विजय प्राप्त नहीं करता । यही लोकप्रसिद्ध है । शास्त्र में भी सत्य की सर्वत्कृष्टता प्रसिद्ध है— **सत्येन पन्था विततो देवयानः**— वास्तविक यथार्थ भाषण करने से 'देवयान' नामक मार्ग निरन्तर प्रशस्त होता जाता है । **हि येन आप्तकामा ऋषय आक्रमन्ति**— जिस मार्ग से तत्त्वदर्शी साधक तृष्णारहित होकर आक्रमण करते हैं । कहां आक्रमण करते हैं? उसका निरूपण मन्त्र के चतुर्थ चरण में है— **यत्र सत्यस्य परमं निधानं तत्**— जिसमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष संज्ञक चतुर्विध पुरुषार्थप्राप्ति में अन्यतम साधनस्वरूप माधन सत्य (यथार्थ भाषण) से सम्बन्धित साध्यस्वरूप परम प्रयोजनभूत भूगर्भ निहित मानों निधान (स्वरूप) परशिवब्रह्म विराजमान हैं, वह परम धाम चिदम्बर शक्ति स्वरूप महाकैलास स्थान है।

भावार्थ— सत्य (सत्यवादी) की विजय होती है, असत्य (असत्यवादी) की नहीं । सत्य (यथार्थ भाषण) से 'देवयान' नामक मार्ग निरन्तर विस्तृत होता जा रहा है, जिस मार्ग पर चलकर तत्त्ववेत्ता साधक मुनि तृष्णा से मुक्त होकर आक्रमण करते हैं, जहां सत्य के निधान परम साध्य परब्रह्म शिव प्रकाशमान है, वह परम पद और कोई नहीं, चिदम्बर शक्तिस्वरूप महाकैलास धाम है ।।६।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सत्यादिसाधनसाध्यस्य परशिवब्रह्मणो दुर्ज्ञेयत्वात् पुनरपि सत्यस्वरूपमाह —

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।७।।

बृहच्च इति। तत् = प्रकृतं परशिवं ब्रह्म, **बृहत्** = महत्, महालिङ्गमित्यर्थः, आकाशादेरप्याधारत्वात्। **दिव्यम्** = दिवि स्वप्रकाशतामयचिच्छक्तिवपुषि वर्तमानम्, **अचिन्त्यरूपम्** = चिन्तयितुमशक्यमचिन्त्यं रूपं यस्य तदचिन्त्यरूपम्, ब्रह्मणः

अवतरण— परशिवब्रह्म अन्तिम साध्य, चरम लक्ष्य है। उसके साक्षात्कार के साधन सत्य आदि का निरूपण **सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा** (३.१.५) इत्यादि मन्त्र द्वारा किया जा चुका है। यतः उस परमात्मा का साक्षात्कार करना, उसे समझना अत्यन्त कठिन है, अतः फिर से उसके सत्य-स्वरूप का निरूपण किया जा रहा है—

मन्त्रार्थ— वह परशिव ब्रह्म महालिङ्गस्वरूप और स्वप्रकाश है, जिसका स्वरूपचिन्तन मन से असम्भव है। वह परशिव ब्रह्म अणुपरिमाण शिव से भी अत्यन्त सूक्ष्म और चिन्मय ज्योतिस्वरूप है। भक्तिभाव से शून्य प्राणी के लिए वह अत्यन्त दूर है। किन्तु जो भक्त हैं, उनके अत्यन्त निकट इसी शरीर में अवस्थित हैं। साक्षात्कार करनेवाले साधकों के लिए वह चित्कलास्वरूप परशिवलिङ्ग शुद्ध आत्मस्वरूप हृदयरूपी गुफा में प्रतिष्ठित है ।।७।।

व्याख्या : बृहच्च इत्यादि। **तत्** = वह प्रकृत परशिव ब्रह्म, **बृहत्**= आकाशादि का भी आधार होने के कारण अत्यन्त विशाल महालिङ्गस्वरूप है। **दिव्यम्** (दिवि भवं दिव्यम्) स्वप्रकाशस्वरूप चित्शरीर '**द्यौ**' में वह अवस्थित है।

अचिन्त्यरूपम्— 'चिन्तयितुं शक्यं चिन्त्यम्, चिन्तयितुम् अशक्यम् अचिन्त्यम्, एवम्भूतं रूपं यस्य तत्।' यतः सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म की कोई इयत्ता (सीमा) नहीं है, अत एव उसके स्वरूप का आकलन किसी परिधि में नहीं किया जा सकता।

[**अचिन्त्यरूपम्** इस अंश का शांकरभाष्य इस प्रकार है—

'अनिन्द्रियगोचरम्, अत एव न चिन्तयितुं शक्यतेऽस्य रूपमित्यचिन्त्यरूपम्'। जो पञ्च ज्ञानेन्द्रियों और मन के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता, वाणी द्वारा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता और मन जिसका चिन्तन नहीं कर सकता, क्योंकि वह निर्विशेष निर्विकल्प है, यह आशय समझ कर शंकरशास्त्री कह रहे हैं—]

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सच्चिदानन्दरूपस्येयत्तापरिच्छेदस्याऽभावादपरिमेयरूपमित्यर्थः । न त्व'चिन्त्यरूपमि'त्यनेन वाङ्मनसातीत्वेन ब्रह्मणो निर्विशेषत्वं प्रतिपाद्यते, **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह** इति श्रुतेर्वाङ्मसातीतत्वप्रतिपादकत्वाभावात्, तत्प्रतिपादकत्वे **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन** इत्युत्तरश्रुतेरसङ्गत्यापत्तेः । नहि वाङ्मनोऽतिरिक्तमानगम्यत्वं ब्रह्मणि सम्भवति, ब्रह्मणि मानान्तराप्रवृत्तेः, **नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्, नैषा तर्केण मतिरापनेया, मनसैवाऽनुद्रष्टव्यम्** (बृह. ४.४.१९) इत्यादिश्रुतिविरोधाच्च । तस्माद् ब्रह्मरूपस्येयत्तापरिच्छेदाभावादपरिमेयरूपत्वमुक्तमचिन्त्यपदेन, न तु वाङ्मनसातीतत्वम् । तादृशमप्यपरिमेयानन्दादिरूपं यो वेत्ति शुद्धचित्तेन, स कुतश्चन न बिभेतीति शुद्धचित्त-चिन्त्यत्वमुच्यते ब्रह्मानन्दादेः । किञ्च, **तत्** = परशिवब्रह्म, **सूक्ष्मात्** = अणुरूपाच्छिवादपि **सूक्ष्मतर**मत्यन्तसूक्ष्मम्, तदन्तरेऽपि प्रवेशात् ।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यतः ब्रह्म वैखरी वाणी और ब्रह्म से परे है, अतः वह निर्विशेष-निरुपाधिक है । **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह** यह वेदमन्त्र ब्रह्म को वाणी और मन से अगोचर प्रतिपादन नहीं करता, क्योंकि ऐसा मानने पर **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन** इस अनन्तरवर्ती वेदमन्त्र का उसके साथ विरोध होगा । इस मन्त्र का आशय है— 'आनन्दस्वरूप ब्रह्मतत्त्व का चिन्तन करने वाला विद्वान् कदापि भयभीत नहीं होता, अपितु भयमुक्त रहता है ।' यह नहीं समझना चाहिए कि यह साक्षात्कार वाणी और मन के अतिरिक्त अन्य प्रमाण से सम्भव है । ब्रह्मसाक्षात्कार में मनके अतिरिक्त अन्य प्रमाण मानने पर '**नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्**', '**नैषा तर्केण मतिरापनेया**', '**मनसैवानुद्रष्टव्यम्**' (बृह. ४.४.१९) इन मन्त्रों का विरोध होगा । दोनों मन्त्रों का आशय यथाक्रम इस प्रकार हैं— 'जो वेदवेत्ता नहीं होता, परब्रह्म का मानस प्रत्यक्ष नहीं कर सकता' । 'परब्रह्म का साक्षात्कार मानस-चिन्तन से ही करना चाहिए'। इसलिए **अचिन्त्यरूपम्** में 'अचिन्त्य' पद का अर्थ परब्रह्म-स्वरूप को वाणी और मन से परे नहीं, अपितु 'उसकी इयत्ता (नाप) की कोई परिधि न होने के कारण ब्रह्मस्वरूप को नापना किसी सीमा से परे, असम्भव है' यह करना चाहिए । इस प्रकार **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्** इत्यादि वेदमन्त्र का अर्थ होगा— 'जो उस प्रकार असीम होने के कारण अपरिमेय सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म का मानस प्रत्यक्ष करता है, उसका अन्तःकरण अविद्या (अज्ञानमल) से मुक्त होता है । अतः वह कभी भी भयभीत नहीं होता । '**अचिन्त्यरूपम्**' का मात्र इतना ही आशय है कि ब्रह्मानन्द आदि का आस्वाद निर्मल अन्तःकरण का साधक ही कर सकता है, अशुद्ध-हृदय नहीं ।

तत् च सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं विभाति— और वह परशिवब्रह्म 'सूक्ष्म' अणुस्वरूप शिव से 'सूक्ष्मतर' अत्यन्त सूक्ष्म है । जीव के रूप में शिव सूक्ष्मशरीर होता है, उसके अन्तस्तल में भी परशिवब्रह्म प्रकाशमान है । जैसा कि 'महानारायणोपनिषद्' प्रतिपादन करती है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भासुरा।
नीवारशूकवत् तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः।।

(महानारायण. ११)

इति श्रुत्यन्तरे 'तस्याः' इति तत्पदेन जीवस्योपदिष्टत्वात्। **विभाति** = दीप्यते। **दूरात् सूदूरे** = श्रद्धादिभक्तिरहितानामत्यन्तदूरदेशे वर्तते, भक्तिरहितैरप्राप्यत्वात्, **भक्त्या**

नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भासुरा।
नीवारशूकवत् तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः।।

(महाना.उ.११)

हमारे पाञ्चभौतिक शरीर में सूक्ष्मशरीरवर्ती जीव रहता है, जो अणु, अत्यन्त सूक्ष्म है, जिस प्रकार नीले घने मेघ के बीच में सोने जैसी चमक बिजली की चमक अत्यानन्द देने वाली दृष्टिगोचर होती है, उसी प्रकार शालिधान्य के तिनके से भी सूक्ष्म सुवर्णकान्ति अणु रूप में अवतीर्ण जीव की चिन्मयी दीपशिखा के मध्य प्रकाशस्वरूप परब्रह्म परशिव प्रतिष्ठित है। ('अणोरणीयान्' वेदमन्त्र भी यही घोषित करता है।)

दूरात् सुदूरे— वह परब्रह्म परमात्मा दूर स्थान से भी बहुत दूर है। किन के लिए दूर है? जो भक्तिरहित होते हैं, उनके लिए वे बहुत दूर होते हैं। वे उनका साक्षात्कार नहीं कर सकते।

तदिहान्तिके च— श्रीमद्भगवद्गीता के **भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया** इत्यादि वचनानुसार केवल उसकी (परब्रह्म परमात्मा की) भक्ति से ही परब्रह्म-परमात्मा प्राप्त होता है। अतः जो श्रद्धा आदि षड्विधा भक्ति से सम्पन्न होते हैं, उन भक्तों के अत्यन्त निकट इसी शरीर के भीतर मूलाधार आदि षट्चक्रों में आचार आदि लिङ्गस्वरूप में परशिवब्रह्म प्रकाशमान है[1]।

---

१. हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं—

क्रम	भक्ति	भक्त (जीव)	षट्चक्र	लिङ्ग (शिव)
१.	श्रद्धा	भक्त	मूलाधार (गुद)	आचारलिङ्ग
२.	निष्ठा	माहेश्वर	स्वाधिष्ठान (लिङ्ग)	गुरुलिङ्ग
३.	अवधान	प्रसादी	मणिपूर (नाभि)	शिवलिङ्ग
४.	अनुभव	प्राणलिङ्गी	अनाहत (हृदय)	जङ्गमलिङ्ग
५.	आनन्द	शरण	विशुद्ध (कण्ठ)	प्रसादलिङ्ग
६.	समरस	ऐक्यस्थलापन्न	आज्ञा (भ्रूमध्य)	महालिङ्ग

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लभ्यस्त्वनन्यया इति कृष्णेनाऽपि गीतत्वात् । **तत्** = परशिवब्रह्म, **इह** = अस्मिन् शरीरे, **अन्तिके च** = श्रद्धादिभक्तियुक्तानां समीप एव वर्तते, शरीराभ्यन्तरवर्तमानाऽऽधारादिस्थानेष्वाचारादिलिङ्गरूपेण सन्निहितत्वात् । तत्कथमनुभूयत इत्यत आह— **पश्यत्स्विहैव** इति । **इहैव** = अस्मिन् शरीर एव, **गुहायाम्** = शुद्धात्मरूपहृद्गुहायाम्, **निहितम्** = स्थापितम्, चित्कलामयपरशिवलिङ्गम् । **पश्यत्सु** = साक्षात्कुर्वत्सु सत्सु समीपस्थत्वमनुभूयते । तदुक्तमनुभवसूत्रे—

सबाह्याभ्यन्तरं साक्षाल्लिङ्गं ज्योतिः परं स्वकम् ।
तिले तैलमिवाऽऽभाति ह्यरण्यामिव पावकः ।।

क्षीरे सर्पिरिव स्रोतस्यम्बुवत् स्थितमात्मनि ।
तद्भावलक्षणां भक्तिं सुसूक्ष्मां परमामपि ।
दर्शयामास शिष्यस्य देशिकः परमेश्वरः ।। इति।

पश्यत्स्वैव निहितं गुहायाम्— [यद्यपि परशिवस्वरूप महालिङ्ग मूलाधारादि षट्चक्रों में भासमान है, तथापि योगी उस परशिवलिङ्ग का साक्षात्कार मुख्यतया तीन स्थानों में तीन वर्णों में करते हैं— १. मूलाधार (गुद) में सुवर्णकान्ति, २. अनाहतचक्र (हृदय) में विद्रुम (मूंगे) के समान वर्णवाले और ३. मणिपूर (नाभि) में स्फटिक के समान शुभ्र कान्ति । षट्स्थल सोपान के अनुसार वे शिवलिङ्ग हैं— १. आचारलिङ्ग, २. जङ्गमलिङ्ग और ३. महालिङ्ग । इसकी विस्तृत व्याख्या **एतद् यो वेद निहितं गुहायाम्** (२.१.१०) मन्त्र-व्याख्यान में की जा चुकी है, जो वहीं द्रष्टव्य है । शरीर के अन्दर ये तीनों गुहाएं ही विराजमान हैं। इस मन्त्रभाग की व्याख्या शास्त्री जी भिन्न प्रकार से कर रहे हैं) ।]

लिङ्गाङ्गसामरस्यप्रक्रिया द्वारा साक्षात्कार करने वाले शिवभक्त शुद्ध आत्मस्वरूप हृदयरूपी गुहा में प्रतिष्ठित होने के कारण चित्कलास्वरूप परशिव महालिङ्ग का साक्षात्कार अपने अत्यन्त निकट ही करते हैं । इसमें अनुभवसूत्र प्रमाण है—

सबाह्याभ्यन्तरं साक्षाल्लिङ्गं ज्योतिः परं स्वकम् ।
तिले तैलमिवाऽऽभाति ह्यरण्यामिव पावकः ।
क्षीरे सर्पिरिव स्रोतस्यम्बुवत् स्थितमात्मनि ।।

जिस प्रकार तिल के भीतर तेल, अरणी के भीतर अग्नि, दूध में घी और झरने के प्रवाह में जल विद्यमान रहता है; उसी प्रकार परमशिव बाहर और भीतर चित्कला के रूप में प्रकाशमान आत्मस्वरूप में सर्वत्र रहता है ।

तद्भावलक्षणां भक्तिं सुसूक्ष्मां परमामपि ।
दर्शयामास शिष्यस्य देशिकः परमेश्वरः ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

गुरूपदिष्टपरविद्याघटक-नकारादिमयाऽऽचारादिलिङ्गाधिकरण-पातञ्जलोक्ताऽष्टाङ्गयोग-गर्भषडङ्गयोगाभ्यासदार्ढ्य-समुदित-शिवप्रसादप्रशमिते मलत्रये स्वसमीपे स्वात्मन्येव स्वात्मानं शिवं पश्यत्सु सत्सु शिवयोगिषु तेषां स्वसमीपस्थत्वस्याऽनुभववेद्यत्वात् ।।७।।

मुख्यं तद्दर्शनोपायमाह—

न चक्षुषा गृह्यते नाऽपि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।८।।

'परमशिव से अभिन्न सद्गुरु ने अपने शिष्य को अत्यन्त सूक्ष्म परा भक्ति का उपदेश दिया है' । इस प्रकार सद्गुरु अपने शिष्य को परा विद्या का सदुपदेश देते हैं, जो पञ्चाक्षर महामन्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है । उसके—**'नमः शिवाय'** इस महामन्त्र के घटक जो पांच वर्ण हैं, वे यथाक्रम आचारलिङ्ग (**सद्योजात**), गुरुलिङ्ग (**वामदेव**), शिवलिङ्ग (**अघोर**), चरलिङ्ग (**तत्पुरुष**) और प्रसादलिङ्ग (**ईशान**) स्वरूप परम-शिव से अभिन्न हैं । ये क्रमशः भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिङ्गी, शरण और ऐक्यस्थलापन्न इन **षट्स्थलों** के अधिकरण हैं, जिनमें पातञ्जलसम्मत अष्टाङ्गयोग (यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-ध्यान धारणा-समाधि) का अन्तर्भाव होता है । इस षडङ्गयोग के अभ्यास की दृढता से शिवयोगी के आणव-कार्म-मायीय त्रिविध अज्ञानस्वरूप मल जब धुल जाते हैं, तब वे शिवयोगी अपने शरीर के भीतर **गुहा में** = (त्रिविध हृदय–गुद-हृदय-नाभिस्थल) में कारण, सूक्ष्म एवं स्थूल शरीराधिष्ठित त्रिविध लिङ्ग का, परात्पर स्थूल और सूक्ष्म लिङ्ग का अथवा षट्चक्रों में आचार, गुरु, शिव, जङ्गम, प्रसाद और महालिङ्ग का साक्षात्कार करते हैं ।।७।।

अवतरण— परशिव के साक्षात्कार का उपाय इस प्रकार है—

***मन्त्रार्थ*— परमशिव को न तो आखें देख सकती हैं, और न वाणी उसका वर्णन कर सकती है । अन्य इन्द्रिय भी उसका प्रत्यक्ष नहीं कर सकते । कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतानुष्ठानरूप तप अथवा वैदिक कर्मों से भी उसे पाया नहीं जा सकता । किन्तु जब भक्त ज्ञानस्वरूप परशिव के प्रसाद ग्रहण से निर्मल अन्तःकरण होता है, तब वह निष्कल शिवलिङ्ग का ध्यान करते हुए चिन्मय स्थिति होने के कारण स्वयं को शिवस्वरूप में देखता है ।।८।।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

न चक्षुषा इति। पूर्वोक्तं परशिवलिङ्गं **चक्षुषा** = चक्षुरिन्द्रियेण, **न गृह्यते** = न चाक्षुषप्रत्यक्षविषयं भवति, नीलपीतादिरूपरहितत्वात्, भावग्राह्यत्वात् निष्कलत्वाच्च। **नाऽपि वाचा** = पशुकर्मपरवाचा, पूर्वकाण्डवेदभागेनेत्यर्थः। **न गृह्यते** = न तज्जन्यज्ञानविषयं भवति, परविद्याऽनुकूलज्ञानकाण्डेन वेदभागेन गृह्यमाणत्वात्। **अन्यैर्देवैः** = अन्यैरिन्द्रियैरपि, **न गृह्यते** निष्कलत्वात्। **तपसा** = प्रसिद्धेन कृच्छ्रादिरूपेण, **कर्मणा वा** = पशुकर्मणा च, **न गृह्यते** = नोपलभ्यते। किन्तु **निष्कलम्** = हेयाः **कला** धरादिमायान्ततत्त्वभागाः स्थूलसूक्ष्मपरशरीरत्रयात्मकमलत्रयगताः, तैर्विरहितं भावलिङ्गम्।

व्याख्या : न चक्षुषा इत्यादि। **तत् चक्षुषा न गृह्यते**— उस परशिव लिङ्ग को नेत्रों से प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह रूप-हीन है। नीला-पीला आदि उसका कोई रंग नहीं हैं और न कोई उसका हुलिया है। वह केवल भावग्राह्य है, क्योंकि निष्कल है।

नापि वाचा (गृह्यते)— पशुकर्मों का निरूपण करनेवाली वेदवाणी उपनिषद् को छोड़कर वेद की कर्मकाण्डपरक मन्त्रमयी वाणी उसका निरूपण नहीं कर सकती। परमात्मस्वरूप परमशिव उस वेदमन्त्रभाग से उत्पन्न ज्ञान का विषय नहीं हो सकता, उससे परमात्मा को समझा नहीं जा सकता, क्योंकि वह परा विद्या (पञ्चाक्षर महामन्त्र) के अनुकूल ज्ञानकाण्डपरक वेदभाग उपनिषदों से जाना जाता है।

नान्यैर्देवैः (गृह्यते)— अन्य ज्ञानेन्द्रिय अथवा कर्मेन्द्रिय भी उसे पकड़ नहीं सकते। कान उसे सुन नहीं सकते। वैखरी वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती, जीभ उसका स्वाद नहीं ले सकती, नाक उसे सूंघ नहीं सकती। त्वचा उसका स्पर्श नहीं कर सकती। हाथ उसे पकड़ नहीं सकते। पैरों से चलकर उसके पास पहुँचा नही जा सकता। क्योंकि वह निष्कल है।

तपसा न (गृह्यते)— प्रसिद्ध कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रताचरणरूप तपस्या द्वारा भी परशिव प्राप्त नहीं होता।

कर्मणा वा न (गृह्यते)— यज्ञ-यागादि पशुकर्म से भी परम शिव को नहीं जाना जा सकता।

ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः— किन्तु निष्कल भावलिङ्ग के ध्यानमात्र से परमशिव का साक्षात्कार किया जा सकता है। **निर्गताः कला यस्मिन् तन्निष्कलम्** इस समासविग्रह के अनुसार धरती से लेकर माया तक एकतीस (३१) तत्त्व हेय हैं। इनकी गणना ३.१.५ मन्त्र की हिन्दी व्याख्या में 'षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं शिवागारम्' पदार्थ के सन्दर्भ में परिशिष्ट में द्रष्टव्य है। उक्त तत्त्व स्थूल, सूक्ष्म और पर (कारण) शरीर के अन्तर्गत यथाक्रम कार्म, आणव और मायीय मल में विद्यमान रहते हैं। भावलिङ्ग इन एकतीस कलाओं

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाऽभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ।।

(श्वेता. ५.१४)

इति श्रुतेः, **निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात् परम्** इत्यनुभवसूत्रोक्तेः । **ध्यायमानः** = ध्यायन्, तद्ध्यानबलेनाऽभिमुखीकृतं परशिवलिङ्गं यदा प्रसीदति, तदा **ज्ञानप्रसादेन** = अत्र ज्ञानपदेन 'ज्ञायतेऽनेन श्रुत्यादिना इति व्युत्पत्त्या **चिन्मात्रोऽहं**

से मुक्त होता है, अत एव उसे 'निष्कल' कहते हैं । निगम और आगम उसके ध्यान की आज्ञा देते हैं । श्रुति कहती है—

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्तं जहुस्तनुम् ।।

(श्वेता. ५.१४)

जिसको केवल भक्तिभाव से जाना जा सकता है, जिसे 'नीड' (शरीररूपी घोसले) में न रहने के कारण 'अनीड' कहते हैं । जो 'भाव' (मुक्ति) और 'अभाव' (संसार) दोनों का कारण है । चन्द्र की सोलह कलाओं के सृष्टिकर्ता अथवा शान्त्यतीतोत्तरा, शान्त्यतीता, शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति इन छः कलाओं के संसार के अन्तर्गत व्यापक प्रसार में निमित्तभूत प्रकाशस्वरूप उस परशिवस्वरूप भावलिङ्ग का जो साक्षात्कार करते हैं, वे शरीरावसान के पश्चात् वहीं पर अवस्थित होकर केवल आनन्दमग्न होते हैं, मुक्ति पाते हैं और पुनश्च संसारसागर में निमग्न नहीं होते ।

'अनुभवसूत्र' का वचन है— **निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम्** । (परात्पर परशिवलिङ्ग पूर्वोक्त एकतीस त्यागयोग्य कलाओं से शून्य होने के कारण 'निष्कल' होता है और केवल भावग्राह्य होने से 'भावलिङ्ग' कहलाता है । **निष्कलं ध्यायमानः**— उस निष्कल भावलिङ्गं का ध्यान करते हुए, उसके केवल ध्यान मात्र से परशिवलिङ्ग प्रसन्न होता है।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः – ज्ञानप्रसादेन इस समस्त पद में 'ज्ञान' पद का अर्थ परशिवलिङ्ग किया गया है । इसका कारण है 'ज्ञान' शब्द का निर्वचन— **'ज्ञायतेऽनेन श्रुत्यादिना इति ज्ञानम्'**, जिसका वेद आदि द्वारा श्रवण-मनन-निदिध्यासन किया जाता है, उस परशिवलिङ्ग को 'ज्ञान' कहते हैं । श्रुति कहती है— **'चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः'**, मैं चित्शक्तिस्वरूप सदाशिव हूँ । **अचिन्त्यं चाऽप्रमेयं च, यत् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ज्ञानम्, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु** — जिसका चिन्तन असंभव है, जिसको किसी परिधि में लाना असम्भव है, वह 'ज्ञान' परशिवलिङ्ग 'सूक्ष्म' अणुरूप शिव से भी 'सूक्ष्मतर' अत्यन्त

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सदाशिवः, अचिन्त्यं चाप्रमेयं च, यत् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ज्ञानम्, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु' इत्यादिश्रुत्या च परशिवलिङ्गमेवोच्यते,

तद्भावज्ञापकं ज्ञानं लयं यत्र समश्नुते ।
तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं शिवतत्त्वार्थकोविदैः ।।
(सि. शि. १५.४५)

सूक्ष्म है । वह मेरे मन में शिव-संकल्प को प्रतिष्ठित करे । श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य निष्कल भावलिङ्ग को **ज्ञानलिङ्ग** कहते हैं, क्योंकि ज्ञानवृत्ति का विलय भी परशिवलिङ्ग में ही होता है—

तद्भावज्ञापकं ज्ञानं लयं यत्र समश्नुते ।
तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं शिवतत्त्वार्थकोविदैः ।।
(सि. शि. १५.४५)

'भावलिङ्ग का बोध करानेवाले ज्ञान का विलय जहां होता है, शिवतत्त्व के मर्म को जानने वाले प्रकाण्ड पण्डित उसे **ज्ञानलिङ्गस्थल** (तृप्तिलिङ्ग) कहते हैं ।'

इस रेणुकगीता के प्रमाण के आधार पर यह सिद्ध है कि 'ज्ञानप्रसादेन' इस समस्त पद के 'ज्ञान' पद से ज्ञान के आश्रय चिद्रूप उसी परशिवलिङ्ग का बोध होता है, जिसमें शिवयोगियों की भी ज्ञानवृत्ति का विलय होता है । **ज्ञानस्य प्रसादो ज्ञानप्रसादः** । उस ज्ञानलिङ्गस्वरूप परमशिव का प्रसाद त्रिविध होता है— १. शुद्ध, २. सिद्ध और ३. प्रसिद्ध[१] । **ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः** अर्थात् उक्त ज्ञानलिङ्गस्वरूप परमशिव के त्रिविध प्रसादग्रहण से षड्विध-भक्तिसम्पन्न शिवभक्त का अन्तःकरण निर्मल होता है । जैसा कि

---

१. इसमें अनुभवसूत्र प्रमाण है—

इष्टालिङ्गार्पितं शुद्धं प्राणलिङ्गमुखार्पितम् ।
सिद्धं ततः प्रसिद्धं हि भावलिङ्गार्पितं विदुः ।।
तत्तदर्पणतो लब्धं प्रसादं तत्तदादरात् ।
भुङ्क्ते यत्नात् स्वयं विश्व-तैजस-प्राज्ञरूपतः ।। (अनु. सू. ७.२२-२३)

त्रिविध जीव होते हैं— १. विश्व, २. तैजस और ३. प्राज्ञ । तदनुसार नैवेद्य पदार्थ भी त्रिविध होते हैं—१. स्थूल (रूप), २. प्रविविक्त (रुचि) और ३. आनन्द (तृप्ति) । विश्व, तैजस और प्राज्ञ जीव जब यथाक्रम इष्टलिङ्ग , प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग को स्थूल, प्रविविक्त और आनन्द पदार्थ समर्पित करते हैं, तब वे यथाक्रम शुद्ध, सिद्ध और प्रसिद्ध प्रसाद बन जाते हैं । उनको अधिकारिभेद के अनुसार जीव आदरपूर्वक आनन्द के साथ ग्रहण करता है । (द्रष्टव्य—ईशावास्योपनिषद्-शांकरी व्याख्या, ८-९)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्योक्तेः, शिवयोगिनां ज्ञानवृत्तेरपि परशिवलिङ्गविलीनत्वात्। ज्ञानपदेन ज्ञानाश्रयं वा चिद्रूपपरशिवलिङ्गं लक्ष्यते । तस्य **प्रसादेन** = शुद्धसिद्धप्रसिद्धरूपेण, **विशुद्धसत्त्वः** = परिशुद्धचित्तः, **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्ध्या ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष** इति श्रुतेः,

अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां सत्त्वशुद्धिरुदाहृता ।
विशुद्धमन्नजातं हि यच्छिवाय निवेदितम् ।।
तदेव सार्वकालं तु भुञ्जानो लिङ्गतत्परः ।
मनःप्रसादमतुलं लभते ज्ञानकारणम् ।।

(सि. शि. ११.९-१०)

वेदमाता प्रतिपादित करती है— **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्ध्या ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः** । त्रिविधलिङ्गस्वरूप परमशिव को निवेदित त्रिविध पदार्थ के अवशिष्ट त्रिविध प्रसादस्वरूप आहार की शुद्धि से सत्वप्रधान अन्तःकरण निर्मल-शुद्ध होता है । अन्तःकरण की शुद्धि से निश्चित रूप से स्मरणशक्ति प्रखर होती है और उस स्मृति के द्वारा परम शिव का साक्षात्कार होने पर त्रिविध जीव की अज्ञानग्रन्थियां खुल जाती हैं ।

श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां सत्त्वशुद्धिरुदाहृता ।
विशुद्धमन्नजातं हि यच्छिवाय समर्पितम् ।।
तदेव सार्वकालं तु भुञ्जानो लिङ्गतत्परः ।
मनःप्रसादमतुलं लभते ज्ञानकारणम् ।।

(सि. शि. ११.९-१०)

अन्न की शुद्धि से सत्वप्रधान अन्तःकरण में निर्मलता आती है । '**सत्त्वशुद्धिः**' के स्थान पर '**तत्त्वशुद्धिः**' यह पाठ स्वीकार करने पर अन्न की शुद्धता से तत्त्वों की शुद्धि होती है, अर्थात् शरीर तथा ज्ञानेन्द्रिय अत्यन्त शुद्ध होते हैं । परम शिव को भक्तिभाव से निवेदित अन्न अत्यन्त निर्मल होता है । लिङ्गोपासक निवेदित उसी अन्न को सदा प्रसादस्वरूप ग्रहण कर उस अनुपम मानसिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है, जो परम शिव के विशिष्ट ज्ञानप्राप्ति का हेतु है ।

चित्त की शुद्धि का अर्थ यह है कि चित्त के द्वारा अपने मूल स्वरूप का परित्याग करना और चितिशक्ति के रूप में परिणत होना, क्योंकि उस का मूल स्वरूप है चितिसंकोच,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति रेणुकभगवत्पादोक्तेः। चित्तस्य परिशुद्धिश्च चितिसङ्कोचरूपप्रकृत्यपर-पर्यायचित्तरूपतापरित्यागेन चितिशक्तिरूपेणाऽवस्थितिः। तदुक्तं शक्तिसूत्रे— **चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्, तत्परिज्ञाने चित्तमेवाऽन्तर्मुखीभावेन चेतनपदाध्यारोहाच्चितिः** (प्र. हृ. ५ एवं १३) इति। **ततस्तु** = परिशुद्धाच्चितिरूपात्तु **तम्** = शिवं **पश्यते** = शिवत्वं प्राप्य शिववत् 'अस्मि, प्रकाशे, नन्दामि' इति सच्चिदानन्दरूपं पश्यति, साक्षात्करोतीत्यर्थः। तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

शम्भोः शिवप्रसादेन संसारच्छेदकारिणा।
मोहग्रन्थिं विनिर्भिद्य मुक्तिं यान्ति विवेकिनः।।

(सि. शि. १८.५९) ।।८।।

जिसका दूसरा नाम है प्रकृति। 'शक्तिसूत्र' में 'चित्त' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है— चितिरेव चेतनपदादवरूढा चैतन्यसङ्कोचिनी चित्तम्।

चितिशक्ति की दो स्थितियां है— चेतनपद से अवतरण करना और चेतनपद पर आरूढ होना। जब वह चेतन पद से अवतरण करती है, उसके चैतन्य का संकोच होता है, जिसे 'चित्त' कहते हैं। **चितिशक्ति** की परिभाषा **प्रत्यभिज्ञाहृदय** में इस प्रकार स्पष्ट है— **तत्परिज्ञाने चित्तमेवाऽन्तर्मुखीभावेन चेतनपदाध्यारोहाच्चितिः** (प्र. हृ. ५ एवं १३)। परमशिव का ज्ञान होने पर जब चित्त अन्तर्मुख होता है और चेतन पद पर आरूढ होता है वही चैतन्य का विकास 'चितिशक्ति' कहलाती है। (संक्षेप में शाक्ति के संकोच को 'चित्त' और उसके विकास को 'चिति' कहते हैं। दूसरे शब्दों में शक्ति की दो अवस्थाओं चैतन्य का संकोच और उसके विकास को यथाक्रम चित्त और चिति कहते हैं।)

ततस्तु तं पश्यते (पश्यति)— जब चैतन्य का संकोच समाप्त होता है और उसका विकास होता है, तब 'चित्त' 'चिति' रूप में बदल जाता है। उस विकसित चैतन्यशक्ति से जीव स्वयं शिवस्वरूप हो जाता है और सच्चिदानन्दस्वरूप शिव का साक्षात्कार करता है। उस समय वह इस प्रकार अनुभव करता है—**'अस्मि'**, मैं हूँ। जीव को इस प्रकार स्वयं में शिव के 'सत्' स्वरूप का बोध होता है। अनन्तर वह **'प्रकाशे'** मैं प्रकाश- स्वरूप में अवस्थित हूँ इस प्रकार स्वयं में शिव के प्रकाशस्वरूप का साक्षात्कार करता है। पश्चात् वह **'नन्दामि'**, मैं आनन्दस्वरूप हूँ। इस प्रकार स्वयं में शिव के आनन्द- स्वरूप का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार चैतन्य का विकास होने पर जीव स्वयं में सच्चिदानन्दस्वरूप परम शिव का साक्षात्कार करता है। जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य निरूपण करते हैं—

शम्भोः शिवप्रसादेन संसारच्छेदकारिणा।
मोहग्रन्थिं विनिर्भिद्य मुक्तिं यान्ति विवेकिनः।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कारणाङ्गावच्छिन्नात्मप्रतिष्ठित-निष्कलभावलिङ्गोपलब्ध्युपाय उक्तः । इदानीं सूक्ष्माङ्गावच्छिन्नाऽऽत्मप्रतिष्ठित-प्राणलिङ्गोपलब्धिसाधनमाह—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो
यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ।।९।।

एषोऽणुरिति । **यस्मिन्** = प्राणलिङ्गे, **पञ्चधा** = प्राणाऽपान-समानव्यानोदानरूपेण

विवेकी अर्थात् 'नित्य क्या है और अनित्य क्या है' इसका विवेक करनेवाले शिवयोगी संसार के पाश को काटने वाले परमशिव का त्रिविध प्रसाद ग्रहण कर मोहस्वरूप आणव-कार्म और मायीय त्रिविध पाशग्रन्थि का भेदन कर लिङ्गाङ्गसामरस्य-स्वरूप मोक्ष प्राप्त करते हैं (सि. शि. १८.५९) ॥८॥

अवतरण— [अधिकारिभेद के अनुसार जीवात्मा (अङ्ग) परम शिव का साक्षात्कार करता है । त्रिविध जीवात्मा होते हैं— १. विश्व जीवात्मा, जो स्थूल शरीर में पृथ्वी से शिव तत्त्व तक व्याप्त होता है और इष्टलिङ्ग का साक्षात्कार करता है । २. तैजस जीवात्मा, जो कला-विद्या-राग-काल-नियतिसंज्ञक पञ्चकञ्चुकावृत सूक्ष्म शरीर में व्याप्त रहता है और प्राणलिङ्ग का साक्षात्कार करता है तथा ३. प्राज्ञ जीवात्मा जो मायामय कारण- शरीर में व्याप्त रहता है और भावलिङ्ग का साक्षात्कार करता है ।]

न चक्षुषा गृह्यते (३.१.८) इत्यादि पूर्व मन्त्र से कारण-शरीर में व्याप्त 'प्राज्ञ' जीवात्मा में प्रतिष्ठित निष्कल भावलिङ्ग के साक्षात्कार का निरूपण किया गया । अग्रिम मन्त्र में सूक्ष्म शरीर में व्याप्त तैजस जीवात्मा में प्रतिष्ठित प्राणलिङ्ग के साक्षात्कार का उपाय वर्णित है—

***मन्त्रार्थ*— यतः जिस प्राणलिङ्ग में पञ्च प्रकार से विभक्त प्राणवायु का विलय हुआ है, जिस प्राणलिङ्ग में चक्षुरादि इन्द्रियों के साथ साधनसम्पन्न प्राणियों का अन्तःकरण, चित्त भी विलीन हुआ है । जिस अन्तःकरण के शुद्ध, चित्-शक्तिस्वरूप होने पर उपासना के लिए प्राणलिङ्ग अपने सूक्ष्मतम 'अणु'स्वरूप में प्रकाशमान रहता है, उस चित्शक्तिस्वरूप शुद्ध चित्त से उस 'अणु'स्वरूप प्राणलिङ्ग का साक्षात्कार करना चाहिए ।।९।।**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विभक्तः, **प्राणः** = वायुः, **संविवेश** = समाविवेश, विलीन इत्यर्थः। तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

प्राणो यत्र लयं याति भास्करेन्दुविघट्टनात्।
तत् प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः।।इति।

(सि. शि. १२.७)

उक्तं च शिवयोगप्रदीपिकायाम्—

चराचरलयस्थानं लिङ्गमाकाशसंज्ञकम्।
प्राणे तद्व्योम्नि संलीने प्राणलिङ्गी भवेत् पुमान्।। इति।

व्याख्या : एषोऽणुरात्मा इत्यादि। **यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश**— जिस प्राणलिङ्ग में प्राण-अपान-समान-व्यान-उदान रूप में पांच प्रकार से विभक्त प्राणवायु का विलय होता है[1]। जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

प्राणो यत्र लयं याति भास्करेन्दुविधट्टनात्।
तत् प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः॥

(सि. शि. १२.७)

'भास्करेन्दुविघट्टनात्' अर्थात् सूर्यनाडी और चन्द्रनाडी इडा और पिङ्गला के संघर्ष से जहां (जिस परब्रह्मस्वरूप परशिवलिङ्ग में) पञ्च प्राणों का विलय होता है, उस परशिव-लिङ्ग को प्राणलिङ्ग कहते हैं। [**भास्करे तुहिनं यथा** यह पाठ मानने पर जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश में कोहरा पिघल जाता है, उसी प्रकार जहां प्राणवायु विलीन होता है, उस परमशिव को प्राणलिङ्ग कहते हैं।] देश-काल-भेदशून्य चिद्रूप ही प्राणलिङ्ग होता है। [अतः उसका अनुसन्धान करनेवाला साधक तत्स्वरूप होता है, उसे **प्राणलिङ्गी** कहते हैं।] 'शिवलिङ्गप्रदीपिका' में कहा गया है—

चराचरलयस्थानं लिङ्गमाकाशसंज्ञकम्।
प्राणे तद्योम्नि संलीने प्राणलिङ्गी भवेत् पुमान्॥

जहां चर (जङ्गम) और (अचर) स्थावर प्राणियों का विलय होता है, उस स्थान को **आकाशलिङ्ग** अथवा **चिदाकाश** कहते हैं। चित्स्वरूप उस आकाशलिङ्ग में प्राणों का

---

१. **हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।**
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः।।

इस 'अमरकोष' के वचनानुसार प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पञ्चप्राण यथाक्रम शरीर के हृदय, गुद, नाभि, कण्ठ और समस्त अवयवों में रहते हैं।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यस्मिन् = प्राणलिङ्गे, **प्रजानाम्** = साधनसम्पन्नानां जनानाम्, **सर्वम् चित्तं प्राणैश्च**क्षुरादीन्द्रियैः सह **ओतम्** = समर्पितं, विलीनम् । विकल्पक्षय-शक्तिसङ्कोच-विकास-वाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादिसाधनैः प्राणविलये चित्तस्याऽपि विलयसम्भवात्, मनोमारुतयोर्जीवपक्षिणः पक्षरूपत्वात्, तस्मिंश्चित्ते चिद्रूप-प्राणलिङ्गविलीने, अत एव **विशुद्धे** चिच्छक्तिरूपमापन्ने सति, **एष** = स एष **आत्मा** = प्राणलिङ्गरूपः । अणुः = उपासनार्थं परिच्छिन्नः, **अर्भकौकस्त्वात् तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न, निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च** (ब्र. सू. १.२.७) इति भगवता बादरायणेन उपासनार्थं परशिवब्रह्मणः परिच्छिन्नवत्वस्योपदिष्टत्वात्, **उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया** (सि. शि. ६.३६)

विलय होने के कारण उसे **प्राणलिङ्ग** कहते हैं । उस चिदाकाश में पञ्च प्राणों का जब विलय होता है, तब देहधारी जीव **'प्राणलिङ्गी'** कहलाता है ।

प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्— प्राणलिङ्ग में साधनसम्पन्न जनों का सम्पूर्ण चित्त (अन्तःकरण) 'प्राणों' अर्थात् नेत्र आदि सभी इन्द्रियों के साथ विलीन, समर्पित है । यतः जब विकल्पों का क्षय, चित्शक्ति का संकोच अथवा विकास, वाहच्छेद, आद्यन्तकोटि-निभालन आदि साधनों से प्राणों का विलय होता है, तभी चित्त का विलय होता है । जीवरूपी 'सुपर्ण' (पक्षी) के दो पंख हैं— मन और मारुत (पंच प्राण) । (दोनों एक साथ विलीन होते हैं ।)

यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा— जब चित्त अत्यन्त शुद्ध होता है अर्थात् चिद्रूप प्राणलिङ्ग में विलीन होने के कारण चित्शक्तिस्वरूप हो जाता है, तब उसमें अवस्थित चिद्रूप आत्मा प्राणलिङ्ग स्वयं प्रकाशमान होता है ।

एषोऽणुरात्मा— वह चित्स्वरूप आत्मा (प्राणलिङ्ग) उपासना के लिए अपने सूक्ष्मतम अणुस्वरूप में सीमित हो गया है । जैसा कि भगवान् वादरायण ने भक्तों की उपासना के लिए परशिव ब्रह्म के परिच्छिन्न स्वरूप का इस प्रकार उपदेश दिया है— **अर्भकौकस्त्वात् तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न, निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च** (ब्र. सू. १.२.७)।

श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य भी इस प्रकार उपदेश देते हैं—

"उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया ।।"[१]

(सि. शि. ६.३६)

वस्तुतः सनातन परशिवस्वरूप महालिङ्ग अपरिच्छिन्न, किसी भी सीमा से परे है, किन्तु भक्तों की उपासना के लिए अपनी स्वातंत्र्य-शक्ति अथवा मायाशक्ति से परिच्छिन्न होकर स्थानभेद से त्रिविध स्वरूपों में भक्तों के अन्तस्तल में प्रकाशमान है ।

---

१. "अपरिच्छिन्नमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्" पूर्वार्ध द्रष्टव्य।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति रेणुकभगवत्पादाचार्यैरप्युपदिष्टत्वात्, **चेतसा** = शुद्धेन चिच्छक्तिरूपेण, **वेदितव्यः** = साक्षात्कर्तव्यः, **मनसैवाऽनुद्रष्टव्यम्** (बृह. ४.४.१९) इति श्रुतेः, **प्राणलिङ्गं मनोग्राह्यम्** इत्यनुभवसूत्रोक्तेः, **कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्** (कठ. ४.१.१) इति श्रुतेः ॥९॥

विशुद्धचित्तानामपरोक्षीकृतशिवतत्त्वानां शिवयोगिनां स्वसत्यसङ्कल्पानुसारेण स्वाभीष्टफलप्राप्तिः स्वभक्ताभीष्टफलप्रदानशक्तिश्चाऽऽविर्भवतीत्याह—

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥१०॥

चेतसा वेदितव्यः— जब चित्स्वरूप प्राणलिङ्ग में प्राणों के साथ अन्तःकरण का विलय होता है, तब वह शुद्ध चित्स्वरूप होता है उस चित्शक्तिस्वरूप शुद्ध 'चेतस्' से चित्स्वरूप प्राणलिङ्ग का साक्षात्कार करना चाहिए। श्रुति कहती है— **मनसैवाऽनुद्रष्टव्यम्** (बृह. ४.४.१९)। 'अनुभवसूत्र' कहता है— **'प्राणलिङ्गं मनोग्राह्यम्'** (अनु. सू. ३.७)। दोनों का एक ही अर्थ है— चित्स्वरूप निर्मल चेतस् अथवा मन द्वारा प्राणलिङ्ग का साक्षात्कार करना चाहिए। (अनुभवसूत्र में तो स्पष्ट रूप से **'प्राणलिङ्ग'** का निर्देश है।) अन्य श्रुतिवचन भी यही उपदेश देता है—

''कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्''

किसी धीर ने बाह्य चक्षुरिन्द्रिय से नहीं, अपितु शुद्ध अन्तःकरण से अमृतत्व (मोक्ष) की कामना करते हुए उस प्रत्यगात्मस्वरूप चिन्मय प्राणलिङ्ग का साक्षात्कार किया है (कठ. ४.१.१) ॥९॥

अवतरण— इस मन्त्र में यह प्रतिपादित किया गया है कि जिनका अन्तःकरण विशुद्ध चित्शक्तिस्वरूप होता है और जो शिवतत्त्व को प्रत्यक्ष करते हैं, उन शिवयोगियों को अपने सत्य-सङ्कल्प के अनुसार अभीष्ट फलप्राप्ति होती है और उनमें वह सामर्थ्य प्रकट होता है, जिससे वे अपने भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान कर सकें।

***मन्त्रार्थ*— जिसका अन्तःकरण शुद्ध, त्रिविध मल से मुक्त होता है, वह शिवभक्त जिस जिस लोक का संकल्प करता है अथवा जिन जिन विषयों की कामना करता है, उस उस लोक को वह जीव हस्तगत कर लेता है और उनके समस्त मनोरथ परिपूर्ण होते हैं। अतः सकाम भक्त उस शिवतत्त्ववेत्ता की अर्चना करे ॥१०॥**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः।

यं यम् इति । **यं यं लोकम्** = पातालादिशिवलोकान्तं लोकम्, **मनसा** = शुद्धचित्तेन, **संविभाति** = सङ्कल्पयति, स्वशरीर-राज्य-ग्राम-मन्दिर-परिवारादिभिः सह प्राप्तुं स्वभक्तान् प्रापयितुं वा इच्छतीत्यर्थः । **यांश्च कामान्** = भोग्यान् विषयान् वा, **कामयते** = इच्छति, **विशुद्धसत्त्वः** = शुद्धचित्तः, **तं तं लोकम्** = सर्वोर्ध्वं शिवलोकान्तम्, **तांश्च कामान्** = तादृशान् विषयान्, **जयते** = जयति, वशीकरोतीत्यर्थः । यतोऽयं सत्यसङ्कल्पो वशीकृतसर्वलोककामः शिवयोगी लोकान् कामान् प्राप्तुं स्वभक्तान् प्रापयितुं च समर्थो भवति । तस्माद् **भूतिकामः** = ऐहिकाऽऽमुष्मिकैश्वर्याभिलाषी भक्तः, **आत्मज्ञं हि** = शिवतत्त्ववेत्तारं परविद्योपदेष्टारं स्वाभिलषितफलदातारमेव 'अयं मह्यमभिलषितफलं प्रयच्छति' इति बुद्ध्या, **अर्चयेत्** = इष्टलिङ्गमिव पादप्रक्षालनादिना पूजयेत्, हरगुरुचराणा-मभिन्नत्वात्, तेषु प्रकर्षाऽपकर्षप्रयुक्तभेदस्याऽभावात्, तद्भेदकर्तुः प्रत्यवायविधानात्, **भेदकृत् पापमश्नुते** इति **क्रियासारोक्तेः** ।

व्याख्या : 'यं यं लोकम्' इत्यादि । **विशुद्धसत्त्वः** = जिसका अन्तः करण शुद्ध हो गया है, वह शिवयोगी । **यं यं लोकम्** = पाताललोक से लेकर शिवलोक पर्यन्त जिस जिस लोक का, **मनसा संविभाति** = शुद्ध अन्तःकरण से सङ्कल्प करता है । अर्थात् अपने शरीर, राज्य, गांव, परिवार, आदि के साथ उस लोक को पाने का अथवा अपने भक्तों को प्राप्त कराना चाहता है । **तांश्च कामान् कामयते** = उन उन भोगयोग्य वस्तुओं की कामना करता है, **तं तं लोकं, तांश्च कामान् जयते** = वह सर्वोच्च शिवलोक तक किसी भी लोक और किसी भी विषयों को स्वाधीन कर लेता है, उसे अपने अथवा दूसरों के लिए पा लेता है ।

तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः — तस्मात् = यतः उसका संकल्प 'सत्य' होता है, और सभीलोक और सभी विषय उस शिवयोगी के वश में होते हैं और वह समस्त लोकों को प्राप्त करने में अथवा अपने भक्तों को प्राप्त कराने में समर्थ होता है ।

भूतिकामः = इह लोक और परलोक के अष्टविध ऐश्वर्य की कामना करनेवाला शिवभक्त, **आत्मज्ञं हि** = परा विद्या (पञ्चाक्षरी महामंत्रविद्या) के उपदेशक अपने मनोरथ-पूर्ति करनेवाले शिवतत्त्ववेत्ता शिवयोगी की, 'यह मेरे महोरथों की पूर्ति अवश्य करेंगे' इस श्रद्धा-बुद्धि के साथ, **अर्चयेत्** = जिस प्रकार इष्टलिङ्ग की पूजा की जाती है, उसी प्रकार पादप्रक्षालन आदि उपचारपूर्वक सादर पूजा करे । क्योंकि शिवलिङ्ग, सद्गुरु और जंगम शिवयोगी उपास्य कोटि में हैं, और महालिङ्गस्वरूप होने के कारण परस्पर अभिन्न हैं । उनमें उच्च-नीच का जरा भी भेद नहीं है । जो भक्त उनमें इस प्रकार का भेद करता है, उसके

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नन्वत्र शिवयोगिनां शरीरादिभिः सह कथं लोकान्तरप्राप्तिः सम्भवतीति चेन्न, सानन्द-शतानन्दादीनां नारकीयपापिजनोद्धरणस्य लोकान्तरगमनं विना सम्भवात्, अष्टाविंशतिकोटिनायकनरकस्थितपापिजनोद्धरणाय पापिनः सङ्गिरस्य नरकस्थितस्योद्धरणम्य च सानन्दशतानन्दचरितस्य सिद्धान्तशिखामण्यादिषु प्रसिद्धत्वात्। किञ्च, भल्लाण-चिरुतुण्ड-चारम-वेमाराध्योद्भटाराध्यादीनां शरीरेण राज्येन परिवारेण ग्रामेण सह शिवलोकप्राप्तेस्तत्पुराणप्रसिद्धत्वात्। उक्तं चाऽनुभवसूत्रे—

केचित् प्राणैः सह शिवपदं केचिदात्मीयकायैः
केचिद् दारैर्निजतनुभवैर्मन्दिरैर्बन्धुवर्गैः।
ग्रामैर्देशैः सह परिजनैः केचिदन्ये क्रमेण
त्यक्त्वा चैतत् सकलमपि यान्ति स्वयं चैव भक्ताः।।

सम्मुख नानाविध विघ्न उपस्थित होते हैं। इसमें '**क्रियासार**' की उक्ति प्रमाण है— '**भेदकृत् पापमश्नुते**'। जो परमशिवलिङ्ग सद्गुरु और जङ्गम शिवयोगी में भेद करता है, वह पाप के फल का भागीदार होता है।

शिवयोगी का सामर्थ्य— अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पापी लोगों का उद्धार करने के लिए शिवयोगियों को सशरीर नरक आदि अन्य लोकों में जाना आवश्यक है। वह कैसे सम्भव हैं? उसका उत्तर यही है कि ऐसा प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। क्योंकि सानन्द, शतानन्द जैसे अनेक महान् शिवयोगी हुए हैं, जो बिना अन्य लोक गए नरकपतित पापी जनों का उद्धार करने में समर्थ हुए। सानन्दचरित, शतानन्दचरित, सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में उनके चरित्र प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अठ्ठाईस करोड़ नरकों में अग्रगण्य नरकों में पड़े हुए पापी लोगों का बिना वहां सशरीर गए ही उद्धार किया, जिसमें एक पापी सङ्गिर भी था, जो उसी नरक में पडा हुआ था। उसके तथा अन्य भक्तों के उद्धार की आख्यायिका भी उक्त ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। भल्लाण, चिरुतुण्ड, चारम, वेमाराध्य, उद्भटाराध्य आदि ऐसे शिवभक्त थे, जो स्वयं ही सशरीर शिवलोक नहीं पहुंचे, अपितु अपने साथ राज्य, परिवार और ग्रामवासियों को भी सशरीर शिवलोक ले गए। 'अनुभवसूत्र' ८.८१-८२ में इसका वर्णन इस प्रकार है—

केचित् प्राणैः सह शिवपदं केचिदात्मीयकायैः
केचिद् दारैर्निजतनुभवैर्मन्दिरैर्बन्धुवर्गैः।
ग्रामैर्देशैः सह परिजनैः केचिदन्ये क्रमेण
त्यक्त्वा चैतत् सकलमपि यान्ति स्वयं चैव भक्ताः॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्राणादिवस्तुविषयेष्वनुरागयुक्ता भक्ताः
प्रयान्ति कतिभिः सहिताः शिवैक्यम् ।
केचिद् विरागनिरता विषयेषु तेषु त्यक्त्वा च
तान् शिवपदं स्वयमेव यान्ति ।।

(अनु. ८.८१-८२) इति।

शिवभक्तानां शिवयोगिनामुपबृंहितशिवशक्तिकत्वात्, सत्यसङ्कल्पमात्रेण सर्वस्याऽपि सुलभत्वाच्च स्वशरीपरिवारादिना शिवलोकप्राप्तेरपि सम्भवात् । उक्तं च क्रियासारे—

भिन्दन्ति शैलानुदधीन् पिबन्ति
व्यत्यासयन्ति क्षितिमन्तरिक्षम् ।
तृणीकृतब्रह्मपुरन्दराणां
किं दुष्करं शङ्करकिङ्कराणाम् ।।

कतिपय भक्तगण प्राणों के साथ सशरीर शिवपद प्राप्त करते हैं । अन्य लोग स्त्री, पुत्र, घर, बन्धु, वान्धव ग्राम और देशवासियों के साथ सशरीर शिवलोक जाते हैं । कतिपय भक्त यह सब कुछ छोड़ कर स्वयं शिवपद प्राप्त करते हैं ।

प्राणादिवस्तुविषयेष्वनुरागयुक्ता भक्ताः
प्रयान्ति कतिभिः सहिताः शिवैक्यम् ।
केचिद् विरागनिरता विषयेषु तेषु त्यक्त्वा च
तान् शिवपदं स्वयमेव यान्ति ।।

कतिपय भक्त प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि भौतिक विषयों में आसक्त होकर अनेक लोगों के साथ **शिवयोग** प्राप्त करते हैं । कुछ लोग विषयों के प्रति वैराग्य धारण करते हुए उन विषयों का परित्याग कर स्वयं ही शिवपद प्राप्त करते हैं ।

इस प्रकार अनेक शिवभक्त शिवयोगियों के शिवसामर्थ्य का उपबृंहण (विस्तार)-पूर्वक वर्णन किया गया है । वे अपने मात्र सत्य-संकल्प से सभी को सुलभ होते हैं । उनमें इतनी शक्ति होती है कि वह अपने शरीर, परिवार आदि के साथ शिवलोक भी प्राप्त कर सकते हैं । क्रियासार (उ. १७.३.४) में भी इस प्रकार वर्णन है—

भिन्दन्ति शैलानुदधीन् पिबन्ति व्यत्यासयन्ति क्षितिमन्तरिक्षम् ।
तृणीकृतब्रह्मपुरन्दराणां किं दुष्करं शङ्करकिङ्कराणाम् ।।

शिवभक्तों के लिए क्या कठिन है? कुछ भी नहीं । वे पर्वतों का भेदन कर सकते हैं । समुद्रजल पी सकते हैं । धरती और आकाश को उलट-पुलट कर रख सकते हैं ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अगस्त्यः कुम्भजन्मा तु शिवभक्त्यैव केवलम् ।
पपौ समुद्रमतुलं शिवशक्त्युपबृंहितः ।।इति।

(क्रिया. १७.३-४)

उक्तं चोत्पलदेवाचार्येण—

नाप्राप्यमस्ति भक्तानां नाप्येषामस्ति दुर्लभम् ।
केवलं विचरन्त्येते भवत्पूजामदोन्मदाः ।।

(शिवसूत्रावलिः १७.२३)

उक्तश्च भगवता बादरायणेन मुक्तिफलस्याऽनियमः– **एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थाधृतेस्तदवस्थाधृतेः** (ब्र. ३. ४. ५२) इति । शिवतत्त्वसाक्षात्कारवतां सर्वेषामशरीरमुक्तिरूपकैवल्यं मुक्तिफलमेवेति नियमाभावात्,

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता ।।इति।

(तै. ब्रह्मवल्ली. १)

अगस्त्यः कुम्भजन्मा तु शिवभक्त्यैव केवलम् ।
पपौ समुद्रमतुलं शिवशक्त्युपबृंहितः ।।

कुम्भ से उत्पन्न महर्षि अगस्त्य ने केवल शिवभक्ति के द्वारा शिवसामर्थ्यसम्पन्न होकर अतुलनीय गम्भीर अतलस्पर्शी समुद्रजल का पान किया ।

श्री उत्पलदेवाचार्य कहते हैं—

नाप्राप्यमस्ति भक्तानां नाऽप्येषामस्ति दुर्लभम् ।
केवलं विचरन्त्येते भवत्पूजामदोन्मदाः ।।

(शिवसूत्रावलिः १७.२३)

इन भक्तों के लिए कुछ भी अप्राप्य अथवा दुर्लभ नहीं है । ये जङ्गम शिवयोगी शिवपूजा के मद के उन्माद से मस्त होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करते हैं । भगवान् वादरायण ने भी मुक्तिफल को नियम से परे यह कहा है— **एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थाधृतेस्तदवस्थाधृतेः** (ब्र. ३.४.५२) शिवयोगियों के लिए इस प्रकार मुक्ति का कोई नियम नहीं है कि वे सशरीर मुक्ति प्राप्त करें अथवा शरीर त्याग करें, क्योंकि वे उस अवस्था तक पहुंच जाते हैं और शिवस्वरूप हो जाते हैं । ऐसा कोई नियम नहीं है कि परम शिवतत्त्व का साक्षात्कार करने वाले सभी शिवयोगी केवल अशरीर कैवल्य मुक्तिफल प्राप्त करें । जैसा कि श्रुति कहती है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एवं लिङ्गार्पितं सर्वमिति यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽश्नुते सकलान् भोगान् विपश्चिद् ब्रह्मणा सह ।।

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः, ब्रह्मविदां ब्रह्मणा सह सर्वकामावाप्तेर्दर्शनात् परलोकवासनाविरहितानामशरीरज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानवतामिहैवामूर्तदहराकाशज्योतिर्लिङ्गे सुषुप्तिसुखवदशरीरेण प्रारब्धवासनापर्यन्तं जीवन्मुक्तदशायां नित्यनिरतिशयानन्दमनुभूय तत्समाधिकाले प्रचण्डातपमध्यनिक्षिप्तनिवातदीपवत् स्थित्वा विदेहमुक्त्यवसरे नदीसमुद्रन्यायेन परशिवैकत्वं सम्भवति । तद्भिन्नानां मूर्तपरशिवलोकभोगवासनायुक्तानां प्राणावसाने शिवलोकनिवासोचित-

---

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता ।।

(तै. ब्रह्मवल्ली. १)

जो हृदयगुफारूपी चिदाकाश में अवस्थित सत्-चित्-आनन्दस्वरूप परब्रह्म परम शिव का साक्षात्कार करता है, वह शिवयोगी सर्वज्ञ परमशिव के साथ सभी अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करता है ।

एवं लिङ्गार्पितं सर्वमिति यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽश्नुते सकलान् भोगान् विपश्चिद् ब्रह्मणा सह ।।

'अनुभवसूत्र' का उक्त मन्त्र उसी वेदमन्त्र का उपबृंहण है, जिसका यह आशय है—"जो शिवयोगी इस तथ्य को जानता है कि जो कुछ विश्व में है, वह सब कुछ परमशिवस्वरूप महालिङ्ग को ही समर्पित है और उसी में विलीन है, वह शिवयोगी सर्वज्ञ परब्रह्म परम शिव के साथ सभी सुखों का उपभोग करता है"।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि परब्रह्मस्वरूप परम शिवतत्त्ववेत्ता शिवयोगी परब्रह्मपरमशिव के साथ ही सभी अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त करते हैं और जो परलोक की कामना नहीं रखते वे निराकार देदीप्यमान ज्योतिर्लिङ्ग का अनुसन्धान करने वाले इसी लोक में अमूर्त (निराकार) चिदाकाश में प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्ग में सुषुप्ति अवस्था में वही सुख प्राप्त करते हैं जो बिना शरीर के अवलम्बन के जीवन्मुक्त अवस्था में निरतिशय (चरमोत्कर्षशाली) आनन्द का उपभोग कर उस समाधि की स्थिति में प्राप्त करते हैं । प्रचण्ड प्रखर सूर्य-ताप के मध्य रखी हुई बिना हवा के मध्य प्रज्वलित दीपशिखा के समान अवस्थित शिवयोगी विदेहमुक्ति के अवसर पर परशिवस्वरूप महालिङ्ग के साथ उसी प्रकार सामरस्य प्राप्त कर सकते हैं, जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिल कर समरसता प्राप्त करती हैं । उनसे भिन्न साकार परलोकप्राप्ति की वासना रखने वाले शिवभक्त प्राणपरित्याग के समय

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

दिव्यमङ्गलविग्रहेण सालोक्य-सामीप्य-सारूप्यात्मक-सशरीरमुक्तिर्भवति । तस्माज्जीवन्मुक्तानां सशरीरमुक्तिरेवाऽशरीरमुक्तिरेवेति नियमो नास्ति । मूर्तपरशिवब्रह्मोपासनया शिवयोगिचित्तस्य तदाकारपरिणामेनाऽवस्थितेरमूर्तपरशिवब्रह्मोपासनया तच्चित्तरस्य तदाकारपरिणामेनाऽवस्थितेः,

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति तत्त्वज्ञः सदा तद्भावभावितः ।।

अन्त्यकाले प्रबुद्धो यः सुहृदा बोधितोऽपि वा ।
शिवमेकमना ध्यायन् स याति परमां गतिम् ।।

यदा शिवात्मकं रूपं ध्यायन् प्राणान् विमुञ्चति ।
तदाऽसौ शिवतां याति नाऽन्यां गतिमिति श्रुतिः ।।

शिवलोक-निवास के लिए समुचित दिव्य-मंगल शरीर के साथ सालोक्य, सामीप्य अथवा सारूप्य-सशरीर मुक्ति प्राप्त करते हैं । अतः यह कोई नियम नहीं है कि जीवन्मुक्त शिवभक्तों की सशरीर ही अथवा बिना शरीर का अवलम्बन किये ही मुक्ति होती है । क्योंकि जो शिवयोगी साकार परशिव ब्रह्म की उपासना करते हैं, उनका चित्शक्तिस्वरूप शुद्ध अन्तःकरण उस उपासना से साकार परशिवब्रह्मस्वरूप में परिणत होता है और जो अमूर्त (निराकार) परशिवब्रह्म के उपासक होते हैं, उनका शुद्धचित्त उस उपासना से निराकार परशिवब्रह्म में रूपान्तरित होता है ।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति तत्त्वज्ञः सदा तद्भावभावितः ।।

"परशिवतत्त्व का ज्ञाता शिवयोगी जिस जिस परशिवस्वरूप का ध्यान करते हुए अन्तिम समय में शरीरत्याग करता है, वह सदा उसी भावना से एकरूप होकर उसी परशिवस्वरूप को प्राप्त करता है ।"

अन्त्यकाले प्रबुद्धो यः सुहृदा बोधितोऽपि वा ।
शिवमेकमना ध्यायन् स याति परमां गतिम् ।।

"अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में जो प्रबुद्ध (ज्ञानवान्) ध्यानमग्न शिवयोगी मित्र द्वारा जगाए जानेपर भी परम शिव का शुद्ध एकाग्र मन से ध्यान करता है, वह परम सद्गति को प्राप्त करता है" ।

यदा शिवात्मकं रूपं ध्यायन् प्राणान् विमुञ्चति ।
तदाऽसौ शिवतां याति नाऽन्यां गतिमिति श्रुतिः ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यादिश्रुतिस्मृत्यादिषु तथैवोपदेशात्। न च स्वर्गप्राप्ततेजश्शरीरनक्षत्रादिवत् शिवलोकप्राप्तमहापुरुषाणामपि पुनरावृत्तिरिति वाच्यम्,

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।।

इत्यग्रिममन्त्रेण तल्लोकादेव विदेहकैवल्यमुक्त्युपदेशात्। उक्तं च शैवपुराणे—

दिनकृत्-कोटि-सङ्काशं स्थानमाद्यमुमापतेः।
सर्वकामसमायुक्तम् अन्तःक्लेशविवर्जिताः।।

सर्वज्ञाः सगणाः शुद्धाः परिपूर्णा भवन्ति च।
विशुद्धकार्यकरणाः पारमैश्वर्यसंयुताः।।

"शिवयोगी जब शिवमय स्वरूप का ध्यान करते हुए प्राण परित्याग करता है, तब वह परम शिव की गति को ही प्राप्त करता है, अन्य नहीं, यह वेदमाता की प्रतिज्ञा है"। इत्यादि अनेक श्रुति-स्मृति-वचन ऐसा ही उपदेश देते हैं।

अब यह भी कहना ठीक नहीं है कि जिस प्रकार स्वर्ग को प्राप्त करने वाले दिव्य विग्रहस्वरूप नक्षत्र के समान तेजस्वी व्यक्ति फलोपभोग के पश्चात् पुनः शरीर धारण करते हैं, जन्म-मरण-चक्र की पुनरावृत्ति में पड़ते हैं, उसी प्रकार शिवलोक प्राप्त करने वाले महापुरुषो की भी इस संसार में पुनः जन्मचक्र की पुनरावृत्ति होती है। क्योंकि—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥

इस अग्रिम मन्त्र द्वारा उसी लोक से विदेह-कैवल्य-मुक्ति का उपदेश दिया गया है। शिवपुराण में भी कहा है—

दिनकृत्कोटिसङ्काशस्थानमाद्यमुमापतेः।
सर्वकामसमायुक्तमन्तःक्लेशविवर्जिताः॥
सर्वज्ञाः सगणाः शुद्धाः परिपूर्णा भवन्ति च।
विशुद्धकार्यकरणाः पारमैश्वर्यसंयुताः॥
सदेहाश्च विदेहाश्च भवन्त्यात्मेच्छया पुनः।
सम्प्राप्ता ये परं स्थानं ज्ञानयोगरता नराः।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सदेहाश्च विदेहाश्च भवन्त्यात्मेच्छया पुनः ।
सम्प्राप्ता ये परं स्थानं ज्ञानयोगरता नराः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारमण्डले ।।१०।।

।। इति मुण्डकोपनिषदि तृतीयमुण्डके प्रथमखण्ड-वीरशैवभाष्यम् ।।



न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारमण्डले ।।

चित्शक्तिरूपिणी उमा के स्वामी परमशिव का आद्यस्थान करोड़ों सूर्यों के तेज के समान देदीप्यमान है, जो सभी कामनाओं से परिपूर्ण अर्थात् सभी मनोरथ प्रदान करने वाला है। उस स्थान को प्राप्त करने वाले अपने गणों के साथ सर्वज्ञ शुद्धान्तःकरण और परिपूर्ण होते हैं। वे सभी निर्मल शुद्ध कार्य करते हैं और अष्टविध पारमैश्वर्य-सम्पन्न होते हैं। वे स्वेच्छा से सदेह अथवा विदेह स्थिति में रहने के लिए स्वतन्त्र हैं, वे पारतन्त्र्य से मुक्त होते हैं। ज्ञानयोग में तत्पर ऐसे साधक उस परम शिव पद को प्राप्त करते हैं, इस घोर संसार के मण्डल (चक्र) के अन्तर्गत जन्म-मरण-चक्र में उनकी पुनः आवृत्ति नहीं होती। ।।१०।।

।। इस प्रकार मुण्डकोपनिषद् के तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड का वीरशैवभाष्य और उसकी हिन्दी व्याख्या परिपूर्ण हुई ।।



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अथ तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः

परविद्योपदेष्टुः शिवतत्त्ववेत्तुरर्चनस्य मोक्षफलकत्वमाह—

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामा-
स्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ।।१।।

स वेद इति। **यत्र** = षडक्षरात्मके परशिवब्रह्मणि महालिङ्गे, **विश्वम्** = स्थूलसूक्ष्मपररूपं जगत्, **निहितम्** = समर्पितं सत्, **शुभ्रम्** = शुद्धसिद्धप्रसिद्धप्रसादरूपम्, **भाति** = प्रकाशते। तदुक्तमनुभवसूत्रे—

षडक्षरात्मके लिङ्गे सर्वाङ्गे सुप्रतिष्ठिते।
तत्रैव चाऽर्पितं सर्वमित्याहुः श्रुतयः खलु ।।

(अनु. सू. ७.२८) इति।

अवतरण— पराविद्या के उपदेशक शिवतत्त्वज्ञानी की पूजा मुक्तिफलप्रदायिनी होती है—

मन्त्रार्थ— जिस में विश्व स्थित होकर शुभ्र परिशुद्ध प्रकाशित होता है, शिवतत्त्वज्ञानी उस विशुद्ध शिवतत्त्वस्वरूप परम ब्रह्मधाम का साक्षात्कार करता है। जो निष्काम भावना से उसकी उपासना करते हैं, वे धीर पुनः शुक्र (वीर्य) को अतिक्रमण कर जाते हैं, मुक्ति पाते हैं, स्त्रीगर्भ में प्रवेश नहीं करते ।।१।।

व्याख्या— 'स वेद' इत्यादि। **यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्**— जिसमें विश्व समर्पित होकर शुभ्र प्रकाशित होता है। अर्थात् जिस षडक्षरमन्त्रात्मक परशिव ब्रह्मस्वरूप महालिङ्ग में **विश्व** = स्थूल-सूक्ष्म कारण स्वरूप जगत् समर्पित होकर **शुभ्र** अर्थात् शुद्ध, सिद्ध और प्रसिद्ध त्रिविध प्रसाद के रूप में प्रकाशित होता है। जैसा कि अनुभवसूत्र का वचन है—

षडक्षरात्मके लिङ्गे सर्वाङ्गे सुप्रतिष्ठिते।
तत्रैव चाऽर्पितं सर्वमित्याहुः श्रुतयः खलु ।।

(अनु. सू. ७.२८)

श्रुतियों (वेदमन्त्रों) का कथन है कि उसी षडक्षरात्मक सुप्रतिष्ठित षट्स्थललिङ्ग-स्वरूप महालिङ्ग में सम्पूर्ण विश्व समर्पित है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

यद्वा, **विश्वं** पृथिव्यादिग्राह्य-तदभिमानिग्राहक-ब्रह्मादिसकलं प्रमेयप्रमात्रात्मकम्, **निहितम्** = समर्पितं सत्, **शुभ्रम्** = परिशुद्धं **भाति** । **तद् एतत् परमम्** = सर्वोत्कृटम्, **धाम** = स्वतन्त्रस्वप्रकाशतामय-परशिवमहालिङ्गस्थलम्, **सः** = पूर्वोक्तो विशुद्धचित्तः, **यतो वेद** = साक्षात्करोति । **ततः पुरुषम्** = साक्षात्कृतपरशिवमहालिङ्गतत्त्वं गुरुम्, **अकामा हि** = परलोकविषयानभिलाषुका एव ये मुमुक्षवः, **उपासते** = हरमिवार्चनादिना सेवन्ते, **'यथा देवे परा भक्तिः'** इति श्रुत्यन्तरात् । **ते धीराः** = वीरा मुमुक्षवः, **एतत्** सर्वजनप्रसिद्धम्, **शुक्रम्,** = रेतः, **अतिवर्तन्ति** = अतिक्रम्य वर्तन्ते, रेतोद्वारा स्त्रीयोनौ न प्रविशन्ति, किन्तु मुक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

परमाऽद्वैतविज्ञान-परमौषधि-दानतः ।
संसाररोगनिर्माथी देशिकः केन लभ्यते ? ।।

(सि. शि. १५.२०)

अथवा उस महालिङ्ग में 'विश्व' अर्थात् ग्रहणयोग्य पृथिवी आदि सम्पूर्ण प्रमेय- तत्त्वों और उन प्रमेयतत्त्वों के ग्राहक उनके अभिमानी ब्रह्मा आदि सकल प्रमाताओं के रूप में भासमान समस्त चराचर जगत् समर्पित होकर 'शुभ्र' परिशुद्ध भासित रहता है ।

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम— यतः वह पूर्ववर्णित विशुद्ध अन्तःकरणशाली शिवतत्त्वज्ञानी उस 'परम ब्रह्म धाम' सर्वोत्कृष्ट स्वतन्त्र-स्वप्रकाशस्वरूप परशिवमहालिङ्ग-स्थल का साक्षात्कार करता है ।

उपासते पुरुषं ये ह्यकामाः— अतः स्वर्गादि परलोक स्थित विषयों की अभिलाषा न रख़ने वाले जो मुमुक्षु शिव के समान ही परशिवमहालिङ्ग का साक्षात्कार करनेवाले शिवस्वरूप गुरु की सेवा-पूजा आदि करते हैं । इसमें अन्य वेदमन्त्र प्रमाण है— **'यथा देवे परा भक्तिः'** । जिस प्रकार परम शिव के प्रति भक्ति रखनी चाहिए, उसी प्रकार गुरु के प्रति भी भक्ति रखनी चाहिए ।

ते शुक्रमतिवर्तन्ति धीराः— वे वीर मुमुक्षु जन उस सर्वजनप्रसिद्ध शुक्र, पुरुष-वीर्य का अतिक्रमण करते हैं । अर्थात् वीर्य के माध्यम से स्त्री के गर्भ में प्रवेश नहीं करते, अपितु मुक्त होते हैं । जैसा कि श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य कहते हैं—

परमाऽद्वैत-विज्ञान-परमौषधि-दानतः ।
संसाररोगनिर्माथी देशिकः केन लभ्यते ॥

(सि. शि. १५.२०)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति रेणुकभगवत्पादोक्तेः, गुरोरपि शिववन्मन्त्रमूर्तित्वात्, परविद्यादातृत्वात्, **गुरुरुपायः** (२.६) इति शिवसूत्रेण तस्य मुख्योपायत्वेनोपदिष्टत्वात्, दीक्षात्रयेण मलत्रयं व्यपोह्य शिक्षया संशयादिकं निरस्य लिङ्गाङ्गैक्यज्ञानदानेन जीवन्मुक्तिदातृत्वाद् गुरोरेव मुख्योपायत्वम् । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादैः—

शिववेध[1]करे ज्ञाने दत्ते येन सुनिर्मले ।
जीवन्मुक्तो भवेत् शिष्यः स गुरुर्ज्ञानसागरः ।।

(सि. शि. १५-२९) ।।१।।

अनवगतशिवतत्त्वानां कामानुसारेण तत्तज्जन्मप्राप्तिम्, अवगतशिवतत्त्वानां निष्कामानां मुक्तिफलप्राप्तिं चाऽऽह—

परम शिवाऽद्वैतविज्ञानस्वरूप परम औषधि के प्रदानकर्ता सांसारिक रोगों को निर्मूल करनेवाला सद्गुरुरूपी वैद्य भला किसे प्राप्त होता है? बिना परमशिव की परमकरुणा के वह प्राप्त नहीं हो सकता, यह सद्गुरु की महिमा है । क्योंकि सद्गुरु भी परम शिव के समान ही मन्त्रमूर्ति होता है । वह पराविद्या के उपदेश प्रदान की विलक्षण शक्ति से सम्पन्न होता है । **'गुरुरुपायः'** इस शिवसूत्र द्वारा श्रीगुरु का ही मुख्य उपाय के रूप में उपदेश दिया गया है, क्योंकि गुरु ही वेधादीक्षा, क्रियादीक्षा और मन्त्रदीक्षा इस त्रिविध दीक्षा के द्वारा आणव, कार्म और मायीय त्रिविध अज्ञानमल को हटाकर शिक्षा द्वारा मुमुक्षु शिष्य की समस्त शंकाओं, संशयों का निरसनं कर लिङ्गाङ्गसामरस्यविद्यादान से जीवन्मुक्ति को देनेवाला होता है। अत एव गुरु ही मुक्ति का मुख्य उपाय है। जैसा कि श्रीरेणुक भगवत्पादाचार्य कहते हैं —

शिववेध[1]करे ज्ञाने दत्ते येन सुनिर्मले।
जीवन्मुक्तो भवेत् शिष्यः स गुरुर्ज्ञानसागरः ।।

(सि. शि. १५.२९)

जिसके द्वारा जीव को शिव के साथ वेधन करने वाला निर्मल ज्ञान प्रदान किये जाने पर, अथवा 'शिववेदकरे' यह तत्त्वप्रदीपिकासम्मत पाठ स्वीकार करने पर जीव- भाव को शिवभाव के रूप में स्पष्ट करने में प्रवीण निर्मल शिवज्ञान प्रदान करने पर शिष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, वह सद्गुरु ज्ञान का सागर ही होता है ।।१।।

अवतरण— शिवतत्त्व से अनभिज्ञ जीवों का जन्म उनकी विषय वासनाओं के अनुसार होता है । निष्काम शिवज्ञानियों को मुक्ति फलप्राप्त होता है, इसी अर्थ को अग्रिम मन्त्र निरूपित कर रहा है—

---

१. वेद - पा.।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

कामान् यः कामयते मन्यमानः
स कामभिर्जायते तत्र तत्र ।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु
इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ।।२।।

कामान् य इति । **यः कामान्** = दृष्टादृष्टेष्टविषयान्, **मन्यमानः** = भोग्यत्वेन चिन्तयमानः, **कामयते** = प्रार्थयते, **सः** = पुरुषः, **तत्र तत्र** = देवमनुष्यादिभोग्यविषयेषु । **कामभिः** = कामैः सह, **जायते** = कामसंयुत एवोत्पद्यते । निष्कामस्य शिवज्ञानिनस्तु ततो वैलक्षण्यमाह — **पर्याप्तकामस्य** इति । **पर्याप्ताः** समन्तात् प्राप्ताः **कामाः** तत्तल्लोकोचितभोग्यपदार्था येन तस्य, **कृतात्मनस्तु** = अवगतशिवलिङ्गसामरस्यस्य तु, **इहैव** = अस्मिन्नेव जन्मनि, **सर्वे कामाः** = सर्वे मनोरथाः, **प्रविलीयन्ति** = विलयं यान्ति, लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञाननिरस्तकाममूलमलत्वात्, **'ये कृतात्मानो ज्ञानवन्तस्तेषां परमपदप्राप्तिर्निरतिशयमोक्षः'** इति श्रीनीलकण्ठशिवाचार्यैरप्युक्तत्वाद् इहैव स्वदेवता-

---

***मन्त्रार्थ*— जो विषयोपभोग को महत्व देते हुए उन विषयों की कामना करता है, वह उन विषय-वासनाओं के साथ ही जन्म लेता है । जिसकी सम्पूर्ण कामनाओं की परिपूर्ति होती है, उस शिवतत्त्ववेत्ता की कामनाएं इसी जन्म में क्षीण होती हैं ।।२।।**

व्याख्या : कामान् यः इत्यादि। **कामान् यः काममते मन्यमानः**— दृष्ट-अदृष्ट अभीष्ट विषयों का सदा उपभोग के लिए चिन्तन करते हुए भी जो उन विषयों की कामना करता हैं, **स कामभिर्जायते तत्र तत्र**— वह जीव (पुरुष) देव, मनुष्य आदि द्वारा भोग्य विषयों में उन उन विषय वासनाओं में लिप्त होकर ही जन्म लेता है ।

निष्काम शिवज्ञानी की उससे विलक्षण स्थिति का निरूपण करते हुए श्रुति कहती है—

पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु— जो उन उन लोकों में जन्म लेकर उन उन लोकों के योग्य भोग्य पदार्थों का उपभोग कर परितृप्त हो जाता है और जिसे लिङ्गाङ्गसामरस्य का सम्यक् ज्ञान रहता है, उस शिवतत्त्ववेत्ता के—

इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः— इसी जन्म में सब मनोरथ विलय प्राप्त करते हैं । क्योंकि लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञान होने से उसकी विषयवासना को जन्म देनेवाले काममूलक सभी त्रिविध अज्ञानमल कट जाते हैं । जैसा कि श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य कहते हैं— **'ये कृतात्मानो ज्ञानवन्तः, तेषां परपदप्राप्तिर्निरतिशयमोक्षः'**। अर्थात् 'जो लिङ्गाङ्गसामरस्य प्राप्त करनेवाले शिवज्ञानी होते हैं, उनको परमपद प्राप्त होना ही उनके लिए सर्वोत्कृष्ट

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

साक्षात्कारपर्यन्तोपासनावन्त एव कृतात्मानः, तेषां मोक्षस्य **'परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्'** इति पुराणोक्तत्वात्र कृतात्मनां पुनरावृत्तिप्रसक्तिः। **'शब्ददर्दुरं करोति'** इत्यत्रेव कृञो ज्ञानमर्थः। ।॥२॥

इष्टलिङ्गधारणस्याऽन्वयमुखेन साक्षान्मुक्तिकारणत्वमभिधातुं तदितरवेदाध्ययनादिकस्य कारणत्वं निराकरोति—

मोक्ष है'। इस उक्ति के अनुसार जो लोग इसी जन्म में अभीष्ट देवता का साक्षात्कार होने तक उपासना करते हुए आत्मतत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं, उनके मोक्ष का अर्थ है पुनर्जन्म से छुटकारा। जैसाकि पुराण-वचन है—

"परस्याऽन्ते कृतात्मनः प्रविशन्ति परं पदम्"।

[मृत्यु के दो स्वरूप हैं— १. परान्तकाल और २. अपरान्तकाल। आचार्य शंकर **'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः'** (३.२.६) इत्यादि मन्त्र की व्याख्या में **परान्तकाले** पद की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **"संसारिणां ये मरणकालास्तेऽपरान्ताः,ताननपेक्ष्य मुमुक्षूणां संसारावसाने देहपरित्यागकालः परान्तकालः"**। "संसार में रहने वाले, जिनका बिना आत्मतत्त्वज्ञान के शरीरपात होता है, उनके उस मृत्युसमय को **अपरान्तकाल** कहते हैं। किन्तु बिना देहत्याग की अपेक्षा किए जो परम पद प्राप्त करते हैं और आयु की समाप्ति पर देहपात करते हैं, उनके देहत्यागकाल को **परान्तकाल** कहते हैं। अर्थात् जीवितावस्था में जो परमपद प्राप्त करते हैं, वे मुमुक्षु **जीवन्मुक्त** होते हैं"।]

ऐसे मुमुक्षुजन जीवितावस्था में ही आत्मतत्व का साक्षात्कार करते हैं और देहपात के पश्चात् परमपद प्राप्त करते हैं, यही इस पुराणवचन का तात्पर्य है। ऐसे लिङ्गाङ्गसामरस्यवेत्ताओं के जन्म-मरण-चक्र की वारंवार आवृत्ति नहीं होती।

जिस प्रकार **'शब्ददर्दुरं करोति'** इस वाक्यप्रयोग में 'कृञ्' धातु का अर्थ करना नहीं है, अपितु ज्ञान प्राप्त करना है। (इस वाक्य का अर्थ है– शब्द साक्षात्कार करता है।) उसी प्रकार **कृतात्मानः** इस समस्त पद में 'कृत' का अर्थ 'विहित' न होकर 'अवगत' होता है। इस प्रकार इसकी समासविग्रहपूर्वक व्याख्या होगी— "कृतात्मानः = कृतः = अवगतः (न तु विहितः) आत्मा महालिङ्गस्वरूपः परमशिवो येन सः, तस्य" अर्थात् जो लिङ्गाङ्ग-सामरस्य विद्या द्वारा परम शिव का साक्षात्कार करता है, उसके यथार्थ स्वरूप से परिचित होता है, वह 'कृतात्मा' है ॥२॥

अवतरण— 'यत्र यत्र इष्टलिङ्गधारणम्, तत्र तत्र मुक्तिः' इस आकार की अन्वय-व्याप्ति द्वारा इष्टलिङ्ग-धारण को मोक्ष का हेतु प्रतिपादित करने के लिए उससे भिन्न वेदाध्ययन आदि का मोक्ष के कारण के रूप में खण्डन इस प्रकार किया जा रहा है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नाऽयमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।३।।

नाऽयमात्मा इति। **अयमात्मा** = प्रकृतः परमात्मा शिवः, **प्रवचनेन** = केवलवेदाध्ययनेन, **न लभ्यः** = न प्राप्यः। **न मेधया** = केवलवेदार्थावबोधरूपया बुद्ध्या **न लभ्यः**। **न बहुना श्रुतेन** = गुरूपदेशरहितेन बहुश्रवणेनापि **न लभ्यः**। तर्हि केनोपायेन लभ्यः? इत्यत आह— **यम्** इति। **एषः** = मुमुक्षुः, **यम्** = परशिवलिङ्गम्, **वृणुते** = प्राणेष्टलिङ्गरूपेणाऽन्तर्बहिर्धत्ते, **तेन** = मुमुक्षुणा वीरशैवेन, **लभ्यः** = प्राप्यः।

ये धारयन्ति हृदये लिङ्गं चिद्रूपमैश्वरम्।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे[1] संसारमण्डले।।
(सि. शि. ६.४२)

मन्त्रार्थ— परम शिव न तो वेदपाठ से प्राप्त हो सकता है और न उसके अर्थ-ज्ञान से अथवा न केवल बाहरी अन्य विषयों के उपदेशश्रवण से प्राप्त हो सकता है। लिङ्गधारण करने से ही मुमुक्ष परशिव को प्राप्त करता है और परशिव उसके सम्मुख अपना स्वरूप प्रकट करता है।

नायमात्मा इत्यादि। **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः** = प्रकृत परमात्मा परम शिव को केवल वेदों के अध्ययन से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

न मेधया (लभ्यः) = अथवा केवल वेदार्थ को समझने वाली बुद्धि से भी प्राप्त नहीं हो सकता।

न बहुना श्रुतेन (लभ्यः) = गुरु के उपदेश से रहित, विविध परशिवभिन्न अन्य बाह्य विषयों के श्रवणमात्र से भी प्राप्त नहीं हो सकता।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः— यतः मुमुक्षु प्राणलिङ्ग के रूप में आन्तर और इष्टलिङ्ग के रूप में बाह्यलिङ्ग धारण करता है, अतः उसके धारण से ही वीरशैव उस परम शिव को प्राप्त कर सकता है, उसका साक्षात्कार कर सकता है। जैसा कि श्रीरेणुकभगवत्पाद का वचन है—

ये धारयन्ति हृदये लिङ्गं चिद्रूपमैश्वरम्।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारमण्डले।।
(सि. शि. ६.४२)

---

१. घोंर - पा.।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति रेणुकभगवत्पादोक्तेः । उक्तं च नीलकण्ठशिवाचार्येण—

नाऽयमात्मेति वाक्येन शिवस्य वरणं तनोः ।
वरणं नाम तद्रूपधारणं विधिमार्गतः ।। इति।

तस्य = मुमुक्षोः, **एष आत्मा** = शिवः, **स्वाम्** = स्वकीयाम्, **तनुम्** = सालोक्यं सारूप्यं सायुज्यं वा फलम्, **विवृणुते** = प्रकाशयति, **'अमृतस्य देवधारणो भूयासम्'** इति श्रुत्यन्तरात्, **'मोक्षार्थिनां मुक्तिहेतुर्लिङ्गधारणमीर्यते'** इति पुराणोक्तेः,

मल्लिङ्गधारणाल्लोके न किञ्चिदपि दुर्लभम् ।
यल्लोकवसतिं काङ्क्षेत् तत्र सिद्ध्यति पार्वति ! ।।

"जो वीरशैव हृदयकमल में चित्ज्योतिःस्वरूप आन्तर लिङ्गधारण और इष्टलिङ्गरूप बाह्य लिङ्गधारण करते हैं, वे वीरशैव पुनः इस घोर कष्टकर संसार के जन्म- मरण की वारं वार आवृत्ति में नहीं पड़ते । उनको परम मुक्ति मिलती है" ।

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्— श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य ने इस वेदमन्त्र के अर्थ के उपबृंहण में 'वरण' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है— "**नायमात्मा** इत्यादि वेदमन्त्र के **तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्** इस चतुर्थ चरणस्थित आत्मस्वरूप के वरण का आशय है परम शिव का वरण । '**वरण**' शब्द का पारिभाषिक अर्थ है शास्त्रीय पद्धति से परम शिव के आन्तर स्वरूप प्राणलिङ्ग का हृदय गुफा में धारण (मन से ध्यान) और इष्टलिङ्ग का वक्षस्थल पर बाह्य धारण"।

फलस्वरूप उस मुमुक्षु वीर शैव शिवभक्त के सम्मुख परमात्मा परम शिव अपने स्वरूप— **सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि** सायुज्य स्वरूप को प्रकाशित करता है । इसमें श्रुति, पुराण और आगम के वचन भी प्रमाण हैं । एक वेद मन्त्र है— **'अमृतस्य देवधारणो भूयासम्'**, 'हम लिङ्गधारण से अमृत पद प्राप्त करेंगे।' पुराण की प्रतिज्ञा है— **'मोक्षार्थिनां मुक्तिहेतुर्लिङ्गधारणमीर्यते'**। हृदयगुफा में प्राणलिङ्ग का धारण (ध्यान) और वक्षस्थल में इष्टलिङ्ग का धारण मोक्ष की कामना करने वाले शिवभक्तों के मोक्ष का हेतु होता है'। कामिकोत्तरागम का वचन है—

मल्लिङ्गधारणाल्लोके न किञ्चिदपि दुर्लभम् ।
यल्लोकवसतिं काङ्क्षेत् तत्र सिद्ध्यति पार्वति ! ।।

शिव-पार्वती के संवाद में शिव पार्वती से कहते हैं— "हे पार्वति! मेरे लिङ्ग को धारण करने से संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती । भक्त जिस लोक में रहने की कामना करता है, वह उसे प्राप्त होता है" ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मलोकं विष्णुलोकं रुद्रलोकमथाऽपि वा ।
सम्प्राप्य योगिविहितं सोमलोकं महालयम् ।
सालोक्यं चैव सारूप्यं सार्ष्टिं सायुज्यमप्यथ ।
प्रयाति धृतलिङ्गो यः सामरस्यपुरस्सरम् ।।

इति कामिकोत्तरवचनाच्च । यद्वा **स्वाम्** = स्वकीयाम्, **तनुम्** = सर्वज्ञतादिरूपाम्, **विवृणुते** = प्रकटयति, **'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्'** इति श्रुतेः,

---

ब्रह्मलोकं विष्णुलोकं रुद्रलोकमथापि वा ।
सम्प्राप्य योगी विहितं सोमलोकं महालयम् ।।
सालोक्यं चैव सारूप्यं सार्ष्टिं सायुज्यमप्यथ ।
प्रयाति धृतलिङ्गो यः सामरस्यपुरस्सरम् ।।

"लिङ्गधारण करने वाला वह शिवभक्त ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, रुद्रलोक अथवा योगियों द्वारा प्रतिपादित मेरे (परमशिव के) निवास स्थान सोमलोक पहुंच कर लिङ्गाङ्ग-सामरस्य के साथ सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि अथवा सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ।"

अथवा— **तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्,** अथवा "वह परम शिव उस मुमुक्षु, शिवभक्त के सम्मुख अपने सर्वज्ञता आदि षड्विध ऐश्वर्यस्वरूप को प्रकट करता है ।" जैसा कि श्रुतिवचन है—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।।

परम शैव उन मुमुक्षु जनों ने अपने ध्यानयोग का अनुसरण करते हुए अपने सात्विक, राजस और तामस गुणों द्वारा आवृत परमशिव में अन्तर्निहित षड्विधऐश्वर्य का साक्षात्कार किया । आगमवचन इसी को प्रमाणित करता है—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।।

(वीरागमे)

महेश्वर (परम शिव) के छः अङ्ग इस प्रकार हैं, जो उसके षड्विध ऐश्वर्य को सूचित करते हैं और षड्विध भक्ति द्वारा प्राप्त होते हैं— १. **सर्वज्ञता** — समष्टिगत और व्यष्टिगत समग्र ज्ञानशीलता, २. **तृप्ति**— परमानन्दस्वभाव, ३. **अनादिबोध**— ऐसा बोध जिसका आरंभ कहां से है इसका आकलन संभव ही नहीं है, ४. **स्वतंत्रता**– स्वयंभू होने के कारण संकल्प-मात्र से ही सृष्टि, स्थिति, संहार आदि की स्वातन्त्र्य-क्षमता, ५. **अलुप्तशक्ति**–

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।। इत्यागमोक्तेः ।।३।।

व्यतिरेकमुखेन लिङ्गधारणस्य साक्षान्मुक्तिकारणत्वमभिधातुं प्रवृत्तोऽयं मन्त्रो बलादीनामपि तत्सहकारितामाह—

नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात् तपसो वाऽप्यलिङ्गात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।४।।

नाऽयमात्मा इति । **अयमात्मा** = प्रकृतः परमात्मा शिवः, **बलहीनेन** = बलं शिवशक्तिः, तद्रहितेन चिच्छक्तिसङ्कोचचित्तशक्तिविशिष्टेन पुरुषेणेत्यर्थः । **न लभ्यः** = न

कभी भी नष्ट न होने वाली ऊर्जा और ६. **अनन्तशक्ति**– काल की परिधि से बाहर कभी भी न रुकनेवाला आत्मबल । परम शिव उक्त षड्विध ऐश्वर्य को अपने भक्त के सम्मुख प्रकाशित करता है ।।३।।

अवतरण— 'यत्र यत्र लिङ्गधारणाभावः, तत्र तत्र मुक्तेरभावः' इस व्यतिरेक-व्याप्ति के द्वारा लिङ्गधारण का साक्षात् मोक्षकारण के रूप में निरूपण करने के लिए बल, अप्रमाद और शारीरिक कष्ट आदि का मोक्ष के सहकारी कारणों के रूप में निरूपण अग्रिम मन्त्र में किया गया है—

***मन्त्रार्थ*— बल (शक्ति) से शून्य व्यक्ति के द्वारा परमात्मा परमशिव का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता । असावधानी करने पर परमात्म-साक्षात्कार सम्भव नहीं है । उसी प्रकार कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतानुष्ठान द्वारा भी उसके यथार्थ स्वरूप को जाना नहीं जा सकता । वीरशैव को छोड़कर अन्य कोई भी परम शिव का साक्षात्कार नहीं कर सकता । बल, अप्रमाद, शरीरशोषणरूप तप और लिङ्गधारण इन उपायों (साधनों) से जो शिवतत्त्ववेत्ता प्रयत्नशील रहता है, उस साधक की आत्मा ब्रह्मधाम में प्रवेश करती है ।।४।।**

नायमात्मा इत्यादि । **नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यः**— बल से शून्य व्यक्ति परम शिव को प्राप्त नहीं कर सकता । यहां **'बल'** शब्द का अर्थ है परम शिव की चित्शक्ति । अर्थात् जिसका चित्त संकुचित चित्शक्ति से विशिष्ट होता है, वह व्यक्ति परम शिवपद प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु जिसका चित्त वारं वार बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख किया जाता है, उस अभ्यास के फलस्वरूप जिसका चित्त चेतन शिवपद पर आरोहण कर

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

प्राप्यः, किन्तु यस्य चित्तं यदाऽन्तर्मुखीभावाभ्यासेन चेतनशिवपदमध्यारुह्य चिच्छक्तिरूपेण परिणमति, तदा तेन पुरुषेण लभ्य इत्यर्थः। **'बललाभे विश्वमात्मसात् करोति'** (प्र. हृ. सू. १५) इति शक्तिसूत्रस्थितेः, **'अतः पशुरसौ सर्वः पाशमुक्तः पतेर्बलात्'** (५.२१) इति सूक्ष्मतन्त्रे पाशमुक्तेः पशुपतिबलकारणकत्वस्योक्तत्वात्।

न च प्रमादात् = अनवधानतादिलक्षणात्, प्रमादशब्दस्येतरश्रद्धादीनामुपलक्षकत्वात् श्रद्धादिषड्विधभक्तिराहित्यात्र लभ्यः, किन्तु श्रद्धादिषड्विधभक्तिसाहित्यादेव लभ्य इत्यर्थः।

चित्शक्ति के रूप में परिवर्तित, रूपान्तरित होता है, वह व्यक्ति उस समय परम शिव का साक्षात्कार कर सकता है। जैसा कि 'शक्तिसूत्र' है— **'बललाभे विश्वमात्मसात् करोति'** (प्र. हृ. सू. १५)। जीव शिव की विकसित चित्शक्ति से सम्पन्न होने पर समग्र विश्व को आत्मसात् करता है, उसे अपने वश में, अपने अनुकूल करता है और अपना लेता है।

अतः पशुरसौ सर्वः पाशमुक्तः पतेर्बलात्'[1] सूक्ष्मागम (५.२१) के इस वचन में पशुपति के बल (चित्शक्ति) को पाशमुक्ति का कारण निरूपित किया गया है। [इसका आशय यह है— ''ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र तृण पर्यन्त सभी जीव जब तक त्रिविध पाश के बन्धन में जकड़े रहते हैं, तब तक **'पशु'** कहलाते हैं। जीव के त्रिविध आणव-मायीय-कार्म मल ही उसके त्रिविध **'पाश'** होते हैं। चित्शक्ति के बल से सम्पन्न परम शिव **'पशुपति'** कहलाता है।] **'पशुपति'** (परम शिव) की चित्शक्ति के बल से त्रिविध अज्ञानमल ग्रस्त **'पशु'** संज्ञक सभी जीव अज्ञानमूलक पाशबन्धन से मुक्त होते हैं, शिवभाव प्राप्त करते हैं। शिवभाव ही जीव का मोक्ष या स्वातन्त्र्य है और पशुभाव पारतन्त्र्य।

न च प्रमादात् (लभ्यः)— 'प्रमादोऽनवधानता' इस अमरकोष के वचनानुसार प्रमाद का अर्थ अवधानशून्यता होता है। यहां अनवधानता का अर्थ अवधानभक्ति आदि षड्विध-भक्तिराहित्य है। भक्ति के छः प्रकार हैं— श्रद्धा, निष्ठा, अवधान, अनुभव, आनन्द और समरस। इन में अवधान भक्ति का भी समविश है। **'प्रमाद'** शब्द का अर्थ अनवधानता

---

१. पूर्ण सन्दर्भ इस प्रकार है—

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं पशवः परिकीर्तिताः।
शिवः पतिरिति प्रोक्तः पाशः कर्म मलादिकम्॥

अतः पशुरसौ सर्वः पाशमुक्तः पतेर्बलात्।
समाश्रयेद् गुरुवरं ततो मुक्तिमवाप्नुयात्॥

(सूक्ष्मागम, ५.२०-२१)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तपसो वा कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूपान्न लभ्यः, किन्तु शिवपूजार्थं सामग्रीसम्पादने शरीरशोषणरूपात् तपसो लभ्य इत्यर्थः।

अलिङ्गाद् वा = अविद्यमानं लिङ्गं यस्य सोऽलिङ्गस्तस्मादलिङ्गिनोऽवीरशैवान्न लभ्यः, किन्तु लिङ्गिनो वीरशैवाल्लभ्य इत्यर्थः, धृतेष्टलिङ्गत्वस्य वीरशैवासाधारणलक्षणत्वात्। **'अन्यत्र नास्ति मल्लिङ्गधारणं मतवर्तिषु'** (पारमे. १.७१) इत्याद्यागमोक्तेः, **'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते'** (ऋ. ९.८३.१) इति श्रुतेः,

अतप्ततनुरज्ञो वै आमः संस्कारवर्जितः।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गमुत्तमम्॥

(सि. शि. ६.६१)

करने पर उसका अर्थ अवधानभक्तिराहित्य यह उपलक्षण है। इसका तात्पर्य है, जो उक्त षड्विधा भक्ति से शून्य होगा वह परम शिव को प्राप्त नहीं कर सकता, अपितु जो उक्त षड्विध भक्ति से सम्पन्न होगा, वही उसे प्राप्त कर सकता है।

तपसो वा न लभ्यः— कृच्छ्र चान्द्रामण आदि तप से वह प्राप्त नहीं हो सकता, अपितु शिवपूजा के लिए पूजा-सामग्री को एकत्र करने के लिए जो शरीर को सुखाना पड़ता है वह एक प्रकार का तप ही है, उस तप से परम शिव को प्राप्त किया जा सकता है।

अलिङ्गाद् वा न लभ्यः (अविद्यमानं लिङ्गं यस्य स अलिङ्गः, तस्मात् अलिङ्गात् = अलिङ्गिनः, अवीरशैवान्न लभ्यः) — जो लिङ्गधारण नहीं करता, वीरशैव से भिन्न वह व्यक्ति **'अलिङ्ग'** कहलाता है। वह परम शिव का साक्षात्कार नहीं कर सकता, किन्तु लिङ्गधारणसम्पन्न वीरशैव ही उसका साक्षात्कार कर सकता है। क्योंकि इष्टलिङ्ग-धारण वीरशैव का असाधारण लक्षण है। पारमेश्वरागम (५.७१) का वचन इसमें प्रमाण है— **'अन्यत्र नास्ति मल्लिङ्गधारणं मतवर्तिषु'**।

वीरशैवागम से भिन्न अन्यमतावलम्बियों में मेरे लिङ्ग धारण का विधान नहीं है। **अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते** (ऋग्वेद ९.८३.१) जिसका शरीर तपोरहित और जिसकी बुद्धि अपरिपक्व होगी वह लिङ्गधारण का अधिकारी नहीं रहता। श्रीरेणुकभगवत्पाद इसी वेदवचन का उपबृंहण इस प्रकार करते हैं—

अतप्ततनुरज्ञो वै आमः संस्कारवर्जितः।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गधारणम्॥

(सि. शि. ६.६१)

"जो लिङ्गपूजा में आवश्यक पूजा सामग्री का संपादन करने के लिए शरीरशोषण-रूप तप नहीं करता, जो अपरिपक्व, वैराग्य से शून्य शिवसंस्कारों से वर्जित, नित्य-अनित्य

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति रेणुकभगवत्पादोक्तेः। शिवरहस्येऽप्युक्तम्—

परिशुद्धेन मनसा नियमेन दृढव्रतः ।
शिवस्य लिङ्गं बिभ्राणः शिवमेव प्रपद्यते ।। इति।

'तपः कृच्छ्रादिकर्म च' इत्यमरकोशप्रसिद्धार्थपरित्यागे मानाभावान्न ज्ञानाद्यर्थकत्वं तपःशब्दस्य । किञ्च, लिङ्गशब्दस्य **'ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः'** इत्यादिना **'सर्वलिङ्गं स्थापयति'** इत्यन्तेन श्रूयमाणलिङ्गशब्दपरम्परायाः परशिवलिङ्गे प्रयोगदर्शनान्न संन्यासाद्यर्थकत्वम्, शब्दशक्तेः पूर्वपूर्वप्रयोगनियतत्वात् । **'लिङ्गे सुषुप्तिः'** (हंसोपनिषत्), **'लिङ्गं ब्रह्मैव केवलम्'** (सामरुद्रसूक्ते), **'मस्तके लिङ्गधारणम्'** (गौतमस्मृतिः),

---

वस्तु की विवेचना करने में असमर्थ और गुरुकृपा की दीक्षा से वंचित रहता है, वह बिना किसी गुरु के आदेश से उत्तम इष्टलिङ्ग धारण न करे"। 'शिवरहस्य' में भी कहा है—

परिशुद्धेन मनसा नियमेन दृढव्रतः ।
शिवस्य लिङ्गं बिभ्राणः शिवमेव प्रपद्यते ।।

नियमपूर्वक शुद्ध अन्तःकरण से वीरशैवधर्म का पालन करनेवाला शिवभक्त परमशिव का इष्टलिङ्ग धारण करते हुए अन्त में परम शिव की शरण में जाता है ।

[आचार्य शंकर **'तपसो वाऽप्यलिङ्गात्'** इसकी भिन्न व्याख्या करते हैं, जो इस प्रकार है— **"तथा तपसो वाप्यलिङ्गाद् लिङ्गरहितात्। तपोऽत्र ज्ञानम्। लिङ्गं संन्यासः । संन्यासरहिताज्ज्ञानान्न लभ्यत इत्यर्थः"** । संन्यासरहित ज्ञान से परमात्मसाक्षात्कार नहीं होता यही आचार्य शंकर का आशय है । उसका खण्डन ब्रह्मश्री शंकर शास्त्री इस प्रकार करते हैं—]

अमरकोष के अनुसार 'तप' का अर्थ कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतानुष्ठान है— **'तपः कृच्छ्रादि कर्म च''** इस प्रसिद्ध अर्थ का परित्याग करने में कोई प्रवल प्रमाण नहीं है । अतः **'तप'** शब्द का अर्थ ज्ञान आदि नहीं हो सकता । उसी प्रकार **लिङ्ग** शब्द का अर्थ 'संन्यास' आदि भी नहीं है, क्योंकि 'महानारायणोपनिषद्' में **'ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः'** इत्यादि से प्रारम्भ कर **'सर्वलिङ्गं स्थापयति'** तक वेदमन्त्रों में 'लिङ्ग' शब्द-परम्परा का प्रयोग परशिव लिङ्ग अर्थ में किया गया है, संन्यास अर्थ में नहीं, क्योंकि शब्दशक्ति (अभिधा) का प्रयोग पूर्व पूर्व शब्दार्थ में नियन्त्रित होता है ।

अनेक श्रुतियों, स्मृतियों और आगमों में लिङ्ग शब्द प्रयोग शिवलिङ्ग अर्थ में ही किया गया है । **'लिङ्गे सुषुप्तिः'** (हंसोपनिषद्) — वह परशिवलिङ्ग में सुषुप्तावस्था (समाधिस्थिति) में होता है, **'लिङ्गं ब्रह्मैव केवलम्'** (सामरुद्रसूक्त) — लिङ्ग परशिवलिङ्ग केवल (अद्वितीय) ब्रह्म है, **'मस्तके लिङ्गधारणम्'** (गौतमस्मृतिः) — मस्तक में शिवलिङ्ग धारण करना चाहिए ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

ब्राह्मणा वीरशैवस्थाः शिखायज्ञोपवीतिनः ।
लिङ्गरुद्राक्षभस्माङ्का ब्रह्मकर्मसमाश्रिताः ।।

(पारमे. १७.६)

इत्याद्यनन्तश्रुतिस्मृत्यादिषु लिङ्गशब्दस्य शिवलिङ्गे एव प्रयोगदर्शनाच्च । किञ्च, **'आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात्'** (ब्र. सू. ४.३.४) इत्यत्र अगस्त्यमुनिसार्वभौमेन स्वकीयलघुसूत्र-वृत्तौ **''लिङ्गे सुषुप्तिः'** इत्यादिबहुश्रुतिषु घट-कुम्भशब्दादिवद् ब्रह्म-लिङ्गशब्दयोः पर्यायत्वावगमात्, तल्लिङ्गात् तत्पूर्वोक्तदहरादिसर्वविद्योपास्यपरशिवात् प्रेरिताः सन्तः, आतिवाहिका मर्त्यलोकशिवलोकान्तरालनिवासिनो देवा दहरादिसर्वब्रह्मविद्योपासकं पुरुषं **सौधसोपान**न्यायेन क्रमक्रमेण निरुपमानन्दनित्यवैभवमहाकैलासं नयन्ति'' इति व्याख्यातत्वाच्च न पराभिमतसंन्यासाद्यर्थकत्वं लिङ्गशब्दस्य ।

ब्राह्मणा वीरशैवस्थाः शिखायज्ञोपवीतिनः ।
लिङ्गरुद्राक्षभस्माङ्का ब्रह्मकर्मसमाश्रिताः ।।

(पारमे. १७.६)

[श्री देवी-ईश्वर-संवाद के अन्तर्गत वीरशैव ब्राह्मण के अन्तर्गत शुद्ध शैव का लक्षण निरूपण करते हुए ईश्वर श्रीदेवी से कहते हैं— ''शुद्धशैव, मिश्रशैव, मार्गशैव, वीरशैव और अवान्तर शैव इस पञ्चविध शैवों में शुद्धशैव वीरशैव ब्राह्मण होते हैं और वे शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते हैं । इष्टलिङ्ग, रुद्राक्ष और भस्म धारण उनका धर्म है । ये सदैव ब्रह्म कर्म में रत रहते हैं '']।

और भी, **'आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात्'** (ब्र. सू. ४.३.४) इस ब्रह्मसूत्र की व्याख्या अगस्त्यमुनिसार्वभौम ने अपनी 'लघुसूत्रवृत्ति' में इस प्रकार की है— **'लिङ्गे सुषुप्तिः'** इत्यादि अनेक वेदमंत्रों में 'ब्रह्म' और 'लिङ्ग' शब्द उसी प्रकार पर्यायवाची प्रतीत होते हैं, जिस प्रकार 'घट'-'कुम्भ' आदि शब्द । अतः इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार होगी— **तल्लिङ्गात्** = उस पूर्वोक्त दहरादि सभी विद्याओं द्वारा उपास्य परशिव से प्रेरित होते हुए **आतिवाहिकाः** = मर्त्यलोक और शिवलोक के निवासी देव दहरादि सर्वविध ब्रह्मविद्या के उपासक पुरुष को **सौधसोपान न्याय** से अर्थात् जिस प्रकार कोई सोपान (सीढियां) चढकर धीरे धीरे प्रासाद पर आरूढ होता है उसी प्रकार क्रमशः उस महाकैलास में पहुँचते हैं, जो अतुलनीय परमानन्द नित्यवैभव की भूमि है ।'' इस प्रकार 'लिङ्ग' शब्द का पर-अभिमत, आचार्य शंकर सम्मत (संन्यास आदि अर्थ) नहीं है, अपितु परशिवलिङ्ग अर्थ ही समुचित है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

एतैरुपायैः = पूर्वोक्तैर्बलादिभिः साधनैः, यो विद्वान् = शिवतत्त्वज्ञानी, **यतते** = यत्नवान् भवति, **तस्य** = साधकस्य, **आत्मा** = शुद्धात्मा शिवांशरूपः, **ब्रह्मधाम** = परशिवज्योतिर्लिङ्गम्, **विशते** = प्रविशति, नदीसमुद्रन्यायेन परशिवसमरसो भवतीत्यर्थः ।।४।।

उक्तलिङ्गाङ्गसामरस्यमेव विशदयति—

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः
कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा
युक्तात्मानः सर्वमेवाऽऽविशन्ति ।।५।।

सम्प्राप्य इति । **ये ऋषयः** = शिवतत्त्वज्ञानिनः, **एनम्** = परमात्मानं शिवम्, **सम्प्राप्य** = सम्यक् सामरस्येन प्राप्य, आधारादिस्थानगताऽऽचारादिलिङ्गोपासनाबलात् प्राणान् धारयन्तोऽपि परशिवमहालिङ्गसमाधिसुखात्मकमुक्तिमनुभूयेत्यर्थः । **ज्ञान-तृप्ताः** – ज्ञानेन = तेनाऽनुभवेन, तृप्ताः = सन्तुष्टाः, **कृतात्मानः** = शिवांशभावेन कृता आत्मानो येषां ते, स्वजीवभावं व्यपोह्य शुद्धशिवांशभावेन स्थिता इत्यर्थः ।

एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वान्— इन उपायों से, पूर्वोक्त बल, षड्विध भक्ति, शरीर-शोषणरूप तप और लिङ्गधारण इन साधनों से जो शिवतत्त्वज्ञानी प्रयत्नशील रहता है, **तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम** = उस साधक की शिवांशस्वरूप निर्मल चित्-शक्ति- स्वरूप आत्मा ब्रह्मधाम अर्थात् परशिवज्योर्तिर्लिङ्ग में विलीन हो जाती है । **नदीसमुद्र- न्याय'** (मु. उ. २.८) से परशिव के साथ लिङ्गाङ्गसामरस्यप्रक्रिया से सामरस्य प्राप्त करती है ।।४।।

अवतरण— अग्रिम मन्त्र में लिङ्गाङ्गसामरस्य को ही विशद किया जा रहा है—

***मन्त्रार्थ*— शिवतत्त्वज्ञानी ऋषि सामरस्यप्रक्रिया से समाधिस्थिति में परमशिव का साक्षात्कार कर उस सामरस्यानुभूति से संतुष्ट आत्मरूप होकर रागादिदोषमुक्त विशुद्ध अन्तःकरणशाली वे वीरशैव परमशिव के साथ समरस होकर उसमें विलीन हो जाते हैं ।।५।।**

व्याख्या : सम्प्राप्य इत्यादि । **सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः** = जो शिवतत्त्ववेत्ता परम शिव को सम्यक् रीति से प्राप्त कर अर्थात् मूलाधारचक्र आदि षट्चक्रों में अवस्थित आचारलिङ्ग आदि छः लिङ्गों की उपासना के सामर्थ्य से प्राणधारण करते हुए भी समाधि स्थिति में परशिवमहालिङ्ग का साक्षात्कारात्मक परमानन्द रूप मुक्ति का अनुभव कर उस सामरस्यानुभव से संतुष्ट होते हैं ।

कृतात्मानः = वे अपने जीवभाव को छिपाकर शुद्ध शिवांशभाव से रहते हैं । जैसा कि 'अनुभवसूत्र' का वचन है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

आत्माऽयं केवलः शुद्धः शिवस्यांऽशः सदाऽमलः ।
नित्यो निरञ्जनः शान्तस्तस्मादात्मा स्वयं शिवः ।।
(अनु. ५.३)

इत्यनुभवसूत्रोक्तेः, **वीतरागाः** = अपगतरागादिदोषाः, अत एव **प्रशान्ताः** = विशुद्ध-सत्त्वाः, ऊर्ध्वमायाक्रान्ता इत्यर्थः । **ते धीराः** = वीराः, **सर्वगम्** = सर्वगतं परशिवलिङ्गम्,

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ।।
(श्वेता. ३.११)

इति श्रुतेः, **सर्वतः** = साकल्येन, **प्राप्य** = तत्र परशिवलिङ्गे समरसीभूय, **युक्तात्मानः** = युक्ताः संयोजिता आत्मानः शुद्धात्मानः शिवत्वमापन्ना इत्यर्थः । **सर्वमेव** =

आत्माऽयं केवलः शुद्धः शिवस्यांऽशः सदाऽमलः ।
नित्यो निरञ्जनः शान्तस्तस्मादात्मा स्वयं शिवः ।।
(अनु. ५.३)

यतः यह जीवात्मा त्रिविध पाशमुक्त केवल शुद्ध विकसित चित्शक्तिस्वरूप सदा निर्मल शिव का अंश रहता है, अतः नित्य निरञ्जन शान्त जीवात्मा स्वयं परम शिव ही है ।

वीतरागाः— यहां 'राग' शब्द जीवस्वरूप के आवरण हेतु 'कला' आदि पांच तत्त्वों का उपलक्षण है, जिन्हें पञ्चकञ्चुक कहते हैं । वे पांच कञ्चुक हैं — १. कला (किञ्चित्-कर्तृत्व), २. विद्या (किञ्चित्-ज्ञत्व), ३. राग (विषयासक्ति), ४. कालतत्त्व (भूत-भविष्य-वर्तमान) और ५. नियति (भाग्य) । जीव इन पांच आवरणों से मुक्त हो जाता है ।

प्रशान्ता विशुद्धसत्त्वाः = अत एव वे परम शिव के छत्तीस तत्त्वों में अन्यतम षष्ठ माया-तत्त्व से भी ऊपर उठ जाते हैं ।

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः = परशिवलिङ्ग की सर्वव्यापकता 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' में इस प्रकार चित्रित है —

सर्वानन-शिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ।।
(श्वेताश्व. ३.११)

जो सभी जीवों में मुख, मस्तक, और कण्ठ के रूप में अवस्थित है, अर्थात् सभी प्राणियों के अवयव, सभी बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण की रचना कर जो उसमें प्रविष्ट है, सभी प्राणियों के हृदयरूप गुफा में जिसका वास है और जो सर्वव्यापी अर्थात् सार्वदेशिक सर्ववस्तुव्यापी और सार्वकालिक है, अतएव भगवान् परम शिव 'सर्वगत' है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सर्वात्मकपरशिवलिङ्गमेव **विशन्ति** = प्रविशन्ति, सर्वात्मक-सर्वाधिक-परशिवाभिन्ना भवन्ति । देहकलाया अपि विलीनत्वाद् देहपातानन्तरं विदेहमुक्तिभाजो भवन्तीत्यर्थः ॥५॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥६॥

वेदान्तेति । यतयः = उक्तबलादिसाधनैर्मोक्षप्राप्तियत्नशीलाः, **वेदान्तविज्ञान-सुनिश्चितार्थाः** = वेदान्तः सप्रणवपञ्चाक्षरमहामनुः, तेन यद् विज्ञानं = श्रवणात्मकं विचाररूपम्, तेन सुनिश्चिता अर्थाः = लिङ्गं च अङ्गं च तयोः सामरस्यं च ते एते पदार्थाः येषां ते ।

इस प्रकार सर्वगत परमशिव के साथ समरस होकर वे वीरशैव, **युक्तात्मानः सर्वमेवाऽऽविशन्ति** = अपने शुद्ध जीवात्मा को परमात्मा परमशिव के साथ संयुक्त करते हुए सर्वात्मक परलिङ्ग में ही विलीन होते हैं । सर्वात्मक-सर्वाधिक परशिव से अभेद प्राप्त करते हैं । यतः उनकी देहकला का भी विलय होता है, अतः देहपात के पश्चात् भी वे विदेहमुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥५॥

***मन्त्रार्थ*— षड्विधा भक्ति, शरीरशोषणरूप तप और लिङ्गधारण— इन उपायों से प्रयत्नशील जो वीरशैव वेदान्त (पराविद्या = पञ्चाक्षर मन्त्र) द्वारा लिङ्ग, अङ्ग और उनके सामरस्य का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते हैं अथवा जो वेदान्त दर्शन (उपनिषद् दर्शन) द्वारा पति-पशु और पाश का निसंदिग्ध अर्थ जानते हैं, परम-प्रकाश-स्वरूप परम शिव में अपना मनोनिवेश करने से जिनका अन्तःकरण शुद्ध अर्थात् विकसित चित्-शक्ति-स्वरूप होता है, वे मायातत्त्व से ऊपर उठते हैं । इनमें सकाम भक्त अपने लिङ्ग-शरीर से शिवलोक पहुंच कर सभी सुख भोगते हैं और अन्त में शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं । पाठभेद मानने पर शुद्ध अन्तःकरणशाली सभी वीरशैव ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक में सर्वोत्कृष्ट और सर्वोच्च कैलास अथवा शिवलोक पहुंच कर लिङ्गशरीर धारण कर शिवलोक में प्राप्य सुखों का उपभोग कर अन्त में विदेह-कैवल्य प्राप्त करते हैं ॥६॥**

व्याख्या : यतय इत्यादि । **यतयः** = जो वीरशैव परमशिव की चित्शक्ति, श्रद्धा आदि षड्विध भक्ति, शरीरशोषण रूप तप और लिङ्गधारण इन साधनों से मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, **वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः**— (वेदान्तेन यद् विज्ञानम्, तेन सुनिश्चिता अर्था येषां ते) = जो वीरशैव वेदान्त ओङ्कारसहित पञ्चाक्षरी महामन्त्र विद्या के

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शिवस्य बाह्यपूजान्ते तदेकन्यस्तमानसः ।
वेदान्तार्थविचारोऽयं कार्यः पाशनिवृत्तये ।।

वेदान्तार्थविचारोऽयं श्रुतिभिः श्रवणं भवेत् ।
श्रुतिः पञ्चाक्षरो मन्त्रो मन्त्रार्थस्यैव चिन्तनम् ।।

तच्चिन्तनानुकूलास्ताः श्रुतयः सकला अपि ।
शास्त्राणि स्मृतयश्चैव पुराणानि दशाऽष्ट च ।।

(क्रिया. २७.१२३)

इति श्रीनीलकण्ठशिवाचार्योक्तेः । यद्वा— वेदान्तपदेन यावद्वेदान्त उच्यते, सङ्कोचे मानाभावात् । तेन विज्ञानं श्रवणादिरूपम्, **'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो**

विज्ञान = श्रवण-मनन के द्वारा लिङ्ग, अङ्ग और उनके सामरस्य इन पदार्थों का निश्चय करते हैं । जैसा कि श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य अपने क्रियासार में कहते हैं—

शिवस्य बाह्यपूजान्ते तदेकन्यस्तमानसः ।
वेदान्तार्थविचारोऽयं कार्यः पाशनिवृत्तये ॥

वेदान्तार्थविचारोऽयं श्रुतिभिः श्रवणं भवेत् ।
श्रुतिः पञ्चाक्षरो मन्त्रो मन्त्रार्थस्यैव चिन्तनम् ॥

तच्चिन्तनानुकूलास्ताः श्रुतयः सकला अपि ।
शास्त्राणि स्मृतयश्चैव पुराणानि दशाऽष्ट च ॥

(क्रिया. २७.१२३)

इसका आशय यह है कि वीरशैव इष्ट शिवलिङ्ग की बाह्यपूजा करने के पश्चात् अपने त्रिविध पाशों से मुक्ति पाने के लिए वेदान्त के अर्थ का इस प्रकार विचार करें । श्रुतियों (वेदादि) द्वारा श्रुति (पञ्चाक्षर महामन्त्रविद्या) का श्रवण और मन्त्रार्थ का चिन्तन करना चाहिए । श्रुतियों के अन्तर्गत चार वेद और छः वेदाङ्गों के साथ पञ्चाक्षर-महामन्त्र के अर्थ-चिन्तन के अनुकूल सम्पूर्ण शास्त्र, समग्र स्मृतियां और अठारह पुराण समाविष्ट हैं ।

अथवा **वेदान्त-विज्ञान-सुनिश्चितार्थाः** इस समस्त पद का 'वेदान्तेन यद् विज्ञानं तेन सुनिश्चिता अर्था येषां ते' इस प्रकार समासविग्रह करते हुए इसकी व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है— "**वेदान्त** पद का अर्थ समस्त उपनिषद् दर्शन संकेतित है, क्योंकि इस पद के अर्थ को संकुचित करने में कोई प्रमाण नहीं है । उससे श्रवण-मनन-निदिध्यासनस्वरूप विशिष्ट ज्ञान वेदान्तविज्ञान कहलाता है । जैसा कि वेदमन्त्र है— **आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः** (परम शिव-परमात्मा का 'दर्शन'

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

निदिध्यासितव्यः' (बृह. २.४.५) इति श्रुतेः। तेन **सुनिश्चितार्थाः** = (**सु** =)सम्यक् संशयादिराहित्येन, **निश्चिताः** = प्रमाविषयीकृताः, **अर्थाः** = पदार्थाः पतिपशुपाशरूपा येषां ते वेदान्त-विज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्तः। **संन्यासयोगात्** = सम्यग् न्यासश्चित्तस्य ज्योतिर्लिङ्गेऽर्पणम्। अविच्छिन्नतैलधारावदखण्डज्योतिर्लिङ्गाकारपरिणामात्मकध्यानमित्यर्थः। तेन यो **योगः** = समाधिः, **'युज् समाधौ'** इति धात्वर्थात्। तस्मात् **शुद्धसत्त्वाः** = परिशुद्धचित्ताः = अपगतसुखदुःखमोहमयचितिशक्तिसङ्कोचरूपाऽधोमायात्मकचित्ता उपगतचितिशक्त्यात्मकोर्ध्वमायारूपशुद्धय इत्यर्थः। **ते** सर्वे भक्ताः। **ब्रह्मलोके तु** = शिवलोकेऽपि शिवस्य ब्रह्मापरपर्यायत्वात्, **स्थित्वा** = तत्र स्वेच्छानुसारेण सर्वैश्वर्ययोगमनुभूय, ततः **परान्तकाले** = **परस्य** तच्छिवलोकभोगवासनामयस्य शरीरस्य **अन्तकाले**, **परामृतात्** = परात्

अर्थात् उसका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए। (बृह. २.४.५) इस वेदान्तविज्ञान के द्वारा जो वीरशैव पति, पशु और पाशरूप पदार्थों का निश्चय करते हैं, वे उन्हें अपनी प्रमा का विषय बनाते हैं।

संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ('सम्यक् न्यासः संन्यासः, तेन यो योगः समाधिः, तस्मात्') = संन्यास का अर्थ है सम्यक् रीतिसे चित्त का ज्योतिर्लिङ्ग में समर्पण, अर्थात् अविच्छिन्न तैलधारा के समान ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में रूपान्तरित होनेतक चित्त का ज्योतिर्लिङ्ग में न्यास, निवेश करना। उससे जो योग (समाधि) किया जाता है, उसे '**समाधियोग**' कहते हैं। यहां 'युज्' धातु का पाठ 'युज् समाधौ' इस प्रकार समाधि अर्थ में होने से 'योग' शब्द का अर्थ समाधि है। उस ज्योर्तिर्लिङ्ग के ध्यानयोग द्वारा साक्षात्कार से उन वीरशैवों का अन्तःकरण सर्वतः शुद्ध हो जाता है। माया के प्रभाव से चित्त का स्वरूप दो प्रकार का है— 'अधोमाय' और 'ऊर्ध्वमाय'। सुख, दुःख और मोह के प्रभाव से चितिशक्ति से संकुचित चित्त 'अधोमाय' कहलाता है। विकसित चितिशक्ति जिसकी होती है, वह चित्त 'ऊर्ध्वमाय' होता है। अर्थात् जो सुख दुख और मोह से परे होते हैं और जिनके चित्त का चितिसंकोच हट जाता है और जो अपनी विकसित चितिशक्ति के कारण माया से ऊपर होते हैं, उनकी अन्तःकरण-शुद्धि होती है। सतत ध्यानयोग से जो अपने चित्त का निवेश ज्योतिर्लिङ्ग में करते हैं, उन वीरशैवों का अन्तःकरण सुख, दुःख और मोह से परे होता है, उनका संकुचित चित्त विकास प्राप्त करता है ऐसे विकसित चितिशक्ति- संपन्न वीरशैवों का अन्तःकरण शुद्ध होता है। **ते** = वे सभी भक्त, **ब्रह्मलोके तु** = शिवलोक में भी, क्योंकि ब्रह्मशब्द शिव का पर्यायवाची है। **स्थित्वा** = रहकर, वहां सर्वविध ऐश्वर्य सुख का उपभोग कर, उसके पश्चात् **परान्तकाले** = उस शिवलोक में उपभोग की कामना से वासित शरीर का अन्त समय आने पर, **परामृतात्** = सर्वोच्च, सब से ऊपर अवस्थित उत्कृष्ट कैलास से भी **परिमुच्यन्ति** = सर्वतः मुक्ति पाते हैं, अपने सूक्ष्म

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

सर्वोर्ध्ववर्तित्वादुत्कृष्टात् कैलासात्, **परिमुच्यन्ति** = सूक्ष्मपरशरीरं विहाय परिपूर्णं शिवसायुज्यं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

तथा अन्यत्र दहरविद्यायां श्रूयते— **'यदिहाऽऽत्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सर्वान् कामान्'** इति परलोकवासनायुक्तभक्तानां सर्वकामावाप्तेर्दर्शितत्वात्। तस्मादनेन मन्त्रेण परलोकभोगवासनायुक्तभक्ताः कामवासनया शिवलोकमनुप्रविश्य तत्र सर्वान् कामाननुभूय वासनाक्षये तल्लोकादेव शिवसायुज्यं प्राप्नुवन्तीति निश्चीयते। निष्काम-सकामभक्तानां फलभेदेऽपि चरमसायुज्यफलमेकमेव। **'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे** इति पाठे **ब्रह्मलोकेषु** = चतुर्मुख-विष्णु-शिवलोकेषु स्कान्दशिवधर्मोत्तरादिषु तारतम्येन वर्णितेषु, **परामृताः** = परः सर्वोर्ध्ववर्तित्वात् सर्वोत्कृष्टोऽमृतो नित्यः कैलासः प्राप्यत्वेन येषां वर्तते, ते कैलासापरपर्यायशिवलोकं प्राप्ताः सर्वे भक्ताः। उक्तं च **पारमेश्वरतन्त्रे**—

न कैलासात् परो लोको न दैवं शङ्करात् परम्।
न वीरशैवाच्च मतं नास्ति मुक्तेः परं सुखम्।।

(पार. १०.८९) इति।

शरीर का परित्याग कर परिपूर्ण शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। जैसा कि दहरविद्या का श्रुतिवचन (वेदमन्त्र) है— **"यदि- हाऽऽत्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सर्वान् कामान्"**।

इहलोक में समाधियोग से आत्मानुसन्धान द्वारा सकाम भक्त सूक्ष्मशरीर से शिवलोक में विचरण करते हैं और सभी अपने अभीष्ट मनोरथों की पूर्ति करते हैं। यतः इस मन्त्र द्वारा परलोक (शिवलोक) आदि की वासना से वासित शिवभक्तों की सम्पूर्ण मनोरथप्राप्ति प्रदर्शित की गयी है, अतः इस मन्त्र से यह निश्चित होता है कि परलोक (शिवलोकादि) में उपभोग की वासना रखने वाले भक्त अपनी कामवासना से शिवलोक में प्रवेश करते हुए वहां सभी प्रकार के विषयसुखों को भोग कर जब उनकी वासना का क्षय होता है, तब उसी शिवलोक से शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। यद्यपि निष्काम और सकाम भक्तों के फल में अन्तर यह होता है, तथापि दोनों का चरम फल शिवसायुज्य एक ही है।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे इस पाठभेद को स्वीकार करने पर इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी — **ते सर्वे** = वे सभी वीरशैव, **ब्रह्मलोकेषु** = स्कन्द, शिवधर्मोत्तरपुराण आदि पुराणों में अपनी अपनी श्रेणी के अनुसार तर-तमभाव से वर्णित ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, और शिवलोक में, **परामृताः** = (परोऽ- मृतो येषां ते)— जिनका चरम लक्ष्य सर्वोच्च शिखर पर होने के कारण **'पर'** सर्वोत्कृष्ट, **'अमृत'** (मरणधर्मरहित) अतएव नित्य कैलास रहता है, वे सभी शिवभक्त कैलास अथवा शिवलोक प्राप्त करते हैं। जैसा कि पारमेश्वर-तन्त्र (पारमेश्वरागम) का वचन है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परिमुच्यन्ति = शिवलोकोचितशरीरधारणेन तत्रत्यभोगान् भुक्त्वा लिङ्गशरीरं विहाय शिवसायुज्यं विदेहकैवल्यं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । **शिवधर्मोत्तरे** पाताललोकमारभ्य तपोलोकपर्यन्तं त्रयोदशलोकानामुपरिभावं पूर्वपूर्वलोकापेक्षयोत्तरोत्तरलोकस्य योजनसंख्यापुरस्सरं वर्णयित्वा अनन्तरम्

सत्यलोकस्तपोलोकात् कोटिषष्टिसमुच्छ्रितः ।

इति ब्रह्मलोकस्य तपोलोकापेक्षयोपरिभावमुक्त्वा अनन्तरम्—

ब्रह्मलोकाद् विष्णुलोको द्विगुणेन समुच्छ्रितः ।
विस्तरेण तदर्धं च दिव्यभोगसमन्वितः ।।

विष्णुलोकाच्च परतः श्रीमच्छिवपुरं महत् ।
द्वात्रिंशत्कोटिविस्तीर्णं तदर्धं च समुच्छ्रितम् ।
सूर्यायुतप्रतीकाशं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।।

न कैलासात् परो[१] लोको न दैवं शङ्करात् परम् ।
न वीरशैवाच्च मतं नास्ति मुक्तेः[२] परं सुखम् ।।

(पारमे. १०.८९)

कैलास से अन्य कोई अन्यश्रेष्ठ स्थान नंहीं है, भगवान् शङ्कर से बढ़कर कोई अन्य सर्वोत्कृष्ट देवता नहीं है, वीरशैवदर्शन से श्रेष्ठ अन्य कोई दर्शन नहीं है और सभी प्रकार के सुखों में मोक्ष से बढ़कर चरम अथवा परमोत्कृष्ट अन्य कोई सुख (आनन्द) नहीं है ।

परिमुच्यन्ति = वे शिवलोक के योग्य लिङ्ग अथवा सूक्ष्म शरीर धारण करने के कारण उसके द्वारा वहां के भोगों का उपभोग कर और अनंतर अपने लिङ्गशरीर (सूक्ष्म शरीर) का परित्याग कर शिवसायुज्य या विदेहकैवल्य (विदेहमुक्ति को) प्राप्त करते हैं । जैसा कि 'शिवधर्मोत्तर पुराण' में पाताल लोक से लेकर तपोलोक तक तेरह लोकों के ऊपर ऊपर अवस्थित पूर्व पूर्व लोक की अपेक्षा उत्तरोत्तर लोक का उनकी योजन संख्या के साथ वर्णन करते हुए अनन्तर—

ब्रह्मलोकाद् विष्णुलोको द्विगुणेन समुच्छ्रितः ।
विस्तरेण तदर्धं च दिव्यभोगसमन्वितः ।।

विष्णुलोकाच्च परतः श्रीमत् शिवपुरं महत् ।
द्वात्रिंशत्कोटिविस्तीर्णं तदर्धं च समुच्छ्रितम् ।

पाठभेदः— १. वरो ।
२. मुक्ति ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इत्यादिना शिवलोकस्य सर्वोपरिभावमुक्त्वा अनन्तरम्—

सम्प्राप्ता ये परं स्थानं ज्ञानयोगरता नराः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारमण्डले ।।

इत्यादिना पुनरावृत्तिरहित-शिवसायुज्य-मुक्तेर्वर्णितत्वाद् ब्रह्मलोकशब्दितलोकत्रयमध्ये शिवलोकस्य सर्वोत्कृष्टत्वम्, तल्लोकप्राप्तानां भक्तानां तल्लोकभोगवासनाक्षये शिवसायुज्यं च सिद्धम्। **'तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति'** इति श्रुत्या मूर्धन्यया नाड्या सर्वोर्ध्ववर्तिशिवलोकं गतस्याऽमृतत्वप्राप्तेर्वर्णितत्वात्, **'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते'** इति परशिवब्रह्मलोकं गतस्याऽनावृत्तेः श्रूयमाणत्वाच्च ।।६।।

लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मकशिवसायुज्यमुक्तिक्रममाह—

सूर्यायुतप्रतीकाशं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।।

इत्यादि द्वारा शिवलोक की सर्वोच्च सत्ता का वर्णन किया गया है। इसका आशय इस प्रकार है— "ब्रह्मलोक और विष्णुलोक से दूनी ऊंचाई से अवस्थित विस्तार में उनसे आधा, दिव्य भोगों से सुशोभित विष्णुलोक के पश्चात् ऐश्वर्यसम्पन्न महिमामण्डित शिवलोक है। वह बत्तीस करोड योजन विस्तीर्ण और उससे आधी उंचाई पर अवस्थित है। वह अयुत सूर्यों के समान प्रभासम्पन्न और सभी प्रकार के मनोरथों की सिद्धि करने वाला है।"

इस प्रकार शिवलोक की सर्वोच्च सत्ता का वर्णन करने के बाद —

सम्प्राप्ता ये परं स्थानं ज्ञानयोगरता नराः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरे संसारमण्डले ।।

इस प्रकार जन्म-मरण-चक्र की पुनरावृत्ति से रहित शिवसायुज्यमुक्ति का वर्णन है। इसका आशय इस प्रकार है—"जो ज्ञानयोगी शिवभक्त इस परमोत्कृष्ट कैलास अथवा शिवलोक पहुंच जाते हैं, वे पुनः इस घोर संसारचक्र में नहीं पड़ते। उनको वारंवार संसारमण्डल में जन्म नहीं लेना पड़ता।" इस वर्णन से यह सिद्ध है कि 'ब्रह्मलोक' शब्द से संकेतित तीन लोकों के बीच शिवलोक सर्वोत्कृष्ट है और वहां पहुंचने वाले शिवभक्तों द्वारा उस लोक का भोग भोगने पर जब वासनाक्षय होता है, तब उन्हे शिवसायुज्यप्राप्ति होती है। **तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति** इस वेदमन्त्र से मूर्धन्य नाड़ी द्वारा सर्वोच्च शिवलोक के प्राप्त करने पर अमृतपदप्राप्ति का वर्णन किया गया है। उसी प्रकार **न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते** इस प्रकार वेद मन्त्र में परशिव-ब्रह्मलोक प्राप्त करने वाले की जन्म-मरण-चक्र की पुनरावृत्ति नहीं होती, यह वर्णन मिलता है ।।६।।

अवतरण— लिङ्गाङ्गसामरस्यात्मक शिवसायुज्य मुक्ति का क्रम इस प्रकार है—

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ।।७।।

गताः कला इति । विरागनिरतस्य विदुषो मोक्षकाले **पञ्चदश = 'स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धाम्'** इत्यादिना प्रश्नोपनिषद्युक्ताः पञ्चदशसंख्याकाः, **कलाः** = प्राणश्रद्धा-स्थूलभूतपञ्चेन्द्रियमनोऽन्न-वीर्य-तपो-मन्त्र-कर्मलोकात्मका देहभागाः, **प्रतिष्ठा गताः ।**

***मन्त्रार्थ*— मोक्ष के समय विरक्त शिवभक्त की पन्द्रह उत्तरोत्तर कला पूर्व पूर्व कला में विलीन होती है । इन्द्रिय-देवताएं पूर्व पूर्व इन्द्रियाधिष्ठात्री देवता में विलीन होती है । प्रारब्ध के अतिरिक्त उनके सभी कर्म और चिदंशस्वरूप शुद्धात्मा भी सभी नित्य परशिवलिङ्ग में साक्षात् अथवा परम्परासम्बन्ध से समरस होते हैं ।।७।।**

व्याख्या : गताः कला इत्यादि । [इस मन्त्र में संहारक्रम से शरीर के अवयव के रूप में वर्तमान उन कलाओं के विलय की ओर संकेत किया है, जिनका उल्लेख सृष्टिक्रम से प्रश्नोपनिषद् में है । भरद्वाजपुत्र सुकेशा से कोसल देश के राजकुमार ने आकर जिज्ञासा की थी— **षोडशकलं भारद्वाज ! पुरुषं वेत्थ,** भारद्वाज जी! क्या आप सोलह कलाओं से मण्डित पुरुष को जानते हैं ? जब वे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके, तब उन्होंने महर्षि पिप्पलाद के आश्रम में रहते हुए उनसे वही जिज्ञासा दुहराई । **तं त्वा पृच्छामि क्वाऽसौ पुरुषः?** मैं आप से पूछता हूँ, वह षोडशकलासम्पन्न पुरुष कहां है? महर्षि भरद्वाज ने उत्तर दिया— **इहैवाऽन्तः शरीरे सोम्य ! स पुरुषोः, यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति, "सोम्य !** वह पुरुष तुम्हारे ही शरीर के भीतर हृदयरूपी गुफा में रहता है, जिनमें ये सोलह कलाएं प्रकट होती हैं" । परमात्मा का सृष्टिक्रम निरूपित करते हुए महर्षि पिप्पलाद भारद्वाज सुकेशा से कहते हैं— **स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद् वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु नाम च** (प्र. उ. ६.४) ।

निष्कल परब्रह्म परमेश्वर ने सर्व प्रथम षोडशकलासम्पन्न पुरुष प्राण (हिरण्यगर्भ) की सृष्टि की, उससे क्रमशः पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर श्रद्धा, (पञ्च महाभूत-) आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी और इन्द्रिय; मन (अन्तःकरण), अन्न, वीर्य, तप, मन, कर्म (कर्मफल), लोक और लोक में नाम-रूप की सृष्टि हुई । उसी की ओर यह वेदमन्त्र संकेत कर रहा है—]

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

'प्रतिष्ठाः' इति द्वितीयाबहुवचनम्, स्वस्वकारणलिङ्गं प्राप्ता भवन्तीत्यर्थः। **सर्वे देवाश्च** = ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियतदभिमानिदेवाश्च, **प्रतिदेवतासु** = स्वस्वकारणाधिष्ठात्रीषु सद्योजाताद्याह्वयासु मूर्तिषु, गता भवन्तीत्यनुषङ्गः। तदुक्तमनुभवसूत्रे—

श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च।
ईश्वरीमीश्वरस्यैनामीशानाख्यां विदुर्बुधाः॥

त्वक्-पाणि-स्पर्शवायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम्।
पुरुषाख्यां विदुः पूर्वे पुराणागमवेदिनः॥

चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याऽग्नेस्तथैव च।
अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः॥

रसनाया उपस्थस्य रसस्याऽपां तथैव च।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्तिं मुनिवरा विदुः॥

गताः कला पञ्चदश प्रतिष्ठाः— विषयों में अनासक्त वैराग्यसम्पन्न शिवतत्त्व-ज्ञानी के मोक्ष के समय **स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धाम्** इत्यादि मन्त्र से प्रश्नोपनिषद् में नामतः परिगणितः उसकी पन्द्रह कलाएं – प्राण श्रद्धा, पंच महाभूत, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक ये देह के अवयव क्रमशः विलय प्राप्त करते हैं। 'प्रतिष्ठाः' यह द्वितीया बहुवचन में प्रयोग है। ये उत्तरोत्तर कलाएं अपने पूर्व पूर्व कारण लिङ्ग में विलीन होती हैं।

देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु = सभी देव अपनी प्रतिदेवता में विलय प्राप्त करते हैं। अर्थात् पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और उनके अभिमानी देवता अपने अपने कारण की अधिष्ठात्री सद्योजात आदि देवताओं में विलय प्राप्त करती हैं। जैसा कि अनुभव- सूत्र का वचन है—

श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च।
ईश्वरीमीश्वरस्यैनामीशानाख्यां विदुर्बुधाः॥
त्वक्-पाणि-स्पर्श-वायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम्।
पुरुषाख्यां विदुः पूर्वे पुराणागमवेदिनः॥
चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याऽग्नेस्तथैव च।
अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः॥
रसनाया उपस्थस्य रसस्याऽपां तथैव च।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्तिं मुनिवरा विदुः॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

घ्राणस्य चैव पायोश्च गन्धस्य च भुवस्तथा।
सद्योजाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं सम्प्रचक्षते ।। इति।

(अनु. ६.१२-१६)

कर्माणि = प्रारब्धव्यतिरिक्तानि, प्रारब्धस्य भोगमन्तरा विलयाभावात्। **विज्ञानमय आत्मा च** मलत्रयापसरणात् केवलचिदंशरूप: शुद्धात्मा च सर्वे उक्तकर्मादय: **सर्वे**

घ्राणस्य चैव पायोश्च गन्धस्य च भुवस्तथा।
सद्योजाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं सम्प्रचक्षते ।।

(अनु. ६.१२-१६)

अर्थ— विद्वानों ने श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय, शब्द और आकाश की अधिष्ठात्री देवता को ईश्वर परम शिव की **ईशानमूर्ति** कहा है। प्राचीन पुराण और आगमवेत्ताओं ने त्वगिन्द्रिय, पाणि, स्पर्श, और वायु की अधिष्ठात्री देवता को **तत्पुरुष-मूर्ति** कहा है। मनीषी विद्वान् चक्षुरिन्द्रिय, पाद, रूप और तेज की अधिष्ठात्री देवता को **अघोर-मूर्ति** कहते हैं। वे रसनेन्द्रिय, उपस्थ, रस और जल की अधिष्ठात्रीं देवता को **वामदेव-मूर्ति** कहते हैं और घ्राणेन्द्रिय, पायु, गन्ध और पृथिवी की अधिष्ठात्री देवता को **सद्योजात-मूर्ति** कहते हैं। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

क्रम	इन्द्रिय	विषय	भूत	देवता	प्रतिदेवता
१	श्रोत्रेन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) वागिन्द्रिय (कर्मेन्द्रिय)	शब्द	आकाश	सदाशिव	ईशान
२	त्वगिन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) पाणि (कर्मेन्द्रिय)	स्पर्श	वायु	ईश्वर	तत्पुरुष
३	चक्षुरिन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) पाद (कर्मेन्द्रिय)	रूप	अग्नि (तेज)	रुद्र	अघोर
४	रसनेद्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) उपस्थ (कर्मेन्द्रिय)	रस	जल	विष्णु	वामदेव
५	घ्राणेन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) वायु (कर्मेन्द्रिय)	गन्ध	पृथिवी	ब्रह्मा	सद्योजात

निष्कर्ष यह है कि इस तालिका में निर्दिष्ट ज्ञानेन्द्रिय, उसका विषय, कर्मेन्द्रिय, और महाभूतों की देवताएं भिन्न भिन्न होती हैं, जो मोक्ष के समय सद्योजात आदि मूर्तियों में विलय प्राप्त करती हैं।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

परे = सर्वोत्कृष्टे, **अव्यये** = नित्ये परशिवमहालिङ्गे, **एकीभवन्ति** = साक्षात् परम्परासम्बन्धेन समरसा भवन्ति। भूतभौतिकानां स्वस्वकारणसामरस्यात् तदभिमानिब्रह्मादिदेवानामपि सामरस्यात् नदीसमुद्रन्यायेनैक्यमविभागात्मकमभेदं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥७॥

ऐक्यात्मकषष्ठाङ्गस्याऽऽत्मनः शुद्धस्याऽविभागात्मकमभेदं दृष्टान्तपूर्वकमाह—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः
परात् परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८॥

'यथा' इति। **नद्यः** = गङ्गायमुनासरस्वत्याद्याः, **स्यन्दमानाः** = गच्छन्त्यः, **नामरूपे** = नाम च गङ्गादि, रूपं च शुक्लादि ते, **विहाय** = त्यक्त्वा, **यथा समुद्रे अस्तम्** = अविभागं

कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति— यतः प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण त्रिविध कर्मों में प्रारब्ध कर्मों का विलय भोग के बिना नहीं होता, उन्हें भोगना ही पड़ता है, तभी उनका क्षय होता है। अतः उसके अतिरिक्त संचित तथा क्रियमाण कर्मों का विलय सर्वोत्कृष्ट अव्यय अविनाशी नित्य परशिव महालिङ्ग में होता है। उसी प्रकार विज्ञानमय आत्मा का, अर्थात् त्रिविध अज्ञानमल का आवरण हटने के पश्चात् केवल (निरुपाधिक) निर्मल चिदंशस्वरूप शुद्ध जीवात्मा का विलय भी उसी में होता है। अर्थात् संचित तथा क्रियमाण कर्म एवं शुद्ध आत्मा सभी उस परशिव महालिङ्ग में साक्षात् अथवा परम्परा सम्बन्ध से समरस, एकरूप हो जाते हैं। यतः भूत और भौतिक पदार्थों का जिस प्रकार अपने अपने कारण में सामरस्य स्थापित होता है, उसी प्रकार उनके अभिमानी ब्रह्मदेव आदि भी अपने अपने प्रतिदेवता के साथ सामरस्य स्थापित करते हैं। फलतः **नदीसमुद्रन्याय** से वे सभी ऐसी एकता-अभेद स्थापित करते हैं, जिनसे उनका विभाग नहीं हो सकता ॥७॥

अवतरण— इस मन्त्र में नदी-समुद्र-दृष्टांत के द्वारा ऐक्यात्मक षष्ठ अङ्गस्थलापन्न शुद्ध जीवात्मा के अविभागात्मक अभेद का निरूपण है—

***मन्त्रार्थ*— जिस प्रकार नदियां बहती हुई अपना नाम-रूप आदि छोड़कर समुद्र में अस्तंगत होती हैं, उसी प्रकार शिवज्ञानी वीरशैव योगी नाम-रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है ॥८॥**

व्याख्या : यथा नद्य इत्यादि। यथा नद्यः स्यन्दमाना नाम-रूपे विहाय समुद्रे अस्तं गच्छन्ति — जिस प्रकार गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियां बहती हुई अपना गंगा आदि नाम और शुक्ल आदि रूप का परित्याग कर समुद्र में अस्तंगत होती हैं, अर्थात्

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

गच्छन्ति = प्राप्नुवन्ति। 'इयमियं नदी'ति भेदेन न प्रतीयन्ते, किन्तु समुद्रं प्राप्ताः समुद्रसमरसाः समुद्रनामरूपापन्ना एव भवन्ति। तथा **विद्वान्** = षट्स्थलब्रह्मज्ञानी, **नामरूपात्** = नाम च चतुर्मुखादि, रूपं च पृथिव्याद्यङ्गं तस्मात्, **विमुक्तः** = पृथिव्याद्यङ्गाभिमानं तदभिमानप्रयुक्तब्रह्माद्यभिधानं च त्यक्त्वा, **परात्** = चिच्छक्तिरूपात्, **'अक्षरात्परतः परः'** (२.१.२) इत्यत्र पञ्चम्यन्तपदोपस्थाप्यात्। **परम्** उत्कृष्टम्, तां शक्तिं स्वाहन्तयाऽऽच्छाद्य स्थितत्वात्, **'ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः'** इति श्रुतेः। **दिव्यं** = स्वप्रकाशतामय-चिच्छक्तिवपुषि स्थितम्, **पुरुषम्** = सर्वस्मिन् परिपूर्णं परशिवब्रह्म। **उपैति** = प्राप्नोति, तत्र सामरस्यं = सायुज्यं गच्छन्तीत्यर्थः।

अयमत्राशयः — संन्यास्यवधूतयोगि-पाशुपत-शिवलिङ्गि-वीर-वीरशैव-महामहेश्वर-यत्यपरपर्याय-वीरशैवब्राह्मणवर्णसञ्जनित-विरक्तानां कैलासादिपदाकाङ्क्षाराहित्याभ्यासस्यापि

'यह अमुक नदी है' इत्यादि आकार से समुद्र में मिलने पर उनका भेद प्रतीत नहीं होता, किन्तु समुद्र में पहुंचकर समुद्र के साथ समरस होकर समुद्र के नाम और रूप को ही धारण करती हैं।

तथा विद्वान् नाम-रूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् — उसी प्रकार षट्स्थलब्रह्मवेत्ता विद्वान् 'चतुर्मुख' ब्रह्मदेव आदि नाम और रूप-पृथिवी आदि अङ्ग का परित्याग कर अर्थात् पृथिवी आदि अङ्गाभिमान और उस अभिमान से प्रयुक्त ब्रह्मदेव आदि आभिमान को छोड़कर 'परात्पर' **अक्षरात् परतः परः** (मु. उ. २.१.२) इस मन्त्र में संकेतित पञ्चमी विभक्ति से निर्दिष्ट **'पर'** पद द्वारा उपस्थापित चिच्छक्तिस्वरूप शिव से भी अपनी अहंता से उसे आच्छादित करने के कारण उत्कृष्ट 'दिव्य' स्वप्रकाश चिच्छक्तिमय शरीर में वर्तमान पूर्ण पुरुष परशिव ब्रह्म को प्राप्त करता है। इसमें 'महानारायणोपनिषद्' वेदमन्त्र प्रमाण है— **'ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्वलिङ्गाय नमः'**। जीव उस परशिव ब्रह्म के साथ सामरस्य, सायुज्य प्राप्त करता है।

इसका आशय यह है—यतः संन्यासी, अवधूत योगी, पाशुपत शिवलिङ्गी, वीर, वीरशैव, महामहेश्वर, यति-वीरशैव और ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न विरक्तों के लिए कैलास आदि पद प्राप्ति की इच्छा के परित्याग का वारंवार अभ्यास भी विधि-विहित है, अतः वे उसका दृढ़तापूर्वक अभ्यास करते हुए उसके बल से परलोकभोग के बिना केवल परशिवसायुज्य ही प्राप्त करते हैं। वीरशैव से भिन्न अन्य आश्रम में वर्तमान विरक्त अथवा आसक्त भोग के बिना अथवा भोग के अनन्तर वहां पहुंचते हैं।

'सूक्ष्मागम' में लिङ्गधारण करने वाले निराभार वीरशैव संन्यासी के लिए कैलास-लोक आदि की कामना के परित्याग का विधान किया गया है।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

विहितत्वात् ते तदभ्यासदार्ढ्यात् परलोकभोगं विना परशिवसायुज्यमेवाऽऽप्नुवन्ति । इतराश्रमिणश्च विरागा अविरागा भोगमन्तरा भुक्त्वा च गच्छन्तीति । निराभारस्य वीरशैवसंन्यासिनो लिङ्गिनः कैलासादिपदाकाङ्क्षाराहित्यं च विहितम्—

कैलासादिपदाकाङ्क्षां[1] त्यजेल्लिङ्गाङ्गयोगभाक् ।इति।

(सू. तन्त्र. ७.८२)

तस्मात् सर्वेऽपि शिवाश्रमिणो विरागा शिवलोकभोगं विना निष्कलपरशिवसायुज्यभाजो भूत्वा निष्कलपरशिवरूपा एव भवन्ति, **स एषोऽकलोऽमृतो भवति** (प्र. ६. ५) इति श्रुतेः ।

['सूक्ष्मागम' में **निराभार** वीरशैव का लक्षण इस प्रकार है—

जन्तोः पुण्यं पापमिति कर्म द्विविधमुच्यते ।
निवृत्तकर्मभारत्वान्निराभार इति स्मृतः ॥

(सूक्ष्मा. ७.६४)

जीव के कर्म दो प्रकार के होते हैं— पुण्य और पाप । इस कर्मभार से जो मुक्त होता है, वह वीरशैव 'निराभार' कहलाता है । बाह्यदृष्टि से उसे जटाधारण, मुण्डन अथवा शिखाधारण और काषाय-वस्त्रधारण करना चाहिए । कन्था-कमण्डलु-भस्म-रुद्राक्ष-दण्ड-कौपीन धारण करना भी उसकी आचारकोटि में है । उसे केवल भिक्षा में प्राप्त अन्न से प्राणधारण करना चाहिए । उसमें निर्भीकता, मौन, भूतदया आदि गुणों का समावेश होना चाहिए । उसे निस्पृह होना चाहिए और विशेष रूप से अपने इष्टलिङ्ग के साथ ऐक्य (सामरस्य) प्राप्त करना चाहिए । (सू. आ. ७.६५-६६) उसी **निराभार वीरशैव** के लिए कैलास पद तक की कामना के परित्याग का इस प्रकार विधान किया गया है—]

कैलासादिपदाकाङ्क्षां त्यजेल्लिङ्गाङ्गयोगभाक् ।

(सूक्ष्मा. ७.८२)

उक्त निराभार वीरशैव, जो **'लिङ्गाङ्गयोग' सम्पन्न** है, अर्थात् सामरस्यप्रक्रिया द्वारा लिङ्ग के साथ अङ्ग की एकता स्थापित करता है, उसे कैलास आदि पद की आकांक्षा अथवा अपेक्षा का परित्याग करना चाहिए। जैसा कि पहले भी वर्णित है— **'निस्पृहो निजलिङ्गैक्यः'** (सू. त. ७.६५)।

इन कारणों से सभी प्रकार के **शिवाश्रमी** वीरशैव रागादि से मुक्त होकर बिना शिवलोकोचित भोग भोगे निष्कल परशिवसायुज्य प्राप्त कर स्वयं निष्कल परशिवस्वरूप

---

१. पदापेक्षां – पाठान्तरम् ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

लिङ्गाङ्गसामरस्यम्

अत्र नदीसमुद्रदृष्टान्तेन दर्शितमिदं लिङ्गाङ्गसामरस्यं विवर्तवादे न सम्भवत्येव, तत्र कलानां जीवात्मनश्च मिथ्यात्वात्, दृष्टान्ते नदीसमुद्रान्यतरस्य मिथ्यात्वाभावात्, सदसतोः सामरस्याभावात्, सतीनां नदीनां सति समुद्रे सामरस्यस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, नहि भवति मरुमरीचिकाजलस्याऽसत्यस्य सत्ये जले सामरस्यम्।

ननु किमिदं सामरस्यम्? अभेद इति चेन्न, भेदाभावात्मकाभेदस्य प्रतियोगिभेदसिद्ध्यनन्तरसिद्धिकत्वात्, घटभेदप्रतियोगिनो घटस्य सिद्धिं विना घटभेदासिद्धेः। न ह्यप्रसिद्धस्य गगनीयत्वविशिष्टपुष्पस्य भेदः सिद्ध्यति, भेदस्याऽन्योन्याभावस्य नित्यत्वात्। नहि घटं पटं कर्तुं शक्यते केनापि प्रमाणेन। तस्माद् घटपटयोर्भेदवल्लिङ्गाङ्गयोरपि भेदस्य केनापि कदापि

ही होते हैं। जैसा कि प्रश्नोपनिषद् का वचन है— **'स एषोऽकलोऽमृतो भवति'** (प्र. उ. ६.५)। (लिङ्गाङ्गसामरस्यप्रक्रिया द्वारा वीतराग वीरशैव स्वयं को लोक से प्राण तक उत्तरोत्तर तक षोडश कलाओं को अपनी पूर्व पूर्व कला में विलीन करते हुए निष्कल, 'अमृत', मृत्युधर्मरहित परात्पर अक्षरपुरुष परमशिवस्वरूप हो जाता है।)

लिङ्गाङ्गसामरस्य

नदी-समुद्र-दृष्टान्त द्वारा प्रदर्शित यह लिङ्गाङ्गसामरस्य शाङ्करवेदान्तसम्मत 'विवर्तवाद' में सम्भव ही नहीं है। क्योंकि उस सिद्धान्त में जगत् मिथ्या है, उसमें स्थित जीव की सोलह कलाएं भी मिथ्या हैं। जो दृष्टान्त प्रदर्शित है उसमें नदी और समुद्र दोनों मिथ्या नही हैं। सत् (सत्य) और असत् (मिथ्या) दोनों में सामरस्य सम्भव नहीं है। नदियां सत्य हैं, समुद्र सत्य है और समुद्र में नदियों का सामरस्य भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। 'मृगमरीचिका' में मृग को भासित होनेवाला जल और वास्तविक जल इन दोनों में सामरस्य सम्भव नहीं है।

यह सामरस्य क्या है? क्या अभेद ही सामरस्य है? नहीं। क्योंकि भेदाभावस्वरूप अभेद की सिद्धि तभी होगी, जब उसके प्रतियोगी भेद की सिद्धि उसके पूर्व होगी। घटाभाव का प्रतियोगी जो घट, उसकी सिद्धि के बिना घटाभाव सिद्ध नहीं हो सकता।[१] यतः आकाशपुष्प अप्रसिद्ध (कल्पनामात्र) है, अतः उसका भेद भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि अन्योन्याभावस्वरूप भेद नित्य होता है।

---

१. दृष्टान्तवाक्य चिन्तनीय है। वह इस प्रकार होना चाहिए—
'घटाभावप्रतियोगिनो घटस्य सिद्धिं विना घटाभावासिद्धेः'। तदनुसार अर्थ किया गया है –
— अनुवादक

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वारयितुमशक्यत्वान्न लिङ्गाङ्गयोरभेदरूपं सामरस्यं सिद्ध्यतीति चेत्? प्रथमं भेद एव विमर्शनीय: ।

भेदो नाम किमन्योन्याभावो वा, वैधर्म्यं वा? वस्तुस्वरूपं वा? आद्ये तत्र अन्यत्वं भावस्वभावो वा, भेदनिबन्धन: कश्चिदुपाधिर्वा ? नाऽऽद्य:, भावस्याऽभावत्वप्रसङ्गात्, अन्यत्वस्य भावस्वभावत्वात्, भावादन्योऽभाव इति प्रसिद्धत्वात् । न च भावानां बाहुल्याद् भावस्य भावान्तरान्यत्वं स्वभाव इति वाच्यम्, तस्य विशेषघटितत्वात् । इह तु भेदसामान्यलक्षणप्रविष्टान्यत्वस्य प्रश्नविषयत्वात्, तस्योत्तरस्याऽनर्हत्वात् । तस्य भेदसामान्यसिद्ध्यनन्तरभावित्वात् । किञ्च, भावस्य भावान्तरान्यत्वं स्वभाव इति नियम-स्तत्तद्भावकृतो वा, तद्व्यतिरिक्तमहापुरुषकृतो वा? नाद्य:, घटादिभावस्य जडत्वेन कर्तृत्वाभावात् । न द्वितीय:, कल्पनाया: प्रागनन्यत्वेनान्तरालिकतया अन्यत्वस्य

किसी भी प्रमाण के द्वारा घट को पट नहीं किया जा सकता । अत: घट और पट के भेद के समान ही लिङ्ग और अङ्ग इन दोनों के भेद को कभी भी दूर नहीं कर सकता । इस प्रकार लिङ्ग और अङ्ग के अभेद का लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप सिद्ध नहीं किया जा सकता । यह पक्ष हो तो प्रथम भेद का विमर्श आवश्यक है ।

यह भेद क्या है? क्या अन्योन्याभाव भेद है? अथवा वैधर्म्य भेद है? किंवा वस्तुस्वरूप भेद है? इनमें प्रथम अन्योन्याभाव को भेद मानने पर उसमें अन्यत्व क्या है? भावस्वभाव अन्यत्व है अथवा भेद निबन्धन कोई उपाधि? इनमें प्रथम भावस्वभाव अन्यत्व नहीं हो सकता । क्योंकि ऐसा मानने पर भाव में अभावत्व का प्रसंग उपस्थित होगा, जब कि अन्यत्व में भावस्वभावत्व है । क्योंकि भाव से भिन्न अभाव होता है यह प्रसिद्धि है । यत: भाव अनेक होते हैं, अत: भाव-स्वभाव का अर्थ है एक भाव में भावान्तर (दूसरे भाव) का अन्यत्व । इस प्रकार भावस्वभाव को अन्यत्व का लक्षण नहीं बना सकते । क्योंकि यह लक्षण विशेषघटित होगा, सामान्यघटित नहीं । यहां प्रश्न का विषय भेदसामान्य के लक्षण में प्रविष्ट अन्यत्व से है, जिसका उत्तर यह नहीं हो सकता । क्योंकि भेदसामान्य के लक्षण की सिद्धि के बाद ही विशेषघटित लक्षण किया जाता है, इसके पूर्व नहीं । और भी, भाव में दूसरे भाव के अन्यत्व को भावस्वभाव का लक्षण माने तो यह भावस्वभाव उन उन भावों से उत्पन्न है अथवा उससे भिन्न किसी महापुरुष द्वारा प्रादुर्भुत ये दो प्रश्न उपस्थित होते हैं । इनमें प्रथम सम्भव ही नहीं है, वह किसी दूसरे भाव से उत्पन्न नहीं हो सकता । क्योंकि घट आदि भाव पदार्थ जड (अचेतन) होते हैं, वे किसी दूसरे भावपदार्थ के जनक नहीं हो सकते । उसी प्रकार दूसरा विकल्प भी संभव नहीं है, क्योंकि अन्यत्व को पुरुषजन्य मानने पर इसके पूर्व बीच में अनन्यत्व अवश्य रहेगा । ऐसी स्थिति में भावस्वभावत्व अन्यत्व के लक्षण में समाविष्ट नहीं हो सकता । यह अन्यत्व किसी के द्वारा

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्स्वभावत्वासम्भवात्। ननु न केनापि कृतः, किन्तु स्वतःसिद्ध इति चेत्, स्वप्रकाशोऽपि स्यात्, ब्रह्मवत् स्वतःसिद्धत्वात्। न च ब्रह्मापि मानान्तरसिद्धत्वात् न स्वतःसिद्धमिति वाच्यम्, ब्रह्मणो नित्यत्वेन कारकव्यापारासम्भवात्, स्वप्रकाशत्वेन ज्ञापकव्यापारासम्भवात्, अन्यथा जडत्वप्रसङ्गात्। नापि द्वितीयो भेदनिबन्धनः कश्चिदुपाधिः, आत्माश्रयादिदोषप्रसङ्गात्।

नापि द्वितीयो वैधर्म्यरूपो विकल्पः, घटे पटत्वं नास्ति, पटे घटत्वं नास्तीत्येवंविधवैधर्म्यनिश्चयस्य घटपटभेदसिद्ध्यनन्तरभावित्वात्। न च घटपटयोस्तन्तुमयत्वमृण्मयत्वाभ्यां भेदः सिद्ध एवेति वाच्यम्, घट एव मृण्मयत्वं पट एव तन्तुमयत्वमित्यसाधारणप्रतीतेर्घटपटभेदसिद्ध्यधीनत्वात्, तस्या अद्यापि साध्यकोटिप्रविष्टत्वात्। किञ्च, तन्तुमयत्वमृण्मयत्वयोर्भेदस्तत्तदवयवभेदात्, तद्भेदस्तदवयवभेदादिति परमाणुपर्यन्तपर्यालोचनायां परमाणूनां निरवयवत्वेन भेदाग्रहात्। न च परमाणुभेदकः कश्चिद्विशेषोऽस्तीति वाच्यम्, तदेतत्परमाणुविशेषाणामपि भेदकस्य कस्यचिद् विशेषस्य स्वीकार्यत्वे मूलक्षयकारिण्यनवस्था स्यात्।

सम्पादित नहीं है, अपितु स्वतःसिद्ध है। यह आशय यदि हो तो जिस प्रकार ब्रह्म स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश है, उसी प्रकार अन्यत्व भी स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश होगा। ब्रह्म भी अनुभव प्रमाण द्वारा सिद्ध है, स्वतःसिद्ध नहीं, इस प्रकार कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि ब्रह्म नित्य है, उसकी उत्पत्ति के लिए किसी व्यापार, उत्पत्तिप्रक्रिया की कल्पना असम्भव है। उसी प्रकार वह स्वप्रकाश है। उसको प्रकाशित करने के लिए भी किसी अन्य ज्ञापक व्यापार (अन्य प्रकाश सामग्री) की कल्पना भी व्यर्थ है। अन्यथा ब्रह्म में जडत्व का प्रसंग उपस्थित होगा। अन्योन्या- भावस्वरूप भेद में भेदनिबन्धन उपाधि भी अन्यत्व का लक्षण नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर आत्माश्रय, अनवस्था आदि दोष उपस्थित होंगे।

यह भेद वैधर्म्यरूप भी नहीं है। क्योंकि घट और पट का भेद सिद्ध करने के पश्चात् ही यह वैधर्म्य निश्चित हो सकता है कि 'घट में पटत्व धर्म नहीं है और पट में घटत्व धर्म नहीं है', इस प्रकार का वैधर्म्य साध्यकोटि में प्रविष्ट है। पट में रहने वाली तन्तुमयता अथवा घट में रहने वाली मृण्मयता का भेद उस उस अवयव भेद के कारण होता है और उसका भेद भी उसके अवयवभेद के कारण होता है इस प्रकार परमाणु-पर्यन्त आलोचना करने पर परमाणु का भेद करना दुराग्रह होगा, क्योंकि परमाणु अवयवहीन होते हैं, उनका खण्ड असम्भव है। परमाणु का विभाजक कोई विशेष होता है ऐसा भी नहीं कहना चाहिए। विशिष्ट परमाणुओं का विशेष विभाजक स्वीकार करने पर अनवस्था प्रसङ्ग होगा जिससे जड की ही समाप्ति होगी—

एवमप्यनवस्था स्याद् या मूलक्षयकारिणी।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नापि तृतीयो वस्तुस्वरूपो भेद इति। वस्तुस्वरूपं हि वस्त्वन्तरस्वरूपाननुगामीत्यङ्गीकरणीयम्, अन्यथा स्वरूपसाङ्कर्यापत्तेः। एवं चेदं रजतमित्यत्र शुक्तिरेव रजतत्वेन निश्चीयत इति भ्रान्तिज्ञानोच्छेदप्रसङ्गः, रजतवस्तुस्वरूपस्य शुक्तिवस्त्वन्तरस्वरूपा-ननुगामित्वात्। न च रजतत्वस्य तत्स्वरूपाननुगामित्वेऽपि दूरत्वादिदोषवशादेव तथा निश्चीयत इति वाच्यम्; इङ्गालादिकस्यापि रजतत्वेन निश्चीयमानत्वापत्तेः, तत्रापि दूरत्वादिदोषसद्भावात्। न च तत्र श्यामत्वादिविशेषदर्शनसामग्री प्रतिबन्धिकेति वाच्यम्, शुक्तिकायामपि नीलपृष्ठत्वादिविशेषदर्शनसामग्रीसत्त्वेन अनारोपप्रसङ्गात्। तत्र विशेष-सामग्रीप्राबल्याद् आरोपः सम्भवतीति चेन्न; वस्त्वन्तरे वस्त्वन्तरस्वरूपमनुप्रविष्ट-मित्यङ्गीकरणीयत्वेनाननुप्रविष्टमिति वक्तुमशक्यत्वेन स्वरूपसाङ्कर्यापत्तेरनिवार्यत्वेन भेद-वादोच्छेदप्रसङ्गान्न वस्तुस्वरूपो भेदः।

वस्तुस्वरूप को भी भेद नहीं कहा जा सकता। वस्तुस्वरूप वह होता है, जो दूसरे वस्तुस्वरूप का अनुसरण न करे। अन्यथा एक वस्तुस्वरूप में दूसरे वस्तुस्वरूप का प्रवेश होने से सांकर्यदोष उपस्थित होगा। अर्थात् भ्रान्तिज्ञान में निश्चयज्ञान उपस्थित होगा और भ्रान्तिज्ञान का उच्छेद होगा। उदाहरणार्थ—शुक्ति में रजत का प्रवेश होने से सांकर्यदोष उपस्थित होगा। शुक्ति (सींप) को देखने पर 'इदं रजतम्' (यह चांदी है) इस प्रकार सींप का ही चांदी के रूप में निश्चय करने पर भ्रान्तिज्ञान का उच्छेद होगा। यतः रजत (चांदी) का वास्तविक स्वरूप किसी दूसरी वस्तु शुक्ति (सींप) के स्वरूप का अनुगामी नहीं हो सकता। यद्यपि रजतत्त्व शुक्ति के स्वरूप का अनुसरण नहीं करता, तथापि दूर-स्थिति आदि दोष के कारण इस प्रकार का निश्चय किया जाता है ऐसा भी आप कह नहीं सकते। ऐसी स्थिति में जलते कोयले को भी हम चांदी मानने लगेंगे। क्योंकि दूरस्थिति के कारण ही वहां इस प्रकार का निश्चयज्ञान करना पड़ता है। (सींप और कोयला दोनों दृष्टान्तों में अन्तर हैं, क्योंकि) कोयले का कालापन उसे चांदी समझने से रोकता है इस प्रकार नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सींप के पृष्ठभाग में नीलिमा भी दृष्टिगोचर होती है। अतः सींप में रजतज्ञान के आरोप का प्रसङ्ग ही नहीं है। क्या वहां विशेष सामग्री की प्रबलता से इस प्रकार का आरोप हो सकता है? सींप को चांदी समझा जा सकता है? नहीं। (भ्रान्तिज्ञान में) एक वस्तु के स्वरूप में दूसरे वस्तु के स्वरूप का प्रवेश होता है इसे स्वीकार करना चाहिए वह नहीं होता, यह नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार भ्रान्तिज्ञान के उदाहरणों में एक वस्तु के स्वरूप में दूसरे वस्तुस्वरूप के संकर का दोष अनिवार्य होने से भेदभाव का उच्छेद उपस्थित होने से यह समझना चाहिए कि भेद वस्तुस्वरूप नहीं है। और भी, किसी वस्तु में प्रतीत होने वाला भेद उस उस वस्तु के स्वरूप से अभिन्न होता है अथवा उससे भिन्न होता है यह विचारं करने पर उसे वस्तुस्वरूप से अभिन्न नहीं कह सकते। भेद-अभेद दोनों में अत्यन्त विरोध है, ऐसा मानने पर भेद में अभेदत्व का प्रवेश स्वीकार करना पड़ेगा।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

किञ्च, वस्तुनि भासमानो भेदस्तत्तद्वस्तुस्वरूपादभिन्नो वा, तद्भिन्नो वा ? नाद्यः, अत्यन्तविरोधात्, भेदस्याऽभेदत्वापत्तेः । न द्वितीयः । सोऽपि भेदः कीदृशः ? इत्युपर्युपरि विचार्यमाणे सत्यनवस्थामेवोपस्थापयति, विश्रान्त्यभावात् ।

नाऽप्यभेदात्यन्ताभावो भेदः, आत्माश्रयदोषात् । नाऽप्यैक्यप्रतियोगी भेदः, एकत्वस्य प्रतियोगित्वाभावात्, द्वित्वादीनां तन्मूलकत्वात्, तदयोगात्, **'एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे'** इति श्रुतेरेकस्यैव शिवस्य नित्यत्वावगमात्, द्वित्वादीनामपेक्षाबुद्धिजन्यत्वस्य भेदवादिभिरप्यङ्गीकृतत्वात्,

''यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चाऽसच्छिव एव केवलः''

इति श्रुत्या सृष्टेः प्राग् द्वितीयवस्तुशून्यत्वस्य ज्ञायमानत्वात् । नापि विभागो भेदः, विभागस्य संयोगपूर्वकत्वेन प्राचीप्रतीच्योर्दिशोः पूर्वपश्चिमाचलयोश्च संयोगस्याऽभावेन तयोर्भेदाभावप्रसङ्गात् ।

प्रतीत होने वाले भेद को उससे भिन्न मानना भी ठीक नहीं है, वह भेद किस प्रकार का है इस प्रकार ऊपर ऊपर विचार करने पर अनवस्था प्रसंग उपस्थित होगा । इस प्रकार अन्योन्याभाव, वैधर्म्य अथवा वस्तुस्वरूप भेद की कोटि में नहीं है ।

इस भेद को अभेदात्यन्ताभावस्वरूप भेद भी नहीं कह सकते । अन्यथा आत्माश्रय दोष उपस्थित होगा । [उस आत्माश्रयदोष का आकार इस प्रकार होगा— 'भेदस्य अत्यन्भावः अभेदः, अभेदस्य अत्यन्ताभावः भेदः ।'] इसे एकत्वप्रतियोगी भेद भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक का कोई प्रतियोगी नहीं होता, एकत्व में प्रतियोगित्व नहीं रहती । (एक, दो, तीन आदि संख्या में) द्वित्व, त्रित्व आदि रहते हैं, जो भेद को जन्म देते हैं । एकत्व से उसका सम्बन्ध नहीं है । **'एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे'** इस वेद मन्त्र से एक ही शिव की नित्यता का ज्ञान होता है । इस वेदमन्त्र का आशय यह है— 'एक मात्र परम शिव की सत्ता है, दूसरे के लिए स्थान नहीं है ।' भेदवादी (द्वैतवादी) भी यह स्वीकार करते हैं कि द्वित्त्व, त्रित्व आदि संख्यागत धर्म अपेक्षाबुद्धि से उत्पन्न होते हैं, उनकी वास्तविक सत्ता नहीं है । क्योंकि—

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चाऽसच्छिव एव केवलः

(जब चारो ओर अंधेरा था और मोहान्धकार था, उस समय न दिन था और न रात्रि थी, न सत् था और न असत् । वहां केवल (एकमात्र) परम शिव थे ।) यह भेद विभागस्वरूप भी नहीं है । क्योंकि विभाग के पहिले संयोग रहता है । प्राची और प्रतीची (पूर्व और पश्चिम) दिशाओं में तथा पूर्वाचल और पश्चिमाचल में किसी प्रकार का संयोग नहीं है । अतः भेदाभाव (अभेद) का प्रसंग उपस्थित होगा । (जब कि दोनों में भेद है ।) पृथक्त्व भी भेद का लक्षण

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नाऽपि पृथक्त्वं भेदः, गुणगुणिनोर्भेदाभावप्रसङ्गात्, घटो न रूपमिति घटभेदस्य रूपे प्रत्यक्षसिद्धत्वात्।

तस्माद् गत्यन्तराभावेन भेदव्यवहारसिद्ध्यर्थं सकलसामरस्यात्मनो महेश्वरस्येच्छावशात् **सागरतरङ्गन्यायेन** जन्यो विभागो भेद इत्यङ्गीकरणीयत्वेनाऽ**विभागरूपोऽ भेदः सामरस्यमिति** सिद्धान्तः, सागरतरङ्गविभागस्याऽप्यभेदपर्यवसायित्वात्। तदुक्तं शैवे व्यासमहर्षिणा—

यद्यपि भेदापगमे साम्ब[1] ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।इति।

[तस्माद्] लिङ्गाङ्गयोरविभागात्मकाभेद एव सिद्ध्यति। तदेतत् सामरस्यमनेन मन्त्रेण स्फुटीकृतमिति चोद्यम् (बोध्यम्) ॥८॥

नहीं है, क्योंकि गुण और गुणी में भेद होता है। घट और घट के रूप नील पीत आदि में भेद होता है। पृथक्त्व को भेद का लक्षण मानने पर इनमें भेदाभाव (अभेद) उपस्थित होगा, जब कि 'घटो न रूपम्', (यह घट है, उसका नील पीत आदि रूप नहीं है) इस प्रकार रूप में घट का भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है। (इसी आधार पर 'नीलो घटः', 'पीतो घटः' इत्यादि व्यवहार होता है।)

अतः कोई दूसरी गति न होने के कारण भेद व्यवहार सिद्ध हो इसलिए यह स्वीकार करना पड़ता है कि महैश्वर्यसम्पन्न परम शिव सकल सामरस्यस्वरूप हैं। उनकी इच्छा, संकल्प-शक्ति से '**सागरतरङ्ग**' न्याय से उत्पन्न विभाग को भेद मानना पड़ता है। अतः यहां अभेद का अर्थ है अविभागरूप सामरस्य। क्योंकि समुद्र और उनकी लहरों के विभाग का पर्यवसान भी अभेद में ही होता है। जैसा कि **शिवपुराण** में व्यासमहर्षि कहते हैं—

यद्यपि भेदापगमे साम्ब[1] ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

"साम्ब सदाशिव ! यद्यपि मुझ (जीव) में और आप (शिव) में कोई भेद नहीं रहता, तथापि मैं आपका हूँ, (आपसे सम्बद्ध हूँ।) आप मेरे (मुझसे संबद्ध) नहीं है। (क्योंकि मैं अंश हूँ, आप अंशी। तरंग (लहर) समुद्र का अंश होता है, कभी भी समुद्र तरंग (लहर) का अंश नहीं होता।"

(यह पद्य आचार्य शंकर कृत स्तोत्र में भी समाविष्ट है।) इस प्रकार लिङ्ग और अङ्ग का अविभागात्मक भेद सिद्ध होता है इस उपनिषद् मन्त्र द्वारा सामरस्य-स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। यह मन्त्र सामरस्य-सिद्धान्त का प्रेरणा स्रोत है ॥८॥

---

१. नाथ ! — पाठभेद।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तत्परशिवमहालिङ्गसामरस्यापन्नस्य शिवयोगिनः शिवत्वाभिव्यक्तिमुक्तिमाह—

स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद
ब्रह्मैव भवति नाऽस्याऽब्रह्मवित् कुले भवति ।
तरति शोकं तरति पाप्मानं
गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।।९।।

यो ह वै इति। **यः** = कोऽपि पुरुषः, **ह वै** = निश्चयेन, **तत्** = प्रकृतम्, **परमम्** = सर्वोत्कृष्टम्, **ब्रह्म** = महालिङ्गम्, **वेद** = सामरस्येन साक्षात्करोति, **सः** = लिङ्गाङ्ग-सामरस्यवित् शिवयोगी, **ब्रह्मैव** = परशिवब्रह्मस्वरूप एव **भवति**। न तु कथञ्चित् ततोऽपकृष्टो भवति, मुक्तस्य वा परशिवब्रह्मणः कथञ्चिदपकर्षे संसारित्वापत्तेः, प्रकर्षापकर्षप्रयुक्तभेदसद्भावात्, भेदे भयसद्भावात्, अभयात्मकमुक्तेरभावात्। **'अभयं वै जनक ! प्राप्तोऽसि'** इति श्रुतेः । किञ्च, **अस्य** = शिवतत्त्वज्ञानिनः, **कुले** = पुत्रादिवंशे, **अब्रह्मवित्** = शिवतत्त्वज्ञानरहितो **न भवति**, किन्तु शिवतत्त्वज्ञानवानेव भवतीत्यर्थः ।

अवतरण— इस मन्त्र में परशिव महालिङ्ग के साथ सामरस्य स्थापित करने वाले शिवयोगी के उस मुक्ति स्वरूप को निरूपित किया गया है, जो शिवत्व का अभिव्यक्ति-स्वरूप है—

***मन्त्रार्थ*— जो कोई परमब्रह्म-परमशिव का स्वरूप जानता है, वह ब्रह्मस्वरूप, परमशिवस्वरूप ही होता है । उसके कुल में कोई भी शिवतत्त्वज्ञान से वंचित नहीं होता । वह शोक को पार करता है, पाप को पार करता है, अभिमानग्रन्थियों से मुक्त होता है और अमृतपद (मोक्ष) प्राप्त करता है ।।९।।**

यो ह वै इत्यादि। **यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद** — जो कोई पुरुष निश्चयपूर्वक सामरस्य-प्रक्रिया से उस सर्वोत्कृष्ट परब्रह्मस्वरूप महालिङ्ग का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता है, **स ब्रह्मैव भवति** — वह लिङ्गाङ्गसामरस्यज्ञाता शिवयोगी परशिवब्रह्मस्वरूप ही होता है, उससे किसी भी प्रकार निकृष्ट नहीं होता। अन्यथा परशिवब्रह्मस्वरूप मुक्त जीव को उससे निम्नस्तर का स्वीकार करने पर उसमें संसरणशीलता (जन्म-मरण-शीलता) दोष उपस्थित होगा। उत्कर्ष और अपकर्ष प्रयुक्त यही भेद दोनों में रहता है, [उत्कृष्ट, मुक्त जीव बन्धन में नहीं पड़ता और अपकृष्ट संसारी जीव पाशबन्धन में पड़ता है ।] यह भेद उपस्थित होने पर भय का वातावरण निर्मित होता है, और अभयस्वरूप मुक्ति जीव को प्राप्त नहीं होती। जैसा कि श्रुतिवचन है— **'अभयं वै जनक ! प्राप्तोऽसि'** (जनक ! आपने अभय को प्राप्त किया है ।) **नाऽस्याऽब्रह्मवित् कुले भवति** — इस शिव तत्त्वज्ञानी की पुत्र-पौत्रादिवंश-परम्परा में कोई भी शिवतत्त्व-ज्ञान से वञ्चित नहीं होता, अपितु

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

किञ्च, **शोकम्** = इष्टवस्तुनोऽप्राप्त्या नाशेन वा जनितं सन्तापम्, **तरति** = अतिक्राम्यति। **पाप्मानम्** = दु:खजनकमधर्मं **तरति**, **गुहाग्रन्थिभ्य:** = गुहासु आधारादिस्थानेषु, ये ग्रन्थयस्तेभ्यो ब्रह्मादिग्रन्थिभ्य: पृथक्सिद्धानां पृथिव्यादीनामप्यपृथक्सिद्धत्वेनाऽभिमानरूपा एव ग्रन्थयस्तेभ्यो ग्रन्थिवद्दुर्मोचेभ्य इत्यर्थ:। विमुक्त: = विरहित: सन्, अमृतो भवति = मुक्तो भवति, **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि:, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति:, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष** इति श्रुते: ॥९॥

ब्रह्मविद्यासम्प्रदाने विधिं दर्शयन् लिङ्गधारणात्मकशिरोव्रतसम्पन्नानामेव ब्रह्मविद्याधिकारित्वं दर्शयत्ययं मन्त्र:।

तदेतद् ऋचाभ्युक्तम्—

क्रियावन्त: श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठा:
स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्त:।

शिवतत्त्वज्ञानी ही होता है। **तरति शोकम्** — वह उस शोक (संताप) को भी पार करता है, जो उसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त न होने से होता है। **तरति पाप्मानम्**— उस पाप अथवा अधर्म से छुटकारा पाता है, जो दुखदायी होता है। **गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति** — यहां 'गुहा' का तात्पर्य है मूलाधार-चक्र आदि स्थान, जिनमें पृथिवी आदि महाभूतों के अधिष्ठाता ब्रह्मदेव आदि देवता वास करते हैं। उनमें पृथिवीत्व आदि का जो अभिमान होता है, उन्हें 'ग्रन्थि' कहते हैं। क्योंकि उसे छुड़ाना कठिन होता है। मुमुक्षु जीव सामरस्यप्रक्रिया से आधारादिचक्रों में अधिष्ठित ब्रह्मदेव आदि के पृथिवीत्व आदि अभिमान-ग्रन्थियों से छुटकारा पाकर 'अमृत' पद अर्थात् मृत्युधर्मरहित मोक्ष प्राप्त करते हैं। जैसा कि श्रुतिवचन है— **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि:, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति:, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष:'**, अर्थात् आहार शुद्ध होने पर सात्त्विक आहार ग्रहण करने पर चित्त, अन्त:करण निर्मल होता है। अन्त:करण निर्मल, चित्स्वरूप होने पर परमात्मा का स्मरण निश्चित रूप से होता है। परमशिव परमात्मा का स्मरण करने पर सभी अभिमान-ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।॥९॥

अवतरण— यह मन्त्र ब्रह्मविद्योपदेश-विधि को प्रदर्शित करते हुए उन्हीं लोकों को ब्रह्मविद्योपदेश का अधिकार देता है, जो लिङ्गधारणस्वरूप शिरोव्रतसम्पन्न हैं।

तदेतदृचाऽभ्युक्तम्— इस ऋचा द्वारा ब्रह्मविद्योपदेशविधि प्रतिपादित है।

***मन्त्रार्थ*— पतिकर्मरत वैदिक, लिङ्गधारी जो वीरशैव एकमात्र ऋषि परम शिव की उपासना करते हैं, जिन्होंने लिङ्गधारणस्वरूप शिरोव्रत का विधिपूर्वक**

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत
शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम् ।।१०।।

तदेतद् इति। **तदेतत्** = ब्रह्मविद्यासम्प्रदानविधानम्, **ऋचा** = मन्त्रेण, **अभ्युक्तम्** = अभिहितम्। तं मन्त्रं दर्शयति— **क्रियेति**। **क्रियावन्तः** = पतिक्रियावन्तः, परित्यक्तपशुकर्माणोऽनुष्ठितपतिकर्माण इत्यर्थः, **'न कर्मणा न प्रजया'**, **'नास्त्यकृतः कृतेन'** इत्यादिश्रुत्या पशुकर्मणां निन्दितत्वात्। **श्रोत्रियाः** = वैदिकाः, **ब्रह्मनिष्ठाः** = ब्रह्मणि = परशिवलिङ्गे धार्यत्वेन निष्ठा येषां ते ब्रह्मनिष्ठाः, लिङ्गधारिणो वीरशैवा इत्यर्थः। तदुक्तं श्रीनीलकण्ठशिवाचार्येण—

लिङ्गाङ्गेति च वाक्येन मोक्षमार्गैकतत्पराः।
अमृतस्येति वाक्येन धारणं प्रतिपादितम्।।

तन्निष्ठा एव मनुजा अतिवर्णाश्रमे रताः।
त एव हि महात्मानो ब्रह्मनिष्ठा उदाहृताः।।

(क्रिया. उ. १.१.८०)

श्रद्धयन्तः = लिङ्गधारणस्य मुक्तिजनकत्वेन श्रद्धधानाः सन्तः, **स्वयमेकर्षिम्** = एकमेव ऋषिम्, परशिवम् **'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः'** (महानारायण १.२.३) इति श्रुतेः।

सम्पादन किया है, उन अधिकारियों को ही इस ब्रह्मविद्या का उपदेश देना चाहिए ।।१०।।

व्याख्या : क्रियावन्त इत्यादि। **क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः**— जो पतिकर्म में लगे रहते हैं, अर्थात् पशुकर्मों का परित्याग कर पतिकर्मों का अनुष्ठान करते हैं। क्योंकि **'न कर्मणा न प्रजया'**, **'नास्त्यकृतः कृतेन'** (१.२.१२) इत्यादि वेदमन्त्र पशुकर्मों की निन्दा करते हैं। जो **श्रोत्रिय** वैदिक हैं, **ब्रह्मनिष्ठाः** = जो परब्रह्मस्वरूप परशिवलिङ्ग में आस्था रखते हैं, अर्थात् जो लिङ्गधारी वीरशैव हैं। श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य उन लिङ्ग- धारी वीरशैवों को ही 'ब्रह्मनिष्ठ' कहते हैं—

लिङ्गाङ्गेति च वाक्येन मोक्षमार्गैकतत्पराः।
अमृतस्येति वाक्येन धारणं प्रतिपादितम्।।

तन्निष्ठा एव मनुजा अतिवर्णाश्रमे रताः।
त एव हि महात्मानो ब्रह्मनिष्ठा उदाहृताः।।

(क्रिया. उ. १.१.८०)

लिङ्गाङ्ग इत्यादि वाक्य से जो एकमात्र मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होते है, उनके लिए **अमृतस्य धारणो भूयासम्** इस श्रुतिवाक्य द्वारा लिङ्गधारण का विधान किया गया

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

जुह्वते = उपासते, **'शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य'** (अथर्वशिखा) इति श्रुतेः। न तु शिवेतरं भजन्ति, शिवेतरोपासने शिवेतराशिवत्वफलप्राप्तेर्दुर्वारत्वात्। तथा च स्मृतिः—

शिवं भजन्ति ये नराः शिवं व्रजन्ति ते नराः।
शिवेतरं भजन्ति ये शिवेतरं व्रजन्ति ते।। इति।

यैस्तु = अधिकारिभिः, **शिरोव्रतम्** – शिरसि व्रतं लिङ्गधारणात्मकं महाव्रतम्,

मुखे मन्त्रं हृदि ध्यानं मस्तके लिङ्गधारणम्

इति गौतमस्मृतेः। यद्वा शिरसि = अथर्वशिरसि, व्रतम् = उपदिष्टं लिङ्गधारणात्मकं महापाशुपतव्रतम्, **विधिवत्** = विधिमनतिक्रम्य, निगमागमोक्तविधानेनेत्यर्थः। **चीर्णम्** आचरितम्, **तेषामेव** = उक्ताधिकारिणामेव, **एताम्** = पूर्वोक्ताम्, **ब्रह्मविद्याम्** = वेदविद्याम्,

---

है। लिङ्गधारण में आस्था रखने वाले मनुष्य ही अतिवर्णाश्रम अर्थात् वर्णाश्रम धर्म से भी उत्कृष्ट वीरशैव धर्म के अनुयायी होते हैं और वे ही महात्मा 'ब्रह्मनिष्ठ' कहलाते हैं।

स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः— लिङ्गधारण को ही मुक्ति का कारण मानकर श्रद्धापूर्वक वीरशैव एकमात्र परम ऋषि परमशिव की ही उपासना करते हैं। 'महानारायणोपनिषद्' परम शिव को ही महर्षि कहती है— **'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः।'** (१.२.३.) 'अथर्वशिखोपनिषद्' सभी कुछ छोड़कर कल्याणकारी परमशिव के ही ध्यान का उपदेश देती है— **'शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य'**, अत एव केवल परम शिव की ही उपासना करें अन्य देवता की नहीं। अग्रिम स्मृति-वचन के अनुसार शिव के अतिरिक्त अन्य देवता की उपासना से अशिव ही प्राप्ति होती है, शिव की नहीं—

शिवं भजन्ति ये नरा शिवं व्रजन्ति ते नराः।
शिवेतरं भजन्ति ये शिवेतरं व्रजन्ति ते।।

जो शिव की उपासना करते हैं, वे शिव प्राप्त करते हैं और जो अशिव की उपासना करते हैं, वे अशिव प्राप्त करते हैं।

शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्— जो अधिकारी **मुखे मन्त्रं हृदि ध्यानं मस्तके लिङ्गधारणम्** इस गौतमस्मृति के वचन का पालन करते हुए निगमागमोक्त शास्त्रीय रीति से सिर पर लिङ्गधारणव्रत का अनुष्ठान करते हैं, जैसा कि इस वचन का आशय है— वीरशैव मुख से पञ्चाक्षरमन्त्रजप करें, हृदय में परशिव का ध्यान करें और सिर पर लिङ्ग को धारण करें। अथवा—जो अथर्वशीर्ष में उपदिष्ट लिङ्गधारणस्वरूप महापाशुपत व्रत का यथाविधि अनुष्ठान करते हैं,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वदेत = ब्रूयात्, लिङ्गधारणस्य यावज्जीवं नियमेनाऽनुष्ठेयत्वात्, अथर्वशिरस्युपदिष्टत्वाच्च इदमेव लिङ्गधारणात्मकमहाव्रतं शिरोव्रतं पाशुपतव्रतमत्याश्रमव्रतं शाम्भवव्रतमिति निश्चीयते, तेषामर्थैक्ये बाधकाभावात्, अथर्वशिरो-मुण्डक-कैवल्य-श्वेताश्वतर-कालाग्निरुद्रोपनिषदाद्युक्त-पाशुपतव्रत- शिरोव्रताऽत्याश्रमव्रत-शाम्भवव्रतविशिष्टतत्तदधिकारिविशेषान्वेषणापैक्षयैकस्यैवाऽधिकारिणोऽन्वेषणसौकर्याच्च ।

नन्वथर्वशिरसि **अग्निरिति भस्म** इत्यादिना **तस्माद् व्रतमेतत् पाशुपतं पशुपाशविमोक्षाय** इत्यन्तेन भस्मधारणात्मकमेव पाशुपतव्रतमुक्तमिति चेन्न, तत्पूर्वमेवान्तर्बहिर्लिङ्गधारणात्मक-पाशुपतव्रतस्योपदिष्टत्वात् । तथा हि—

तदेतदुपासितव्यम्, तद् वाग् वदतु, तदन्तर्ग्रहणमयं पन्था वितत उत्तरेण, येन देवा येन ऋषयो येन पितरः प्राप्नुवन्ति परमं पदं परायणं चेति ।

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातवेदं वरेण्यम् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वतीर्नेतरेषाम् ।।

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत— उन्हीं अधिकारियों को इस ब्रह्मविद्या (वेदविद्या) का उपदेश देना चाहिए । इस लिङ्गधारण का नियमपूर्वक पालन आजीवन करना चाहिए । यह उपदेश अथर्वशीर्ष भी देती है । इस लिङ्गधारण व्रत के अनेक नाम हैं — शिरोव्रत, पाशुपतव्रत, अत्याश्रमव्रत और शाम्भवव्रत । इन सबका अर्थ एक, अभिन्न है, इसमें कोई बाधा नहीं है । क्योंकि अथर्वशीर्ष, मुण्डक, कैवल्य, श्वेताश्वतर, कालाग्निरुद्र आदि उपनिषदों में पाशुपतव्रत, शिरोव्रत, अत्याश्रम व्रत, शाम्भवव्रत के भिन्न भिन्न अधिकारियों का निर्देश न होने के कारण उन उन अधिकारियों को खोजने की अपेक्षा एक ही अधिकारी को खोजने में सुकरता है ।

पाशुपतव्रत भस्मधारणस्वरूप है या शिरोव्रत? अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अथर्व शिरा उपनिषद् में '**अग्निरिति भस्म**' इत्यादि से प्रारम्भ कर '**तस्माद् व्रतमेतत् पाशुपतं पशुपाशविमोक्षणाय**' तक जिस पाशुपत व्रत का उपदेश दिया गया है, वह तो भस्मधारणस्वरूप ही है । पर ऐसा नहीं है । क्योंकि उसके पूर्व भी उस पाशुपतव्रत का उपदेश हैं, जिसमें अन्तर्बाह्य लिङ्गधारण का विधान है । वह मन्त्रभाग इस प्रकार है— **तदेतदुपासितव्यम् । तद् वाग् वदतु । तदन्तर्ग्रहणमयं पन्था वितत उत्तरेण, येन देवा येन ऋषयो येन पितरः प्राप्नुवन्ति परमं पदं परायणं चेति ।**

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातवेदं वरेण्यम् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वतीर्नेतरेषाम् ।।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अस्यार्थः— तदेतद्दहराकाशरूपं प्राणलिङ्गम्, **उपासितव्यं** मुमुक्षुणाऽनुसन्धातव्यम्। **तत्** प्रकृतं लिङ्गमेव। **वाक्** = वागिन्द्रियम्, **वदतु** = प्रणवसहितपञ्चाक्षरात्मकपरविद्यादिद्वारा स्तुतिं करोतु। **तत्** = प्रकृतं लिङ्गमेव। **अन्तः** = आधारादिस्थानेषु आचारादिलिङ्गरूपेण स्थितं सत्, **ग्रहणं** = ग्रहणयोग्यं धारणार्हमित्यर्थः। **अयं पन्थाः** = लिङ्गधारणरूपो मोक्षोपायः, **विततः** = प्रसिद्ध ऋग्वेदादिषु, **देवाः** = हरिब्रह्मादयः, **उत्तरेण येन** = लिङ्गधारणात्मकेन पथा, **परमं** = सर्वोत्कृष्टम्, **परायणं** = सर्वोर्ध्वस्थानभूतम्, **पदं** = परशिवम्, **प्राप्नुवन्ति** = सामरस्येन प्रयान्तीत्यर्थः,

ब्रह्मविष्णुसुरेशादिदेवताः परया मुदा।
शिरोभिर्धारयन्त्येते शिवलिङ्गमहर्निशम्॥

इति कामिकागमवचनात्। **येन** = उत्तरेण पथा **पितरः प्राप्नुवन्ति**। तदुक्तं शङ्करसंहितायाम्—

काङ्क्षन्ति सर्वे पितरः कुले नः सम्भूय पुत्राः शिवभक्तियुक्ताः।
सन्तो भविष्यन्ति विशुद्धभावास्तेषामथैको बिभृयाच्च लिङ्गम्॥

इसका अर्थ इस प्रकार है— इस दहराकाशस्वरूप प्राणलिङ्ग की उपासना, उसका अनुसन्धान करना मुमुक्षु का कर्तव्य है। वागिन्द्रिय, प्रणवसहित पञ्चाक्षरी परविद्या आदि के द्वारा उसी परशिव की स्तुति करे। इष्टलिङ्ग ही बाहर धारण के योग्य है। परमशिव मूलाधारचक्र आदि स्थानों में आचारलिङ्ग आदि के रूप में अवस्थित है। उसका आन्तर अनुशीलन करना चाहिए। यही परमशिव का आन्तर लिङ्गधारण है। ऋग्वेदादि वेदवाङ्मय में मोक्ष का यही मार्ग, लिङ्गधारणस्वरूप उपाय प्रसिद्ध है अथवा विस्तारपूर्वक वर्णित है। विष्णु, ब्रह्मदेव भी उस लिङ्गधारणस्वरूप उत्तरायण (उत्तर-मार्ग) को अपना कर सर्वोत्कृष्ट सर्वोच्च परम शिवपद प्राप्त करते हैं। अर्थात् सामरस्य- प्रक्रिया से वहां प्रयाण करते हैं। जैसा कि कामिकागम का वचन प्रमाण है—

ब्रह्मविष्णुसुरेशादिदेवताः परया मुदा।
शिरोभिर्धारयन्त्येते शिवलिङ्गमहर्निशम्॥

अर्थ— ब्रह्मा, विष्णु देवराज इन्द्र आदि देवता अत्यन्त आनन्दपूर्वक रात-दिन मस्तक से लिङ्गधारण करते हैं।

जिस मार्ग से पितर भी परमशिव पद प्राप्त करते हैं, जैसा कि **शंकरसंहिता** का वचन है—

काङ्क्षन्ति सर्वे पितरः कुले नः इत्यादि। सभी पितृगण यह कामना करते हैं कि हमारे कुल में पुत्र-पौत्रादि एकत्रित रहें। वे शिवभक्तिपरायण हों, जिससे उनका अन्तः-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तस्य प्रभावाद् वयमीशलोकं प्राप्स्यामहेऽनन्तसुतृप्तिभाजम् ।
इत्थं हि स्वर्लोकगतिं गतास्ते काङ्क्षन्ति नित्यं पितरःशिवैक्यम् ।।

इति ऋषयो भृगूपमन्यु-देवल-दधीचि-दुर्वासो-वसिष्ठ-कंपिल-गौतम वामदेवादिमुनिजनाः **येन** लिङ्गधारणात्मकेन, **उत्तरेण** = सर्वोत्कृष्टेन, **पथा** = मोक्षोपायेन प्राप्नुवन्ति । तदुक्तं कामिकागमे—

कण्ठेषु हरकण्ठादिमुनयो मनवस्तथा ।
सर्वदा शिवलिङ्गं तु धारयन्ति यजन्ति च ।।इति।

ब्रह्माण्डपुराणे शैवसंहितायां व्यासजैमिनिसंवादे—

पाणिनिश्च कणादश्च कपिलो गौतमादयः ।
प्रसादसेवनध्यानादर्चनाद् धारणादपि ।
जाता दर्शनकर्तारः श्रावयन्ति जगत्त्रयम् ।।इति।

करण निर्मल, विकसित चित्शक्तिस्वरूप हो । उनमें कम से कम एक लिङ्गधारण करे । उसके प्रभाव से हमलोग अनन्त तृप्ति (आनन्द) दायक शिवलोक प्राप्त करें । इसप्रकार कामना करते हुए वे पितृगण स्वर्गलोक पहुंच कर नित्य परमशिव के साथ सामरस्यस्वरूप ऐक्य (अभेद) की कामना करते हैं ।

इसी प्रकार भृगु, उपमन्यु, देवल, दधीचि, दुर्वासा, वसिष्ठ, कपिल, वामदेव आदि ऋषिगण भी जिस लिङ्गधारणस्वरूप सर्वोत्कृष्ट मोक्षमार्ग से परम शिवपद प्राप्त करते हैं ।[१] जैसा कि 'कामिकागम' में **कण्ठेषु हरकण्ठादिमुनयः** आदि प्रमाण वचन है— इसका अर्थ इस प्रकार है— 'हरकण्ठ आदि ऋषिगण और मनुगण सर्वदा शिवलिङ्ग का धारण और उसकी उपासना करते हैं ।' इसी प्रकार ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत शैवसंहिता के व्यास-जैमिनिसंवाद में **पाणिनिश्च कणादश्च** आदि श्लोक प्रमाण है, जिसका अर्थ इस प्रकार है— 'महर्षि पाणिनि, कणाद, कपिल, गौतम तथा अन्य महर्षि परम शिव का प्रसादग्रहण, ध्यान, पूजा और लिङ्गधारण के द्वारा परम शिव का साक्षात्कार करते हुए उसका उपदेश त्रिभुवन में प्रसारित करते हैं'।

'वालाग्रमात्रम्' इत्यादि । 'जो हृदयकमल के मध्य में (नीवार) केश के अग्र से भी अतिसूक्ष्म विश्वात्मक स्वप्रकाश अग्निस्वरूप उपासनायोग्य आत्मस्थ प्राणलिङ्ग का साक्षात्कार करते हैं, वे वीरशैव शाश्वत मुक्ति प्राप्त करते हैं, अन्य नहीं' ।

---

१. इस व्याख्यान में व्यतिक्रम है । प्रथम **येन ऋषयः** की व्याख्या करनी चाहिए, अनन्तर **येन पितरः**। — अनुवादक

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

हृदयस्य मध्ये = हृदयकमलमध्ये, **वालाग्रमात्रम्** = वालाग्रमिवाऽतिसूक्ष्मम्, नीवारशूकादप्यतिसूक्ष्ममित्यर्थः ।

नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भासुरा ।
नीवारशूकवत् तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।।

इति श्रुतेः । **देवम्** = स्वप्रकाशम्, **जातवेदम्** = अग्निरूपम्,

ज्वालामालाकुलं भाति विश्वस्याऽऽयतनं महत् ।
तस्याऽन्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः ।।

(म. नारायण)

इति श्रुतेः । वरेण्यम् = उपास्यं प्राणलिङ्गम्, **'तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः'** इति दहरोपास्यं प्रस्तूय समनन्तरानुवाके **'ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः'** इत्यादिना तस्योपास्यस्य लिङ्गरूपत्वव्यपदेशात्, **'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः'**

हृदयकमल के मध्य सूक्ष्म परमात्मा के वास में **'नील-तोयद-मध्यस्था'** इत्यादि श्रुति प्रमाण है । इसका अर्थ इस प्रकार है— 'नीलवर्ण मेघ के बीच में देदीप्यमान बिजली की लकीर के समान नीवारशूक, अथवा केश के अग्रभाग से भी अत्यन्त सूक्ष्म अणुस्वरूपा शिखा के बीच में परमात्मा अवस्थित हैं । **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इस श्रुति के अनुसार समग्र चराचर विश्व ब्रह्म का ही स्वरूप है । परमात्मा अग्निस्वरूप है, इसमें 'महानारायणोपनिषद्' का **'ज्वालामालाकुलं भाति'** इत्यादि मन्त्र प्रमाण है, जिसका अर्थ इस प्रकार है— 'यह समस्त विश्व का आयतन, घर ज्वालाओं की पंक्तियों से आलोकित है । उसके अन्त में सूक्ष्म रन्ध्र (छिद्र) है जिसमें सभी विश्व समाहित है । उसके बीच में महिमामण्डित अग्नि है, जिसकी ज्वालाएं सर्वत्र और चारों ओर हैं । वह परमशिव प्राणलिङ्गस्वरूप है ।' इसमें 'महानारायणोपनिषद्' प्रमाण है। क्योंकि **'तस्याः शिखाया मध्ये तु परमात्मा व्यवस्थितः'** इस प्रकार **दहर** (हृदयाकाशगुफा) में अवस्थित ध्यानयोग्य परमशिव का निर्देश करने के बाद अनन्तरवर्ती अनुवाक में **'ऊर्ध्वाय नमः, ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः'** इत्यादि मन्त्र द्वारा उसका वर्णन लिङ्ग रूप में है। उसी प्रकार **'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाऽधूमकः'** इस कठोपनिषद् के मन्त्र में उसका धूमरहित अग्निस्वरूप प्रदर्शित है । उस हृदयकमल के बीच में वर्तमान चिन्मय प्राणलिङ्गस्वरूप परम शिव अपनी आत्मा में ही अवस्थित है । 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (१.१४) उसका साक्षात्कार आत्मा में ही करने का उपदेश देती है । **'तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिः'** इत्यादि मन्त्र का अर्थ यही है कि 'जिस प्रकार तिल में तेल, दही में घी, प्रवाह में जल और अरणी में अग्नि का दर्शन होता है,

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

(कठ) इति श्रुत्या तस्य विधूमाग्निरूपत्वव्यपदेशाच्च । **तम्** = हृदयकमलमध्यस्थितचिन्मय-प्राणलिङ्गरूपम्, **आत्मस्थम्** = स्वात्मनि स्थितं परमात्मलिङ्गम्,

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ।।

(श्वे. १.१४)

इति श्रुतेः । **ये धीराः** = अधिकारिणो वीरशैवाः, **अनुपश्यन्ति** = स्वसामरस्येन साक्षात्कुर्वन्ति, **तेषामेव** वीराणां **शाश्वतीः** = नित्या = **शान्तिः** = मुक्तिः, **ईशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति** (श्वे. ३.६),

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्याऽन्तो भविष्यति ।।

(श्वेता. ६.१९)

इत्यादिश्रुतेः ।

प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्यस्मिन्
क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च ।
तृष्णां छित्वा हेतुजालस्य मूलं
बुद्ध्या सञ्चिन्त्य स्थापयित्वाऽथ रुद्रे ।।

''रुद्र एकत्वमाहुः । रौद्रं शाश्वतं वै पुराणमिष्टमूर्जं तपसानुयच्छति, व्रतमेतत् पाशुपतम्'' (अथर्व. शि. अ. ४) ।

उसी प्रकार स्वयं में (अपनी जीवात्मा में) ही परमात्मा का साक्षात्कार किया जाता है, सत्य, तप से ही उसका साक्षात्कार होता है । उस प्राणलिङ्गस्वरूप परम शिव का साक्षात्कार करने वाले वीरशैव शाश्वत नित्य मुक्ति प्राप्त करते हैं'।

'श्वेताश्वतरोपनिषद्' के अनुसार परमशिव के साक्षात्कार से 'अमृत' पद प्राप्ति और दुःख का अन्त होता है— '**ईशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति**' (श्वे. उ. ६.६), '**यदा चर्मवदाकाशम्**' (श्वे. उ. ६.१९) इत्यादि मन्त्र का आशय यह है कि 'जिस प्रकार चर्म से आकाश का नापना असंभव है, उसी प्रकार परमशिव का आदि-अन्त जानना भी असम्भव है । परमशिव का ज्ञान होते ही सर्वविध दुःख का अन्त होगा' ।

पाशुपतव्रत का निरूपण करते हुए अथर्वशिखा उपनिषद् कहती है —

प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्यस्मिन् क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च । तृष्णां छित्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्या सञ्चिन्त्य स्थापयित्वाऽथ रुद्रे रुद्र एकत्वमाहुः।। रौद्रं शाश्वतं वै पुराणमिष्टमूर्जं तपसाऽनुयच्छति, व्रतमेतत् पाशुपतम् । (अथर्व. शि. अ. ४)

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

अस्यार्थः— **प्राणेषु** = पञ्चप्राणेसु, **अन्तर्मनसः** = अन्तर्हृदयस्य, **लिङ्गं** = प्राणलिङ्गमिति, **आहुः** = शिवतत्त्वज्ञानिनो वदन्ति । **यस्मिन्** = सूक्ष्मशरीरे, **क्रोधो** वर्तते, **या च तृष्णा** वर्तते, **क्षमा च** वर्तते । **हेतुजालस्य** = संसारहेतुजालस्य, **मूलं** = मूलभूताम्, **तृष्णां** = क्षयिष्णुब्रह्मादिपदाकाङ्क्षारूपाम्, **छित्वा** = वैराग्येण छेदयित्वा, **बुद्ध्या** = प्राणलिङ्गाकारमत्या, **सञ्चिन्त्य** = सन्ध्याय, **रुद्रे** = रुद्रात्मके प्राणलिङ्गे, **स्थापयित्वा** = प्राणप्रधानं सूक्ष्मशरीरं संस्थाप्य, **रुद्रे** = लिङ्गस्वरूपे परशिवे, **एकत्वम्** = सामरस्यम्, **आहुरिति** । तदुक्तं रेणुकभगवत्पादाचार्यैः—

शिष्यस्य प्राणमादाय लिङ्गे तत्र निधापयेत् ।
तल्लिङ्गं तस्य तु प्राणे स्थापयेदेकभावतः ।।

(सि. शि. ६.२४-२५) इति।

रौद्रं = रुद्रात्मकं, **शाश्वतं** = नित्यम्, **पुराणं** = चिरन्तनम्, **ऊर्जमूर्जितमिष्ट-लिङ्गमानन्दरूपम्**, **तपसा** = शिवपूजासामग्रीसम्पादनार्थं देहसंशोषरूपेणाऽ**नुयच्छति** = मोक्षं ददातीत्यर्थः । **एतद् व्रतम्** = एतद् अन्तर्बहिर्लिङ्गधारणरूपं व्रतं **पाशुपतं** शैवमित्यर्थः । अग्रे **अग्निर्** इत्यादिना एतल्लिङ्गधारणमहाव्रताङ्गस्य भस्मधारणस्योक्तत्वात्र केवलं भस्मधारणं पाशुपतव्रतम्, किन्तु अन्तर्बहिर्लिङ्गधारणमेव पाशुपतव्रतमिति सुस्पष्टं ज्ञायमानत्वात् ।

इसका अर्थ इस प्रकार है— 'शिवतत्त्वज्ञानी पञ्च प्राणों में हृदय के मध्य अवस्थित उस सूक्ष्म-शरीर को प्राणलिङ्ग कहते हैं, जिस सूक्ष्म शरीर में क्रोध, तृष्णा, क्षमा आदि भाव रहते हैं । इन भावों में संसार का जनक कारण तृष्णा है, जो नश्वर ब्रह्मपद आदि की आकांक्षाओं को जन्म देती है । वैराग्यभाव से उस तृष्णा का छेदन कर, अपनी बुद्धि को प्राणलिङ्गाकार बनाकर ध्यानपूर्वक रुद्रात्मक प्राणलिङ्ग में सूक्ष्म शरीर को स्थापित करना चाहिए । परशिवलिङ्ग में सूक्ष्मशरीर का विलय ही एकत्व अथवा सामरस्य है । जैसा कि रेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं— '**शिष्यस्य प्राणमादाय**' इत्यादि (सि. शि. ६.२४-२५) । "गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य के प्राण को हृदयावस्थित प्राणलिङ्ग में प्रतिष्ठित करे और उसके के पञ्चप्राणों में प्राणलिङ्ग को सामरस्यप्रक्रिया से प्रतिष्ठित करे" ।

यही रौद्र (रुद्रात्मक) नित्य चिरंतन आनन्दस्वरूप इष्टलिङ्ग '**तप**' अर्थात् शिवपूजा-सामग्री सम्पादन के लिए किये गए शारीरिक श्रम से मोक्ष प्रदान करता है । यही आंतर एवं बाह्य लिङ्गधारणस्वरूप पाशुपतव्रत है । यतः आगे चलकर '**अग्निरिति भस्म**' इत्यादि मन्त्रभाग द्वारा भस्मधारण को लिङ्गधारण महाव्रत का अंग कहा गया है, अतः न केवल भस्मधारण पाशुपत व्रत है, अपितु अन्तर्बाह्य लिङ्गधारण ही पाशुपतव्रत है, यह सुस्पष्ट ज्ञात होता है ।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

नन्वस्तु अथर्वशिरस्युपदिष्टमन्तर्बहिर्लिङ्गधारणात्मकव्रतं पाशुपतव्रतम्, तस्य शिरोव्रतत्वे किं मानमिति चेदुच्यते —

व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु ।
तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ।।

इति सूतसंहितायां शिरोव्रतस्य पाशुपतव्रतापरपर्यायत्वेन कथनात्, एतद्व्याख्यानकृता माधवाचार्येणापि **'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्'** इति मन्त्रभागस्य वेदानुशासनपदाभिप्रेतत्वेन प्रदर्शनात् । किञ्च,

लिङ्गाङ्गसङ्गिनां वत्स! पुनर्जन्म न विद्यते ।
एष पाशुपताचारः पशुपाशनिवृत्तये ।।
सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रम इति श्रुतिः ।।
परब्रह्ममिदं लिङ्गं पशुपाशविमोचकम् ।
यो धारयति सद्भक्त्या स पाशुपत उच्यते ।।

पाशुपत व्रत ही शिवोव्रत है, इसमें क्या प्रमाण है? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है। **'व्रतं पाशुपतं चीर्णम्'** इत्यादि वेदमन्त्र द्वारा सूतसंहिता में शिरोव्रत को पाशुपतव्रत का पर्याय कहा है । इसका अर्थ इस प्रकार है— ''जो द्विज पाशुपतव्रत का अनुष्ठान करते हैं, उन्हें ही लिङ्गाङ्गसामरस्य रूपा ब्रह्मविद्या का उपदेश देना चाहिए यह वेद की आज्ञा है । (यह वचन वस्तुतः इस मन्त्र का उपबृंहण है ।)

इसके व्याख्याकार माधवाचार्य भी सूतसंहिता के **'व्रतं पाशुपतं चीर्णम्'** इत्यादि श्लोक में पठित वेदानुशासन से **'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्'** इस मन्त्रभाग में पठित 'शिरोव्रत' को पाशुपत व्रत ही समझते हैं ।

पाशुपतव्रत और अत्याश्रमव्रत लिङ्गधारण व्रत के पर्याय हैं— आदित्यपुराण, लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण आदि के वाक्य इसके प्रमाण हैं । **'लिङ्गाङ्गसङ्गिनां वत्स !'** इत्यादि श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है—

(गुरु शिष्य उपदेश देते हैं कि) 'वत्स ! जो सामरस्य-विद्या द्वारा षड्विध लिङ्गस्थल एवं षड्विध अङ्गस्थलों में ऐक्य (सामरस्य) स्थापित कर महालिङ्ग में विलीन होते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता । त्रिविध मल से आवृत 'पशु' को पाश से छुड़ाने के लिए उपयुक्त यही पाशुपत व्रत है । श्रुति का यही कथन है कि अत्याश्रम अथवा वीरशैवधर्म वेदान्तदर्शन (शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन) का सार है ।

पाशुपत— परब्रह्मस्वरूप यह महालिङ्ग बद्ध जीव **'पशु'** के **'पाश'** को छुड़ाने वाला होता है । इसे सद्भक्ति के साथ धारण करने वाला **'पाशुपत'** कहलाता है । सूक्ष्म-स्थूल-

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शरीरत्रितये भक्त्या लिङ्गं परशिवात्मकम् ।
यो धृत्वा विचरेद् भूमौ स पाशुपत उच्यते ।।

लिङ्गं शिवो भवेत् क्षेत्रमङ्गं संयोग आश्रयः ।
तस्माल्लिङ्गाङ्गसंयुक्तो योऽपि सोऽत्याश्रमी भवेत् ।।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा ।
यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्तः स एवाऽत्याश्रमी भवेत् ।।

इत्यादित्य–लिङ्ग-स्कान्दपुराणादिवाक्येषु पाशुपताऽत्याश्रमव्रतयोर्लिङ्गधारणव्रतपर्यायत्वेन निर्देशात्, पूर्वोक्तसूतसंहितावाक्येन शिरोव्रतस्य पाशुपतव्रतपर्यायत्वेन निर्दिष्टत्वाच्च यावज्जीवं नियमेनाऽनुष्ठेयं लिङ्गधारणमहाव्रतमेव शिरोव्रतमिति बाढं जानीमः । तस्मान्न पराभिमतं शिरस्यग्निधारणाऽग्निपात्रधारणाऽङ्गारपात्रधारणरूपं शिरोव्रतम्, पूर्वोक्तानेकोपबृंहण- वाक्यविरोधात्, उपबृंहणानुसारेणैव श्रुत्यर्थस्य वक्तव्यत्वात्,

यश्चतुर्वेदविद् विप्रः पुराणं वेत्ति नार्थतः ।
तं दृष्ट्वा भयमाप्नोति वेदो मां प्रहरेदिति ।।

कारण त्रिविध शरीर में भक्तिपूर्वक परशिव लिङ्ग को धारण कर पृथ्वी पर विचरण करनेवाला जंगमयोगी '**पाशुपत**' कहलाता है ।

अत्याश्रमी— '**लिङ्गाङ्गसंयोग**' में तीन पद हैं— १. 'लिङ्ग' शिव, २. 'अङ्ग' क्षेत्र और ३. 'संयोग' आश्रय । जो कोई लिङ्गाङ्गसंयोगसम्पन्न होता है, वही 'अत्याश्रमी' होता है । चाहे वह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी कोई भी हो ।

शिरोव्रत ही लिङ्गधारणव्रत है— इस प्रकार आदित्यपुराण आदि में पाशुपत- व्रत और अत्याश्रम व्रत को परस्पर पर्याय कहा है । पूर्वोक्त सूतसंहिता के वाक्य में शिरोव्रत को पाशुपत व्रत का पर्याय कहने के कारण हमारा यह दृढ़ मत है कि आजीवन नियमपूर्वक अनुष्ठेय लिङ्गधारण महाव्रत ही शिरोव्रत है । आचार्य शंकर सम्मत सिर पर अग्निधारण अर्थात् अग्निपात्र अथवा अंगारपात्र का धारण '**शिरोव्रत**'[1] नहीं है । पूर्वप्रतिपादित अनेक उपवृंहण वाक्यों से इसका विरोध है । उपवृंहण के अनुसार ही वेदार्थप्रतिपादन करना चाहिए । '**यश्चतुर्वेदविद् विप्रः**' इत्यादि श्लोक से सूतसंहिता यह प्रतिपादित करती है कि 'जो चारों वेदों का ज्ञाता पुराणों का वास्तविक अर्थ नहीं जानता, उसे देखकर वेद भी डर जाता है कि कहीं यह मुझपर प्रहार न करे ।' '**इतिहासपुराणाभ्याम्**' इत्यादि व्यास- प्रणीत महाभारत के वचन का भी अर्थ यही है कि इतिहास और पुराणों से वेदार्थ का वास्तविक

---

१. '**शिरोव्रतं** शिरस्यग्निधारणलक्षणम् । यथा आथर्वणानां वेदव्रतं प्रसिद्धम्' – शाङ्करभाष्यम्।

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

इति सूतसंहितावचनात्,

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति ।।

इति महाभारते व्यासवचनाच्च ॥१०॥

लिङ्गधारणस्य ब्रह्मविद्याङ्गत्वं व्यतिरेकमुखेनोक्त्वा प्रकृतकथामुपसंहरति—

तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः
पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ।
नमः परमऋषिभ्यो
नमः परमऋषिभ्यः ।।११।।

।। इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः
इति मुण्डकोपनिषत् ।।

उपबृंहण करना चाहिए। शास्त्र के अल्पज्ञ से वेद को भी यह भय होता है कि कहीं यह मुझ पर प्रहार न कर दे। ॥१०॥

अवतरण— वेदमाता नैतदचीर्णव्रतोऽधीते इस प्रकार लिङ्गधारण को ब्रह्मविद्या का अङ्ग कहकर परम ऋषियों की वन्दना के साथ ही प्रकृत कथा का उपसंहार कर रही है—

***मन्त्रार्थ*— सर्वप्रथम अंगिरा ऋषि ने इस कालत्रय में बाधित न होने वाले शाश्वत सत्य को कहा था। शिरोव्रत को संपन्न न करने वाला इस ब्रह्मविद्या का अध्ययन नहीं करता। परम ऋषियों को नमस्कार, परम ऋषियों को नमस्कार ।।११।।**

व्याख्या : तदेतत् इत्यादि। **तदेतत् सत्यम्**— प्रकृत अक्षरब्रह्मस्वरूप परशिव महालिङ्ग का, जो भूत-भविष्य वर्तमान तीनों कालों में बाधित नहीं हो सकता, जिसकी तीनों कालों में शाश्वत सत्ता है, **ऋषिरङ्गिराः पुरोवाच**— पूर्वकाल में अङ्गिरा नामक ऋषि ने महर्षि शौनक से इस शाश्वत सत्य का उपदेश दिया था।

नैतदचीर्णव्रतोऽधीते— अचीर्णव्रतः =(न चीर्णम् आचरितं शिरस्यथर्वशिरस्युपदिष्टम् अन्तर्बहिर्लिङ्गधारणात्मकं व्रतं पाशुपतव्रतं येन स पुरुषः)— जो अथर्वशिखोपनिषद् में उपदिष्ट आन्तर और बाह्य लिङ्गधारणस्वरूप पाशुपत-व्रत का अनुष्ठान नहीं करता, वह पुरुष इस ब्रह्मविद्या का पाठ नहीं करता। अर्थात् उसे इस आन्तर और बाह्यलिङ्ग- धारण

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

तदेतद् इति। **तदेतत्** = प्रकृतमक्षरं परशिवब्रह्म, **सत्यं** = त्रिकालाबाध्यम्, **पुरा** = पूर्वकाले, **अङ्गिराः** = अङ्गिरोनामा ऋषिः, **उवाच** = शौनकाय उक्तवानित्यर्थः। किञ्च, **एतत्** = ब्रह्मविद्यारूपम्, **अचीर्णव्रतः** = न चीर्णमाचरितं शिरस्यथर्वशिरस्युपदिष्टमन्त-र्बहिलिङ्गधारणात्मकं **व्रतं** पाशुपतव्रतं येन स पुरुषः। **नाऽधीते** = न पठति, यावज्जीवं नियमेनाऽनुष्ठेयं यदन्तर्बहिलिङ्गधारणमहाव्रतं तद्रहितेन नाध्येतव्या ब्रह्मविद्येत्यर्थः। **'तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत'** (मु. उ. ३.२.१०) इत्यचीर्णव्रतायैतदध्यापनं निषिद्धम्। अस्मिन् वाक्येऽचीर्णशिरोव्रतस्याऽध्ययनं निषेधितमिति विशेषोऽवगन्तव्यः। **नमः परमऋषिभ्यः** = **परमं** परशिवब्रह्म, **ऋषन्ति** गच्छन्ति साक्षात् कुर्वन्तीति परमर्षयः, ये परशिवशिष्यप्रशिष्याश्चतुर्मुखादिशौनकान्तास्तेभ्यो वीरशैवेभ्यो नमः। द्विरुक्तिरादरार्था समाप्त्यर्था वा ॥११॥

भव्यं भाष्यविभूषणं भवहरं श्रीवीरशैवाभिधं
भाष्यं बालिशहृत्तमोपहरणादित्यं सुधीसन्नुतम्।
श्रीमन्मुण्डकमण्डनं परमतव्याख्यानसत्खण्डनं
भूतेशार्पितमस्तु षट्स्थलपरं सुज्ञानसम्पत्प्रदम्॥१॥

व्रत का अनुष्ठान आजीवन करना चाहिए। जो यह नहीं करता, जो इस लिङ्गधारण- व्रत से वंचित रहता है, उसे ब्रह्मविद्या का अध्ययन नहीं करना चाहिए।

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत (मु. उ. ३-२-१०) इस मन्त्रभाग द्वारा वीरशैव से भिन्न व्यक्ति को ब्रह्मविद्या का अध्यापन निषिद्ध है। उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश नहीं देना चाहिए। इस मन्त्रभाग में उस वीरशैव को ब्रह्मविद्या के अध्ययन से रोका गया है, यही दोनों वाक्यों में वैशिष्ट्य है, जिसे समझना चाहिए।

नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः— (परमम् परशिवब्रह्म ऋषन्ति गच्छन्ति साक्षात्कुर्वन्तीति परमर्षयः, तेभ्यो नमः, तेभ्यो नमः)— जो पर शिवब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं उन्हें और परशिव के शिष्य-प्रशिष्यों-ब्रह्मदेव से लेकर शौनक तक सभी वीरशैवों की ऋषिपरम्परा को वारंवार प्रणाम ॥११॥

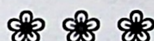
भव्यं भाष्य-विभूषणम्— सभी वीरशैवभाष्यों में भूषण-स्वरूप, भव्य, संसार के दुःखों का हरण करने वाले मुण्डकोपनिषद् का यह श्रीवीरशैवभाष्य अज्ञानियों के हृदयान्धकार का अपहरण करने में सहस्ररश्मि सूर्य के समान है, जिसे विद्वद्गण सादर नमन करते हैं। यह मुण्डकोपनिषद् का मण्डन करने के साथ ही परमत का खण्डन भी करता है। षट्स्थलब्रह्मविवेचनपरक सुज्ञानसंपत्तिप्रदायक यह भाष्य भगवान् परम शिव को समर्पित है ॥१॥

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

वियदृतुवसुब्रह्ममितेऽब्दे शालिवाहने ।
चतुर्थ्यां चैत्रशुक्लस्य भाष्यमेतत् समापितम् ।। २।।

।। आस्थानविदुषा हुब्बल्लिमण्डलान्तर्गत-उमचिगिपुरमध्यविद्योतमान - वृष्टिमठाध्यक्षेण ब्रह्मश्रीशङ्करशास्त्रिणा विरचितमिदं मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्यं समाप्तम् ।
हर-गुरु-चर-चरणार्पितं भूयात् ।।

शालि. १८६० *ख्रि. श. १९३८*

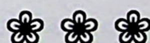


वियद्-ऋतु-वसु-ब्रह्ममिते— आकाश (०) ऋतु (६) वसु (८) और ब्रह्म (१) संख्या-परिमित, अङ्कानां वामतो गतिः इस नियम के अनुसार १८६० शालिवाहन शक के अन्तर्गत चैत्र शुक्ल चतुर्थी को यह भाष्य पूर्ण किया गया ।।२।।

।। हुब्बल्लि (हुबळी) मण्डल के अन्तर्गत स्थित उमचिगिपुर के मध्य प्रकाशित वृष्टिमठ के अध्यक्ष आस्थान-पण्डित ब्रह्मश्री शङ्करशास्त्री द्वारा विरचित मुण्डकोपनिषद् का यह वीरशैवभाष्य समाप्त हुआ ।।

परम शिव, सद्गुरु-एवं जङ्गम शिवयोगी की पूजनीय चरण-पादुका पर यह भाष्य समर्पित रहे ।

शालिवाहन शक १८६० ईसवी सन् १९३८



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

मन्त्राणां वर्णानुक्रमणी

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri



CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. 35/77, जंगमवाडीमठ
वाराणसी-221001

CC-0 . Jangamwadi Math Collection. Digitzed by eGangotri